

परमात्म वैभव { भाग ४ }

परमात्मप्रकाश प्रवचन



परमात्मा
वैभव



परमात्मने नमः

परमात्म वैभव

(भाग - 4)

श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव प्रणीत श्री परमात्मप्रकाश परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1965-66 वर्ष के शब्दशः प्रवचन
प्रवचन क्रमांक 88-116,
परमात्मप्रकाश द्वितीय अधिकार गाथा 23 से 69

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

(ii)

विक्रम संवत्
2081

वीर संवत्
2551

ई. सन
2025

—: प्रकाशन :—

आषाढ माह अष्टाह्निका महापर्व एवं
वीर शासन जयन्ती, जुलाई 2025
के पावन प्रसंग पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।



प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी ।

मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं ॥

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। उनकी दिव्यध्वनि में प्रकाशित हुए मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास देखने में आवे तो श्री योगीन्दुदेव ई.स. की छठवीं शताब्दी में हुए। उन्होंने स्वयं की सातिशय अनुभव लेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की। आपश्री ने स्वानुभव दर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आपश्री ने स्वरूप की भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान और वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती हैं।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1100 के मध्य होने का माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा दुँढारी में सुबोध टीका रची है। यह ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित हुआ है। आत्मा परमात्मा किस प्रकार हो, उसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन दृष्टिगोचर होता है। प्रथम अधिकार में भेदविवक्षा से आत्मा—बहिर्आत्मा, अन्तरआत्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, उसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्वप्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान शासन में अपने सबके परमतारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर

अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्रायः हुए अखण्ड मोक्षमार्ग को पुनः जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट करके प्रकाशित किया है। आपका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील बने हैं और पंचम काल के अन्त तक उनके द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से चलता रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन किये हैं। उनमें से एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के ऊपर प्रवचन ऑडियो में आज मौजूद है, वह सुनते हुए आपश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। आपश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप प्रकाशता तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपकी उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन इस वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलपना, आत्मा को सतत जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष लिया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार की संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों का हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वे अलौकिक हैं! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलाकर उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना या बोलना, वह सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। तथापि उनका अपार उपकार हृदयगत होने से शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से प्रस्फुटित हो उठते हैं। आपके उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से नहीं चुकाया जा सकता, मात्र आपके द्वारा प्रकाशित पंथ के ऊपर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं। तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके भी आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना की उपलब्धता सी.डी., डी.वी.डी., वेबसाईट www.vitragvani.com, vitragvani app, vitragvani YouTube channel जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के

पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ सामान्यजन लें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् जीवन्त रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं। इससे पूर्व ई.स. 1976-77 में हुए प्रवचन 'परमात्मप्रकाश प्रवचन, भाग 1 से 8' तक प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती भाषा में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा ईम्प्रेशन्स द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारुलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई; श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड, मुम्बई, श्री अतुलभाई जैन, मलाड, मुम्बई द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है। ट्रस्ट सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-गुरु-शास्त्र से क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट का मुमुक्षुगण से अनुरोध है कि दृष्टिगोचर अशुद्धियों से हमें अवगत कराये, जिससे आगामी आवृत्ति में अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ www.vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध है।

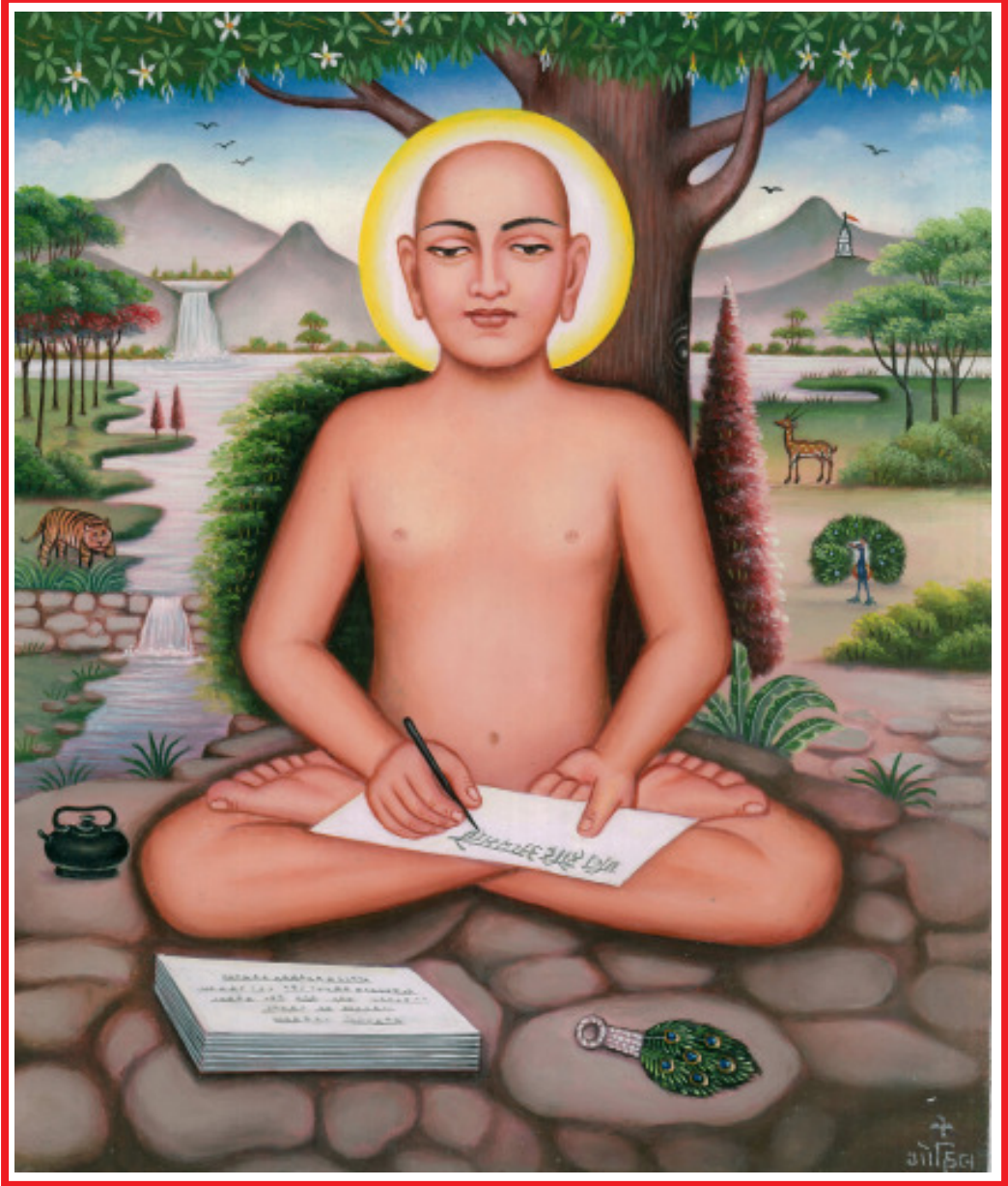
प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ सात भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। जिसका यह चौथा भाग है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

इति शिवम्

ट्रस्टीगण

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई



श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव



अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी (संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव ।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था ।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली । दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा ।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया । सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं । जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है ।

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — 'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' इसका अध्ययन और चिन्तन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है । इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ । भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा । तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है । इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी । अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया ।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल 'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरू हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वी सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरू किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरू हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्त ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता ।
 2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है ।
 3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं ।
 4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है ।
 5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं ।
 6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती ।
 7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है ।
 8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है ।
 9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है ।
 10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं ।
- इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा

जयवन्त वर्तों !

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ
श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तों !!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तों !!!



अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
८८	२८-१२-१९६५	गाथा - २३ से २४	००१
८९	२९-१२-१९६५	गाथा - २४ से २६	०२३
९०	३०-१२-१९६५	गाथा - २६ से २८	०४३
९१	०१-०१-१९६६	गाथा - २८ - २९	०६२
९२	०२-०१-१९६६	गाथा - २९	०८२
९३	०३-०१-१९६६	गाथा - २९ से ३१	१०३
९४	०४-०१-१९६६	गाथा - ३१ से ३३	१२१
९५	०५-०१-१९६६	गाथा - ३४ - ३५	१४०
९६	०६-०१-१९६६	गाथा - ३६ से ३८	१५९
९७	१३-०१-१९६६	गाथा - ३९ - ४०	१७९
९८	१५-०१-१९६६	गाथा - ४० से ४२	१९५
९९	१६-०१-१९६६	गाथा - ४२ - ४३	२११
१००	१७-०१-१९६६	गाथा - ४३ से ४६	२२७
१०१	१८-०१-१९६६	गाथा - ४६ - ४७	२४५
१०२	१९-०१-१९६६	गाथा - ४८	२६३
१०३	२०-०१-१९६६	गाथा - ४९ से ५१	२८०
१०४	२१-०१-१९६६	गाथा - ५१ - ५२	२९९
१०५	२२-०१-१९६६	गाथा - ५२ - ५३	३१९
१०६	२३-०१-१९६६	गाथा - ५३ - ५४	३३९
१०७	२४-०१-१९६६	गाथा - ५४ - ५५	३५८
१०८	२५-०१-१९६६	गाथा - ५६ - ५७	३७६

(xvi)

१०९	२६-०१-१९६६	गाथा - ५७ से ५९	३९६
११०	२७-०१-१९६६	गाथा - ६० - ६१	४१६
१११	२८-०१-१९६६	गाथा - ६१ - ६२	४३६
११२	२९-०१-१९६६	गाथा - ६३ - ६४	४५५
११३	३०-०१-१९६६	गाथा - ६४ - ६५	४७४
११४	३१-०१-१९६६	गाथा - ६६ - ६७	४९२
११५	०१-०२-१९६६	गाथा - ६७ - ६८	५१०
११६	०२-०२-१९६६	गाथा - ६८ - ६९	५२९



॥ श्री परमात्मने नमः ॥

परमात्म वैभव

(भाग-४)

(श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित श्री परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९६५-६६ वर्ष के शब्दशः धारावाहिक प्रवचन)

पौष शुक्ल ६, मंगलवार, दिनांक - २८-१२-१९६५

गाथा - २३ से २४, प्रवचन - ८८

गाथा - २३

परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की २२ गाथा हुई। २३वीं गाथा आगे जीव पुद्गल ये दोनों चलन-हलनादि क्रियायुक्त हैं, और धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चारों निष्क्रिय हैं, ऐसा निरूपण करते हैं—क्या कहना है यह कि यह आत्मा जो है, वह शुद्ध द्रव्य वस्तुरूप से ज्ञायक शुद्ध आनन्दकन्द है। उसका जो निश्चय सम्यग्दर्शन जो धर्म है, उस निश्चय सम्यग्दर्शन में कारण तो वह आत्मद्रव्य है। समझ में आया? सम्यक्—सच्ची श्रद्धा—सम्यग्दर्शन, वह प्रथम धर्म, उस सम्यग्दर्शन का कारण अथवा उसका विषय तो यह आत्मा, शुद्ध आत्मा वस्तु है। ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शन के विषयरूप आत्मा कारण, उस काल में आत्मा में जरा सक्रियपना गति आदि होते हैं, आत्मा में सक्रिय होती है न गति? वह (गति) और उस गति में दूसरे निमित्तपदार्थ, वे सब व्यवहार सम्यग्दर्शन में निमित्त हैं। क्या कहा? समझ में आया इसमें? निश्चय सम्यग्दर्शन में निश्चय वस्तु शुद्ध आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप ऐसा आत्मा निज पदार्थ, वह निश्चय श्रद्धारूपी धर्म का कारण तो आत्मद्रव्य है।

अब, व्यवहार समकित जो शुभरागरूप भाव है, उसका विषय छह द्रव्य, उसमें जीव की गति आदि क्रिया होती है, वह भी व्यवहार समकित का वह विषय है। क्या कहा? श्रद्धा में इसे यह लेना चाहिए कि आत्मा शुद्धस्वरूप अखण्ड ज्ञायक ऐसी प्रतीति-श्रद्धा होने पर भी, उसे उस काल में कुछ गति होती है न गति? जीव चलता है, वह क्रिया जो होती है, वह वर्तमान पर्याय में वह जीव की अपनी योग्यता से है। उसे व्यवहार समकित में श्रद्धा करना चाहिए कि यह मेरी क्रिया मुझसे होती है और इस क्रिया में दूसरे पुद्गल कर्म आदि या धर्मास्ति आदि निमित्त है, वह भी इसे इस प्रकार से श्रद्धा और मानना चाहिए। समझ में आया?

यह कहते हैं, देखो!

१४९) दव्व चयारि वि इयर जिय गमणागमण-विहीण।

जीउ वि पुग्गलु परिहरिवि पभणहिं णाण-पवीण ॥ २३ ॥

हे हंस,... जीव को हंस कहा। हे हंस-विवेकी! तू आत्मा अखण्ड ज्ञायक है, उसकी प्रतीति करना, इसका नाम हंस कहा जाता है। जीव और पुद्गल इन दोनों को छोड़कर दूसरे धर्मादि चारों ही द्रव्य हलन-चलन हलनादि क्रियारहित हैं,... धर्मास्ति, अर्धास्ति, आकाश वे जहाँ पड़े हैं, वहाँ पड़े हैं, उनका गमन है नहीं, ऐसी तू बराबर श्रद्धा कर। जीव पुद्गल क्रियावन्त हैं,... और जीव तथा पुद्गल दो ऐसे गमन करते हैं। वह गमन करने की पर्याय की तुझमें तेरी योग्यता है, ऐसी व्यवहार समकित में श्रद्धा कर। समझ में आया?

गमनागमन करते हैं,... जीव और पुद्गल ऐसे एक स्थान में नहीं रहते। वह है अपनी योग्यता की पर्याय, गमन करने की और गमन होकर स्थिर होने की। ऐसे परमाणुओं का गमन करने का अपना पर्याय धर्म है उनका और वह पर्याय स्थिर हो, वह भी अपना धर्म है। परन्तु वह पर्याय का धर्म है और परद्रव्य का जो धर्म है और अपनी पर्याय में गति-स्थिरता का धर्म है, वह सब व्यवहार समकित के विषय में, छह द्रव्य में जाता है। समझ में आया? यह गमनागमन करते हैं। जीव और पुद्गल ही क्रिया करते हैं, स्वयं से, हों! आत्मा एक स्थान से दूसरे स्थान में जाये, ऐसे हिले, वह स्वयं की पर्याय की योग्यता से गति करता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : देह उसके कारण से गति करती है, ऐसा कहते हैं। देह की क्रिया उसे निमित्त कहेंगे सहकारी (कहेंगे), उसमें कर्म पुद्गल और उसे दोनों को सहकारी कहेंगे, परन्तु वह कर्म, पुद्गल और शरीर स्वयं अपने कारण से ऐसे गति करते हैं। जीव अपने कारण से ऐसे गति करता है। तब उस गति करने में कर्म पुद्गल, नोकर्म उसे निमित्त कहा जाता है और वह गति करने में धर्मास्ति भी निमित्त कहा जाता है। यह वस्तु। समझ में आया ?

ऐसी वस्तु वीतराग के अतिरिक्त व्यवहार समकित के विषय का स्वरूप इस प्रकार से है, वह अन्यत्र हो नहीं सकता। ऐसा बतलाने के लिये व्यवहार समकित के विषय को बतलाते हैं। समझ में आया ? भाई ! कुछ ज्ञान तो इसे करना पड़ेगा। ऐसा का ऐसा बिना भान के कूटे, ऐसा नहीं यह मार्ग। सर्वज्ञ वीतराग ने कहा हुआ आत्मा ऐसा पूर्णानन्द शुद्धस्वरूप, सर्वज्ञ ने कहा हुआ, देखा हुआ, जाना हुआ, ऐसा यह आत्मा पूर्ण ज्ञानानन्द का कन्द वस्तु, उसकी अन्तर्मुख की सम्यग्दर्शन की श्रद्धा में विषय तो वह द्रव्य है। ऐसा आत्मा भगवान ने कहा, वैसा आत्मा। और इसके अतिरिक्त गति-स्थिरता आदि की जो पर्याय जीव में होती है और दूसरे पाँच, छह द्रव्य, दूसरे आत्मा और दूसरी उनकी क्रियायें, वह सब व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय, कारण गिनने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ?

निश्चय सम्यग्दर्शन के कारण में भगवान ने कहा हुआ शुद्ध आत्मा द्रव्य। समझ में आया ? और व्यवहार सम्यग्दर्शन के विषय में भगवान ने जाने हुए जीव और जड़, उनकी पर्याय क्रिया, ऐसा करती है और उसमें निमित्तरूप से दूसरे हैं और दूसरे चार स्वयं अक्रिय हैं। ऐसे भगवान ने देखे हुए, ऐसे, उन्हें व्यवहार सम्यग्दर्शन में निमित्त कारण होते हैं। ओहो ! समझ में आया इसमें ? समझण का घर कभी देखा नहीं, उसकी दरकार की नहीं। यह करना... यह करना... यह करना। दया और व्रत, भक्ति और क्रियाकाण्ड, परन्तु वस्तु क्या है, उसे समझे बिना वह सब (क्रिया व्यर्थ है)। कहते हैं कि दया आदि के परिणाम हों और जीव स्वयं ऐसे गति करे, वह सब व्यवहार समकित के विषय में जाता है, भाई ! आहाहा !

सत्य सम्यग्दर्शन-सत्य सम्यग्दर्शन के विषय में भगवान सत्य परमब्रह्म स्वयं, उसके कारण में—सम्यग्दर्शन में वह कारण है। परन्तु उस काल में उस शुभरागरूपी ज्ञान का एक भाग एक है कि जिसमें जीव और परमाणु गति करे, ऐसी क्रिया और वापस स्थिरता करे और स्थिर हो, ऐसी क्रिया वह जीव और पुद्गल में स्वयं के कारण से है और (धर्मास्ति) आदि दूसरे चार द्रव्य निष्क्रिय हैं, ऐसा सम्यग्दर्शन के अर्थात् उस सम्बन्धी के ज्ञान के विकल्प का वह विषय है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं ? व्यवहार का... ? यह तो आज और यह डाला। क्या डाला ? क्यों ? यह जीव की क्रिया। ... की क्रिया व्यवहार में डाली। वह व्यवहार समकित के विषय में डाली। यह तो दूसरे प्रकार से कहा यह अभी।

एक निश्चय सम्यक् वस्तु, वह तो परमानन्द भगवान अखण्ड ऐसे ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा है, वह सत्यदर्शन का कारण है। सत्यस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु, वह सत्य सम्यग्दर्शन सत् का वह कारण है। असत् अर्थात् व्यवहार समकित उपचार, उसका कारण वह जीव को गति स्वतन्त्र करता है, स्थिरता करता है गति करके, उसमें रागादि होते हैं, वे सब व्यवहार समकित के निमित्त में, कारण में, विषय में जाते हैं। आहाहा ! कहो, समझ में आया ? ऐ... भीखाभाई ! ऐसे जीव गति करे या स्थिर हो, उसमें निमित्त कर्म और शरीर है, वह भी व्यवहार सम्यग्दर्शन के निमित्त में, कारण में जाता है। और गति करे, तब धर्मास्ति निमित्त है, वह भी व्यवहार सम्यग्दर्शन के विषय में, निमित्त में, कारण में जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! शैली तो यह तो परमात्मप्रकाश है न, इसलिए उसका जो पूर्ण स्वरूप है, (वह दर्शाते हैं)।

मुमुक्षु : परमात्मप्रकाश में व्यवहार आप कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार यह कहते हैं। व्यवहार कहा। देखो, आज तो दूसरे प्रकार से कहा थोड़ा। अकेले छह द्रव्य में यह जीव की क्रिया, सक्रियपना, राग-द्वेषपना, कम्पनपना आदि, समझ में आया ? यह सब व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय

कहा गया है आज। अपने से हो, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय। स्वयं पूरा, वह तो निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय। ऐई! देवानुप्रिया! पण्डितजी की ... लेनी चाहिए न हमारे। आहाहा!

यहाँ ऐसा कहना चाहते हैं कि परमात्मा तू स्वयं तो अखण्ड ज्ञान की मूर्ति है न प्रभु! वही सत्यदर्शन का कारण है। सत्य सम्यग्दर्शन, धर्मदर्शन। धर्मरूपी दर्शन का यह आत्मा कारण है, परन्तु इसके साथ यह ज्ञान की पूर्णता केवलज्ञान की नहीं और पूर्ण स्थिरता नहीं, इसलिए यह ज्ञान ऐसा काम करे कि जो क्रिया करे, जीव गति करे, स्थिरता हो, उसे भी वह ज्ञान जानकर व्यवहार है, ऐसी श्रद्धा करता है। समझ में आया? यह उपचार समकित है। गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : वह वास्तव में और यह....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे निश्चय हो, तब यह क्रिया गति, राग और दूसरे द्रव्य की श्रद्धा को उपचार समकित, आरोप समकित, व्यवहार समकित कहा जाता है। यह निश्चय हो तो। तब उसके साथ बात है न यह? क्योंकि बाकी रही हुई बात को श्रद्धा चाहिए न! एक द्रव्य अखण्डानन्द प्रभु, वह सम्यग्दर्शन का कारण हुआ, तब दूसरी बात कुछ बाकी रह जाती है या नहीं? राग, द्वेष, सक्रिय, स्थिरता, दूसरे जीव, दूसरे परमाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल ये सब, यहाँ तो एक सब भंग भेद को व्यवहार सम्यग्दर्शन का निमित्त विषय और कारण कहा जाता है। गजब बात, भाई! समझ में आया? भावार्थ। यह एक बात रह गयी। **ऐसा ज्ञानियों में चतुर रत्नत्रय के धारक केवली श्रुतकेवली कहते हैं।** केवली निकाल देना चाहिए।

मुमुक्षु : केवली और श्रुतकेवली।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, केवली निकाल देना चाहिए। क्योंकि पाठ में 'भेदाभेदरत्नत्रयाधका' है संस्कृत में। समझ में आया? टीका इन्होंने ऐसे की है न। ... टीका के हिसाब से है। 'भेदाभेदरत्नत्रयाधका विवेकिन' महासन्त, मुनि, निश्चय और व्यवहार के आराधक जीव ऐसा कहते हैं। इसलिए वे चतुर, ज्ञानियों में महा चतुर रत्नत्रय भेदाभेद और निश्चय के धारक ऐसे श्रुतकेवली कहते हैं। श्रुतकेवली, वे

श्रुतकेवली मुनि महासन्त, वे व्यवहार समकित के यह छह द्रव्य और सक्रिय, अक्रियपना, वह सब व्यवहार समकित का विषय, ऐसा भगवान बताते हैं। समझ में आया ? छोटाभाई ! वह एक विषय बाकी रह गया था न। उसका अपना भी बाकी रह गया है या नहीं ? आहाहा ! शास्त्र की एक समझाने की पद्धति और उसे उस प्रकार से सिद्ध करने की पद्धति है।

भावार्थ :- जीवों के संसार-अवस्था में इस गति से अन्य गति के जाने को कर्म-नोकर्म जाति के पुद्गल सहायी हैं। निमित्त है। यह एक गति में से दूसरी में जाना, मनुष्य से देव में... समझ में आया ? वहाँ उसे कर्म, आठ कर्म भी निमित्त है। गति की तो अपनी योग्यता है, हों ! उपादान तो। वह निमित्त है कर्म और शरीर तैजसशरीर, औदारिक आदि। यहाँ भी गति करते हैं न जरा ? कर्म, नोकर्म जाति के पुद्गल निमित्त हैं। निमित्त है, दूसरी चीज़ एक निमित्त है। और कर्म-नोकर्म के अभाव से सिद्धों के निष्क्रियपना है,... सिद्ध को निष्क्रियपना स्वयं के कारण से है। तब उसे कर्म और नोकर्म का निमित्तरूप से भी अभाव है, ऐसा कहना है। समझ में आया ? सिद्ध भगवान को कर्म-नोकर्म का निमित्तपना नहीं और अपने में भी सक्रियपना नहीं, निष्क्रियपना है। अपने से अपने में उपादान, वह पर्याय का और दूसरे नोकर्म का निमित्त नहीं उन्हें। समझ में आया ? देखो, गमनागमन नहीं है। सिद्ध को गमन नहीं, सिद्ध तो स्थिर हैं, परमात्मा मोक्ष में स्थिर हैं।

पुद्गल के स्कन्धों का गमन का बहिरंग निमित्तकारण कालाणुरूप कालद्रव्य है। अब यह परमाणु यह शरीर है न ? पुद्गल, कर्म, यह वाणी, यह ऐसे गमन करते हैं न ? देखो न, ऐसे गमन करता है न यह शरीर ? उस गमन का बहिरंग निमित्तकारण, बाह्य निमित्तकारण। कालाणु एक कालद्रव्य है, उसे जानना चाहिए और स्कन्ध में स्वयं से गमन हो उपादान से, ऐसा इसे जानना चाहिए। क्या कहा ? यह शरीर इसके कारण से ऐसे उपादान से गति करता है। समझ में आया ? ऐसा इसे व्यवहार समकित में जानना चाहिए और उसमें गमन करे उसमें... समझ में आया ? निमित्तकारण बाह्य कालाणु द्रव्य है। एक कालाणु पदार्थ है, ऐसे इस शरीर को ऐसे गति करने में निमित्त

वह है। कहो, समझ में आया? देखो, यह लकड़ी है न? ऐसे ऐसे करे न, यह होती है स्वयं अपने उपादान के कारण से, परन्तु एक काल नामक द्रव्य दूसरे हैं वहाँ असंख्य, वे इसके अन्दर पर्याय को निमित्त है। ऐसे यह निमित्त श्रद्धा और इसकी गति की क्रिया श्रद्धा और यह द्रव्य, गुण ऐसे हैं, ऐसा श्रद्धा, यह सब व्यवहार समकित का विषय कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अरूपी है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ अरूपी है? यह क्या कहा? काल अरूपी है परन्तु यह रूपी है न? यह रूपी स्वयं से गति करता है। इसके द्रव्य, गुण को जानना और इसकी पर्याय गति करे, ऐसा इसे श्रद्धा करनी चाहिए स्वयं से, हों! स्वयं से गति करे ऐसा व्यवहार समकित में आता है, भाई लो! ठीक! व्यवहार समकित में इतना तो आता है कि जीव और पुद्गल अपने से क्रिया करते हैं समय में, ऐसा व्यवहार समकित में इसे श्रद्धा करना चाहिए। और उसे निमित्तकारण कालाणु द्रव्य है इस पुद्गल को और जीव में कर्म और नोकर्म निमित्त है और धर्मास्ति भी निमित्त, यह विशेष लेंगे। यह सब स्वयं के कारण से गति क्रिया है, ऐसा व्यवहार समकित श्रद्धा करता है। निमित्तकारण दूसरा है, ऐसे व्यवहार को समकित श्रद्धा करता है। जो यह इसकी क्रिया पर के कारण से माने, उसे तो व्यवहार श्रद्धा के विषय की भी खबर नहीं। आहाहा! कहो, इसमें निकलता है या नहीं? भाई! व्यवहार समकित में निकलता है या नहीं यह? आहाहा! गजब!

कहा कि कर्म, नोकर्म कहने से **पुद्गल के स्कन्धों को गमन का...** देखो! यह गमन अर्थात् पुस्तक ऊँची हो, यह हो, शरीर यह होंठ ऐसे हिले। इस गमन में, **बहिरंग निमित्तकारण...** अर्थात् कि गमन का उपादान तो उसकी अपनी पर्याय है, उपादान पर्याय स्वयं की है। ऐसा व्यवहार समकित उसकी ऐसी श्रद्धा करता है। और **निमित्तकारण कालाणुरूप कालद्रव्य है।** ऐसा उसे निमित्तरूप से श्रद्धा करता है। **इससे क्या अर्थ निकला?** कहते हैं अब ऐसा कहकर इसका अर्थ क्या निकला? **यह निकला कि निश्चयकाल की पर्याय जो समयरूप व्यवहारकाल...** निश्चय काल है एक अणु। अरूपी काल है असंख्य अणु, उसकी एक समय की पर्याय व्यवहार काल, उसकी

उत्पत्ति में मन्द गतिरूप परिणत हुआ अविभागी पुद्गलपरमाणु कारण होता है। ध्यान रखो। यह कालाणु जो द्रव्य है, वह तो श्रद्धा करना, परन्तु कालाणु की एक समय की पर्याय है उत्पत्ति, उसे ऐसी श्रद्धा करना। उसमें मन्द गतिरूप परिणत हुआ पुद्गल निमित्त है, ऐसी उसे श्रद्धा करना। समझ में आया ? ध्यान रखना, भाई ! कोई विषय ऐसा आवे। यह तो वीतरागमार्ग है। बहुत प्रकार के पहलू आते हैं। क्या आया ? उसकी उत्पत्ति में, उत्पत्ति अर्थात् ? उपादान तो उसकी पर्याय है कालद्रव्य, उसकी समय की अवस्था का, ऐसा श्रद्धान करना, परन्तु उसे निमित्तकारण मन्द गति से परिणमित अविभागी पुद्गल का निमित्तकारण है, ऐसा उसे जानना। समझ में आया ? भाई ! यह तो धीरे-धीरे लेते हैं, हों ! वरना है तो एकदम ले जाने जैसा। जानने की बात है न परन्तु अब...

मुमुक्षु : यह नयी बात निकली।

पूज्य गुरुदेवश्री : नयी बात निकली है, लो भाई ! परन्तु व्यवहार समकित क्या है, यह इसे निर्णय करना पड़ेगा न ! निश्चय समकित का कारण तो अकेला द्रव्य कहा। अखण्ड द्रव्य, अखण्डानन्द ज्ञायकमूर्ति। तब अब बाकी उसमें भी रह गया, पर में रह गया सब वह कहाँ गया ? समझ में आया ? आहाहा !

ऐसा व्यवहार वीतराग ने कहा कि जड़ और चैतन्य अपने कारण से गमन करे, ऐसी उपादान पर्याय उसका ऐसा श्रद्धान और उसे निमित्तकारण जो द्रव्य है, उसे इस प्रकार से श्रद्धान करना। तब उसे व्यवहार समकित का यथार्थ विषय हुआ कहा जाता है। इस व्यवहार समकित का भी ठिकाना नहीं होता। एक निमित्त के कारण से उसमें होता है और इसके कारण से उसमें होता है। यह तो कहते हैं कि तेरे व्यवहार समकित के विषय का ठिकाना नहीं होता। समझ में आया ? आहाहा ! दूसरे ढंग से आज बात आयी है, हों ! थोड़ा सा और ऐसा हो गया कि और कहाँ से आयी अन्दर से ? शुरु करते हुए क्रिया में गया न मस्तिष्क। क्रिया तो उसका स्वभाव नहीं। वस्तु द्रव्य तो कारण है समकित में। यह क्रिया, क्रिया किसका विषय हुआ अब ? वह गयी कहाँ ? समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, पुद्गलपरमाणु कारण होता है। समयरूप व्यवहकारकाल का

उपादानकारण निश्चयकालद्रव्य है,... देखो! यह काल नाम का पदार्थ है अरूपी असंख्य, उसकी समय की उत्पत्ति का उपादानकारण वह है, ऐसा जानना और मन्द गति से (परिणमित) एक परमाणु निमित्तकारण है, ऐसा जानना। उसी को एक समयादि व्यवहारककाल का मूलकारण निश्चयकालाणुरूप कालद्रव्य है, उसी की एक समयादिक पर्याय है,... उसकी एक समय की पर्याय, उसकी—कालाणु की। पुद्गल परमाणु की मन्दगति बहिरंग निमित्तकारण है,... उसे पुद्गल का परमाणु मन्दगति से स्वयं से गति करे, वह स्वयं का उपादान है परन्तु इसे निमित्तकारण है। परमाणु एक प्रदेश ऐसे गमन करे, उसका उपादान स्वयं है, परन्तु काल की पर्याय उत्पत्ति में पुद्गल परमाणु मन्द गति से (गमन करे, वह) निमित्त है। गजब बात की है! समझ में आया?

उपादानकारण नहीं है,... क्या कहा? इस कालद्रव्य की पर्याय उत्पत्ति में मन्द गति का परमाणु मूल कारण नहीं। मूल कारण वह काल नाम का पदार्थ है, उसकी एक समय की अवस्था उसका उपादान कारण वह कालद्रव्य है। समझ में आया? पुद्गलपरमाणु आकाश के प्रदेश में मन्दगति से गमन करता है, यदि शीघ्र गति से चले तो एक समय में चौदह राजू जाता है,... एक रजकण एक समय में गति करे तो कालाणु के एक समय की पर्याय को निमित्त कहा जाता है, परन्तु पूरा गति करे तो उसका स्वभाव है। उसका स्वभाव एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड चलने का है, वह स्वयं के कारण से। एक रजकण चौदह ब्रह्माण्ड में एक समय में गति करके चला जाये। ऐसा भी उस परमाणु और उस पर्याय का धर्म है, ऐसा व्यवहार श्रद्धा में इसे लेना चाहिए।

मुमुक्षु : शीघ्र गति।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी अपनी शीघ्र गति।

जैसे घटपर्याय की उत्पत्ति में मूलकारण तो मिट्टी का डला (पिण्ड) है,... क्या कहा? यह घड़े की उत्पत्ति में मूलकारण तो मिट्टी का पिण्ड है, ऐसी इसे श्रद्धा करनी चाहिए। मूलकारण कुम्हार नहीं। और बहिरंगकारण कुम्हार है,... ऐसा कहा उस काल के साथ, भाई! अपने साधारण मिलाते हैं। कुम्हार है। क्या कहा? यह घड़ा होता है, उसका मूलकारण मिट्टी है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए और कुम्हार तो निमित्तकारण,

ऐसा निर्णय करना चाहिए। इसी प्रकार कालद्रव्य की मूल पर्याय का मूलकारण कालद्रव्य। मन्द गति से परमाणु परिणामा, वह तो निमित्तकारण जानना चाहिए।

वैसे समयपर्याय की उत्पत्ति में मूलकारण तो कालाणुरूप निश्चयकाल है और बहिरंग निमित्तकारण पुद्गलपरमाणु है। पुद्गलपरमाणु की मन्दगतिरूप गमन समय में यद्यपि धर्मद्रव्य सहकारी है,... क्या कहते हैं ? रजकण है न पुद्गल, उसकी मन्द गति-गमन समय में यद्यपि धर्मद्रव्य सहकारी है। तो भी कालाणुरूप निश्चयकाल परमाणु की मन्दगति का सहायी जानना। तथापि कालाणु जो है न जगत के द्रव्य, वह निश्चय काल जो है, वह परमाणु की मन्द गति का सहाय जानना। दोनों सहायक कहते हैं। देखो! ध्यान रखना। पुद्गल परमाणु मन्द गति करे, तब धर्मद्रव्य निमित्त है। गति स्वयं से है, धर्मद्रव्य निमित्त है; तथापि पुद्गल मन्द गति करे, तब कालाणु निश्चय काल भी निमित्तरूप से है। एक उपादान और (निमित्त) कारण दो हैं, ऐसी इसे श्रद्धा करना चाहिए। आहाहा! ऐसा वीतराग के अतिरिक्त नहीं होता, इसलिए व्यवहार समकित के विषय में स्पष्ट करके पहिचान कराते हैं। समझ में आता है न? ऊपर से बातें करे, आत्मा ऐसा है और आत्मा ऐसा है, निर्विकल्प करो, परन्तु किस प्रकार से? छोटाभाई! आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जानकर छोड़ने का है या जाने बिना छोड़ देना है? खाकर हाथ धोना या खाये बिना हाथ धो डालना है? जानना कि यह है। उससे दृष्टि छोड़कर द्रव्य के ऊपर लेना। तब ऐसे व्यवहार के विकल्प जानने में, श्रद्धा में होते हैं। समझ में आया या नहीं? हेयरूप है, परन्तु ज्ञेयरूप तो है या नहीं? ज्ञेयरूप हुए बिना हेय कैसे करेगा? गजब बात, भाई!

परमाणु के निमित्त से तो काल की समयपर्याय प्रगट होती है, और काल के सहाय से परमाणु मन्दगति करता है। परमाणु के निमित्त से काल की समयपर्याय प्रगट होती है और काल की सहाय से परमाणु मन्दगति करता है। यह निमित्त परस्पर। कोई प्रश्न करे कि गति का सहकारी धर्म है,... और तुमने पुद्गल गति में कालाणु कहाँ से

डाला ? क्या कहा ? यह पुद्गल ऐसे गति करे, उसमें तो भगवान ने ऐसा कहा कि धर्मास्तिकाय का निमित्त है। उसमें और कालाणु का निमित्त कहाँ से घुसाया तुमने ? काल को क्यों कहा ? उसका समाधान यह है कि सहकारीकारण बहुत होते हैं,... भाई ! निमित्तकारण भी बहुत होते हैं। उपादान अपने से जो पर्याय परिणमे, वह एक ही स्वयं कारण है, निमित्तकारण बहुत होते हैं। बहुत होते हैं, उसमें बाधा क्या आयी ? समझ में आया ? उपादान स्वयं ही अपने से वह काम करता है, वह एक है और (निमित्त) बहुत होते हैं, ऐसी इसे श्रद्धा करनी चाहिए। बहुत निमित्त हैं, इसलिए यहाँ काम होता है—ऐसा नहीं है। आहाहा ! काम तो स्वयं से होता है। समझ में आया ?

यह रोटी पकती है वह अपने उपादान से पकती है, ऐसी इसे श्रद्धा करनी चाहिए। परन्तु उसके निमित्त समय तवा, अग्नि, स्त्री का हाथ इत्यादि निमित्त बहुत होते हैं। उसे निमित्तरूप से जानना चाहिए, परन्तु उनसे रोटी पकती है, ऐसा जानना नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वह रोटी ऐसी होती है। फूलकर दडा हो न ? उस दडा में धर्मास्ति का निमित्त है, ऐसे गति हुई इतनी पुद्गल को, परन्तु साथ में कालाणु का भी निमित्त है। ऐसे गति ऊँचा हुआ न ? उसमें कालाणु निमित्त है। बाह्य निमित्त स्त्री का हाथ आदि सब निमित्त है। वस्त्र ऐसे-ऐसे किया इत्यादि निमित्त। परन्तु वे सब निमित्त हैं। उपादान पर्याय स्वयं से होती है, ऐसी इसे श्रद्धा करनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? सहकारीकरण बहुत होते हैं, और उपादानकारण एक ही होता है,... देखो ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नम्बर-बम्बर नहीं, सब निमित्त हैं। धर्मास्ति का उच्च निमित्त है, बाकी सब गौण निमित्त भी हैं, ऐसा कहेंगे। जैसे पानी में मछली चले, उसमें मूल निमित्त तो वह (धर्मास्ति) है। परन्तु यह पानी भी निमित्त है या नहीं ? पानी निमित्त है या नहीं ? एक निमित्त है न बाह्य ? समझ में आया ? आहाहा !

वस्तु की पर्याय की स्वतन्त्रता प्रसिद्ध करना और उस-उस काल में कितने निमित्त स्वतन्त्र निमित्त हैं, उन्हें भी प्रसिद्ध करना। यह तो वीतराग की कोई शैली है।

समझ में आया ? और वह भी व्यवहार ज्ञान का अथवा व्यवहार श्रद्धा का विषय है। निश्चयज्ञान तो ऐसे ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान का स्वसंवेदनज्ञान, उसका कारण वह आत्मा है। व्यवहारज्ञान... आहाहा ! समझ में आया ? कितने ही कहते हैं, व्यवहार कहते (नहीं)। ऐसा व्यवहार इसने कभी सुना न हो, लो ! अरे ! भगवान ! भाई !

ऐसा प्रभु पूरा जहाँ चैतन्यस्वरूप पूर्ण अखण्ड एक अभेद, (उसकी) जहाँ दृष्टि करके दृष्टि का विषय हुआ, तो उसकी पर्याय में बाकी तो बहुत रह गया, रागादि, भेदादि। समझ में आया ? विकल्प, क्रिया, सक्रियपना आदि और दूसरे-दूसरे द्रव्य सब बहुत रह गये। वे सब इसे ज्ञान में बराबर जानना। उनका अस्तित्व है, ऐसा ज्ञान में स्वीकारना। यही अकेला अस्तित्व है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन का विषय अकेला अस्तित्व अखण्ड लिया, इसलिए उसकी पर्याय में सक्रियपना, रागपना इत्यादि इत्यादि की अस्ति नहीं, ऐसा नहीं। तथा दूसरे द्रव्य नहीं द्रव्य-गुण-पर्यायवाले, ऐसा नहीं। तथा सब द्रव्य स्वयं अपनी पर्याय से काम करे, तब दूसरे को निमित्त कहा जाता है, इसलिए उससे कार्य होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

और उपादानकारण एक ही होता है, दूसरा द्रव्य नहीं होता,... देखो ! उपादानकारण अर्थात् ? यह जीव गति करता है न ऐसे, उसमें आत्मा स्वयं उपादानकारण है। वह स्वयं एक ही उपादानकारण है। फिर उसे कर्म, नोकर्म निमित्त, धर्मास्ति निमित्त, शरीर निमित्त आदि हो। भले बहुत निमित्त हो। उस निमित्त की श्रद्धा करना कि यह निमित्त इतने हैं। निमित्त हैं, ऐसा मानना, परन्तु यह क्रिया होती है स्वयं से—उपादान से, ऐसा इसे मानना। समझ में आया ?

निज द्रव्य ही निज (अपनी) गुण-पर्यायों का मूलकारण है,... देखो ! स्पष्टीकरण किया। निज द्रव्य ही निज गुण-पर्यायों का कारण है। वह अपना द्रव्य ही अपने गुण और पर्यायों का कारण है। समझ में आया ? उस पर्याय का कारण वह स्वयं है न ? यह कृत्रिमता क्रिया होती है, राग होता है, उस सब क्रिया का मूल कारण तो अपना द्रव्य है या नहीं ? समझ में आया ? **निज द्रव्य ही निज (अपनी) गुण-पर्यायों का मूलकारण है, निमित्तकारण-बहिरंगकारण तो बहुत हैं। देखो !** यह ऐसा करके सिद्ध किया। यहाँ

वह द्रव्य सम्यक्त्व का विषय, ऐसा यहाँ नहीं कहना, भाई! यहाँ तो निज द्रव्य अपने गुण-पर्याय का कारण है, ऐसा सिद्ध करना है। जो कुछ आत्मा है, उसके अनन्त गुणों का कारण निज द्रव्य और उसकी पर्याय विकारी, अविकारी का भी निज द्रव्य कारण है। उपादानकारण तो स्वयं है। क्या कहा?

सम्यग्दर्शन निश्चय का विषय द्रव्य यह बराबर है, परन्तु अब वह द्रव्य वर्तमान गुण अनन्त और उसकी पर्याय का उनका कारण द्रव्य है। उसकी वर्तमान पर्याय विकारी हो या अविकारी हो, क्रिया हो या सक्रिय हो या गति करे या स्थिर हो, उन सबका कारण वह स्वयं द्रव्य उपादान है, दूसरे सब निमित्तकारण है, ऐसा मानना चाहिए। समझ में आया?

और निमित्तकारण बहिरंगकारण तो बहुत होते हैं, इसमें कुछ दोष नहीं है। समझ में आया? क्या कहा? निज द्रव्य ही निज गुण-पर्याय का मूलकारण है। प्रत्येक में ऐसा लेना वापस, भाई! पुद्गल में ऐसा लेना। यह परमाणु परमाणु है, यह रजकण है, उसके गुण-पर्याय का कारण तो वह रजकण ही है। फिर भले उसे धर्मास्ति का निमित्त कहो, काल का निमित्त कहो। पुद्गलकरण आता है न कालकरण, भाई! यह आयेगा अब। वे सब निमित्तकारण चाहे जो कहो, परन्तु परमाणु स्वयं अपनी गुण और अवस्था का कारण है। मूल उपादानकारण। समझ में आया? समझ में आता है या नहीं इसमें? जमुभाई! तो एक दृष्टान्त देकर कह देखो। पैसा लो। पैसा लो न एक पैसा। एक पैसा है। वह ऐसे आता है, देखो! अब उस पैसे में रजकण जो है न, उसकी शक्तियाँ और उसकी अवस्था का वह रजकण कारण है। दूसरा हाथ आदि निमित्त भले हो, परन्तु उपादान कारण तो उसका ही है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : रखे कौन? धूल रखे वहाँ? एक साथ है, उसमें रखना था कब? कुछ बात की खबर नहीं। यह क्या करे? इसे यह बात ख्याल में आयी नहीं। ख्याल में ऐसी आयी नहीं और इस प्रकार से सुनने की पद्धति मिली नहीं। ठीक न अब? इसका अर्थ यह कि इसे इस प्रकार की समझने की योग्यता नहीं, ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा!

देखो न! एक बात करते हुए भी कितनी करते हैं! व्यवहार समकित, व्यवहार समकित। परन्तु व्यवहार समकित किसे कहना? समझ में आया? कि प्रत्येक द्रव्य छहों वस्तुएँ अपनी शक्तियाँ—गुण और समय-समय में होनेवाली अवस्था विकारी या अविकारी, विभावी या स्वभावी, उन सब गुण और पर्याय का कारण वह द्रव्य मूलकारण है। समझ में आया?

निमित्तकारण बहिरंगकारण तो बहुत होते हैं, इसमें कुछ दोष नहीं है। इसमें क्या दिक्कत है? धर्मद्रव्य तो सब ही का गतिसहायी है,... देखो! धर्मद्रव्य तो सब गति में सबको सहायी है। परन्तु मछलियों को गतिसहायी जल है,... अर्थात् फिर इतना किया साधारण में। धर्मास्तिकाय, वह तो सब गति जितने करें, पुद्गल और जीव, एक साथ, उन सबको निमित्त है, अब मछली को वह जल ही निमित्त है। मछली गति करती है वह स्वयं से। मछली गति करती है स्वयं से, उसकी गति की क्रिया का उपादानकारण उसका आत्मा। और उस शरीर की क्रिया का उपादानकारण उसके रजकण। परन्तु पानी उन्हें बहिरंग निमित्तकारण कहा जाता है। समझ में आया? ओहोहो! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें?

देखो, धर्मद्रव्य तो सब ही का गतिसहायी है, परन्तु मछलियों को गतिसहायी जल है,... भाग कर दिया। वह (धर्मास्ति) तो सबको सहायक है। पूरे अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु गति करें उन्हें, हों! स्थिर हों, उनकी बात नहीं अभी धर्मास्ति में। गति करते हुए जितने जीव और पुद्गल, उन सबको धर्मास्तिकाय का निमित्त है। परन्तु विशेष में एक भिन्नता (कि) पानी में मछली गति करे, तब पानी उसे निमित्त कहा जाता है। गति स्वयं से उपादान से करती है। पानी है, इसलिए गति करती है, ऐसा नहीं। समझ में आया? जैसे रेल। रेल अपने उपादानकारण से ऐसे गति करती है, तब पटरी निमित्त है।

मुमुक्षु : वह न हो तो नहीं चलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह प्रश्न ही कहाँ? न हो तो नहीं चलती, यह किसने कहा?

मुमुक्षु : यह लिखा है इसमें।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखा है, वह निमित्त को सिद्ध करने के लिये (लिखा है)। रेल चलती है उसमें सामान्यरूप से धर्मास्ति निमित्त है। सब गति की अपेक्षा से। सब गति की अपेक्षा से धर्मास्ति निमित्त है, रेल चले उसमें। चलती है अपने उपादान से, परन्तु विशेषरूप से तब उसे पटरी निमित्त है। हो, निमित्त वह क्या बाधा है? समझ में आया? देखो! यह बाँस हो या नहीं? यह बाँस स्थिर हुआ है अपने उपादानकारण से, परन्तु उसे अधर्मास्ति निमित्त है। मूल सबको स्थिर में अधर्मास्ति निमित्त है। विशेषरूप से अभी दीवार निमित्त है, देखो! निमित्त, हों! उसके कारण से वहाँ रहा नहीं।

मुमुक्षु : निकाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : निकाले कौन? क्या कहा? यह तो दृष्टान्त मछली का धर्मास्ति के लिये दिया है न, देखो! इसी प्रकार यहाँ अधर्मास्ति का दिया यहाँ तो। अधर्मास्तिकाय जो स्थिर हुए लकड़े और जीव जहाँ स्थिर हुए हैं, उसे अधर्मास्ति सब स्थिर को निमित्त है, सब स्थिर हुए को निमित्त है, परन्तु विशेषरूप से उसे वह निमित्त है। समझ में आया? जैसे चूल्हा तवे को ऐसे स्थिर होने में निमित्त है। तवा स्थिर हुआ है, उसे सामान्य निमित्त अधर्मास्ति है, सब स्थिर को। परन्तु भेद करे तो उसे वह निमित्त है। परन्तु रहा है अपने कारण से। समझ में आया? इस प्रकार जैसा है, वैसी श्रद्धा करे, वह व्यवहार समकित का सच्चा विषय हुआ कहलाये। उसका ठिकाना नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार हो ही सच्चा, भूल हो ही नहीं उसमें। व्यवहार की भूल हो, उसे निश्चय की भूल होती है। समझ में आया? फिर व्यवहार की भूल हो उसे निश्चय खोटा हो। समझ में आया? ऐसा बतलाने जैसा वस्तु का स्वरूप है पर्याय का, राग का, अनन्त द्रव्यों का इस प्रकार वस्तु की स्थिति उसके श्रद्धा-ज्ञान में स्वतन्त्ररूप से है, ऐसा सब लेना चाहिए। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

तथा घट की उत्पत्ति में बहिरंगनिमित्त कुम्हार है, तो भी दण्ड, चक्र, चीवरादिक ये भी अवश्य कारण हैं, इनके बिना घट नहीं होता,... अर्थात् कि निमित्त है, इतनी बात

है। वे न हो और घड़ा उत्पन्न हो जाये, ऐसा है नहीं। घड़ा उत्पन्न के काल में अपने उपादान से घड़ा उस समय में, उस समय में उत्पन्न हुआ, उसमें उसे कुम्हार का निमित्त कहा जाता है। उसके साथ चक्र आदि, सब दण्ड आदि, डोरी आदि निमित्त कहलाते हैं। हो बहुत, उपादान एक है, निमित्त बहुत होते हैं। परन्तु वे निमित्त बहुत हैं, इसलिए उपादान से कार्य विशेष हुआ और एक हो, इसलिए थोड़ा हुआ — ऐसा है नहीं। उपादान तो स्वयं से ही कार्य स्वतन्त्र करता है। आहाहा! उपादान-निमित्त का झगड़ा इसमें निकल जाये ऐसा है। यह उपादान-निमित्त और निश्चय-व्यवहार में पड़े हो, परन्तु यह (समझण) नहीं करते।

और जीवों के धर्मद्रव्य गति का सहायी विद्यमान है,... धर्मद्रव्य गति सहायमान, तो भी कर्म-नोकर्म पुद्गल सहकारीकारण हैं,... क्या कहा? यह जीव एक गति में से दूसरी गति में जाये अथवा ऐसे चले, उसमें धर्मास्ति का निमित्त है, उपादान स्वयं का है, तथापि उसे शरीर और कर्म—आठ कर्म और तैजस, कार्मण आदि शरीर। तैजस और यह औदारिक-वैक्रियिक, यह सहकारी साथ में (होते हैं)। साथ में कहते हैं न? आगे-पीछे कहाँ है वहाँ? साथ ही है। आहाहा! यह बड़ा विवाद उठा। इसी तरह पुद्गल को कालद्रव्य गति सहकारीकारण जानना। लो! ऐसे पुद्गल को कालद्रव्य... ऐसे पुद्गल गति करे, उसमें धर्मास्ति तो एक निमित्त है। वे दृष्टान्त दिये ऐसे। धर्मद्रव्य गति सहायक है जीव को, परन्तु कर्म और नोकर्म भी सहकारी है। ऐसे पुद्गल को धर्मास्ति तो निमित्त है गति में, परन्तु कालद्रव्य गति सहकारी कारण जानना। कालद्रव्य को गति में निमित्त कारण (जानना), पुद्गल की गति में काल को निमित्त जानना। ठीक बात की है।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि धर्मद्रव्य तो गति का सहायी सब जगह कहा है, और कालद्रव्य वर्तना का सहायी है,... कालद्रव्य तो वर्तना सहायी है। गति सहायी किस जगह कहा है? तुमने यह और कहाँ डाला गति सहायी? कहाँ से डाला? उसका सुन, समाधान है। उसका समाधान श्री पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्दाचार्य ने क्रियावन्त और अक्रियावन्त के व्याख्यान में कहा है। लो! पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने कहा है। है न? (गाथा-९८)

जीवा पोग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा ।

पोग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु॥१८॥

इसका अर्थ ऐसा है कि जीव और पुद्गल ये दोनों क्रियावन्त हैं,... जीव और परमाणु दोनों ऐसे गति करते हैं। वह उपादान स्वयं का है। और शेष चार द्रव्य अक्रियावाले हैं,... वह अपना उपादान है स्थिर। चलन-हलन क्रिया से रहित हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, वे हलन-चलनरहित हैं। जीव को दूसरी गति में गमन का कारण कर्म है, वह पुद्गल है... एक जीव दूसरी गति में जाये, मनुष्य होकर स्वर्ग में जाये, जाता है अपने उपादान के कारण से। क्या ? श्रेणिक राजा नरक में गये, वह उपादानकारण स्वयं का, परन्तु कर्म और नोकर्म उसे निमित्त कहा जाता है। गति में भले धर्मास्ति निमित्त हो, परन्तु उसे कर्म और नोकर्म भी निमित्त कहा जाता है। कर्म, नोकर्म उसे नरक में ले गये, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

कर्म है, वह पुद्गल है और पुद्गल को गमन का कारण काल है। लो ! पुद्गल साथ में चले न वापस ? जीव को गमन में धर्मास्ति तो सब निमित्त है। ऐसे जीव गया। यहाँ से स्वर्ग में जाये। अब जीव और पुद्गल दोनों गमन करे। तो दोनों को धर्मास्ति तो निमित्त है। अब जीव को पुद्गल निमित्त है और पुद्गल को काल निमित्त है। समझ में आया ? यह कहीं बहुत सूक्ष्म नहीं, हों ! यह तो मात्र जानने की बात है।

मुमुक्षु : स्याद्वाद की अपेक्षा सरल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्याद्वाद की अपेक्षा सरल है।

जैसे धर्मद्रव्य के मौजूद होने पर भी मच्छों को गमनसहायी जल है,... जैसे धर्मद्रव्य की अस्ति है, सब जड़ (पुद्गल)-चैतन्य की गति में, जैसे मछली को पानी अस्ति है। उसी तरह पुद्गल को धर्मद्रव्य के होने पर भी द्रव्यकाल गमन का सहकारी कारण है। पुद्गलद्रव्य यह परमाणु गति करे, यह शरीर, वाणी ऐसे बोले, लकड़ा चले, यह देखो ऐसे चले। पाट-बाट चले न जब ? वह चले उसे धर्मास्ति तो निमित्त है, तथापि द्रव्य काल गमन का सहकारी कारण है। कालद्रव्य भी उसे निमित्तकारण है। समझ में आया ?

यहाँ निश्चयनयकर... अब अन्तिम योगफल। यह सब व्यवहार से जानकर श्रद्धा करनेयोग्य है। परन्तु अब निश्चय आदरनेयोग्य क्या? यह तो जाननेयोग्य कहा। विषय वस्तु है तो उसका ज्ञान तो बराबर करना चाहिए न, ऐसा कहते हैं। निश्चयनयकर गमनादि क्रिया से रहित... देखो! यह क्रिया है, वह व्यवहार विषय हुआ। निष्क्रिय सिद्धस्वरूप के समान... सिद्धस्वरूप समान आत्मा निष्क्रिय। आत्मा निष्क्रिय एकरूप वस्तु। सक्रिय गति-बति गयी, वह व्यवहार में, व्यवहारनय के ज्ञान में। निष्क्रिय निर्द्वन्द्व निज शुद्धात्मा ही उपादेय है,... देखो! भगवान् आत्मा दो—द्वन्द्व ही नहीं जिसमें। दो प्रकार नहीं ऐसा एक प्रकार, एक प्रकार। कितने पहलू कहे? सब पहले व्यवहारज्ञान को जानने में है। व्यवहार समकित का विषय है। परन्तु भगवान् निश्चय सम्यग्दर्शन में अकेला निष्क्रिय निर्द्वन्द्व है—जिसमें द्वन्द्व ही नहीं, उपाधि नहीं, भेद नहीं, ऐसा निज शुद्धात्मा अपना पवित्र आत्मा, उसे श्रद्धा में लेनेयोग्य है, वही सम्यग्दर्शन का कारण निर्द्वन्द्व आत्मा है, ऐसा कहते हैं। यह सब व्यवहारकारण कहे, वे जाननेयोग्य हैं, परन्तु निश्चय सम्यग्दर्शन का कारण तो भगवान् (आत्मा है)। समझ में आया?

मुमुक्षु : वापस सार यह नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सार तो यही है न। वह तो जाननेयोग्य रह गया और आदरनेयोग्य यह रह गया। दो कहे—आदरनेयोग्य यह और जाननेयोग्य वह। यह जानकर आदरनेयोग्य है, वह जानकर छोड़नेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? ‘निजशुद्धात्मद्रव्यमुपादेयमिति तात्पर्यम्’। लो, शुद्धात्मद्रव्य उपादेय कारण। भगवान् आत्मा वह क्रियावाली गति या स्थिर हो क्रिया करके गति स्थिर हो या राग-द्वेष हो, वह पर्याय का भाग हो, गुण-गुणी का भाग हो—वह सब जानने के लिये भले हो, आदरने के लिये तो एक वस्तु, एक स्वरूप अभेद निर्द्वन्द्व है, वही अन्दर श्रद्धा और ज्ञान में आदरनेयोग्य है।

मुमुक्षु : पहले जानना या पहले आदरना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जाने बिना आदर करेगा किसका? ज्ञान बिना आदर करना किसका होगा? वह इसका ज्ञान हुआ, तब इसे आदरणीय माना। उसका ज्ञान हुआ, तब उसे हेय जाना। व्यवहार को जाना, तब उसे हेय जाना। यह निश्चय को ज्ञायक अखण्ड

है—ऐसा जाना, तब इसे उपादेय करके आदरणीय माना।

मुमुक्षु : व्यवहारनय....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही होता है न पहले। उसमें क्या है ? आदरनेयोग्य तो यही है। व्यवहार समकित का विषय आदरनेयोग्य है ? व्यवहार समकित स्वयं आदरनेयोग्य नहीं। व्यवहार समकित विकल्प है। वह भी है न ? ऐसा कहते हैं। बातें ऐसी है, भाई ! यह वीतराग अनेकान्त वस्तु है। यह है और वह भी है। यह आदरणीय है और वह जाननेयोग्य है, आदरणीय है नहीं। यह वस्तु का स्वभाव है। दोनों में से एक भी निकाल डाले, व्यवहार निकाल डाले तो निश्चय नहीं रहे और निश्चय निकाल डाले तो यह व्यवहार किसका ? समझ में आया ? आदरणीय नहीं। वे तो कहते हैं कि व्यवहार है, उसे आदरणीय मानो, निश्चय आदरणीय मानो तो दोनों को माना कहलाये। ऐसा नहीं है। दृष्टान्त देते हैं न कि यदि निश्चय को नहीं मानोगे तो तत्त्व का नाश होगा, व्यवहार को नहीं मानोगे तो तीर्थ का नाश होगा। इसलिए व्यवहार, वह तीर्थ और व्यवहार, वह धर्म है, व्यवहार से धर्म होता है—ऐसा सिद्ध करते हैं। ऐसा नहीं है। व्यवहार नहीं मानो तो तीर्थ अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, राग, भेद, चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान भेद, वह कोई सिद्ध नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। आदरणीय का प्रश्न नहीं। निश्चय न मानो, आत्मा अखण्डानन्द का आदर न करो, तब तो वस्तु कहाँ रही तेरी ? समझ में आया ?

इसी प्रकार दूसरे ग्रन्थों में भी निश्चयकर हलन-चलनादि क्रिया रहित जीव का लक्षण कहा है। जीव का वास्तविक लक्षण। ... गति से गत्यन्तर को जाना है, तब तक दूसरे द्रव्य का सम्बन्ध है, ... क्या कहा ? एक गति से दूसरी गति में जब तक गमन करे... गति, हों ! सिद्ध में गमन करे, वह गति नहीं। यह एक गति से दूसरी गति, इसलिए ऐसा कहा न ? एक गति से दूसरी गति करे, तब तक उसे दूसरे द्रव्य का निमित्त सम्बन्ध है। निमित्त सम्बन्ध है। हों ! उससे होता है, यह प्रश्न यहाँ नहीं। वहाँ तक द्वैत है। द्वैत है न, पाठ में ऐसा है। 'तावद् द्वैतस्य गौचराः' पाठ है संस्कृत। जब दूसरे का सम्बन्ध मिटा, अद्वैत हुआ, ... क्रिया मिटकर स्थिर हो गया तो निमित्त का सम्बन्ध छूट

गया। कर्म और नोकर्म का सम्बन्ध था, वह नहीं रहा। अद्वैत हुआ, तब निकल अर्थात् शरीर से रहित निष्क्रिय है,... निकल अर्थात् शरीररहित, कल अर्थात् शरीर। शरीररहित अकेला भगवान आत्मा हो गया। फिर उसे हलन-चलन रहा नहीं।

उसके हलन-चलनादि क्रिया कहाँ से हो सकती हैं;... अपने उपादान से वह स्थिर हुआ, उसे हलन-चलन कैसे होगा? इसलिए उसे निमित्त भी कर्म-नोकर्म का नहीं। कर्म-नोकर्म थे, इसलिए गति करता था—ऐसा नहीं। कर्म-नोकर्म नहीं, इसलिए स्थिर हो गया—ऐसा नहीं। आहाहा! स्थिर जहाँ सिद्ध स्वयं गमन करते हुए स्थिर हो गये, इसलिए अब उन्हें चलन नहीं, इसलिए निमित्त भी नहीं। यहाँ हलन-चलन का उपादान है तो दूसरे निमित्त गति आदि, कर्म आदि, नोकर्म निमित्त है। बहुत सरस बात है। अर्थात् संसारी जीव के कर्म के सम्बन्ध से गमन है,... गमन की क्रिया उपादान से होती है, तब कर्म का उसमें सम्बन्ध है, ऐसा लेना। वापस ऐसा नहीं कि कर्म का सम्बन्ध है इसलिए गति करता है। ऐसा नहीं। समझ में आया? यह तो ऊपर से डाला है इन्होंने। संसारी जीव राग-द्वेष, अज्ञान या अस्थिरता एक गति से दूसरी गति हो, वह सब है वहाँ तक उसे कर्म का सम्बन्ध है।

सिद्ध भगवान कर्मरहित निष्क्रिय हैं,... अपने कारण से। भगवान स्वयं स्थिर शुद्ध पर्याय में स्थिर हो गये, गति रही नहीं। उनके गमनागमन क्रिया कभी नहीं हो सकती। कर्मसम्बन्ध नहीं। कहो, समझ में आया? लो! एक गाथा हुई। बहुत दूसरे प्रकार से इस बार आया है, हों! व्यवहार समकित का सक्रियपना... पना, ऐसा विशेष स्पष्ट आया। यह उपादान उसका ही है। उसकी क्रिया में राग का, विकार का कारण, वह द्रव्य ही है। उसकी पर्याय का अस्तित्व उसके कारण से है। उसकी पर्याय का अस्तित्व पर के कारण से नहीं। ऐसा भी उसका भेद(रूप) भाव भले हो, परन्तु वह भाव स्वयं से है, ऐसी इसे श्रद्धा करनी चाहिए। पर के कारण से है, ऐसा मानना नहीं चाहिए। परन्तु वहाँ पर एक निमित्त नहीं, ऐसा भी मानना नहीं चाहिए। निमित्त चीज़ है। समझ में आया?

गाथा - २४

अब आगे पंचास्तिकाय के प्रगट करने के लिये... छह द्रव्य हैं न, उसमें काल है, वह एक-एक अणु है। उसकी अस्ति है परन्तु काय नहीं। ऐसा उसका स्वरूप है, ऐसा उसे बराबर व्यवहार ज्ञान में आना चाहिए। कोई उड़ा दे कि छह द्रव्य नहीं, अकेला आत्मा है और छह द्रव्य का क्या काम? वह नहीं, ऐसा नहीं चलता कहते हैं। छह द्रव्य का निर्णय करके उसमें से छाँटना एक आत्मा को। सक्रिय, राग-द्वेषवाली पर्याय है, ऐसा निर्णय करके छाँटना अकेले आत्मा को। समझ में आया? कालद्रव्य अप्रदेशी को छोड़कर... काल है, उसे एक-एक प्रदेश है, उसे बहुत प्रदेश नहीं। अन्य पाँच द्रव्यों में से किसके कितने प्रदेश हैं,... वापस पाँच पदार्थ हैं काल के अतिरिक्त, उसमें प्रदेश कितने? उनका क्षेत्र कितना चौड़ा? यह भी इसे बराबर ज्ञान में व्यवहार समकित के विषय में जानना चाहिए।

१५०) धम्माधम्मु वि एक्कु जिऊ ए जि असंख्य-पदेस।

गयणु अणंत-पएसु मुणि बहु-विह पुगल-देस ॥ २४ ॥

धर्मद्रव्य-अधर्मद्रव्य और एक जीव इन तीनों ही को असंख्यात प्रदेशी तू जान,... देखो! इनके क्षेत्र की बात करते हैं। कोई आत्मा एक ही ऐसे अखण्ड पूरा आत्मा है, दूसरे द्रव्य नहीं और दूसरे क्षेत्र-वस्तु नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहार समकित में ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और जीव के असंख्य प्रदेश हैं। भेद पड़ा न असंख्य प्रदेश, वह सब सम्यक् व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय है।

मुमुक्षु : ऐसा जाने उसे धर्म कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है वह, धर्म नहीं कहलाता। व्यवहार धर्म कहलाता है, (यदि) निश्चय धर्म हो तो। व्यवहार धर्म अर्थात् पुण्य। समझ में आया?

मुमुक्षु : घरबार छोड़कर आते रहे....

पूज्य गुरुदेवश्री : घर-बर कहाँ छोड़ा था? कहाँ था तुम्हारे पास घर-बर? घर-बर कब घुस गया था कि तुम छोड़कर आओ?

मुमुक्षु : वह तो धन्धा....

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धा कौन करता था ? धन्धा किसने किया है ? कौन कहता है किया है ? राग-द्वेष और अज्ञान करता था । उसे छोड़कर आवे तो बैठे अन्दर में । कहो, समझ में आया ?

आकाश अनन्त प्रदेशी है और पुद्गल के प्रदेश बहुत प्रकार के हैं, परमाणु तो एकप्रदेशी है, और स्कन्ध संख्यातप्रदेश, असंख्यातप्रदेश तथा अनन्त प्रदेशी भी होते हैं । इस प्रकार से बराबर जानना चाहिए, इसे ज्ञान में व्यवहारज्ञान, व्यवहारश्रद्धा का विषय ऐसा होता है । निश्चय से तो आत्मा अखण्ड, वही आदरणीय है । विशेष कहेंगे ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

पौष शुक्ल ७, बुधवार, दिनांक - २९-१२-१९६५

गाथा - २४ से २६, प्रवचन - ८९

२४वीं गाथा है। यह व्यवहार समकित का विषय क्या यह चलता है। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन, वह तो आत्मा एकरूप अखण्ड ज्ञानानन्दस्वरूप, वह परद्रव्य का भी कर्ता नहीं और राग का भी कर्ता नहीं। परद्रव्य की अवस्था आत्मा के अतिरिक्त अनन्त पदार्थ, उनकी अवस्था उनसे होती है, उसे आत्मा करता नहीं। बहिर् बुद्धि, तीव्र बहिर् बुद्धि ऐसा मानता है कि परपदार्थ के कार्य मैं करता हूँ। और उससे अन्तर बहिर् बुद्धि होता है, बाहर की बुद्धि राग-द्वेष और विकार का कर्ता, वह अन्तर में बहिर्बुद्धि। विकार के परिणाम, वह जीव का कार्य है अथवा जीव के अस्तित्व में है। समझ में आया? यह भी मिथ्यात्वभाव के लक्षण में जाता है।

अन्तर बुद्धि, आत्मा अन्तरात्मा, अन्तर स्वभाव बुद्धि होने से वह ज्ञान, दर्शन आदि आनन्द की दशा का ही कर्ता होता है। वह पुण्य-पाप व्यवहार और पर का कर्ता (होता नहीं)। पर का कर्ता तो अज्ञानी भी नहीं अथवा पर का अस्तित्व तो अज्ञान में भी यहाँ नहीं। समझ में आया? आत्मा के अस्तित्व में परपदार्थ का अस्तित्व तो यहाँ एक समयमात्र नहीं। इसलिए उसका अपने में अस्तित्व मानना, वह तो तीव्र मिथ्यात्वभाव है परन्तु विकारी का अस्तित्व जीव में एक समयमात्र विकृतभाव है। उतना भी जीवद्रव्य में, स्वभाव में मानना वह भी मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

भगवान आत्मा तो ज्ञानमूर्ति चैतन्यप्रभु है। उसके अस्तित्व में पर का अभाव है, ऐसे विकार के भाव का अस्तित्व का अभाव है। यहाँ अस्तित्व जो सिद्ध करते हैं पर का, वह मात्र सम्यग्दर्शन का विषय, ऐसा है, ऐसा उसे मानना, जानना चाहिए। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन के विषय में अकेला अखण्ड ज्ञायकमात्र आत्मा ही उसका विषय और कारण है। उसके अस्तित्व में विकार भी नहीं और पर भी नहीं। अथवा विकार का वह कर्ता नहीं और पर का वह कर्ता नहीं।

अब उस आत्मा के अभेद स्वभाव की दृष्टि होने पर भी जब तक पूर्ण वीतराग नहीं, इसलिए उसे व्यवहार राग की श्रद्धा कि यह छह द्रव्य हैं, इनके गुण हैं, प्रदेश हैं, वे जैसे हैं, वैसे व्यवहार से श्रद्धा करना, जानना, उसे व्यवहार समकित का भाव शुभराग, शुभ उपयोग कहते हैं। समझ में आया ? यह उसकी बात है, देखो।

भावार्थ :- जगत में धर्मद्रव्य तो एक ही है,... धर्मास्ति। उसे व्यवहार समकित का विषय है, उसको मानना चाहिए। वह असंख्यातप्रदेशी है, अधर्मद्रव्य भी एक है, असंख्यातप्रदेशी है,... अधर्मास्ति। है न भाई ? २४वीं गाथा, २४ का भावार्थ। २४ का भावार्थ। समझ में आया ? जीव अनन्त हैं, सो एक-एक जीव असंख्यातप्रदेशी हैं,... वह भी इसे व्यवहार समकित के ज्ञान में अथवा शुभ उपयोग में मानना चाहिए। समझ में आया ? आकाशद्रव्य एक ही है, वह अनन्त प्रदेशी है,... आकाश एक तत्त्व है, उसके प्रदेश अनन्त हैं। ऐसा जानो। देखो, जानो, कहा है न ? व्यवहार समकित का वह विषय है छह द्रव्य, उसे बराबर जानना चाहिए। यदि व्यवहार समकित के छह द्रव्य का निषेध करे तो उसका अभेद एक द्रव्य का निश्चय भी सच्चा नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया ?

पुद्गल एक प्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश तक है। एक परमाणु तो एक प्रदेशी है, और जैसे-जैसे परमाणु मिलते जाते हैं, वैसे-वैसे प्रदेश भी बढ़ते जाते हैं,... यह उसके कारण से, ऐसा उसे श्रद्धान करना चाहिए। एक रजकण से लेकर वे संख्यात-असंख्यात अनन्त प्रदेश तक जानने,... वे सब उनके कारण से इकट्ठे हों, उनके कारण से पृथक् पड़ें, ऐसा व्यवहार समकित की श्रद्धा में इसे जानना चाहिए। समझ में आया ? अनन्त परमाणु इकट्ठे होवें,... देखा ! तब अनन्त प्रदेश कहे जाते हैं। अन्य द्रव्यों के तो विस्ताररूप प्रदेश हैं,... एक बात। अब आत्मा, आकाश आदि के प्रदेश ऐसे हैं विस्तार। और पुद्गल के स्कन्धरूप प्रदेश हैं। वे पुद्गल के स्कन्धरूप प्रदेश हैं, ऐसे पिण्डरूप प्रदेश हैं। ऐसा इसे व्यवहार समकित में, स्कन्ध के अनन्त प्रदेश ऐसे पिण्डरूप होते हैं, ऐसा इसे मानना, जानना चाहिए। आत्मा से होते हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया ? वे अनन्त रजकण इकट्ठे हों, पृथक् पड़े, ऐसा है, ऐसा इसे व्यवहार ज्ञान में, श्रद्धा में श्रद्धा करनी चाहिए। आत्मा

से वे होते हैं, यह बात तो व्यवहार समकित में भी आती नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : व्यवहार से हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से होता है अर्थात् उससे होता है। इससे कब होता है ? व्यवहार समकित अर्थात् ऐसा पर सम्बन्ध के ज्ञान में इस प्रकार स्वतन्त्र रजकण उनके कारण से इकट्ठे होते हैं, पृथक् पड़ते हैं, ऐसा इसे मानना चाहिए। मुझसे इकट्ठे होते हैं, ऐसा तो व्यवहार समकित में भी मानने का नहीं है। समझ में आया ? आहाहा !

पुद्गल के कथन में प्रदेश शब्द से परमाणु लेना,... पुद्गल में एक प्रदेश कहा न, एक रजकण ? उसे यहाँ प्रदेश कहा। वह क्षेत्र नहीं लेना। रजकण लेना एक द्रव्य, ऐसा। **पुद्गल का प्रचार लोक में ही है,...** पुद्गल के रजकण लोक में हैं। **अलोकाकाश में नहीं है, इसलिए अनन्त क्षेत्र प्रदेश के अभाव होने से...** अनन्त परमाणु के अनन्त प्रदेश कहे न ? वे प्रदेश क्षेत्र के नहीं लेना, परन्तु परमाणु के लेना, ऐसा कहते हैं। क्षेत्र तो आकाश के प्रदेश अनन्त बाहर हैं, यहाँ कोई अनन्त नहीं। यह तो लोक में अनन्त प्रदेश हैं, इसलिए परमाणु के प्रदेश लेना। समझ में आया ? **क्षेत्र-प्रदेश न जानने। जैसे-जैसे परमाणु मिल जाते हैं,...** देखो ! रजकण जैसे-जैसे दो, पाँच, पच्चीस, पचास, सौ, असंख्य, अनन्त। **वैसे-वैसे प्रदेशों की बढ़वारी जाननी।** वे बढ़ते हैं, वे उनके कारण से, ऐसा जानना। आत्मा के कारण से नहीं। दूसरे 'पुगलु तिविहु पएसु' कहा है। **पुद्गल के संख्यात, असंख्यात, अनन्त प्रदेश परमाणु के मेल से जानना चाहिए,...** देखो ! रजकण के मिलाप से होता है। **अर्थात् एक परमाणु एक प्रदेश, बहुत परमाणु बहु प्रदेश, यह जानना।** अब इसका सिद्धान्त। ऐसी श्रद्धा करना, जानना कि ऐसे अनन्त रजकण, अनन्त आत्मायें आदि अपने आप वहाँ हैं। वहाँ अब आदरनेयोग्य क्या उसमें ? यह तो व्यवहार जाननेयोग्य कहा।

सूत्र में शुद्धनिश्चयकर द्रव्यकर्म के अभाव से... शुद्ध वस्तु से देखें तो यह कर्म का भी भगवान आत्मा में अभाव है। क्योंकि कर्म पुद्गल है, उस पुद्गल का कहीं आत्मद्रव्य में भाव नहीं। यह अस्तित्व की बात चलती है न ? अस्तित्व की। तो अस्तित्व की बात की है कि यह पुद्गल हैं, यह है, कर्म है, कर्म इकट्ठे होते हैं, कर्म के

रजकण इकट्ठे होते हैं, धर्मास्ति आदि। भगवान् आत्मा असंख्य प्रदेशी वस्तु है, वह शुद्ध निश्चय से द्रव्यकर्म अर्थात् जड़कर्म के अस्तित्व के अभावरूप है। आत्मा में—वस्तु में जड़कर्म का अभाव है। जड़कर्म का अस्तित्व तो पुद्गल में अस्तित्व है। समझ में आया ? भगवान् आत्मा... यह पुद्गल के अस्तित्व का तो आत्मा में अभाव है। वहाँ है, वह तो जाननेयोग्य कहा। समझ में आया ? एक बात। इस कारण से भगवान् आत्मा अभी अमूर्तिक है। अभी है, हों !

दूसरी बात। और मिथ्यात्व रागादिरूप भावकर्म संकल्प-विकल्प के अभाव से शुद्ध है,... उसके अस्तित्व में वास्तव में तो भ्रमणा और पुण्य-पाप के राग, वह आत्मा के स्वभाव के अस्तित्व में नहीं। समझ में आया ? वह तो अज्ञानरूप से खड़े किये हुए पुण्य और पाप तथा राग-द्वेष, उसकी एक समय की पर्याय में दिखते हैं। वस्तु के स्वभाव में देखो तो वह पुण्य-पाप और मिथ्यात्व का भाव का उसकी अस्ति में—मौजूदगी में अभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी आत्मा की अन्दर श्रद्धा करना और देखना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

भगवान् आत्मा... दूसरे पुद्गल की बात नहीं की, परन्तु कर्म के पुद्गल जो इकट्ठे हुए, उनका भी आत्मा में अभाव है। ऐसा आत्मा अमूर्तिक वस्तु है और मिथ्याभ्रान्ति—पुण्य-पाप मेरे हैं, शरीर मेरा है, पर में सुख है—ऐसी भ्रान्ति और राग-द्वेष के परिणाम भावकर्म, ऐसे संकल्प-विकल्प का वस्तु में अभाव है। वस्तु के अस्तित्व में ज्ञानानन्द भगवान् आत्मा में एक समय की विकृत ऊपर से जो अवस्था उत्पन्न होती है, वह वस्तु में नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

अर्थात् कि परद्रव्य का काम आत्मा करता नहीं। क्योंकि उसमें आत्मा का अस्तित्व नहीं। और पुण्य-पाप के भाव भी वास्तव में आत्मा का काम नहीं। क्योंकि बहिर्बुद्धि से वहाँ लक्ष्य है, वहाँ उनका कर्ता होता है। अन्तर्बुद्धि ज्ञायकबुद्धि हुई तो उसके आत्मा में विकार के व्यवहार परिणाम जो हैं, वे भी हैं नहीं। तो वे आत्मा को काम आते नहीं। आत्मा का वह कार्य नहीं। समझ में आया ? गजब बात, भाई ! कहो, जुगराजजी ! यह तो आत्मा को बहुत काम आते हैं। आहाहा ! आत्मा को बहुत काम

आते हैं भोगने में। अरे, भगवान! यह तो स्थूल बात की भी खबर नहीं होती। परन्तु लेख ऐसे हैं, हों! क्या करे? शास्त्र में ऐसे लेख हैं। कर्म के आधार से जीव और उसके आधार से यह और उसके आधार से यह। ऐसे शास्त्र में बहुत लेख (कथन) होते हैं न। श्वेताम्बर शास्त्र में ऐसा बहुत भरा है। कहीं पता लगता नहीं आत्मा (का)।

यहाँ तो कहते हैं,... अस्ति बताते हैं यहाँ, हों! तथापि वह पुद्गल का अस्तित्व इकट्ठा होना, पृथक् पड़ना, उसके कारण से है और यह कर्म का इकट्ठा होना या पृथक् पड़ना भी उसके कारण से। कर्म बँधना, कर्म छूटना, संक्रमण होना इत्यादि हैं न? वे रजकण में उसके कारण से है। आहाहा! यह इसमें आ जाता है या नहीं इसमें? ऐई! कर्म का उदय आना, सत्ता में से पाक होना, उसका फेरफार होना—उन सबका आत्मा के स्वभाव के अस्तित्व में अभाव है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए उसे अमूर्तिक कहा। मूर्तपने का वस्तु में अभाव है, इसलिए अमूर्तिक कहा और पुण्य-पाप के, मिथ्याभ्रान्ति के अशुद्ध परिणाम का अस्तित्व वस्तु में नहीं, इसलिए उसे शुद्ध कहा। अमूर्त और शुद्ध को सिद्ध करने की दो पद्धति कही। समझ में आया?

शुद्धनिश्चयकर, मिथ्यात्व रागादिरूप भावकर्म संकल्प-विकल्प के अभाव से शुद्ध है,... भगवान अन्तर्मुख स्वभाव, उसका तो शुद्ध ज्ञान, चैतन्य आनन्द है। वह वस्तु स्वयं अन्तर्मुख दृष्टि का तत्त्व, उस वस्तु की अन्तर्मुख दृष्टि हुई, तत्पश्चात् पर के कार्य का अस्तित्व अपने में तो नहीं, परन्तु विकार का अस्तित्व और कार्य भी उसमें नहीं। समझ में आया? आहाहा! सवेरे से उठा... यह तुम्हारा याद आया। डाह्याभाई सवेरे कहे, सवेरे से उठा तब से दांतुन, फिर पानी, फिर चाय, फिर दूध, फिर यह, फिर यह, पूरे दिन मानो कि यह सब काम ही मैं करता हूँ। देरी लगती है न तुम्हारे आने में। अन्त में आये न? सब काम हो न थोड़े-बहुत अकेले को। ... देखो! तुम्हारा बचाव किया। कहो, समझ में आया इसमें? सवेरे से उठे वहाँ दाँतुन किया, मुख साफ करना। अब एक भी क्रिया हराम कर सकता हो तो।

यहाँ क्या कहलाता है? उसके अस्तित्व में—उसकी मौजूदगी में हो, उसका वह करे। उसके अस्तित्व में न हो, उसका वह क्या करे? एक बात। समझ में आया?

उसके अस्तित्व में यह दाँतुन, यह लकड़ी के यह है, वे उसके आत्मा के अस्तित्व में है ? आत्मा के अस्तित्व में मुख और यह दाल और भात, यह ढींकणा, दूध और चाय वह तो इसके अस्तित्व में है नहीं। है नहीं, उसे स्पर्श कैसे करे ? और है नहीं, उसे करे कैसे ? अब इसमें है विकार। पुण्य और पाप और भ्रान्ति पर्याय विकार की। वह जब तक इसके अस्तित्व में ऐसी दृष्टि पड़ी है, पर्याय में दृष्टि पड़ी है, तब तक उस विकार का कर्ता (होता है), अस्तित्व में मानता है, इसलिए कर्ता होता है। समझ में आया ?

इसलिए उसमें ऊपरी जो विकल्प बहिर्बुद्धि से होता था, वह वस्तु के स्वभाव में नहीं। समझ में आया ? बहिर्बुद्धि से जो विकार का अस्तित्व क्षणिक जो अन्तर में भासित होता था, वह वस्तु की दृष्टि (हुई कि) यह तो ज्ञायक शुद्ध चैतन्य है, इसके अस्तित्व में विकल्प का अस्तित्व भी इसमें नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? जिसमें नहीं, उसका यह करे क्या ? अब ऐसा कहना है यहाँ तो। समझ में आया ? क्या होगा इसमें ? मशीन-बशीन चलना बन्द हो गया अब ? चला करता है। वह तो चला ही करता था पहले से, तुम्हारे से कहाँ चलता था ? यह कहते हैं, भाई ! तेरे अस्तित्व में हो, उसमें तेरा अस्तित्व और फेरफार करने का रहे। तेरे अस्तित्व में शरीर, कर्म, पुद्गल, पैसा, स्त्री, पुत्र, कर्म हराम तीन काल में तेरे में हों तो। कभी नहीं तुझमें। आहाहा ! नहीं तुझमें, उन्हें तू कैसे 'मेरा' करके मानता है ? और मेरा करके करे, वह किस प्रकार बने ? मान सकता है मेरुरूप से, परन्तु मेरुरूप से वे अन्दर में आ नहीं सकते। समझ में आया ? तुझमें नहीं, उन्हें मेरुरूप से मान सकता है उल्टी दृष्टि से, परन्तु वे नहीं, वे तेरे हो सके, मानें तो भी हो सकें, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

दूसरी बात। तेरे अस्तित्व में तेरे प्रदेश में एक समय की दशा में पुण्य-पाप विकार का अस्तित्व एक समय की अवस्था में, प्रदेशों के ऊपर के भाग में उसके समूह में है। वह अस्तित्व का है, उसके अस्तित्व में इतने में जब तक दृष्टि है, तब तक उसका कर्ता और तब तक मुझमें है, ऐसा वह मानता है, तथापि त्रिकाल में तो वे हो नहीं जाते। समझ में आया ? जैसे दूसरे को अपना मानने पर भी अपने होते नहीं। इसी प्रकार एक समय का पुण्य-पाप, काम-क्रोध के विकारों की कृत्रितमा को अपने में माने, उस अंश

में लक्ष्य, उसकी वहाँ बुद्धि पड़ी है, इसलिए माने और उनका कर्ता हो। तथापि, ऐसा होने पर भी वस्तु के त्रिकाल में उनका अस्तित्व प्रविष्ट नहीं हो जाता। समझ में आया ?

भगवान आत्मा, वह तो संकल्प-विकल्प की एक समय की विकृतदशा, इतना अस्तित्व मानता था, तब वह है मुझमें और कर्ता मानता था। यहाँ तो कहा शुद्ध द्रव्य वस्तु... वस्तु... वस्तु... चाहिए, निश्चय से वस्तु तो अकेली शुद्ध ज्ञायकमूर्ति अखण्डानन्द प्रभु है, उसकी दृष्टि से देखने पर विकार अस्ति में नहीं, इसलिए विकाररहित आत्मा शुद्ध है। समझ में आया ? कहो, वजुभाई ! समझ में आता है इसमें ? भारी सूक्ष्म, भाई ! इसमें मशीन-बशीन और बँगला और मकान कहाँ आ गये ? आहाहा ! वह तो पुद्गल इकट्ठे हों, पृथक् हों, उसका अस्तित्व है। ऐसा एक विकल्प द्वारा, शुभभाव द्वारा मानना, बस इतना। फिर विकल्प भी आदरणीय नहीं। क्योंकि विकल्प भी स्वरूप के शुद्ध स्वभाव में अस्तिरूप नहीं हैं। उसके विकल्प में अस्तिपने की बुद्धि रखे, तब तक वे मेरे हैं, ऐसा पर्यायबुद्धि से माने। समझ में आया ? वस्तु बुद्धि से तो वह भी अपने में नहीं। दूसरे नहीं, तथा विकार भी नहीं। वह वस्तु में नहीं, इसलिए वस्तु में नहीं, उसका वह कर्ता होता नहीं और उसके कार्य कर सकता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ?

भगवान लोकाकाशप्रमाण असंख्यातप्रदेशवाला है,... दो बातें ली। एक तो पर के अभावरूपी अमूर्त, विकार का अभावरूपी शुद्ध और लोकाकाश में असंख्य प्रदेश। ऐसा जो निज शुद्धात्मा, वही वीतरागनिर्विकल्पसमाधिदशा में साक्षात् उपादेय है,... वह अन्तर्मुख दृष्टि के काल में... यहाँ स्थिरता, ऐसा लेना है न ? स्थिरता भी साथ में (लेनी है)। अन्तर वस्तु स्वभाव पूर्ण शुद्ध है, ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि से। बहिर्मुख की दृष्टि विकल्प का अस्तित्व, अशुद्ध का और वह, यह दृष्टि गयी और अन्तर्मुख की दृष्टि हुई, उस काल में वह यह शुद्धात्मा उपादेय है। समझ में आया ? कठिन बात, भाई ! ओहोहो ! यह जानना। लो ! साक्षात् उपादेय इति भावार्थ।

‘वीतरागनिर्विकल्पसमाधि परिणति काले’ समझ में आया ? वही वीतराग-निर्विकल्पसमाधिदशा में, ऐसा लिया। यहाँ काल में कहा। विकल्प, पुण्य-पाप के भाव और पर का अस्तित्व। उनके अस्तित्व के अस्तित्व की दृष्टि छूटकर अपना एकरूप

अस्तित्व शुद्ध स्वरूप है, ऐसी दृष्टि के काल में, एकाग्रता के काल में यह आत्मा शुद्ध है, वह अंगीकार करनेयोग्य हुआ, उपादेय हुआ। समझ में आया ? भारी सूक्ष्म, भाई ! आहाहा ! स्पष्ट बात तो ऐसी है, परन्तु इसने कभी दरकार की नहीं। कभी निवृत्ति से, शान्ति से इसने यह क्या है ? यह क्या वस्तु है ? यह क्या है ? यह क्या है ? (यह समझा नहीं)। समझ में आया ? व्यवहार श्रद्धा में कहा कि विकार है, पर है, ऐसा विषय व्यवहार समकित में माने, जाने। निश्चय में द्रव्यस्वभाव में वह नहीं। आहाहा ! २४ (गाथा) हुई। २५।

★ ★ ★

गाथा - २५

आगे लोक में यद्यपि व्यवहारनयकर ये सब द्रव्य एक क्षेत्रावगाह से तिष्ठ रहे हैं,... एक क्षेत्र में है सब। यह आत्मा, कर्म साथ में है न इकट्ठे ? तो भी निश्चयनयकर कोई द्रव्य किसी से नहीं मिलता,... कोई द्रव्य किसी से मिलता नहीं। और कोई भी अपने-अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता है,... किसी से मिलता नहीं और अपना छोड़ता नहीं। दो बातें कही। किसी के साथ इकट्ठा नहीं होता और अपना स्वरूप छोड़ता नहीं। अस्ति-नास्ति की। यह कहेंगे।

१५१) लोयागासु धरेवि जिय कहियइँ दव्वइँ जाइँ।

एक्कहिँ मिलियइँ इत्थु जगि सगुणहिँ णिवसहिँ ताइँ ॥ २५ ॥

हे जीव, (हे भगवान आत्मा) ! इस संसार में जो द्रव्य कहे गये हैं,... भगवान ने जो छह द्रव्य कहे, वे सब लोकाकाश में स्थित हैं,... यह नय कहेंगे, हों ! इससे आगे। लोकाकाश तो आधार है, और ये सब (द्रव्य) आधेय हैं,... आधार-आधेय समझ में आता है ? ऐसे रहते हैं आधार। यह नया कुछ नहीं कि था पहले और बाद में आया, ऐसा नहीं। यह तो एक ऐसे अनादि का आधार है, उसमें धर्मास्ति, अधर्मास्ति आदि रहे हुए हैं। इसलिए आधार-आधेय उपचरित झूठे नय से कहा जाता है। समझ में आया ? यह आत्मा आकाश में रहा, यह भी उपचार से असद्भूतनय से कहा जाता है। वास्तव

में तो स्वयं अपने में रहता है। भगवान् आत्मा असंख्य प्रदेश में है, स्वयं अपने में है। यह आकाश में कहना, यह कहेंगे, यह उपचरितनय से। समझ में आया ?

ये द्रव्य एक क्षेत्र में मिले हुए रहते हैं, तो भी निश्चयनयकर अपने-अपने गुणों में ही निवास करते हैं, परद्रव्य से मिलते नहीं।

भावार्थ :- यद्यपि उपचरितअसद्भूतव्यवहारनयकर आधाराधेयभाव से एक क्षेत्रावगाहकर तिष्ठ रहे हैं, तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से परद्रव्य से मिलनेरूप संकर-दोष से रहित हैं,... देखो ! परन्तु अपना परमपारिणामिक स्वभाव-वस्तु (का) स्वतः स्वभाव, उससे देखो तो किसी के साथ कोई द्रव्य मिलता नहीं। एक रजकण दूसरे रजकण के साथ मिलान खाता नहीं और एक रजकण ने अपने स्वरूप को छोड़ा नहीं। समझ में आया ? कोई परपदार्थ के गुण-पर्याय है, उसने उसे छोड़ा नहीं और स्वयं अपने को छोड़कर पर में मिल नहीं गया, तीन काल-तीन लोक में कोई। कहो, इस शरीर में से कहीं आत्मा निकाल ले, माल ले लेवे या उसे कुछ दे ऐसा होगा ?

मुमुक्षु : उसका उपयोग तो काम करे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग। किसका उपयोग करे ? धूल का ? धूल का उपयोग होता होगा ? शरीर का उपयोग आत्मा कर सकता है ? यह कहेंगे व्यवहार से। उपचार कहेंगे। वास्तव में है नहीं। उपचार तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताकर उपचार कहेंगे। बाद की गाथा में कहेंगे। समझ में आया ? आहाहा ! है न ?

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से परद्रव्य से मिलनेरूप संकर-दोष से रहित हैं,... संकर अर्थात् कोई एक-दूसरे में मिल जाते नहीं। यह आत्मा रजकण में मिल नहीं गया। यह आत्मा... अभी। कब क्या ? तीनों काल। ऐई ! इस शरीर के रोग के रजकण में आत्मा नहीं मिल गया, ऐसा कहते हैं। यह मोहनभाई को क्या हुआ ? वे भी फँसे हैं। ओहोहो ! कितने महीने से परन्तु। निरोग हो तब भटका करे और फिर ऐसा हो तब पड़े रहे। अपने को राग के साथ विवाह। कहो, समझ में आया इसमें ?

कहते हैं, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से संकरदोष से रहित है अर्थात् ? वस्तु, वस्तु देखो

तो एक जगह भले उपचार, आरोपित, असद्भूत, झूठे व्यवहारनय से कहने में आता है, परन्तु वस्तु तो वस्तु स्वयं अपने में रही हुई है। कोई वस्तु पर में मिलती नहीं और कोई वस्तु अपने स्वरूप को छोड़ती नहीं। आहाहा! तो कितना देता होगा आत्मा अपने में से निकाल कर स्त्री, पुत्र को? चन्दूभाई को पूछना है? चन्दूभाई को पूछो। अर्धांगना। हराम है, यह और तूने कहाँ से माना? उसके परमाणु या रजकण या उसका आत्मा उसके स्वरूप को छोड़कर दूसरे द्रव्य में आ जाता है? और तेरे द्रव्य के गुण-पर्यायें छोड़कर तू वहाँ चला जाता है? तीन काल में बनता है? किसको दिया और किससे लिया तूने?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्या भ्रमणा की। भ्रमणा खड़ी करके मिठास मानता है। समझ में आया? नीम कड़वा होता है न? सर्प काटा हो तो मीठा लगता है। परन्तु यह तो सर्प काटा हो, उसे मीठा लगता है। जहर चढ़ा हो, उसे मीठा लगता है, ऐसा। समझ में आया? वरना कड़वा है। नीम उसको तो कड़वा लगे, परन्तु कड़वा उसे अच्छा लगता है। उसे तो कड़वा भी नहीं लगता। सर्प काटा हो, उसे कड़वा लगता ही नहीं। मीठा लगता है। उसी प्रकार जिसे मिथ्यात्व का जहर चढ़ा है, उसे बड़ा सर्प काटा है। उसे पर चीज़ मेरी यह अच्छी है, मैं दूसरे को अच्छा, ऐसे मिठास का जहर चढ़ा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : डरता है। यह डरने की कहाँ बात है? यहाँ कहाँ इस दृष्टान्त का काम है? यहाँ तो कहते हैं कि जिसे जहर चढ़ा है, उसे नीम कड़वे की अस्ति होने पर भी मीठा लगता है। मीठा अर्थात् ऐसे मीठा है, ऐसा उसके ज्ञान में आता है, ऐसा। कड़वा है, ऐसा ख्याल में नहीं आता। उसे वह रस ज्ञान में नहीं आता, रस का स्वरूप है कड़वा, उसके बदले मीठा ज्ञान में, ख्याल में आता है, ऐसा मेरा कहना है यहाँ तो। उसे ज्ञान में कहीं नीम घुस नहीं जाता। परन्तु नीम का जो कड़वा स्वभाव है, वह जहर के कारण उसे 'यह मीठा है' ऐसा उसे ज्ञान में आता है। यह मीठा है। इसी प्रकार

मिथ्यात्व के जहर के कारण शरीर, वाणी, पैसा, इज्जत, कीर्ति, पुण्य, पाप मैल और दुःखरूप है। उन्हें आगे दुःख का कारण कहेंगे। वे सब दुःख के कारण हैं। तथापि उसे सुख के कारण जहर के कारण से भासित होते हैं, ऐसा कहेंगे। समझ में आया? आहाहा! वह आता है, श्लोक आता है, हों! श्लोक ही आते हैं सब। उसे कड़वा भी मीठा लगता है। ... इसी प्रकार अज्ञानी को मिथ्यात्व श्रद्धा में, क्या पर का पर्यायरस तुझमें आता है? और तू अपनी पर्याय—गुणपर्याय छोड़कर वहाँ जाता है? तुझे किसका रस आया? समझ में आया? दाल, भात, रोटी, मोसम्बी, हड्डी, चमड़ी और माँस इसे छूते नहीं, तुझे क्या आया उसमें? उन्हें स्पर्श कर सकता नहीं। स्पर्श करता है, ऐसा मानता है। इसलिए उसमें अस्तित्व नहीं, तथापि स्पर्श करता हूँ — ऐसा मानता है। इसके अस्तित्व में उनका अस्तित्व आता नहीं। यह आया यहाँ। मैं स्पर्श करता हूँ, ऐसा मानता है। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात, भाई! कहते हैं, यह सब कोई किसी को छोड़कर किसी में मिलते अर्थात् छूते नहीं।

और अपने-अपने सामान्य गुण तथा विशेष गुणों को नहीं छोड़ते हैं। देखो! परमाणु में सामान्य गुण अस्तित्व आदि है, उन्हें छोड़ता नहीं; परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श विशेष गुण, उन्हें छोड़ता नहीं। आत्मा में (विशेष) गुण ज्ञान, दर्शन, आनन्द है आत्मा में। सामान्य गुण अस्तित्व, वस्तुत्व आदि है, उन्हें छोड़ता नहीं। विशेष गुण आनन्द और ज्ञान आदि छोड़ता नहीं। अपना विशेष आनन्द, ज्ञानगुण है, उसे छोड़ता नहीं। सामान्य गुण अस्तित्व, वस्तुत्व को छोड़ता नहीं आत्मा। रजकण में सामान्य गुण अस्तित्व आदि छोड़ता नहीं। विशेष वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श वहाँ से छोड़कर बाहर में जाता नहीं। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा और पुद्गल, चार तो अरूपी एक ओर रखो, परन्तु कर्म के जो परमाणु हैं, उनके सामान्य-विशेष गुण जो कर्म के हैं, वे उसे छोड़ते नहीं और आत्मा में सामान्य अस्तित्व—मौजूदगी आदि और विशेष आनन्द ज्ञान आदि, वह उन्हें छोड़ता नहीं। छोड़ता नहीं वहाँ किसे स्पर्श करे? किसमें मिले? वह छोड़ता नहीं (तो) यहाँ कैसे मिले? परन्तु दृष्टान्त दिखाई दे मेल वाले? मेल उसमें आता है या

नहीं ? ऐई ! आहाहा ! मिथ्याश्रद्धा में मूर्च्छित, नहीं आता उसमें कुछ पर का और स्वयं नहीं कुछ जरा भी उसमें से छोड़कर वहाँ जाता, परन्तु मानता है कि मुझे उसकी मिठास आती है ।

धनी को दिखाई दे उस ढांकणी में, नहीं कहते ? एकदम काली ढांकणी हो, उसमें क्या मुख दिखाई दे ? वह कहे, मुझे दिखता है । ठीक भाई तब दिखता हो तो । वह पानी हो तो बराबर दिखता नहीं वहाँ । यह देखा है सब और ऐसे-ऐसे साधारण-साधारण लगे, वहाँ तो जरा हो वहाँ तो सूखने लगे यहाँ । यह जरा-जरा सूखने लगे तो बराबर दिखाई दे नहीं । वह कहे कि मुख दर्पण में देख न । नहीं, मुझे ढांकणी में दिखता है । ठीक भाई ! समझ में आया ?

इसी प्रकार आत्मा का आनन्द और ज्ञानगुण स्वयं छोड़कर कहीं गया नहीं । तथापि अज्ञानी मानता है कि पर में मुझे आनन्द और पर में से मुझे ज्ञान आता है । आहाहा ! मुझे पर के कारण से मजा आता है । अरे ! भगवान ! मजा पर में, तेरा मजा पर में कहाँ से आया ? और पर के जो रंग, रस, गन्ध, स्पर्श या दूसरे आत्माओं के अनन्त ज्ञानगुण, वे तुझमें कहाँ से आ गये ? समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दृष्टान्त हों, ऐसे पागल । मूर्ख नहीं होते बहुत ?

देखो ! यहाँ कहते हैं, यह कथन सुनकर प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया है... अब लम्बी बात लेनी है । कि हे भगवन् ! परमागम में लोकाकाश तो असंख्यातप्रदेशी कहा है,... प्रभु ! तुम यह सब कहते हो लोक में इतने-इतने पदार्थ, परन्तु लोक तो असंख्य प्रदेशी है । उसमें अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु रहे कैसे ? एक प्रश्न उठा । समझ में आया ? क्योंकि एक-एक जीव के असंख्यात-असंख्यात प्रदेश हैं, और एक-एक जीव में अनन्तानन्त पुद्गलपरमाणु कर्म-नोकर्मरूप से लग रही है, और उसके सिवाय अनन्तगुणे अन्य पुद्गल रहते हैं, सो ये द्रव्य असंख्यातप्रदेशी लोक में कैसे समा गये ? यह असंख्य प्रदेश में इतना सब अनन्त समाहित कैसे हुआ ? तुम कहते हो, एक-दूसरे को छूते नहीं, ठीक । एक-दूसरे गुण छोड़ते नहीं, ठीक, चलो । परन्तु यह रहे कैसे इतने

सब ? इतना माल और अनन्त रहे । क्षेत्र इतना और रहे अनन्त । समझ में आया ?

जैसे एक... उत्तर देते हैं । जैसे एक गूढ़ नागरस गुटिका में शत,... धातु होती है न ... ? ... गोली बनावे, नींबू डालकर एकरस करे, फिर इतनी बनावे तो लाख भाग आता है न ? यह दृष्टान्त देते हैं । अथवा... समझ में आया ? अथवा एक दीपक के प्रकाश में बहुत दीपकों का प्रकाश जगह पाता है,... एक दीपक होता है, वहाँ बहुत दीपक होते हैं न ? अभी तो तुम्हारे क्या यह ? बैट्री । बैट्री क्या कहलाती है यह इलेक्ट्रिक की ? बड़े मकान में लाखों डालनी हो तो आती है । सब प्रकाश समाहित हो जाता है अन्दर । अथवा जैसे एक राख के घड़े में जल का घड़ा... यह राख का घड़ा हो न, उसमें पानी डालो घड़ा तो समा जाये । अच्छी तरह अवकाश पाता है, भस्म में जल शोषित हो जाता है,... वह राख है न, पानी शोषित हो जाता है । अथवा जैसे एक ऊँटनी के दूध के घड़े में शहद का घड़ा समा जाता है,... शहद अर्थात् मधु । वह मधु का घड़ा समा जाता है ऐसा उसका स्वभाव है । ऊँट के दूध का घड़ा भरा हो, इतना ही घड़ा मधु का उसमें डाल दो तो समा जाये, ऐसा उसके दूध का स्वभाव है । ऊँट का दूध ऐसा पोचा होता है । ... होता है न देखो न ! ऊँट में बहुत ऐसा दूध होता है । तो वह दूध का घड़ा भरा हो, उसमें एक मधु का दूसरा घड़ा डालो तो पूरा समा जाता है । ऐसा उसमें अवकाश देने का गुण है । ओहोहो ! समझ में आया ? अथवा एक भूमिघर में ढोल, घण्टा आदि बहुत बाजों का शब्द अच्छी तरह समा जाता है,... बहुत आवाजें नहीं आती ? २५-५० बाजे एक साथ बजें तो सब आवाजें होती हैं न इकट्ठी ? ऐसा ही कथन परमागम में कहा है... समझ में आया ?

उसी तरह एक लोकाकाश में विशिष्ट अवगाहनशक्ति के योग से अनन्त जीव और अनन्तानन्त पुद्गल अवकाश पाते हैं, इसमें विरोध नहीं है,... देखो ! यह व्यवहार समकित का यह विषय भी उसे श्रद्धा कर, कहते हैं । आहाहा ! इतने क्षेत्र में अनन्त कैसे रहे ? अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु । खबर नहीं पड़ती ? एक राख के घड़े में एक पानी का पूरा घड़ा डालो तो समा जाता है । वह भस्म चूस गयी । ऊँटनी के दूध में एक घड़ा मधु डालो तो चूस ले । उसी प्रकार इस लोक में असंख्य प्रदेश में अनन्त परमाणु, आत्मा

पड़े हैं, ऐसी श्रद्धा कर। व्यवहार समकित का विषय। इतना भी जिसे श्रद्धा में ठिकाना नहीं, उसे निश्चय समकित हो नहीं सकता।

इसका अर्थ ऐसा है कि एक निगोदिया जीव के शरीर में जीवद्रव्य के प्रमाण से दिखलाये गये जितने सिद्ध हैं, उन सिद्धों से अनन्त गुणे जीव एक निगोदिया के शरीर में हैं,... एक निगोद, कल कहा था न? एक टुकड़ा राई जितना लो, (उसमें) असंख्य तो औदारिकशरीर। एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुणे जीव हैं। इतना अवगाह पा जाते हैं। अज्ञानी को क्षेत्र में संक्षिप्त में कितने समाये, बैठता नहीं और एक आत्मा में अनन्त गुण कितने, यह भी बैठता नहीं। और एक-दूसरे इकट्ठे रहे होने पर भी स्पर्शते नहीं, यह भी बैठता नहीं। आहाहा! इतने सब इकट्ठे रहे एक क्षेत्र में, असंख्य प्रदेश में अनन्त निगोद के रहे इकट्ठे, तथापि एक-दूसरे को स्पर्श नहीं। किसी ने अपने गुण को छोड़ा नहीं और कोई किसी में मिला नहीं। आहाहा! समझ में आया?

और निगोदिया का शरीर अंगुल के असंख्यातवें भाग है, सो ऐसे सूक्ष्म शरीर में अनन्त जीव समा जाते हैं,... लो! ऐसे शरीर में अनन्त जीव समा जाते हैं। तो लोकाकाश में समा जाने में क्या अचम्भा है? अनन्तानन्त पुद्गल लोकाकाश में समा रहे हैं, उसकी 'ओगाढ' इत्यादि गाथा है। उसका अर्थ यह है कि सब प्रकार सब जगह यह लोक पुद्गल कायोंकर अवगाढगाढ भरा है, ये पुद्गल काय अनन्त हैं; अनेक प्रकार के भेद को धरते हैं,... अनन्त प्रकार के भेद को धरते हैं। वे पुद्गल उसके भेद को धरते हैं, दो, चार, पाँच, पच्चीस, पचास, असंख्यात, अनन्त आदि, वह तो उसके कारण से हुआ करे। तेरे कारण से है नहीं। कोई सूक्ष्म हैं, कोई बादर हैं। है जगत में।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि सब द्रव्य एक क्षेत्रावगाहकर रहते हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर जीव केवल ज्ञानादि अनन्त गुणरूप अपने स्वरूप को नहीं छोड़ते हैं,... तथापि यह भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द ऐसे अनन्त गुण को अपने स्वरूप से छोड़ता नहीं। समझ में आया? पुद्गलद्रव्य अपने वर्णादि स्वरूप को नहीं छोड़ता,... देखो! परमाणु ने परमाणु स्वयं अपने गुण को, पर्याय को कभी छोड़ता नहीं। और धर्मादि अन्य द्रव्य भी अपने-अपने स्वरूप को नहीं छोड़ते हैं। छहों आ गये। एक-एक शरीर में अनन्त जीव, एक-एक जीव अपने ज्ञानादि अनन्त

गुण को कभी छोड़ता नहीं। एक शरीर में अनन्त जीव इकट्ठे, उनका श्वास, आयुष्य, आहार इकट्ठे, तथापि इकट्ठे का अर्थ एक का निमित्तपने साथ में, तथापि एक आत्मा अपने अनन्त ज्ञानादि गुण को छोड़ता नहीं। दूसरा आत्मा अपने गुण को छोड़ता नहीं। वहाँ एक-एक रजकण अपने वर्ण, गन्ध, रस को छोड़ता नहीं। समझ में आया ?

इतना अंगुल के असंख्यवें भाग में अनन्त आत्मायें, उससे अनन्तगुणे पुद्गल के परमाणु कर्म के। इसके अतिरिक्त दूसरे बहुत से पुद्गल। वे प्रत्येक, प्रत्येक आत्मा अपने अनन्त ज्ञान, दर्शन का तत्त्व बेहद जानना-देखना, आनन्द का तत्त्व उसने छोड़ा नहीं और एक-एक रजकण में अनन्त गुण सामान्य-विशेष—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रूप एक साथ अनन्त इकट्ठे अंगुल के असंख्यवें भाग में उस एक-एक परमाणु में अपने वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श छोड़ा नहीं। छोड़े तो पृथक् कैसे रहे ? पृथक् न रहे तो अनन्त कैसे रहे ? अनन्त रहे, इसका अर्थ कि अनन्त अपनेरूप से रहे हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान ही है आत्मा। केवलज्ञानस्वरूप कहा न, वहाँ क्या कहा ? निश्चय केवलज्ञान आदि अनन्त गुणरूप एक ज्ञान, एक दर्शन, एकरूप आनन्द आदि अनन्त गुणरूप प्रत्येक द्रव्य आत्मा भगवान विराजता है। एक आत्मा कोई दूसरे आत्मा को काम आता नहीं। क्या काम आवे ? अपनी पर्याय छोड़कर कहीं जाता है तो काम आवे ? दूसरे का आत्मा यहाँ काम आता नहीं। क्योंकि उसके गुण-पर्याय छोड़कर कहीं जाता नहीं। क्या काम आवे ? कहो, भीखाभाई ! लड़के-बड़के तो काम आवे या नहीं सेवाचाकरी करने में ? ऐई ! आहाहा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में किसे एकत्र करे ? लोग ऐसा कहते हैं कि भाई ! मरा हुआ सर्प भी काम (आता है), संग्रह किया हुआ काम आता है, ऐसा कहते हैं न ? वह दृष्टान्त देते हैं न ? ... ऊपर। उसमें एक चील निकली। एक रानी नहाती थी और उसका हार था सवा लाख का। ऐसे रखा था, वह नहाती थी। उसमें चील ने उठाया वहाँ से। उठाकर जहाँ उसरूप से ऐसे जाती है, वहाँ वह सर्प दिखा मरा हुआ किसी ने डाला।

वहाँ वह हार डालकर सर्प उठाया। जहाँ ऐसे देखे वहाँ सर्प के बदले हार। संग्रह किया हुआ सर्प भी काम आवे, ऐसा लोग कहते हैं। ऐसे के ऐसे दृष्टान्त। यह छोटी उम्र में सुनते थे यह सब। सब वार्ता।

मुमुक्षु : सब दुःखी होने के....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःखी होने के। हैरान-हैरान। संग्रह किया हुआ सर्प भी काम आता है। क्यों? कि यह बात हुई, ऐसी बात है यह, हों! एक महिला-रानी नहाती थी, सवा लाख का हार था और पत्थर के ऊपर रखा हुआ नहाने के समय। उसमें एक चील निकली और एक मनुष्य ने मरा हुआ सर्प था अपने घर में, वह उसने रख छोड़ा था। उसमें वह चील निकली हार लेकर, ऐसे देखा सर्प। सर्प को पकड़ा, वह हार छोड़ दिया। भ्रमणा के... समझ में आया? ऐसी बात सुनते, छोटी उम्र में ऐसी सब सुनी हुई बहुत, हों भाई! गप्प ही गप्प मारे। लोभिया! उसके बदले वह मिल जायेगा, हार मिल जायेगा। क्या मिला परन्तु? हार मिला उसमें तुझे क्या मिला? ऐसा कहते हैं। उन हार के रजकण ने तुझे क्या दिया? और उसके रजकण ने उसने वहाँ से क्या छोड़ा? समझ में आया? आहाहा! ऐसा सुने तो कोई किसी के रहेंगे नहीं। परन्तु कोई किसी के नहीं, यह बात तो चलती है यहाँ। ऐसी श्रद्धा नहीं करे तो व्यवहार समकित का विषय तूने सच्चा माना नहीं। समझ में आया? यह तो व्यवहार समकित का विषय चलता है।

प्रत्येक द्रव्य अपने क्षेत्र में रहे हुए अपने गुणों को छोड़कर किसी के क्षेत्र में किसी को काम आता नहीं। ऐसे वस्तु के अनन्त द्रव्य स्वतन्त्र एक क्षेत्र में रहे हुए हैं। इस प्रकार मानना, उसे तो अभी व्यवहार समकित का विषय कहते हैं। समझ में आया? निश्चय में तो, भगवान आत्मा जिसकी एक समय की पर्याय में इतना सब जानने की सामर्थ्य, विकल्पसहित एक समय की पर्याय में इतना सब है, ऐसा जानने की सामर्थ्य। इसके अतिरिक्त पूरा भगवान पूर्णानन्द प्रभु अखण्ड आनन्द का कन्द एकरूप गुण का पिण्ड है, उसकी अनुभव की प्रतीति करना, उसका नाम निश्चय सम्यक्त्व है। आहाहा! समझ में आया? छहों द्रव्य अपने स्वरूप को छोड़ते नहीं।

अब देखो आया, उपकार करे वे। छोड़ते नहीं, मिलते नहीं परन्तु उपकार अर्थात् निमित्त तो उसका होता है। उसे निमित्तरूप से होता है। विशिष्टता लेंगे इसमें भी, हों! दुःख में उपकार करता है। हाँ, यह लेंगे। आहाहा! ... सुख, वह कल्पना का दुःख है। आत्मा के आनन्द में नहीं।

★ ★ ★

गाथा - २६

आगे जीव का व्यवहारनयकर अन्य पाँचों द्रव्य उपकार करते हैं, ऐसा कहते हैं, तथा उसी जीव के निश्चय से वे ही दुःख के कारण हैं, ऐसा कहते हैं—देखा! उपकार करते हैं, वह दुःख का कारण है, दुःख के निमित्त हैं। आहाहा! गजब, भाई!

१५२) एयडँ दव्वडँ देहियहँ णिय-णिय-कज्जु जणंति।

चउ-गइ-दुक्ख सहंत जिय तँ संसारु भमंति ॥ २६ ॥

एतानि द्रव्याणी देहिनां निजनिजकार्यं जनयन्ति।

चतुर्गतिदुःखं सहमानाः जीवाः तेन संसार भ्रमन्ति ॥ २६ ॥

ये द्रव्य जीवों के अपने-अपने कार्य को उपजाते हैं, इस कारण नरकादि चारों गतियों के दुःखों को सहते हुए जीव संसार में भटकते हैं। यह बेचारे... धर्मास्ति सहाय करे, शरीर आदि पुद्गल बनावे, उसके निमित्त से दुःखी होकर भटक रहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- ये द्रव्य जो जीव का उपकार करते हैं, उसको दिखलाते हैं। पुद्गल तो आत्मज्ञान से विपरीत विभाव परिणामों में लीन हुए अज्ञानी जीवों के... भगवान् आत्मा अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान में अपने को स्वयं दान देता है। आहाहा! वस्तु भगवान् ज्ञानानन्द प्रभु, वह अनन्त गुण का धाम भगवान्, उसमें अन्तर दृष्टि और स्थिरता करते हुए भगवान् आत्मा स्वयं अपने को ज्ञान और आनन्द का दान दे और स्वयं ले। यह तो सम्यग्ज्ञान में होता है, कहते हैं। उससे यह उल्टा। है न? आत्मज्ञान से उल्टा अज्ञान में अज्ञानी को क्या होता है?

विभाव परिणामों में लीन हुए... देखा ! जो स्वभाव ज्ञानानन्द प्रभु शुद्ध है, उसमें लीन हो तो आत्मा में से आनन्द और ज्ञान का दान मिलता है । वह आत्मा दाता, आनन्द के धन का दाता है । ऐसे भगवान आत्मा की अन्तर दृष्टि करने से आत्मा आनन्द का दाता उस पर्याय में आनन्द देता है । आहाहा ! समझ में आया ? अर्थात् क्या कहा ? कि पर का अस्तित्व और पर के कार्य मुझमें नहीं, राग का अस्तित्व और राग के कार्य मुझमें नहीं । ऐसा आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव की दृष्टि और आश्रय करने से उसमें से ज्ञान के कार्य और ज्ञान में कार्य हो । वे राग के और पर के नहीं । पर के तो यों भी नहीं थे । परन्तु यह राग के कार्य होते थे, उसके बदले ज्ञानानन्द के कार्य—ज्ञान का जानना, आनन्द का होना, वे सब कार्य आत्मदान कहे जाते हैं । समझ में आया ? ऐसे आत्मदान से विपरीत, भाषा देखो ! ओहोहो ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा अपने अस्तित्व में रहे हुए गुणों की दृष्टि करने से मेरे अस्तित्व में तो विकार और परपने का अभाव है । ऐसा जो आत्मा, ऐसे आत्मा की दृष्टि और ज्ञान करने से वह आत्मा तो ज्ञान का जानने का काम करे । वह राग का कार्य और पर का कार्य छोड़ दिया । जानने का काम करे, वहाँ आनन्द का काम इकट्ठा होता है, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! राग का काम करता था, वहाँ आकुलता का काम साथ में था । पर के काम मानता था, तब मान्यता मिथ्यात्व के साथ दुःख का काम—वेदन साथ में था । आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा, जिसे ऊपर वर्णन किया था न ? अमूर्त और शुद्ध । उसे आत्मा कहा न ? ऐसे आत्मा की जहाँ दृष्टि का अस्तित्व ऐसा है, ऐसा जहाँ हुआ, तब आत्मदान कहा । उसका ज्ञान का जानना, आनन्द का होना, शान्ति का होना, अस्तित्व वीर्य का स्वरूप की रचना का होना, ऐसा जो दान, स्वरूप की पर्याय में दान हुआ स्वयं को । वह तो स्वभाव वस्तु हुई । उसमें विकार और पर का अस्तित्व नहीं । ऐसे आत्मा ने आत्मा को इस प्रकार से दान स्वयं को किया । समझ में आया ? इससे विपरीत **विभाव परिणामों में लीन हुए...** देखो ! विकारी परिणाम में लीन हुआ, वह उसने दुःख का दान दिया । ऐसे अज्ञानी जीवों को व्यवहार से यह उपकारी है । लो, ऐसा कहा । भाषा क्या

कही ? विभाव में लीन है, उसे उन दुःख में निमित्त होता है। निमित्त दुःख में उपकार करता है। आहाहा ! समझ में आया ?

जिसने भगवान आत्मा का अनन्त ज्ञानानन्दस्वभाव अस्तिरूप से वस्तु है, ऐसी दृष्टि की नहीं और पुण्य-पाप के विकार की वृत्तियों जितना मैं, ऐसा माना है, ऐसे विभाव में लीन हो गया, ऐसे को अज्ञानी जीवों के व्यवहारनयकर शरीर, वचन, मन, श्वासोश्वास, इन चारों को उत्पत्ति करता है,... देखो ! कारण कि विभाव में लीन है, उसे यह पुद्गल निमित्तरूप से यह शरीर और वाणी उत्पन्न होती है। ज्ञानी को उत्पन्न होते नहीं। आहाहा !

ज्ञानी को स्वभाव में लीनता से शान्ति और आनन्द की उत्पत्ति होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? धर्मी को अपना स्वभाव शुद्ध आनन्द, ज्ञान ऐसे द्रव्य की दृष्टि का भान होने से उसे तो आनन्द का दान है। समझ में आया ? इसलिए उसे दूसरे निमित्तों का उसमें अभाव है। जिसे विभाव का दान है, उसे इन दूसरे निमित्तों का सद्भाव है, ऐसा कहते हैं। वाह ! समझ में आया इसमें ?

अज्ञानी विभाव परिणाम में लीन हो गया है। स्वभाव में लीन हुआ, उसे तो वे उत्पन्न होते ही नहीं, इसलिए दुःख में निमित्त नहीं। और सुख में निमित्त तो वे हैं नहीं, सुख का कारण तो आत्मा है, स्वयं ही है। आहाहा ! परन्तु विभाव में लीन हुए, इसलिए दुःख में लीन हुए, ऐसा कहते हैं। उन्हें व्यवहारनयकर शरीर, वचन, मन, श्वासोश्वास, इन चारों को उत्पत्ति करता है,... उसे जड़ की उत्पत्ति होती है। आहाहा ! अर्थात् मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, राग-द्वेषादि विभावपरिणाम हैं, इन विभाव परिणामों के योग से जीव के पुद्गल का सम्बन्ध है... लो ! उस विभाव के कारण से वह सम्बन्ध होता है। शरीर, वाणी, उसे उत्पन्न होते हैं। निमित्तरूप से, हों ! वह तो उसके कारण से है। और पुद्गल के सम्बन्ध से ये हैं,... पुद्गल के सम्बन्ध से यह शरीर, वाणी और श्वास है। उस दुःखी अज्ञानी प्राणी को निमित्त है, धर्मी को वे निमित्त नहीं। धर्मी को तो आनन्द में आत्मा निमित्त अर्थात् कारण है। समझ में आया ?

धर्मद्रव्य उपचरितासद्भूत व्यवहारनयकर गतिसहायी है। लो ! ऐसे दुःख के

लिये बात करते हैं यहाँ, हों! एक गति में से दूसरी गति में जाता है न? ऐसा कहते हैं। अधर्मद्रव्य स्थितिसहकारी है,... गति में, दुःख में वहाँ स्थिर है न? उसका वह निमित्त है। व्यवहारनयकर आकाशद्रव्य अवकाश (जगह) देता है, और कालद्रव्य शुभ-अशुभ परिणामों का सहायी है। देखो! विभाव में लीन, उसे कालद्रव्य शुभाशुभ परिणाम में निमित्त है। इस तरह ये पाँच द्रव्य सहकारी हैं। इनकी सहाय पाकर ये जीव निश्चय व्यवहाररत्नत्रय की भावना से रहित भ्रष्ट होते हुए चारों गतियों के दुःखों को सहते हुए संसार में भटकते हैं,... किस शैली से बात की है, देखो न! आहाहा! विभाव में लीन हुआ और शरीर, वाणी, मन उत्पत्ति हो और दुःख में काल के परिणाम निमित्त हैं, उसे गति में धर्मास्ति निमित्त है, गति में दुःख में टिका रहे, वहाँ उसे अधर्मास्ति निमित्त है। इस प्रकार दुःख में निमित्त है। उसे इस प्रकार उपकार किया कहा जाता है। वस्तु की दृष्टि होने पर एक भी निमित्त-बिमित्त उसमें है नहीं। अर्थात् वे ज्ञान में ज्ञेय हैं, ऐसा हो गया उसे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ७, गुरुवार, दिनांक - ३०-१२-१९६५

गाथा - २६ से २८, प्रवचन - ९०

परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की २६वीं गाथा का अन्तिम भाग है, देखो! यह आत्मा अपना आत्मज्ञान, शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा का अन्तर्मुख ज्ञान किये बिना... समझ में आया? आत्मा अखण्ड ज्ञानानन्दस्वरूप का अन्तर्मुख स्वभाव का ज्ञान किये बिना अनादि काल से विभाव में लीन अज्ञानी जीव जो है, वह पुद्गल का सम्बन्ध स्वयं वर्तमान करता है, इससे उसे नये पुद्गल का सम्बन्ध होता है। क्या कहा? जो जीव आत्मज्ञानरहित है, ऐसा पाठ में है। यह आत्मा स्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति का अन्तर्मुख होकर आत्मा का ज्ञान करे, उसे वर्तमान पुद्गल का निमित्त का सम्बन्ध भी नहीं कि जिससे वापस नये कर्म का पुद्गल का सम्बन्ध हो, ऐसा भी नहीं। परन्तु जो कोई आत्मज्ञानरहित विभाव में लीन है, पुण्य और पाप के विकल्प के विभाव में लीन है, स्वभाव की दृष्टि में लीन है, उसे सम्बन्ध नहीं, जो भगवान् आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु में जो लीन नहीं और जो पुण्य और पाप के विकल्प विकार में लीन है, उसे— अज्ञानी को व्यवहार से शरीर, वचन, मन और श्वास चार की उत्पत्ति होती है। समझ में आया? और उस उत्पत्ति में पुद्गल का निमित्त—उपकार कहा जाता है। दुःख में उत्पत्ति का निमित्त वह है, दुःख में कारण है। समझ में आया? और वही दुःख में मानो पुद्गल का सम्बन्ध किया, उसे ही इस जाति के शरीर, वाणी, मन और श्वास का सम्बन्ध हुआ, उसे धर्मद्रव्य उपचार से व्यवहारनय गति सहाय है। यह शैली यहाँ ली है। अधर्मद्रव्य, वह स्थिति सहाय है। चार गति में पुद्गल के सम्बन्ध के विभाव में लीन हुआ और पुद्गल का सम्बन्ध, उसे दुःख के कारण में पुद्गल (निमित्त) हुआ और धर्मास्ति भी गति में दुःख का कारण हुआ और अधर्मास्ति स्थिति में दुःख का कारण हुआ।

व्यवहारनयकर आकाशद्रव्य अवकाश (जगह) देता है,... वह दुःख में जिसे

पर का सम्बन्ध, उसे आकाश दुःख में (रहना उसे) आकाश अवगाह देता है। नरक में रहना आदि आकाश अवगाह देता है। चार गति के दुःख में रहना, उसे आकाश अवगाह देता है। आहाहा! समझ में आया? और कालद्रव्य शुभ-अशुभ परिणामों का सहायी है। पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव होते हैं, उसमें कालद्रव्य निमित्त है। विभाव में लीन जीव को ये दुःख के निमित्तकारण कहे गये हैं। ज्ञानी को वह दुःख नहीं।

ज्ञानी आत्मस्वरूप की दृष्टि में आत्मज्ञान है, इसलिए उसे पुद्गल का वर्तमान सम्बन्ध नहीं, स्वभाव सम्बन्ध है। इसलिए उसे शरीर, वाणी, मन, श्वास की उत्पत्ति नहीं, उसे शान्ति की अन्तर उत्पत्ति है। इसलिए धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, उसे (अज्ञानी को) दुःख में जो निमित्त थे, वे इसको (ज्ञानी को) हैं नहीं। आहाहा! गजब शैली की यह। अन्तिम कल आया था अन्तिम। कल बात अब कहा। समझ में आया?

परमात्मप्रकाश की टीका ही ऐसी है, देखो न, और पाठ ही ऐसा है।

१५२) एयडँ दव्वडँ देहियहँ णिय-णिय-कज्जु जणंति।

चउ-गड़-दुक्ख सहंत जिय तँ संसारु भमंति ॥ २६ ॥

देखा, इनने कहा। समझ में आया? भगवान आत्मा अपने स्वरूप-सन्मुख की दृष्टि करके आत्मज्ञान-सम्यग्दर्शन, ज्ञान को प्राप्त हुआ, उसे तो वर्तमान स्वभाव का सम्बन्ध है। उसे पुद्गल का सम्बन्ध नहीं, इसलिए दुःख नहीं, जिससे दुःख में निमित्त कारण ज्ञानी को नहीं। उसे अपना ज्ञान होने पर उस ज्ञान में निमित्त कारण हुआ कि वह चीज़ है, ऐसा ज्ञान में ज्ञात हुआ। समझ में आया? वाह! दूसरी बात भले करे। कल आया था ख्याल में जरा, परन्तु कहा, अब कल बात। फिर समय हो गया था न। समझ में आया?

प्रभु आत्मा सच्चिदानन्द मूर्ति आत्मा है। सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का स्वरूप, उसका—आत्मा का है। उसमें जिसकी लीनता दृष्टि की, ज्ञान की है, उसे तो कोई शरीर आदि की उत्पत्ति है ही नहीं। उसे तो शान्ति की ही उत्पत्ति है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा-सा जरा दुःख रहा, वह भी ज्ञान के ज्ञेय में जाता है। और उसके

कारण शरीर की कोई उत्पत्ति हो, वह भी ज्ञान के ज्ञेय में जाती है। और धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल का निमित्त है, वह ज्ञान के ज्ञेय में जाता है। ओहोहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : उसमें (आत्मा का) प्रेम क्यों नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे हो? उसे खबर कहाँ है कि यह वह कौन हूँ? जिसके एक समय में अभी रागसहित ज्ञान हो तो भी जिसे अनन्त-अनन्त क्षेत्र की हद नहीं, उसका ज्ञान अभी होता है। होता है या नहीं? एक समय का ज्ञान, भले उपयोग असंख्य समय का है रागवाला, परन्तु उसमें असंख्य में अनन्त आकाश अमाप है, उसकी अवस्था का ज्ञान यहाँ ज्ञान में होता है। अनादि हूँ और जीव अनादि है, अनादि हूँ, अनन्त है, ऐसा भी ज्ञान की पर्याय में होता है, वे तीन काल ज्ञान में समाहित हो जाते हैं। आहाहा!

ज्ञान का वर्तमान... ध्यान रखकर सुनने जैसी बात है। यह ज्ञान का जो उपयोग है रागवाला, तथापि असंख्य समय का भले हो, परन्तु उसका भाग करने पर एक समय में अनन्त ही आ जाता है। उस राग के ज्ञान में भी आकाश की अनन्तता, काल की आदि रहितता, अन्त रहितता, अनन्त द्रव्य वस्तु हैं, उनके अनन्तानन्त गुण हैं, उनकी अनन्त पर्यायें हैं—ऐसा असंख्य समय के उपयोग के ज्ञान के व्यापार में भी ज्ञान इतना ख्याल में ले सकता है। समझ में आया इसमें? इसके एक समय के ज्ञान में इतना सब आ गया है। इसका राग निकाल डालो और जब आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप में परिणमकर पूर्ण दशा को प्राप्त करे, उसके ज्ञान में अनन्त तीन काल-तीन लोक एक समय में ज्ञात हो, उसमें कोई विशेषता नहीं। आहाहा! क्या कहा? यह माहात्म्य नहीं आता, उसकी यह बात चलती है।

अरे! ऐसा पदार्थ, आहाहा! जिसका वर्तमान ज्ञान रागवाला होने पर भी, अटका हुआ ज्ञान, अटका हुआ, तथापि इतना एक क्षण में जिसके ख्याल में, निःसन्देह ख्याल में उसका ज्ञान आता है। समझ में आया? ऐसी जिसे रागरहित अकेली ज्ञान की दशा हो, उसमें तो तीन काल, तीन लोक है, उससे अनन्तगुणा हो तो जान सके, ऐसी सामर्थ्य है। ऐसे-ऐसे अनन्त पर्यायरूप परमात्मदशा, उसके एक ज्ञानगुण में रही हुई है। आहाहा!

समझ में आया इसमें? इस ज्ञानगुण में ऐसी अनन्त परमात्मपर्याय, सर्वज्ञपर्याय इस ज्ञानगुण में रही हुई है। ऐसा ज्ञान का धारक आत्मा की महिमा न आवे, तब तक उसे पुण्य-पाप और पर की महिमा छूटती नहीं। समझ में आया? ऐसे-ऐसे तो अनन्त गुण का धारक भगवान है।

भाई! आत्मा अर्थात् क्या? महा पदार्थ महा प्रभु। ऐसे एक गुण की बात की, ऐसे तो अनन्त गुण के अनन्त सामर्थ्यवाला है। ऐसा जहाँ अन्तर माहात्म्य आया, कहते हैं कि आत्मज्ञान हुआ, विकल्प की, राग की एकता टूटी, उसे पुद्गल का सम्बन्ध नहीं, उसे विभाव में लीनता नहीं, उसे चार द्रव्य दुःख में निमित्त थे, वे इसे ज्ञान में, ज्ञान में निमित्त रहे अब। आहाहा! समझ में आया? पुद्गल भी ज्ञान में ज्ञेय हो गये। भाई! ऐई! आहाहा! कठिन कथन परन्तु शैली का।

सम्यक् आत्मज्ञान, जहाँ शुद्ध चैतन्यमूर्ति ऐसा आत्मा मैं निर्विकल्प पूर्णानन्द प्रभु हूँ, ऐसा जहाँ ज्ञान हुआ, उसे अब अनन्त पुद्गल ज्ञान में, अपने को जानते हुए ज्ञात हों, उसमें निमित्तरूप से रहे। अब कर्म थोड़ा बाकी, वह भी ज्ञान में ज्ञेयरूप से निमित्तरूप से रहा और धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल भी ज्ञान में ज्ञेयरूप से निमित्त रहे। आहाहा! बलिहारी रे प्रभु तेरे ज्ञान की, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और जो आत्मा के ज्ञान बिना, जिसकी पुण्य-पाप के विकल्प के राग में एकता और लीनता है, ऐसे अज्ञानी को पुद्गल का सम्बन्ध लक्ष्य है, इसलिए उसे शरीर, वाणी, मन, श्वास का पुद्गल उपकार करता है। उसे दुःख के निमित्त चाहिए है न, दुःख, दुःख है। आत्मा के लक्ष्य से दुःख नहीं हो सकता। पर के लक्ष्य से दुःख करता है, स्वयं के कारण से। इसलिए उसे शरीर, वचन, मन और श्वास की उत्पत्ति होती है। आहाहा! समझ में आया? उनका सम्बन्ध विभाव परिणामों के योग से जीव के पुद्गल का सम्बन्ध हैं,... देखो! उसे पुद्गल का सम्बन्ध है। और पुद्गल के सम्बन्ध से ये हैं,... यह शरीरादि। भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके सम्बन्ध से हो ज्ञान, दर्शन और शान्ति की उत्पत्ति। उसमें शरीर, वाणी, श्वास और मन की उत्पत्ति होती नहीं। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं, इनकी सहाय पाकर ये जीव निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय की भावना से रहित भ्रष्ट होते हुए... अहो! इस ओर के सम्बन्ध में अपने सम्बन्ध से भ्रष्ट हुआ, ऐसा कहते हैं। पुद्गल और बाहर के सम्बन्ध में दुःखी हुआ और स्वभाव के सम्बन्ध से रहित हुआ, वह अपने स्वभाव से भ्रष्ट हुआ निश्चय और व्यवहार सम्यक्त्व से। चारों गतियों के दुःखों को सहते हुए संसार में भटकते हैं,... संसार में भटकते हैं। समझ में आया इसमें? ओहोहो! यह तो उपकार का स्पष्टीकरण कर दिया तत्त्वार्थसूत्र का। पुद्गल उपकार करता है, (ऐसा) आता है न? आहाहा! भगवान ने उपकार किया आत्मा का स्वयं स्वयं को। शुद्ध पूर्णानन्द प्रभु जहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान में लक्ष्य में लिया और आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि हुए, कहते हैं कि उसे सम्बन्ध तो रहा भगवान आत्मा के साथ। उसे पुद्गल के साथ दुःख का सम्बन्ध नहीं रहा, इसलिए धर्मास्ति आदि भी जो दुःख के निमित्त इस पर के सम्बन्ध से, वह पर सम्बन्ध थे, उस सम्बन्ध में यह सम्बन्ध रहा नहीं उनके साथ। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सब मिट गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब मिट गया और सब हुआ।

यह भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, अनन्त गुण का एकरूप, ऐसी अन्तर दृष्टि होने पर, अन्तर ज्ञान होने पर, कहते हैं कि अब (जो) कुछ है, वह सब ज्ञान में ज्ञेयरूप से रह गया। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह आत्मा के ज्ञान और भान बिना जिसकी लीनता, विकृतभाव क्षणिक कृत्रिम उपाधि दुःखरूप भाव, उसमें लीनता है, उसे चार गति के कारण में शरीर, श्वास, गति आदि पुद्गल उत्पन्न करता है। दुःख के निमित्तरूप से है वह। आहाहा! समझ में आया? दुःख का उपादान तो राग में और विभाव में लीनता, वह उसका करण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द में लीन नहीं, वह विकार में लीन हुआ पुण्य-पाप के विभाव में एकाकार हुआ, उसे पुद्गल निमित्तरूप से दुःख में कारण हुए। शरीर, वाणी और श्वास उत्पन्न हुए, उससे कहीं आत्मा की शान्ति उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! वाह! कथन की पद्धति! परमात्मप्रकाश! समझ में आया? अर्थात् कि जहाँ भगवान

आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप का प्रकाश जहाँ दृष्टि में नहीं और पुण्य-पाप के भाव में जिसकी लीनता है, उसे यह पुद्गल आदि पाँच द्रव्य दुःख में निमित्त होते हैं। समझ में आया ? जिसे भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान में परमात्मप्रकाश प्रतीति का भान हुआ, उसे पाँचों द्रव्यों का ज्ञान वर्तता है, ज्ञान में ज्ञानरूप से हैं वे ज्ञेय। आहाहा! समझ में आया ? उनकी सहायता पाकर अज्ञानी जीव चार गतियों के दुःखों को सहता है। पर के सम्बन्ध में स्वभाव के सम्बन्ध से भ्रष्ट हुआ, ऐसा। समझ में आया ? चार गति के दुःख को सहता है और भटकता है, यह तात्पर्य हुआ, लो ! यह २६ (गाथा) का तात्पर्य। समझ में आया ?

★ ★ ★

गाथा - २७

आगे परद्रव्यों का सम्बन्ध निश्चयनय से दुःख का कारण है, ऐसा जानकर हे जीव! शुद्धात्मा को प्राप्तारूप मोक्षमार्ग में स्थित हो, ऐसा कहते हैं —

१५३) दुःखहँ कारणु मुणिवि जिय दव्वहँ एहु सहाउ ।

होयवि मोक्खहँ मग्गि लहु गम्मिज्जइ पर-लोउ ॥ २७ ॥

हे जीव! 'द्रव्याणां इमं स्वभावम्' परद्रव्यों के ये स्वभाव... देखो ! 'द्रव्याणां इमं स्वभावम्' समझ में आया ? परद्रव्य का जो स्वभाव, है न ? 'दव्वहँ एहु सहाउ' परद्रव्यों के ये स्वभाव दुःख के कारण जानकर... सम्बन्ध दुःख का कारण, इसलिए उसका स्वभाव दुःख का कारण जान। पर का सम्बन्ध करना, वह दुःखरूप है; इसलिए पर के निमित्त को—पर के स्वभाव को दुःख कारण जान, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? भगवान आत्मा का सम्बन्ध, वह आनन्द का कारण है। समझ में आया ? शुद्ध परमानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा, उसका सम्बन्ध आनन्द का कारण है। यह परद्रव्य के स्वभाव दुःख में निमित्तकारण हैं। दुःख के कारण अर्थात् निमित्त, हों ! जान।

मोक्ष के मार्ग में लगकर... भगवान ! कहते हैं कि पर का सम्बन्ध छोड़ और भगवान आत्मा चिदानन्द का सम्बन्ध कर। इसका नाम मोक्ष का मार्ग। समझ में आया ?

मोक्ष के मार्ग में लगकर... विभाव में लीन हुए को चार गति के दुःख के कारण मिलते हैं, तो अब सम्बन्ध कर भगवान आत्मा का। शुद्ध ज्ञानमूर्ति जिसके प्रकाश का, आनन्द आदि का पार नहीं होता, ऐसा स्वभाव, उसका सम्बन्ध करके। सम्बन्ध करना अर्थात् ही मोक्ष का मार्ग हुआ। आहाहा! यहाँ सम्बन्ध करना, वही बन्ध का मार्ग हुआ। समझ में आया ?

मोक्ष के मार्ग में लगकर शीघ्र ही उत्कृष्ट लोकरूप मोक्ष में जाना चाहिए। दो बातें। भगवान आत्मा वह विकार में लीन हुआ, पर के सम्बन्ध को पाकर दुःखी होकर चार गति में झूलता है। उसे अब (कहते हैं), भगवान आत्मा के स्वभाव का सम्बन्ध तू कर। वह सम्बन्ध पर का भी तूने किया है। समझ में आया ? ऐसी शैली ली है यहाँ। कर्म ने सम्बन्ध कराया है, ऐसा नहीं। तूने ऐसा सम्बन्ध किया है, इसलिए तू दुःख की दशा में लीन हुआ है। इसलिए यह सब पाँच द्रव्य तुझे दुःख में निमित्तकारण हैं। तू स्वयं अपने स्वभाव शुद्ध चैतन्य का सम्बन्ध कर। उस स्वभाव का सम्बन्ध, वह श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता से सम्बन्ध होता है। वह स्वभाव शुद्ध चैतन्य का सम्बन्ध, वही दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। पर का सम्बन्ध, वही मिथ्यादर्शन, अज्ञान और राग-द्वेष है। समझ में आया ?

भावार्थ :- पहले कहे गये पुद्गलादि द्रव्यों के सहाय शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास आदिक ये सब दुःख के कारण हैं,... देखो ! इस बात को अधिक स्पष्ट किया। पहले जो पुद्गल, उसके शरीर, वचन, श्वास आदि... अर्थात् धर्मास्ति का गति, अधर्मास्ति स्थिरता, काल का परिणमन अनेक, आकाश में रहना, वह दुःख के कारण हैं। आहाहा ! समझ में आया ? क्या करना इसमें इसे हाथ आता नहीं। परन्तु क्या करता है, इसकी इसे खबर नहीं। क्या कहा ? क्या करता है, इसकी खबर नहीं। करता है, वह विकार की उत्पत्ति करके उसमें लीनता। पूरा भगवान चिदानन्दस्वभाव का अनादर करके, विकल्प की उत्पत्ति में लाभ मानकर अर्थात् मिथ्यात्व करके उसमें लीन होता है। वह यह करता है। समझ में आया ? यह करता है तो इसे पुद्गल शरीर, श्वास, वाणी आदि का निमित्तरूप से उपकार करके दुःख में निमित्त होते हैं। कठिन बात,

भाई! समझ में आया? परन्तु उल्टा रास्ता यह कैसा, इसे ख्याल में लेना चाहिए न। उल्टे का अर्थ इतना कि पर को अपना मानना और स्व को भूल जाना।

विकल्प आदि विकार है, वह विभाव है और पर है, वे भिन्न हैं, उन्हें अपना मानकर विभाव में लीन हूँ, यह इसकी भूल। आहाहा! उस भूल को टालने के लिये, कहते हैं, भगवान् चिदानन्दस्वरूप तेरा है न, पूर्णानन्द से भरपूर, उसका सम्बन्ध कर। लो! यह सम्बन्ध कैसे हो? कि पर के सम्बन्ध को छोड़कर ज्ञायक चैतन्यमूर्ति भगवान् की ओर नजर डालन से, सम्यग्दर्शन से उसका—आत्मा का सम्बन्ध होता है। उसकी ओर के सम्यग्ज्ञान से सम्बन्ध होता है और उसमें स्थिरता के चारित्र से उसका सम्बन्ध होता है। इसलिए सम्बन्ध हुआ, वही मोक्षमार्ग है। ऐसे मोक्षमार्ग में लग।

क्योंकि वीतराग सदा आनन्दरूप स्वभावकर उत्पन्न जो अतीन्द्रिय सुख... आत्मा वीतराग—रागरहित, सदा आनन्दरूप स्वभाव से उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख। यह पर्याय की बात लेते हैं, हों! अतीन्द्रिय वीतराग आनन्दस्वरूप भगवान् आत्मा है। विकल्प अर्थात् पुण्य-पाप के रागरहित आत्मा का आनन्दस्वरूप त्रिकाल है। ऐसे स्वभाव से उत्पन्न हुआ अतीन्द्रिय सुख, वर्तमान। उससे विपरीत (वर्तमान) आकुलता के उपजानेवाले हैं,... समझ में आया? कौन? यह सब दुःख के कारण। पहले कहे गये पुद्गलादि द्रव्यों के सहाय शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास आदिक ये सब दुःख के कारण हैं, **क्योंकि वीतराग सदा आनन्दरूप स्वभावकर उत्पन्न जो अतीन्द्रिय सुख, उससे विपरीत आकुलता के उपजानेवाले (विकार) हैं,**... समझ में आया। आहाहा!

भगवान् आत्मा वीतरागी परमानन्द की मूर्ति आत्मा है। वस्तु... वस्तु... वस्तु... हों! आत्मा वस्तु। सर्वज्ञ वीतराग, सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग फरमाते हैं कि हे आत्मा! आत्मा अर्थात् क्या? तू अर्थात् कौन? कि वीतराग परमानन्द की मूर्ति अर्थात् आत्मा। गजब बात, भाई! यहाँ तो कौड़ी-कौड़ी का भिखारी होकर घूमता है न। रंक होकर भटकता है। कहते हैं, भगवान्! परन्तु तू स्वयं वीतराग सदा आनन्द। देखा! चारित्र रागरहित तो ठीक, परन्तु सदा आनन्दरूप तू है। आहाहा! ऐसा स्वभाव, वह तेरा स्वरूप है, ऐसा। ऐसा तू है, ऐसा अनादि से। इसे कैसे बैठे? और इसके सम्बन्ध से

उत्पन्न हुआ अतीन्द्रिय सुख है। उसके सम्बन्ध में तो अतीन्द्रिय सुख उत्पन्न होता है। मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है अर्थात् अतीन्द्रिय सुख उत्पन्न होता है। समझ में आया ? उससे उल्टे आकुलता के उपजानेवाले विभाव हैं। आहाहा ! समझ में आया ? वे आकुलता के उपजानेवाले विभाव और उसमें कारण पुद्गल आदि आकुलता के उपजानेवाले हैं। उनके सम्बन्ध में तो आकुलता उपजती है। भगवान आनन्द के सम्बन्ध में अतीन्द्रिय आनन्द उपजता है। समझ में आया ? ओहोहो !

ऐसा जानकर... ये पाँच पदार्थ दुःख के निमित्तकारण हैं। तू दुःख उत्पन्न करता है, उसमें वे निमित्तकारण हैं, ऐसा जानकर। **हे जीव ! तू भेदाभेद रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष के मार्ग में लगकर...** तू अब आत्मा स्वरूप अखण्ड अभेद है, वीतराग स्थिर और आनन्दस्वरूप त्रिकाल शाश्वत् है, उसके अन्दर उसका सम्बन्ध कर। उसमें दृष्टि लगा, उसका ज्ञान कर, उसमें स्थिर हो। वह अभेदरत्नत्रय निश्चयमोक्षमार्ग कहलाता है। समझ में आया ? बात बहुत बड़ी लगे। जमुभाई ! आहाहा ! कहते हैं कि भाई ! तेरी डुगडुगी ऐसे लगे तो दुःख में निमित्त हो। तेरी दशा स्वभाव का सम्बन्ध करे तो वे सब ज्ञान में, ज्ञान में निमित्तकारण कहलाये। यह बात है अनादि की, कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

परमात्मा का अनुभव... मोक्ष कहते हैं। मार्ग और फल दोनों इकट्ठे (कहते हैं)। तेरा सम्बन्ध यदि भगवान आत्मा तू है न पूर्णानन्द से भरपूर, उसका सम्बन्ध (कर तो सुख होगा और पर का सम्बन्ध कर) तो तुझे दुःख होगा, दुःख में वे निमित्तकारण कहलाते हैं। उन्हें छोड़कर भगवान पूर्णानन्द प्रभु का सम्बन्ध कर तो उससे अनाकुल आनन्द की उत्पत्ति होगी, उसे अभेद रत्नत्रय मार्ग कहा जाता है। आहाहा ! उस शुद्ध स्वभाव की प्रतीति में आनन्द का आना, शुद्ध सम्यग्दर्शन आत्मा के ज्ञान में आनन्द का आना, उसमें स्थिरता में आनन्द का आना—ऐसा स्वभाव सम्बन्ध करके अभेद मोक्ष के मार्ग में लीन हो। भेदरत्नत्रय की बात की। साथ में ऐसा विकल्प व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र ऐसे सच्चे होते हैं और छह द्रव्य होते हैं, उनकी व्यवहारिक श्रद्धा का विकल्प होता है। उसका साथ में प्रमाणज्ञान कराया। ऐसा यदि करे तो तुझे परमात्मा का

अनुभव, पूर्ण स्वरूप का अवलोकन तुझे होगा। भगवान परमात्मा स्वयं होगा। ज्ञान की पर्याय में केवलज्ञान में स्वयं अपने को अवलोकेंगे। समझ में आया ?

परमात्मा का अनुभव परमसमरसीभाव से परिणमनरूप... कैसा है परमात्मा का अनुभव ? परमसमरसी, परम वीतरागभाव ऐसा जो परिणमन, उसरूपी मोक्ष। समझ में आया ? वीतरागस्वभाव का सदा आनन्दरूप प्रभु आत्मा, उसके सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अनाकुल आनन्द की पर्याय, उससे पूर्ण प्रगट हुआ समरसी-समभावरूप वीतरागी भाव... समझ में आया ? उसे मोक्ष कहा जाता है। **परमसमरसीभाव से परिणमनरूप मोक्ष...** देखो ! वाह ! क्या कहा, समझ में आया ? परमसमरसीभाव, ऐसा वीतराग आत्मा, उसके अन्तर में एकाग्र होकर जो वीतरागी परिणति उत्पन्न करना, वह अल्प समरसी परिणति मोक्षमार्ग है। पूर्ण मोक्षस्वरूप, वह परमसमरसीभाव की परिणति, वह मोक्ष है। समझ में आया ?

परमात्मा का अनुभव... अर्थात् **परमसमरसीभाव से परिणमनरूप मोक्ष...** ऐसा। यह परमात्मा का अनुभव। बहुत ही संक्षिप्त भाषा में बहुत ही वस्तु का स्वरूप (वर्णन करते हैं)। समझ में आया ? इस प्रकार पर के सम्बन्ध से दुःखी होकर चार गति में रहा। पुद्गल ने दुःख में उपकार किया, (साथ में) धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल ने। आहाहा ! तू ही अपने परमानन्दस्वभाव के अन्तर में दृष्टि से सम्बन्ध कर, ज्ञान से सम्बन्ध कर तो जैसा परमसमरसी सदा आनन्दमय मूर्ति प्रभु आत्मा है, तो उसके सम्बन्ध से शान्तरसरूपी परिणमनरूपी मोक्ष के मार्ग की पर्याय प्रगट होगी। उससे परमसमरसीभावरूपी परिणमनरूप मोक्ष तुझे प्रगट होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही कहाँ उकलाहट ? उकलाहट तो तूने सम्बन्ध किया इसलिए उकलाहट खड़ी की है, ऐसा कहते हैं। वस्तु में नहीं, वस्तु में नहीं। उकलाहट और दुःख वस्तु का कोई गुण नहीं आत्मा में। आहाहा ! क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा में दुःख होने का कोई गुण नहीं। उसकी वर्तमान दशा में पर के सम्बन्ध से अज्ञान और दुःख की उत्पत्ति पर्याय में करता है। जुगराजजी ! आहाहा ! देखो !

यह कहते हैं, परमानन्द से भरपूर प्रभु, उसका तू आदर न करे और पुद्गल के सम्बन्ध के संग में तुझे प्रेम हो तो मिथ्यात्वभाव और आकुलता ही उत्पन्न होगी। उसके दुःख में फिर यह सब शरीर, वाणी, श्वास की उत्पत्ति (हुई)। पुद्गल ने तुझे उपकार किया, ले। यह एक गति में से दूसरी गति में जाना, उसमें धर्मास्ति ने तुझे उपकार किया निमित्तरूप से दुःख में। जहाँ दुःख में किसी गति में अमुक काल स्थिर हुआ, वहाँ अधर्मास्ति ने तुझे दुःख में सहायता की। आकाश ने तुझे रहने में, दुःखी होकर रहने में सहायता की है। काल वह शुभाशुभ परिणाम होने में, परिणमने में निमित्त हुआ, दुःख में परिणमने में निमित्त। वाह! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले वाँचन नहीं हुआ था। बात सच्ची। पहला ... कहो, समझ में आया?

भगवान! तेरे पूर्ण परिणमन में जा न! पूर्ण स्वभाव के सम्बन्ध में आ जा तो पूर्ण परिणमन में जायेगा, जायेगा और जायेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और पुद्गल के सम्बन्ध में लीन होकर रहा तो उत्कृष्ट स्थान निगोद है, वहाँ जायेगा। आहाहा! वहाँ दशा बहुत हीन और दुःख अपार है। नारकी का दुःख तो संयोग से मापा जाता है, ऐसी कहने की बात है। उसे तो जहाँ अन्तर पर्याय हीन... हीन... हीन... हीन... हो गयी। उसके तो नरक से भी उसका दुःख तो अनन्त है निगोद में। पुद्गल के सम्बन्ध में बहुत ही लीन हुए का परिणाम अन्ततः निगोद की दशा के दुःख का स्थान है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द की दृष्टि में लीन हुए का परिणाम उत्कृष्ट परमसमरसी आनन्द के परिणमनरूप मोक्षदशा है। समझ में आया? लो! २७ (गाथा) कही।

★ ★ ★

गाथा - २८

आगे व्यवहारनय से मैंने ये जीवादि द्रव्यों के श्रद्धानरूप को सम्यग्दर्शन कहा है,... यह सब भेद की बातें की न, छह द्रव्य और यह सब ? फिर उसका विस्तार करना चाहते हैं। अब सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को हे प्रभाकरभट्ट! तू सुन,... आचार्य को यह कहना है कि अब मैं ज्ञान और चारित्र की बात करूँगा। ऐसा मन में रखकर यह दोहासूत्र कहते हैं— फिर टीका में दो श्लोक दूसरे रखते हैं।

१५४) णियमँ कहियउ एहु मइँ ववहारेण वि दिट्ठि।

एवहिँ णाणु चरित्तु सुणि जँ पावहि परमेट्ठि ॥ २८ ॥

सुन! तू परमेष्ठीपद प्राप्त करेगा। लो! सुन, कहते हैं, उसे, हों!

हे प्रभाकरभट्ट! मैंने व्यवहारनय से तुझको ये सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा,... सम्यग्दर्शन में छह द्रव्य का, गुण, उसकी पर्याय के असंख्य प्रदेश यह इत्यादि होते हैं, वे सब भेद (कहे)। अच्छी तरह कहा, अब तू ज्ञान और चारित्र को सुन, जिसके धारण करने से सिद्धपरमेष्ठी के पद को पावेगा।

भावार्थ :- व्यवहारसम्यक्त्व के कारणभूत छह द्रव्यों का सांगोपांग व्याख्यान करते हैं... अब टीकाकार इसका विस्तार करते हैं। अन्यत्र से श्लोक रखकर। यह श्लोक है अन्दर। यह है न सब जगह, यह तो श्वेताम्बर में आता है। बहुत वर्षों से यह तो देखे हुए हैं। पहले से थोकड़ा में आते हैं पहले से।

छह द्रव्यों में विभावपरिणाम के परिणामनेवाले जीव और पुद्गल दो ही हैं,... अब विस्तार से समझाते हैं। यह छह द्रव्य हैं न जगत में? अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, (एक) आकाश। भगवान् केवलज्ञानी ने छह द्रव्य देखे हैं। परमात्मा परमेश्वर ने छह द्रव्य देखे हैं केवली ने। उन छह द्रव्यों में... छह द्रव्य संख्या से नहीं, जाति से। संख्या से अनन्त। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश। ऐसे अनन्त देखे हैं, जातिरूप से छह। ऐसे छह द्रव्य में विभाव परिणाम में परिणामनेवाले

जीव और पुद्गल दो। विकाररूप से परिणमनेवाले हों तो जीव और परमाणु दो। वे चार विकाररूप परिणमते नहीं। यह ज्ञान अधिक कराते हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल को विकार का परिणमन (और) विभावव्यंजनपर्याय नहीं है। समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान, चारित्र शुरु नहीं हुआ। वह बाद में कहेंगे। अभी यह पहले कहा, उसका विस्तार कहते हैं। यह तो कहा ऊपर। बाद में लेंगे। समझ में आया ?

लेकिन जीव-पुद्गल की तरह विभावव्यंजनपर्याय के अभाव से विभावपरिणमन नहीं है,... किसमें ? चार में। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल में विभावव्यंजनपर्याय का अभाव है, उन्हें आकृति विकार नहीं। विभावपरिणमन नहीं है, इसलिए मुख्यता से परिणामी दो द्रव्य ही कहे हैं,... परिणामी तो छहों हैं, परन्तु विभाव परिणमन चार में नहीं, इसलिए परिणामी नहीं, ऐसा चार में कहा जाता है। तथा जीव और पुद्गल विकाररूप से परिणमते हैं, इसलिए उन्हें परिणामी कहा है। परिणामी तो सब हैं। परिणमन बिना कोई द्रव्य होता नहीं। परन्तु विकार के परिणाम की मुख्यता से वर्णन करते हुए जीव और पुद्गल ही दो विभावरूप से परिणमते हैं, इसलिए परिणामी कहे हैं। चार द्रव्यों को अपरिणामी कहा है, उन विकार के परिणमन की अपेक्षा से। समझ में आया ? यह तो थोकड़ा में आता है। श्वेताम्बर के थोकड़ा में पहले गाथा थोकड़ा में श्लोक आता है।

मुमुक्षु : थोकड़ा कौन पढ़े ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तुमने पढ़े नहीं ?

शुद्धनिश्चयनयकर शुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्ध चैतन्यप्राण उनसे जीता है,... कहते हैं, वास्तव में जीव... अब जीव की व्याख्या करते हैं। वास्तव में तो भगवान् आत्मा शुद्ध निश्चय से शुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभाव ऐसे चैतन्यप्राण, चैतन्य के प्राण से स्वयं त्रिकाल जीना, वह तो उसका वास्तविक जीवन है। समझ में आया ? शुद्ध चैतन्य दर्शन-ज्ञानस्वभाव प्राण, भावप्राण वीतरागी भावप्राण से जीना, वह तो उसका चैतन्य

शुद्ध चैतन्यप्राण है। समझ में आया? वह तो ऐसे प्राण उनसे जीता है, जीवेगा, पहले जी चुका,... ऐसे ही प्राण चैतन्य शुद्ध ज्ञान, दर्शन, आनन्द के प्राण से अनन्त काल का है, अभी है और भविष्य में भी रहेगा। अन्तर वस्तु तो ऐसी ही है अन्दर। हाय... हाय..! और व्यवहारनयकर इन्द्रिय पाँच। इसलिए समुच्चय लिया। चार लेनी है न? बल मन, वचन और काया का बल, आयुष्य और श्वास इन द्रव्यप्राणों से जीता है। चार द्रव्यप्राण जो शरीर आदि, उनसे जीता है, जीवेगा, पहले जी चुका, इसलिए जीव को ही जीव कहा गया है,... व्यवहार से उसे जीव कहा जाता है; निश्चय से अपने चैतन्य भावप्राण से जीवे, उसे वास्तविक जीव कहा जाता है।

अन्य पुद्गलादि पाँच द्रव्य अजीव हैं,... इस आत्मा के अतिरिक्त, निश्चय और व्यवहार जीव यह है, दूसरे सब अजीव हैं। परमाणु वह अजीव, काल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, वह अजीव है। समझ में आया? स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाली मूर्तिसहित मूर्तिक एक पुद्गलद्रव्य ही है,... यह पुद्गल शरीर, कर्म, वाणी, दाल, भात, सब्जी, यह सब जगत के जड़ यह रंग, रस, गन्धवाली मूर्तिसहित पुद्गलद्रव्य है। इस शरीर में, वाणी में यह दिखाई दे, उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्शसहित भरे पड़े मूर्त हैं। वह एक ही पुद्गल जगत में मूर्तिक है। अन्य पाँच अमूर्तिक हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, ये अजीव अमूर्तिक, जीव (वह) जीव अमूर्तिक। समझ में आया? कहीं परन्तु इसमें दरकार ही नहीं होती, उसे फिर याद कैसे रहे? ऐई! कान्तिभाई! मशीन के एक-एक सरिया की खबर हो इसे।

इस दुनिया में क्या है तेरे सम्यग्दर्शन का विषय? समझ में आया? छह द्रव्य कैसे? किस प्रकार से है? निश्चय तो आत्मा अखण्ड आनन्दकन्द, वह सम्यग्दर्शन का कारण और विषय है। समझ में आया? आया न! सम्यक्त्व का कारण (ऐसे) छह द्रव्य का सांगोपांग व्याख्यान करूँगा। कहा न? यह सब इसे जानकर मानना चाहिए। अन्यमति सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त जो कहते हों, उनका मार्ग सच्चा नहीं। व्यवहार का भी मार्ग उनका सच्चा नहीं। एक सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव, जिन्हें तीन काल, तीन लोक का ज्ञान है, उन्होंने निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय क्या? व्यवहार का विषय जो यथार्थ देखा है, वह भगवान ने कहा है। समझ में आया?

उनमें से धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चारों तो अमूर्तिक हैं,... और पुद्गल मूर्तिक है। तथा जीवद्रव्य अनुपचरित-असद्भूतव्यवहारनयकर मूर्तिक भी कहा जाता है,... इस अपेक्षा से। शरीर का सम्बन्ध है न, इस अपेक्षा से, कर्म के सम्बन्ध से, सम्बन्ध नजदीक है, इसलिए अनुपचरित। झूठे व्यवहारनय से मूर्तिक कहा जाता है। क्योंकि शरीर को धारण कर रहा है,... शरीर को धारण किया है न। रखा ऐसे। धारण अर्थात् निमित्तरूप से है, ऐसा। शरीर को निमित्तरूप से है न यह? भगवान् भिन्न और यह निमित्तरूप से यह पिण्ड साथ में है। इसलिए इसे मूर्त तो सम्बन्धवाले नय से, झूठे नय से कहा जाता है।

तो भी शुद्धनिश्चयनयकर अमूर्तिक ही है,... शुद्धनिश्चय से तो भगवान् रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित चीज़ है। यह पहले आ गया था। कर्मरहित अमूर्तिक है और विकाररहित शुद्ध है। आया था या नहीं? कर्म और पुद्गलरहित भगवान् आत्मा अमूर्त ही है और पुण्य-पाप के संकल्प, विकल्प के मैलरहित है, इसलिए शुद्ध है। उसे आत्मा कहते हैं। उसकी—आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, चरित्र करना, उसका नाम धर्म और मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। बहुत बात परन्तु भाई!

लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी जीवद्रव्य का आदि लेकर पाँच द्रव्य पंचास्तिकाय हैं,... एक काल के अतिरिक्त। छह द्रव्य हैं न? उन सबको प्रदेश है। और कालद्रव्य बहुप्रदेश स्वभावकायपना न होने से अप्रदेशी है, धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य एक एक हैं,... और धर्म, अधर्म के प्रदेश असंख्य हैं और आकाश के अनन्त हैं। और जीव, पुद्गल, काल ये तीनों अनेक हैं। जीव भी अनन्त हैं, पुद्गल भी अनन्त और काल असंख्य हैं, वह अनेक में सब समा जाता है। जीव तो अनन्त हैं, पुद्गल अनन्तानन्त हैं, काल असंख्यात हैं। सब द्रव्यों को अवकाश देने में समर्थ एक आकाश ही है, इसलिए आकाश क्षेत्र कहा गया है, बाकी पाँच द्रव्य अक्षेत्री हैं,... आकाश, वह ऐसे क्षेत्र है और उसमें रहनेवाले पाँच हैं, इसलिए अक्षेत्र हैं।

एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में गमन करना, वह चलन-हलनवती क्रिया कही गयी है,... एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में ऐसे चले न यह जीव और पुद्गल, ऐसे क्रिया? यह

क्रिया जीव पुद्गल दोनों के ही है,... चार में नहीं। और धर्म, अधर्म, आकाश, काल, ये चार द्रव्य निष्क्रिय हैं,... जहाँ हैं वहाँ पड़े हैं, ऐसे के ऐसे अनादि... अनादि... अनादि... जीवों में भी संसारी जीव हलन-चलनवाले हैं,... जीव में सब कहीं सक्रिय नहीं, ऐसा कहते हैं। जीव में भी संसारी जीव गति करते हैं, वह हलन-चलन है। इसलिए क्रियावन्त हैं, और सिद्धपरमेष्ठी निःक्रिय हैं,... अनन्त सिद्ध विराजते हैं, वे निष्क्रिय ऐसे के ऐसे स्थिर हैं वहाँ। लोकाग्र में परमानन्द में (स्थिर हैं)। ओहोहो! ऐसा उनका स्वरूप है, उसे व्यवहार समकित में श्रद्धा करनी चाहिए, मानना चाहिए, जानना चाहिए।

द्रव्यार्थिकनय से विचारा जावे तो सभी द्रव्य नित्य हैं,... वस्तु से देखें तो छहों द्रव्य कायम रहनेवाले नित्य... नित्य... नित्य... है। अर्थपर्याय जो षट्गुणी हानिवृद्धिरूप स्वभावपर्याय है, उसकी अपेक्षा सब ही अनित्य हैं,... छहों द्रव्यों में समय-समय में षट्गुणी हानि वृद्धि होती है, इस अपेक्षा से प्रत्येक द्रव्य अनित्य कहा जाता है। तो भी विभावव्यंजनपर्याय जीव और पुद्गल इन दोनों की है, इसलिए इन दोनों को ही अनित्य कहा है,... इस अपेक्षा से अनित्य कहा, ऐसा। उस अपेक्षा से अनित्य तो हैं सब। परन्तु जीव और पुद्गल में विकारी व्यंजनपर्याय होती है, इसलिए दोनों विकारी पर्याय की अपेक्षा से अनित्य कहे। विकारी पर्याय की अपेक्षा से उनको (जीव पुद्गल को) परिणामी कहा था, उनको अपरिणामी कहा था। यहाँ विकारी पर्याय की अपेक्षा से इन्हें अनित्य कहा जाता है। दूसरे विकारी पर्याय की अपेक्षा से अनित्य नहीं। षट्गुण हानि-वृद्धि की अपेक्षा से अनित्य है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। यह तो थोकड़ा में लड़कों को पढ़ाने की ऐसी बात तो है। समझ में आया? सीखे थे या नहीं पहले कुछ? सीखेंगे। परन्तु यह तो थोकड़ा चलता था जैनशाला में।

अन्य चार द्रव्य विभाव के अभाव से नित्य ही हैं,... जीव और पुद्गल के अतिरिक्त धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल में विकार नहीं। इस अपेक्षा से उन्हें नित्य कहा जाता है। पर्याय की अपेक्षा से तो अनित्य हैं, परन्तु विभाव नहीं, इसलिए नित्य कहा जाता है। कितना याद रखना इसमें? घर में माल कितना, वह सब इसे ख्याल

होता है। कितने भाव में आया, अभी कितना भाव दुनिया में वर्तता है और कितने भाव में नया माल आया—यह सब इसे खबर होती है। त्रिपट्टी।

मुमुक्षु : ग्राहक-ग्राहक की खबर होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब खबर होती है। यह ग्राहक यह ले गया और यह ग्राहक यह ले गया, इतना लेना और इतना देना। फलाना-फलाना। प्रेम है न! यह वस्तु है, वह भाई! आत्मा के निश्चय सम्यग्दर्शन के विषय काल में ऐसा व्यावहारिक विकल्प होता है। उसमें ऐसा उसे छह द्रव्य का ज्ञान और श्रद्धा होती है। वीतरागमार्ग में ऐसा स्वरूप है, ऐसी इसे श्रद्धा, ज्ञान होता है। समझ में आया? वरना दूसरे प्रकार से आड़ा-टेढ़ा चढ़ जायेगा। एक ही आत्मा माननेवाले और ऐसा करे, तो उसे निश्चय हाथ आयेगा नहीं और व्यवहार तो है ही नहीं। समझ में आया?

चार (द्रव्य) नित्य हैं, दो अनित्य हैं, तथा द्रव्यकर सब ही नित्य हैं,... वस्तु देखें तो सब नित्य ही है। **कोई भी द्रव्य विनश्वर नहीं है,...** कोई भी द्रव्य कहीं नाशवान नहीं। **जीव को पाँचों ही द्रव्य कारणरूप हैं,...** अब आया यह दुःख का। उन्हें लेना था वहाँ से उठाया था। जीव को पाँचों पदार्थ कारणरूप है। पुद्गल तो शरीरादिक का कारण है, धर्म-अधर्मद्रव्य गति-स्थिति के कारण हैं, आकाशद्रव्य अवकाश देने का कारण है, और काल वर्तना का सहायी है। ये पाँचों द्रव्य जीव को कारण हैं, और जीव उनको कारण नहीं है। जीव उन्हें कारण नहीं। जीव तो उनका जाननेवाला है। समझ में आया? यद्यपि जीवद्रव्य अन्य जीवों को गुरु-शिष्यादिरूप परस्पर उपकार करता है,.... निमित्त। जीव गुरु-शिष्य में परस्पर निमित्तरूप से कहलाता है, उपकाररूप से। तो भी पुद्गलादि पाँच द्रव्यों को अकारण है,.... परन्तु आत्मा दूसरे पुद्गल आदि पाँच द्रव्यों के लिये कारण नहीं है। गुरु-शिष्य में निमित्त-निमित्त से उपकार कहलाता है। पाँच द्रव्य में तो नहीं। और ये पाँचों कारण हैं,.... समझ में आया?

मुमुक्षु : पाँचों ही पर्याय प्रसिद्ध करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जानने की प्रसिद्ध करते हैं, जानने की प्रसिद्धि करते हैं, परन्तु वस्तु उसे स्वयं को—जीव को कारण होती है। जीव उसे कारण नहीं होता। यहाँ

देखो न पहली बात की न ! दुःख में निमित्तरूप से होत है अथवा ज्ञान में निमित्तरूप से होता है । समझ में आया ?

शुद्ध पारिणामिक... परमस्वरूप भगवान आत्मा, शुद्ध पारिणामिक अर्थात् स्वतः स्वभाव परमभाव त्रिकाली, उसे ग्रहण करनेवाला जो शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर (द्रव्यदृष्टि से) यह जीव यद्यपि बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप का कर्ता नहीं है,... क्या कहा ? भगवान आत्मा एकरूप परम स्वभावरूप त्रिकल परमपारिणामिकभाव स्वभावरूप । एकरूप परमस्वभावभावरूप, ऐसी दृष्टि से देखे तो भगवान आत्मा बन्ध का भी कर्ता नहीं, मोक्ष का भी कर्ता नहीं । क्योंकि सब पर्याय है । एकरूप त्रिकाली भाव... भाव... भाव... भाव... पारिणामिकभाव । द्रव्यरूप कूटस्थ नित्यभाव, ध्रुवभाव । भगवान आत्मा का पारिणामिक परमस्वभावभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, अनादि-अनन्त भाव । इस दृष्टि से देखें तो विकार और बन्ध का भी कर्ता नहीं, मोक्ष का भी कर्ता नहीं । क्योंकि मोक्ष तो पर्याय है । त्रिकाल भाव कर्ता नहीं । पुण्य-पाप का भी कर्ता नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प की पर्याय का कर्ता नहीं ।

तो भी अशुद्धनिश्चयनयकर शुभ-अशुभ उपयोग से परिणत हुआ... परन्तु अशुद्ध निश्चय से शुभ और अशुभ पुण्य-पाप के (भाव से) परिणमित जीव पुण्य-पाप के बन्ध का कर्ता होता है,... वह शुभाशुभभाव का कर्ता और वह विकार में अटका, उतना बन्ध का कर्ता है । भावबन्ध की बात है न । अशुद्धनिश्चय । बहुत आया परन्तु इसमें तो । अशुद्ध निश्चयनयकर शुभ-अशुभ परिणाम होते हैं न ? उनका कर्ता अज्ञानी है । पुण्य-पाप का बन्ध का कर्ता है । और उनके फल का भोक्ता होता है,... लो ! अशुद्ध निश्चय से । अपने विकारी भाव का स्वयं भोक्ता, स्वयं भोक्ता है । पर को भोगता नहीं । अपने विकारी परिणाम को करे और विकारी परिणाम को भोगे । ऐसी पर्याय अशुद्ध निश्चय से है । अशुद्ध क्यों कहा ? कि उसकी पर्याय है इसलिए । पर के कारण से... पर के कारण से नहीं । अपने ही अशुद्धभाव करे और अशुद्धभाव को भोगे अपनी पर्याय को । त्रिकाल भाव की अपेक्षा से तो उस पर्याय में उसमें—होना है नहीं ।

तथा विशुद्ध ज्ञान दर्शनरूप निज शुद्धात्मद्रव्य का श्रद्धान... देखो ! आत्मा

कैसा है ? विशुद्ध ज्ञान-दर्शनरूप निज शुद्धात्मद्रव्य त्रिकाल । उसका सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और आचरणरूप शुद्धोपयोगकर परिणत हुआ... यह तीन होकर शुद्ध उपयोग । शुद्धोपयोगकर परिणत हुआ मोक्ष का भी कर्ता होता है, और अनन्त सुख का भोक्ता (भी) होता है । लो ! भगवान् आत्मा अपने शुद्ध उपयोग का स्वभाव की दृष्टि, स्वभाव शुद्ध की दृष्टि, ज्ञान और आचरण उसरूप से शुद्ध उपयोग पूर्णता मोक्ष का भी कर्ता है और अनन्त सुख का भोक्ता है । इसलिए जीव को कर्ता भी कहा जाता है, और भोक्ता भी कहा जाता है । शुभ, अशुभ, शुद्ध परिणमन ही सब जगह कर्तापना है,... लो ! यह शुभ और अशुभ परिणमना, वही कर्ता, ऐसा कहते हैं । अब दूसरी बात करेंगे । यह हो गया । अब अशुद्ध निश्चय है वास्तव में ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

पौष शुक्ल ९, शनिवार, दिनांक - ०१-०१-१९६६

गाथा - २८ - २९, प्रवचन - ९१

२८वीं गाथा। सर्वज्ञ भगवान तीर्थकर परमात्मा ने इस जगत में केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे हैं। भगवान तीर्थकर परमेश्वर को जब केवलज्ञान हुआ... वह अनन्त काल से होता आता है। अनन्त तीर्थकर हो गये, अभी भी महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं, भविष्य में अनन्त होंगे। उन सब भगवान ने केवलज्ञान में इस जगत में छह द्रव्य-वस्तु देखी है। उन छह द्रव्य का स्वरूप कैसा है ? उसका इसमें वर्णन है। वहाँ तक आया है। देखो! यहाँ से लेना है अब।

शुभ, अशुभ, शुद्ध परिणामन ही सब जगह कर्तापना है,... क्या कहते हैं ? यह जीव है न, जीव ? यह अपने दया, दान के पुण्य के भाव करे, या हिंसा-झूठ के भाव करे और या आत्मा के शुद्ध परिणाम, धर्म के शुद्ध परिणाम करे। समझ में आया ? देखो ! शुभ दया, दान आदि राग की मन्दता, कषाय की मन्दता के भाव जीव करता है। उसे कोई कर्म कराता नहीं। और अशुभ—हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, यह कमाना, कमाने के भाव, वे सब पाप। वह पापभाव जीव करता है, उसे कोई कर्म कराता नहीं। वह शुभ-अशुभभाव का कर्ता जीव है।

और शुद्धभाव। आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य है, उसके अन्तर में पुण्य-पाप के रागरहित श्रद्धा, आत्मा का ज्ञान और आत्मा में शुद्ध उपयोग की अवस्था, उसे शुद्ध परिणाम कहते हैं, वह धर्म है। पुण्य और पाप, वह धर्म नहीं, परन्तु है आत्मा उनका कर्ता। उसके दो प्रकार हैं। अज्ञानरूप से वह पुण्य-पाप मेरा कर्तव्य है, ऐसा मानकर करता है और ज्ञान भान में स्वरूप का भान होने पर ज्ञान-धर्म होने पर वह शुभाशुभ परिणाम होते हैं, इस अपेक्षा से परिणामन की अपेक्षा से उसे कर्ता कहा जाता है। समझ में आया ? मुख्य बात है न इसमें तो सब। शुभ और अशुभभाव... आत्मा यह शरीर,

वाणी, मन, परपदार्थ का कभी कुछ कर सकता नहीं। क्योंकि परपदार्थ स्वतन्त्र वस्तु है। ऐसा भगवान ने देखा और भगवान ने कहा है। यह शरीर, वाणी, यह मिट्टी, यह पैसा, मकान, धूल, उसका आत्मा कुछ करे, यह तीन काल में कर सकता नहीं। बराबर होगा ? सौभाग्यमलजी ! मशीन-बशीन कौन करता होगा यह ? मानते हैं न लोग मानते हैं, माने, वह मिथ्यात्वभाव को करे, परन्तु पर का काम कर सके, ऐसा (नहीं है)। भगवान सर्वज्ञदेव ने छह द्रव्यों की जुदाई-भिन्नता देखी है, वे भिन्न हैं। यह भिन्नवाला भिन्न का करे, ऐसा माने, वह मिथ्यात्व दृष्टि, उसे अज्ञान का बड़ा पाप है। उस अज्ञानपने के परिणाम को करे भान बिना, परन्तु पर के परिणाम को तो करता नहीं और शुभ-अशुभभाव के परिणाम दया, दान, व्रत के शुभभाव; हिंसा, झूठ, चोरी के अशुभ (भाव), वह अज्ञानी कर्तृत्वबुद्धि से करता है। ज्ञानी को परिणामनरूप से है, इस अपेक्षा से कर्ता उसे ज्ञाता में कहा जाता है। समझ में आया ? और शुद्ध परिणाम का कर्ता तो आत्मा स्वयं है। शुद्ध आत्मा शरीर, वाणी की क्रिया किये बिना का, पुण्य-पाप के भाव के कर्तृत्वबुद्धि बिना का, ज्ञानस्वरूप चिदानन्द आत्मा हूँ — ऐसी श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता का कर्ता है। धर्म की दशा, शुद्धभाव की दशा, शुद्धभाव को धर्म कहते हैं, उसका कर्ता आत्मा है। उसका कर्ता कोई कर्म-बर्म नहीं। कर्म हटे तो आत्मा को धर्म हो, ऐसा (नहीं है)। वह कर्ता और आत्मा का धर्म वह काम—ऐसा नहीं है।

सब जगह कर्तापना है, परिणामन ही सब जगह कर्तापना है,... ऐसा लेना है। क्या कहना है, समझ में आया ? आत्मा में शुभभाव, अशुभभाव या आत्मा का धर्म का आत्मभान, उसका वह परिणामन, वह उसका कर्तापना है। समझ में आया इसमें ? और पुद्गलादि पाँच द्रव्यों को अपने-अपने परिणामरूप जो परिणामन, वही कर्तापना है,... यह शरीर है न यह शरीर ? वाणी यह जड़, उसकी पर्याय का कर्ता वह पुद्गल है; आत्मा नहीं। समझ में आया ? वह पुद्गल जो यह शरीर है, वाणी है, कर्म है, यह पर के शरीर हैं, इनकी पर्याय जो पलटती है, उसका कर्ता वह पुद्गल है, आत्मा नहीं। देखो ! यह शरीर हिले, इसका कर्ता आत्मा नहीं, यह पुद्गल इसका कर्ता है।

मुमुक्षु : तो हिलाता कौन है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हिलाता है वह पुद्गल ।

यह पुद्गलादि पाँच । अब यहाँ तो मूल पुद्गल है न । वे चार तो अरूपी हैं । धर्मास्ति, अधर्मासित, आकाश और काल । उनकी लप तो बड़ी की... है । परन्तु यहाँ तो पुद्गलादि पाँच द्रव्य जो भगवान ने जीव के अतिरिक्त पाँच देखे, वे पाँच, उनका परिणमन-पर्याय बदलती है, उसके वे कर्ता हैं । यह वाणी होती है, इसका कर्ता यह वाणी के पुद्गल हैं, आत्मा नहीं । यह शरीर हिले, यह बोले, ऐसे-ऐसे हो, इसके इन परिणाम की पर्याय का कर्ता पुद्गल जड़ है, आत्मा नहीं । आत्मा अज्ञान करे और राग-द्वेष करे । कहा न, पहले कहा न । शुद्ध, शुभ और अशुभ । यह उकताहट आती है, वह अशुभ पाप के भाव जीव करता है ।

मुमुक्षु : परन्तु शरीर कराता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, बिल्कुल नहीं । यह झूठी बात है ।

मुमुक्षु : करता है जीव, परन्तु करावे कौन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे स्वयं और करावे स्वयं । करे कौन दूसरा ? धूल करे ? समझ में आया ? यह क्या है अन्दर ? पुस्तक रखी है या नहीं ? यह रहा, परन्तु सामने तो देखो । आज उकताहट आ गयी है । सवेरे उकताहट आ गयी है । ... दिखता है । सवेरे बोले थे कि इस दुःख से मर जायेंगे । परन्तु इतना-इतना सुने तो भी कहाँ जाना है परन्तु ? यहाँ क्या कहा, सुना ? देखो ! शुभ, अशुभ, शुद्ध परिणमन ही सब जगह कर्तापना है, ... है चौथी लाईन ? क्या है ? कि इस शरीर को रोग है, इसलिए जीव को उकताहट के परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं ।

मुमुक्षु : यह कैसे होते हैं इसे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उकताहट के परिणाम स्वयं करे तो होते हैं, ऐसा भगवान कहते हैं ।

मुमुक्षु : बीमार हो तो कुछ करता नहीं, उसका क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ कौन नहीं करता ? बीमार बीमार में पर्याय रही,

वह आत्मा में कहाँ आयी ? यह निरोगता के समय भी जीव को शुभभाव हो या अशुभ हो, वह निरोगता उसे कराती नहीं। वह शुभ और अशुभ परिणाम जीव करे तो होते हैं, पर कराता नहीं और पर का वह कर्ता नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : निर्णय कर दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन निर्णय कर दे ? कहो, समझ में आया इसमें ?

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव के ज्ञान में छह द्रव्य आये। यह तो अभी व्यवहार समकित की यह बात चलती है उसके विषय की। आहाहा! अभी व्यवहार श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं होता। निश्चय सम्यग्दर्शन तो आत्मा अखण्डानन्द ज्ञानमूर्ति अखण्ड, उसकी प्रतीति और अनुभव, उसका नाम सम्यग्दर्शन। उस अवसर में व्यवहार समकित में ऐसा उसका परद्रव्य का विषय जिस प्रकार से है, वैसा उसकी श्रद्धा में वर्तना चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

यह पुद्गलादि पाँच द्रव्य... यह शरीर, यह पुस्तक आदि यह सब यह कर्म, वाणी, तैजसशरीर, यह औदारिक, वैक्रियक, आहारक (शरीर) ये पुद्गल, यह पैसा, दाल, भात, सब्जी, यह मकान, ये सब जड़ अपनी वर्तमान अवस्था के बदलनेरूप कार्य को करते हैं। यह आत्मा के परिणाम को करते नहीं और उनके परिणाम को आत्मा करता नहीं। समझ में आया ? है पुस्तक इसके पास ? कान्तिभाई के पास पुस्तक कहाँ से आयी ? किसने दी ? ठीक ! ... यह देखो तो सही अन्दर यह क्या लिखा है ? कहो, समझ में आया इसमें ? पुद्गल अर्थात् रजकण। एक रजकण से लेकर यह दाल, भात, लड्डू, आटा, यह पैसा, मकान, वस्त्र/कपड़े, मशीन, यह सब पुद्गल इनकी वर्तमान दशा का पलटना, इनके परिणाम को ये पुद्गल करते हैं। यह आत्मा उनका कर्ता तीन काल, तीन लोक में नहीं हो सकता। क्योंकि वे भिन्न हैं, उनका भिन्न उसका कर्ता नहीं हो सकता, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! कहो, सुजानमलजी! समझ में आया ? लो!

पुण्य-पापादि का कर्तापना नहीं है,... क्या कहते हैं ? **पुद्गलादि पाँच द्रव्यों को अपने-अपने परिणामरूप जो परिणामन वही कर्तापना है,...** परन्तु आत्मा के जो शुभ और अशुभभाव, उनका कर्तापना यह शरीर नहीं है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा ? है

शब्द ? अन्दर देखो ! देखकर पढ़ो । ये पुद्गलादि पाँच द्रव्यों को अपने-अपने परिणामरूप जो परिणामन वही कर्तापना है, पुण्य-पापादि का कर्तापना नहीं है, ... यह आत्मा में कर्म कर्ता नहीं, शरीर कर्ता नहीं, वाणी कर्ता नहीं, रोग कर्ता नहीं, निरोग कर्ता नहीं और पाप के परिणाम जीव में होते हैं, उसमें शरीर कर्ता नहीं, यह स्त्री-पुत्र कर्ता नहीं, उसका कर्म कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं । कहो, आहाहा !

मुमुक्षु : एक शरीर अच्छा कर दो ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं कि मूढ़ जीव मुफ्त का मानता है । शरीर में यह हुआ, इसलिए मुझे ऐसे परिणाम होते हैं । वह मूढ़ है, महामिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, ऐसा यहाँ कहते हैं । कहो, समझ में आया इसमें ? है पुस्तक, है या नहीं ? सामने रखी है या नहीं परन्तु ? बनिया दशहरे में देखता है या नहीं नामा ? दिवाली का नामा मिलाता है या नहीं दशहरे में ? यह भगवान का नामा है देख तो सही जरा । आहाहा !

पुद्गलादि पाँच द्रव्यों को अपने-अपने परिणामन कर्ता... यह पुण्य-पाप आदि का कर्ता नहीं, एक इसका अर्थ है । क्या कहते हैं ? आत्मा में होनेवाले दया, दान, शुभ कषाय मन्द का कर्ता पुद्गल नहीं अर्थात् कर्म नहीं । भाई ! ऐसा आया न ? उस शुभभाव का कर्ता कर्म नहीं, शरीर नहीं । पाप का कर्ता कर्म नहीं, शरीर नहीं । यह प्रतिकूलता की निमित्तता, उस पाप के भाव का कर्ता नहीं । अनुकूलता के निमित्त उस पाप का कर्ता नहीं । भाई ! यह अनुकूलता बहुत है, इसलिए हमको यह पाप के ऐसे भाव आते हैं । बिल्कुल झूठ है ।

मुमुक्षु : आनन्द कैसे आता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द कहाँ आता है ? दुःख होता है । दुःख में आनन्द कहाँ आया ? अज्ञानी दुःख का कर्ता होता है । पाप के परिणामरूपी दुःख का कर्ता होता है । अनुकूल चीज़ उसके दुःख के परिणाम की कर्ता नहीं । लड्डू जो है, वह आत्मा को, 'यह ठीक है' ऐसे परिणाम का लड्डू कर्ता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं । यह मुझे ठीक है, ऐसे पाप के परिणाम हुए, उसका कर्ता जीव है, लड्डू पुद्गल नहीं । आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : यह पाप के भाव हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक है मिठास, यह पाप के भाव हैं। तब क्या पुण्य के हैं ? हमारे बराबर है, ऐसी जो चीज़ें, वे तेरे ठीक से पाप के परिणाम का कर्ता नहीं। वे पाप के परिणाम तूने किये हैं। यह बराबरी पुद्गल की बाहर की तू मानता है, वह परिणाम का कर्ता नहीं। यह तो समझ में आये ऐसी बात है। आहाहा!

अभी विशेष डालना है थोड़ा। पापादिक शब्द पड़ा है न ? अर्थात् क्या कहना है ? देखो ! आत्मा में संवर, निर्जरा और मोक्ष के परिणाम जो होते हैं, उनका कर्म कर्ता नहीं है। क्या कहा ? समझ में आया ? भगवान आत्मा अपने स्वभाव को भूलकर पुण्य-पाप के परिणाम करे तो वह स्वयं कर्ता। उसका कर्म या पुद्गल या दूसरी चीज़ करनेवाले नहीं। अब जीव स्वयं भूले बिना भी पुण्य-पाप (रूप से) परिणमे भानसहित, तो भी वह परिणमन जीव का कर्तृत्व है, वह कहीं कर्म के कारण से नहीं है। ऐसा कि ज्ञानी हुआ, इसलिए अब राग-द्वेष का कर्ता का भाव नहीं, इसलिए राग-द्वेष के परिणाम, वह कर्म के कारण से हुए, ऐसा शास्त्र में आता है। समझ में आया ? कि नहीं। वह तो निमित्त से कथन था। धर्मी को भी अपने शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान के परिणाम काल में भी जितने परिणाम शुभ, अशुभ हों, उनका परिणमन उसका है। उसका इसलिए उस अपेक्षा से कर्ता कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! शैली वह शैली परन्तु... समझ में आया ?

और आत्मा में संवर, निर्जरा के, मोक्ष के परिणाम (होते हैं), उनका कर्ता जीव है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र धर्म के परिणाम का कर्ता जीव है। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम का कर्ता कर्म नहीं। इस केवलज्ञान के परिणाम का कर्ता जीव है। इस केवलज्ञान के परिणाम का कर्ता केवलज्ञानावरणीय नहीं, पुद्गल नहीं। आहाहा ! यह तो वे डालते हैं न ! केवलज्ञान ... मोहक्षया, ... अब सुन न, सुन ! समझ में आया ?

देखो ! यहाँ पापादि है न शब्द में ? ‘पुण्यपापादिरूपेणाकर्तृत्वमेव’ कौन ? यह पुद्गलादि पाँच द्रव्य, वे कर्ता अपने परिणाम के, परन्तु दूसरे के परिणाम के कर्ता नहीं। समझ में आया ? ‘पुण्यपापादिरूपेणाकर्तृत्वमेव’ पुण्य-पापादि स्वभाव में वे पुद्गल

कर्ता नहीं। ऐसे संवर, निर्जरा, मोक्ष के परिणाम आत्मा करे, उसका कर्ता कर्म (नहीं)। अकर्तृत्व है। अकर्तृत्व है न, भाई! उसमें? 'रूपेणाकर्तृत्वमेव' आहा! संक्षिप्त में तो बहुत डाला है। भगवान आत्मा स्वयं शुभ-अशुभ परिणाम को करे तो पुद्गल उसका अकर्ता है। आत्मा अपने स्वभाव के आश्रय से श्रद्धा, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र या क्षायिक समकित करे या क्षयोपशम, उपशम करे या क्षयोपशम चारित्र करे या क्षयोपशम ज्ञान या क्षायिकज्ञान करे, उसके परिणाम का कर्ता जीव है। उस परिणाम का कर्ता कर्म नहीं। ज्ञानावरणीय रहित हुआ तो यहाँ केवलज्ञान के परिणाम हुए, तो केवलज्ञानावरणीय है, वह कर्ता और केवलज्ञान वह कार्य, ऐसा है नहीं। आहाहा!

ऐसी तो, व्यवहार सम्यग्दर्शन के विषय में ऐसी श्रद्धा तो इसे होनी चाहिए। इसका ठिकाना न हो, उसे तो निश्चय सम्यग्दर्शन होता नहीं। और निश्चय हो, वहाँ व्यवहार ऐसा उसे श्रद्धा में होता है। वस्तु ऐसी है, ऐसी है, वह श्रद्धा में होनी चाहिए भेदवाली। भेद है न, अनन्त है सही न! समझ में आया? वस्तु ही ऐसी है। इस प्रकार जैसा है, वैसा इसे व्यवहार सम्यक् श्रद्धा में, व्यवहार ज्ञान में उसे श्रद्धान करना चाहिए। आहाहा!

यहाँ तो अभी ऐसा विवाद उठावे या नहीं, परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर जैन नहीं। अर र र र र! गजब किया तूने यह। यहाँ तो कहते हैं कि परद्रव्य तेरे परिणाम को करे, वह मिथ्यात्व है और तू परद्रव्य के परिणाम कर, यह मिथ्यादृष्टि मानता है और यह मानता है वह मिथ्यात्व स्वयं के कारण से परिणाम है। आहाहा! कहो, समझ में आया? कोई कहे कि भाई! क्या करें, ऐसे दबाव में आये हैं अभी कि ऐसे परिणाम किये बिना चले नहीं, ऐसी संयोग दशा ही है। यह कालाबाजार के परिणाम किये बिना चले नहीं अभी, ऐसे संयोग हैं। ऐसा होगा? कालीदासभाई! तुम्हारे क्या है? तुमने तो सब दे दिया सरकार को। परन्तु यह ऐसे के ऐसे पैसे देकर रखे घर में, उसे क्या किस प्रकार? ऐसा प्रतिकूल संयोग आया, इसलिए उससे करना पड़ता है न ऐसा? नहीं? ऐई! ऐसा प्रतिकूल संयोग आवे, तो उसके कारण से यहाँ परिणाम होते हैं। भगवान इनकार करते हैं कि ऐसा नहीं होता। समझ में आया? ऐसे शरीर में दबाव पड़ा ऐसा।

वह परिणाम बिगाड़े। बिल्कुल नहीं, बिल्कुल किंचित् नहीं। आहाहा! वह तो निमित्त तो अकिंचित्कर है।

मुमुक्षु : तो निमित्त कहलाये। उपादान कहलाये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त कहलाया, कर्ता हो, तब तो यहाँ घुस गया। समझ में आया? शरीर में रोग, प्रतिकूलता, पैसे का निर्धनपना, स्त्री का मरना, पुत्र का जाना, पुत्री का विधवा होना एक साथ ऐसे संयोग, इसलिए पाप के परिणाम होते हैं? नहीं। यह पाप के परिणाम तूने किये तो हुए हैं, संयोग से हुए नहीं। आहाहा! कैसे? फूलचन्दभाई! तुम फँस गये हो या नहीं परन्तु बाहर के कारण से? बाहर के कारण से न? नहीं? भाई अब यह गुणवन्तभाई था, इतनी निवृत्ति मिले वहाँ गये तो ... पड़ा, ऐसा होगा? आहाहा! अरे! कौन जाये? कहाँ करे? आवे कौन? भगवान!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, रस है वहाँ। यह वह भाई कहे, यहाँ रहो भाई! जमुभाई यहाँ रहो। वह माँ भी कहे और वे सब भाई भी कहे। अभी हमारे दबाव है। पिता को मार डाला है। उसे रस है वहाँ वह। उसके कारण से नहीं रहे थे वहाँ। यह तो दृष्टान्त। यह पूछे तो इसका दृष्टान्त कहा जाये न! दूसरा किसे कहे? क्यों? मूलचन्दभाई! अब इसे सब लड़के-बड़के करनेवाले हैं तो भी यह अभी फँस जाता है वहाँ। अभी वहाँ मुम्बई जाना है। संयोग कराते होंगे न भाव को? नहीं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निमित्त की व्याख्या क्या? तो ही निमित्त कहलाया। उससे हुए नहीं, इसने किये, तब उसको निमित्त कहा गया। यह उससे हुए हों तो निमित्त कहाँ रहा? यह तो उसने कराया। उसमें घुस गया वह तो। समझ में आया? आहाहा! इन तत्त्वों का ऐसा स्वभाव है। ऐसा स्वभाव अभी व्यवहार श्रद्धा में भी न ले, उसे अकेला ज्ञायक स्वभाव भगवान चिदानन्दस्वरूप हूँ, अभेद हूँ, यह रुचि कैसे करे? इतनी व्यवहार की जहाँ स्वतन्त्रता है, उसकी रुचि न बैठे, उसे अकेला भगवान अव्यक्त जिसकी पर्याय में अल्पज्ञता और वस्तु की सर्वज्ञता (है, उसे कैसे बैठे?) समझ में आया? आहाहा!

पुण्य-पापादि का कर्तापना नहीं है,... कौन ? पुद्गल । समझ में आया ? धर्मास्ति, अधर्मास्ति कोई लो न । पाँचों द्रव्य धर्मास्ति, अधर्मास्ति, काल-काल । कालद्रव्य वह आत्मा के पुण्य-पाप और धर्म परिणाम का कर्ता नहीं । लो, वह कालकरणी पुद्गल आता है न ? पंचास्तिकाय में नहीं आता ? पुद्गलकरणी । पुद्गल को कालकरणी । यहाँ तो कहते हैं, वह तो निमित्त से बात थी । कर्ता-फर्ता कोई नहीं । आता है न, भाई ! पंचास्तिकाय में ? पुद्गल कर्ता, पुद्गल करण जीव को । यह आया और पुद्गल को काल करण । यह तो निमित्त से व्याख्या है । कोई-कोई पुद्गल कर्ता-फर्ता आत्मा के परिणाम का नहीं और पुद्गल के परिणाम का काल भी कर्ता नहीं । यह भगवान के कहे हुए तत्त्व स्पष्ट हैं, उन्हें भी जिसे अभी मानने की दरकार नहीं होती, उसे आत्मा क्या चीज़ है (यह कैसे ज्ञान में आवे ?) यह तो आयेगा अभी वह । देखो !

सर्वगतपना लोकालोक व्यापकता की अपेक्षा आकाश ही में है,... क्या कहते हैं अब ? पूरे लोक और अलोक में आकाश व्याप्त है । उसे एक सर्वगतपना उसको लागू पड़ता है आकाश वस्तु की अपेक्षा से । सर्वगत । ध्यान रखना उसमें भी जरा न्याय आयेगा । लोकालोक व्यापक की अपेक्षा से आकाश सर्वगत है । आकाश है न भगवान दे देखा हुआ यह सब । धर्मद्रव्य-अधर्मद्रव्य ये दोनों लोकाकाशव्यापी हैं, ... धर्मास्ति, अधर्मास्ति दो हैं, इस लोक में रहे हुए हैं । दो पदार्थ भगवान ने (देखे हैं) । **अलोक में नहीं है, और जीवद्रव्य में एक जीव की अपेक्षा केवलसमुद्घात में लोकपूरण अवस्था में लोक में सर्वगतपना है,...** क्षेत्र की अपेक्षा से अभी बात चलती है । जीवद्रव्य में एक जीवद्रव्य की अपेक्षा से जब केवलीसमुद्घात करे भगवान, तब पूरे लोक प्रमाण व्याप जाये । क्षेत्र यह असंख्य प्रदेश । इस अपेक्षा से क्षेत्र से सर्वगत कहे गये हैं । भाव से सर्वगत बाद में कहेंगे ।

तथा नाना जीव की अपेक्षा सर्वगतपना नहीं है,... क्योंकि अनेक जीव तो एक-एक जीव तो थोड़े में रहते हैं, यह इतने-इतने में । वे कहीं पूरे लोक में (नहीं है) । **पुद्गलद्रव्य लोकप्रमाण महास्कन्ध की अपेक्षा सर्वगत है,...** पूरे पुद्गल, पूरा एक महास्कन्ध है, पूरे लोकप्रमाण वह स्कन्ध है । दूसरे पुद्गल भिन्न । वह तो एक महास्कन्ध

है पूरे लोक में, वह पूरे लोक प्रमाण है। अन्य पुद्गल की अपेक्षा सर्वगत नहीं है,... यह दूसरे इतने ऐसे-ऐसे शरीर की अपेक्षा से इतने-इतने में हैं, वे पूरे में हैं नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कायम रहे, हाँ है। ऐसा एक स्वभाव है।

कालद्रव्य एक कालाणु की अपेक्षा तो एकप्रदेशगत है,... कालद्रव्य है एक अरूपी। एक आकाश के प्रदेश में रहा हुआ है। सर्वगत नहीं। एक, हों एक। नाना कालाणु की अपेक्षा लोकाकाश के सब प्रदेशों में कालाणु है,... पूरे लोक में सब कालाणु हैं, वह बाद में सर्वगत कहलाता है। इसलिए सब कालाणुओं की अपेक्षा सर्वगत कह सकते हैं। इस नयविवक्षा से सर्वगतपने का व्याख्यान किया। क्षेत्र की अपेक्षा से। और मुख्यवृत्ति से विचारा जावे, तो सर्वगतपना आकाश में ही है,... क्योंकि अकेला आकाश सर्वव्यापक है।

अथवा ज्ञान की अपेक्षा जीव में भी है,... देखो! अब यह भाव से लिये। क्या कहा ? आत्मा में केवलज्ञान होता है। समझ में आया ? तब जीव में सर्वगतपना ज्ञान की अपेक्षा से जीव में भी है। जीव सबको जानता है, लोकालोक को जानता है। यहाँ रहा होने पर भी केवलज्ञान यहाँ होता है आत्मा में। सर्वज्ञपद, परमेश्वरपद, अरिहन्तपद तो आत्मा में यहाँ होता है। परन्तु उस ज्ञान में लोकालोक ज्ञात होता है इस अपेक्षा से उसे भाव से सर्वव्यापक कहा जाता है। क्षेत्र में भाव अपना इतना लम्बा हुआ ऐसा। समझ में आया ? जीव का केवलज्ञान लोकालोक व्यापक है, इसलिए सर्वगत कहा। लो! समझ में आया ?

यहाँ तो दूसरा एक बोल मस्तिष्क में आया था भाई रात्रि में विचार करते हुए। रात्रि में। सर्वगत नय है न ४७ (नय में) ? सर्वगत नय और ज्ञेय-ज्ञायक अद्वैतनय। ज्ञेय-ज्ञायक द्वैतनय है और असर्वगतनय है ... ज्ञेय-ज्ञायक अद्वैतनय और सर्वगतनय। साधक जीव को, हों! साधक की बात है वहाँ। यहाँ तो केवलज्ञान की अपेक्षा ली है। परन्तु उस सर्वगत में यहाँ आत्मा ज्ञानस्वरूप को प्राप्त हुआ, जाना ज्ञानस्वरूप शुद्ध हूँ,

पवित्र ऐसा भान हुआ तो उस भान में आत्मा की पर्याय में सर्वगतपना अभी (व्यापता है) । सब लोकालोक की जो पर्याय है द्रव्य, गुण आदि, वह उसकी पर्याय में जानने में आ जाते हैं । ध्यान रखना ।

यह तो क्या विचार आया ? केवलज्ञानी और श्रुतज्ञान में अन्तर करते हैं न ? परन्तु यहाँ तो श्रुतज्ञान में यह आत्मा ज्ञायकस्वरूप हूँ, शुद्ध हूँ, ऐसा भान (हुआ) । उस भान की दशा में लोकालोक यह मानो उसमें वर्तता हो, ऐसा यहाँ साधक जीव को... साधक जीव की बात में, वह तो साध्य की बात में... समझ में आया ? उसे भी जो क्रमसर लोकालोक में जो हो रहा है, ऐसे जैसे केवलज्ञान में सर्वगतरूप से जानते हैं, वैसा श्रुतज्ञान में भी ऐसा सब जैसे हो रहा है, ऐसे सर्वगतरूप से ज्ञान की श्रुतज्ञान पर्याय जानती है । साधक सम्यग्दृष्टि ऐसा अपनी पर्याय को सर्वगतरूप से पर्याय को जानता है । आहाहा ! समझ में आया ? यह बस इतना अन्तर । प्रत्यक्ष और परोक्ष इतना ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : जाननेवाला... जाननेवाला । जाननेवाला सबको जाने, परन्तु यहाँ तो जरा दूसरी सूक्ष्म बात मस्तिष्क में आयी थी । समझ में आया ? भाई ! यह सर्वगतपना... यह तो ... पहले गये न ... उस समय सर्वगत और ज्ञेय-ज्ञायक अद्वैतनय दो का मस्तिष्क में विचार चलता था अन्दर । भाई ! यह जो ज्ञान है, केवलज्ञान जो है, उस केवलज्ञान में तो ऐसे लोकालोक सर्वगत कहा । यह तो पहले प्रवचनसार में आ गया है न पाठ में । यह ४७ नय में घटित किया है । वह सर्वज्ञनय घटित किया है । यहाँ ४७ में साधक को उठाया । ऐसे घटित किया, श्रुत में घटित किया । यह आत्मा... ध्यान रखो । कि यह आत्मा सम्यग्ज्ञानरूप से परिणमित हुआ । उस ज्ञान में सर्वगतपना एक नय का विषय है । एक नय कि जो ज्ञान सब लोकालोक है, उसे जानता है । मानो उसमें ज्ञान व्याप्त हो गया (हो, ऐसा) । आड़ा-टेढ़ा कुछ नहीं । जिस प्रमाण लोकालोक वर्तता है, तत्प्रमाण वह सर्वगत पर्याय श्रुतज्ञान उसे जानती है । यहाँ साधकपने की पर्याय में इस प्रकार से जानती है । केवलज्ञानी तो एक समय में ऐसा जानते हैं तटस्थ । साधकपने में, यहाँ तो साधक जीव की बात है, वे भी अपने श्रुतज्ञान की पर्याय में सब

लोकालोक जितना द्रव्य, गुण सब है, उसका ज्ञान उसमें व्याप्त है। उस पर्याय की इतनी सामर्थ्य है, उसमें व्याप्त है। इस अपेक्षा से आत्मा को सर्वगतनय से सर्वगत है, ऐसा जानना चाहिए। आहाहा!

ऐसा कहा कि जैसे केवलज्ञानी भगवान एक समय में तीन काल, तीन लोक जानते हैं। ऐसे उन्हें आगे-पीछे फिर कुछ नहीं। जैसे जो पर्याय, जिस द्रव्य की, जिस क्षेत्र में जहाँ जैसे होगी वह निमित्त वहाँ उस क्षेत्र में सब जानते हैं। इसी प्रकार श्रुतज्ञान में—वर्तमान श्रुतज्ञान की दशा में स्व के ज्ञान के भानसहित में पर के जितने पदार्थ जितने जिस प्रकार से जहाँ जैसे परिणमते हैं, उस समय में तीन काल, तीन लोक उस प्रकार से पर्याय में उस प्रकार से व्यापना है। पर्याय का ऐसा धर्म है, ऐसा सर्वगतनय है, उसे श्रुतज्ञानी उस प्रकार से जानते हैं। इसलिए उन्हें भी कुछ फेरफार है, ऐसा वह जानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? वस्तु की स्थिति वह भी कैसी है! समझ में आया?

कहते हैं कि यह पूरा लोक, अलोक, छह द्रव्य भगवान ने ऐसे देखे, ऐसे पड़े बिछे हुए। ऐसी की ऐसी पर्याय, तीन काल की पर्याय जिस समय में जहाँ, जिस समय में जहाँ, जिस समय में, जिस क्षेत्र में ऐसा का ऐसा भगवान ने देखा है। उसमें आगे-पीछे कुछ नहीं। क्यों? जुगराजजी! आहाहा! ऐसे श्रुतज्ञान में भी सर्वगतनय भगवान ने रखकर... अमृतचन्द्राचार्य ने निकाला है, वह भी पाठ में है; इसलिए निकालकर रखा है। आहाहा! अपने आत्मा को ज्ञान और आनन्दस्वरूप अन्तर में जाना और वह ज्ञान सम्यक् रूप से परिणमित हुआ। वह सम्यक् रूप से परिणमा, उसमें स्वद्रव्य का ज्ञान तो है, परन्तु लोकालोक जितने हैं, उनके द्रव्य, गुण और पर्याय, उनकी पर्याय में सर्वगत—मानो व्याप्त हो गया हो, मानो उसमें सब प्रविष्ट हो गया हो, उस श्रुतज्ञान की पर्याय को इस प्रकार से श्रुतज्ञानी भी जानता है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? है या नहीं यह ४७ नय में?

अलौकिक बात! अलौकिक बात! गजब बात!! सर्वज्ञ की किसी भी शैली से देखो। देखो! आत्मद्रव्य सर्वगतनय से खुल्ली रखी हुई आँख की भाँति सर्ववर्ती है।

‘सर्ववर्ती’ भाई ऐसा है। आहाहा! यह तो श्रुतज्ञान का नय है। श्रुतज्ञान का प्रमाण। श्रुतप्रमाण, उसका एक-एक नय है। वह श्रुतज्ञानप्रमाण आत्मा का ज्ञान हुआ, वहाँ एक-एक नय का एक-एक धर्म, वह नय उसे देखता है। श्रुतज्ञान एकसाथ सबको जानता है। उसमें एक नय से ऐसा देखता है कि भगवान आत्मा **सर्वगतनय से खुल्ली रखी हुई आँख की भाँति**। इस प्रकार जैसे आँख मानो सबमें व्याप्त हो गयी हो, वैसे ज्ञान की पर्याय सबको जानती है। सर्ववर्ती है, सर्व में रहनेवाली है, वह श्रुतज्ञान की पर्याय सर्व में रहनेवाली है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी चीज़ ही ऐसी है। उसका स्वरूप ही ऐसा है अद्भुत चैतन्यचमत्कार। आहाहा! और **ज्ञान-ज्ञेय अद्वैतनय से**। ज्ञान-ज्ञेय के अद्वैतरूपनय से (अर्थात्) ज्ञान की पर्याय है, उसमें जितने ज्ञेय हैं, वे मानो यहाँ आ गये हों, ऐसा **ज्ञान-ज्ञेय अद्वैतनय से**। समझ में आया ? देखो, **विशाल ईंधन समूह रूप से परिणत अग्नि की भाँति**। अग्नि विशाल लकड़ियों को अग्निरूप परिणमाने में एकरूप अग्नि हो गयी है न! इसी प्रकार ज्ञान की पर्याय पूरे लोकालोक के जितने ज्ञेय हैं, उन्हें जाननेरूप परिणम गयी, ज्ञान यहाँ परिणम गया। ऐसे श्रुतज्ञान का नय उसे जानता है। ओहोहो! कथनपद्धति वह कुछ... दिगम्बर सन्तों की कहने की पद्धति अलौकिक बात! हाथ में हथेली में आत्मा चारित्रसहित किया है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : किस गुणस्थान की बात ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छठवें गुणस्थान की बात है। यह चौथे गुणस्थानवाला ऐसा होता है, ऐसा कहना है यहाँ तो। चौथे से शुरु होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान में आत्मा श्रद्धा-ज्ञान में आया, परन्तु उसके ज्ञान की एक समय की पर्याय सर्ववर्ती और ज्ञेय और ज्ञान मानो एक हो गये हों यहाँ, यहाँ एक हो गये हों यहाँ, वह सर्ववर्ती कहा और यहाँ ज्ञान और ज्ञेय यहाँ एक हो गये हों। एक साथ हों एक। आहाहा! एक समय में श्रुतज्ञान की पर्याय और ज्ञेय यहाँ अद्वैत एक हो गये हों, ऐसा अद्वैत नय जानता है। यहाँ से... कहा न अग्नि कहा न ? अग्नि लकड़ी को सुलगावे ... ज्ञान ही पूरे लोकालोक का जैसा

स्वरूप है, ऐसा परिणमकर ज्ञान की पर्याय ही ऐसी हो गयी। ज्ञान-ज्ञेय अद्वैत, आहाहा! (ज्ञाता) रह गया उन सब ज्ञेयों का। राग से लेकर सब क्रिया को जो जहाँ होती है, उसका ज्ञाता-दृष्टा रह गया। समझ में आया? ओहोहो! समझ में आया इसमें?

कहा न? ज्ञान की अपेक्षा जीव में भी है, जीव का केवलज्ञान लोकालोक व्यापक है, इसलिए सर्वगत कहा। ऐसा यहाँ साधक में अपने घटित किया है। यहाँ तो पूरी बात की है। परन्तु पूरी में यह साधक है, वहाँ ज्ञान की पर्याय स्व को जानती है, वह तो अभेद, परन्तु ऐसे भेदवाले अनन्त द्रव्यों की पर्याय और वस्तु, वे मानो एक समय का ज्ञान उसमें व्याप्त हो गया हो, वर्त गया हो। यह सब क्रमबद्ध पर्यायों जो हैं, उनमें वर्त गया हो। समझ में आया? और यह क्रमबद्ध पर्यायों जो हैं, वे मानो ज्ञान में ज्ञेयरूप आ गयी हों। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ प्रविष्ट हो गया लोकालोक। उसका—ज्ञान की पर्याय का धर्म ऐसा है। ऐसी ज्ञान की पर्याय सबको वर्ते और सब यहाँ वर्त गया, ऐसा। आहाहा! ऐसा परन्तु इतना आत्मा इसे बैठता नहीं। चिल्लाहट मचाता है। ऐई! ऐसा होगा, यह ऐसा हो जाये। अरे! भगवान ने तो नियत, अनियत देखा है और तुम उसे नियत ही कहते हो। अमथावादी झूठाबोला, सर्वज्ञ झूठाबोला। अरे! भगवान! ऐसा नहीं, भाई! आहाहा! भाई! सर्वज्ञ ने तो सब जैसे क्रमसर जो होता है, उस प्रकार से उन्होंने देखा है। ऐसा उनका ज्ञान मानो उसरूप परिणम गया है। समझ में आया? उसमें सब विपरीतता हो गयी। यह लोकालोक की पर्याय मानो ज्ञान में प्रविष्ट हो गयी हो, ऐसा कहा है वहाँ। यहाँ ऐसा कहा। यहाँ तो अपने साधक में उतारना है। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति वस्तु, ऐसे पूर्ण ऐसा एक समय में, श्रुतज्ञान के एक समय की पर्याय में लोकालोक ज्ञेयरूप से वर्त गया मानो। ऐसा आत्मा तो ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड पूरा। क्या कहा? यह तो एक पर्याय भेदरूप हुई। यह तो श्रुत का भेद और केवलज्ञान का भी यह भेद हुआ द्रव्य में से। लोकालोक को व्यापे। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायों का पिण्ड जो ज्ञानगुण। आहाहा! क्या कहा? समझ में आया? श्रुतज्ञान

की पर्याय में भी सर्वगतपना व्याप्त हुआ, ज्ञेय-ज्ञान अद्वैत हुआ और केवलज्ञान में पूर्ण प्रत्यक्ष हो गया। ऐसी एक समय की पर्याय यह तो भाई! यह एक समय की पर्याय की बात है। यह श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय वर्तमान पर्याय की बात है। ऐसी-ऐसी साधक की असंख्य काल रहे, तब तक असंख्य पर्याय श्रुतज्ञान की और केवलज्ञान की अनन्त काल रहे अनन्त पर्याय। क्या कहा?

भगवान आत्मा के ज्ञानगुण का स्वभाव पर्याय को, एक समय की पर्याय श्रुतज्ञान की या केवलज्ञान का (स्वभाव) वह लोकालोक को भी जाने और अपने को भी जाने। ओहो! ऐसी एक समय की पर्याय श्रुतज्ञान में सर्वगतनय से जानने पर उसे असंख्य समय तक साधकपना रहे। पश्चात् तो केवलज्ञान हो ही जाये। वह असंख्य समय श्रुतज्ञान की पर्याय रहे, वह सब पर्यायों और केवलज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष सर्वगतपना— वह सब अनन्त पर्यायों, उनका तो गुण उनका पिण्ड सब एक गुण पूरा। ऐसा इससे भी अनन्तगुना जिसके गुण में सामर्थ्य है। ऐसे अनन्त गुणसहित का द्रव्य श्रद्धा-ज्ञान में लिया है, उसकी ज्ञान की पर्याय में भी इतना द्रव्य है, ऐसा श्रद्धा, ज्ञान में आ गया है। आहाहा! स्व की अपेक्षा से ऐसा द्रव्य अखण्ड परिपूर्ण है। ऐसी सभी पर्यायों का पिण्ड एक गुण, उन अनन्त गुण का पिण्ड ऐसा सम्यग्ज्ञान की पर्याय में स्व आया है और पर सर्वगतपना सब है, वह भी उसमें आ गया है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा। जैसे कहो वैसे कहो इसे। आहाहा! अभी वह श्रुतकेवली का वजन यहाँ नहीं अभी। यहाँ तो आत्मा... अभी यह बात। आहाहा! क्या परन्तु इसका स्वभाव! और क्या परन्तु ज्ञेय की पद्धति को पकड़ने की ज्ञान की योग्यता! क्या उसकी यथास्थितता! यथार्थवादिता! आहाहा! सन्तों के एक-एक कोई भी कथन यथार्थवादरूप से सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

भाई! तू प्रभु है। तेरे में तो ऐसे-ऐसे लोकालोक एक समय में ज्ञात हों, ऐसे-ऐसे तो अनन्त पर्याय की खान तू है। समझ में आया? यह तो क्रमसर लोकालोक में पर्याय होती है, गुण और द्रव्य जिसके एक समय में ज्ञात हों, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय की

खान तो गुण है। तू किसे आगे-पीछे करना चाहता है और किसे करेगा? एक पर्याय भी तत्प्रमाण करने (समर्थ नहीं)। पर्याय भी ऐसा जानती है। पर्याय आगे-पीछे हो, ऐसा नहीं है और ऐसी पर्याय का पिण्ड गुण जो है, उसमें तो ऐसा हो गया अकेला है। आहाहा! समझ में आया?

यह भगवान के कहे हुए द्रव्य, गुण और पर्याय... समझ में आया? यह द्रव्य-गुण-पर्याय की महत्ता है। यों ही बातें नहीं। एक समय की पर्याय मानो सर्वगत। पूरा हो गया। जाननेवाला-देखनेवाला। जैसे सर्वज्ञ जाननेवाले-देखनेवाले (हैं, उनको) कहीं बदलाना नहीं और बदलना भी नहीं। ऐसे यह जाननेवाला-देखनेवाला ज्ञेय को भी इस प्रकार से जानता है। समाप्त। आहाहा! दूसरे समय की श्रुतज्ञान की पर्याय भी सर्वगत को इस प्रकार से जानती है। जानते... जानते स्थिर होते जहाँ केवलज्ञान हुआ तो पूर्ण रीति से जानते हैं, प्रत्यक्ष रीति से जानते हैं। ओहोहो! समझ में आया? ज्ञान की पर्याय एक समय की ऐसा जाने, ऐसा... ऐसे दूसरे समय में। ऐसे करते हुए प्रत्यक्ष हो गया तो ऐसा का ऐसा जाने, लो! आहाहा! ऐसा एक जीव में ही ऐसा है। पाँच द्रव्य में कहीं ऐसा व्यापकपना ज्ञान का नहीं। उसमें आ जाये सही, यह उन्हें जाने। कहो, समझ में आया इसमें?

ये सब द्रव्य यद्यपि व्यवहारनयकर एक क्षेत्रावगाही रहते हैं,... एक क्षेत्र में सभी द्रव्य रहते हैं। तो भी निश्चयनयकर अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते,... कोई अपने-अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं। भले एक जगह में अनन्त रजकण, अनन्त आत्मायें, कालाणु (हों), अपने-अपने स्वरूप को कहीं एक समयमात्र पर्याय को छोड़ते नहीं। स्वरूप अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप, उसे कहीं छोड़ते नहीं। ओहोहो! समझ में आया? दूसरे द्रव्य में जिनका प्रवेश नहीं है,... एक रजकण का दूसरे रजकण में प्रवेश नहीं, एक आत्मा एक रजकण में प्रवेश करता नहीं, रजकण आत्मा में आता नहीं। समझ में आया? सभी द्रव्य निज-निज स्वरूप में हैं, पररूप नहीं हैं... अस्ति-नास्ति की है। सभी अनन्त द्रव्य जितने हैं, वे अपने-अपने द्रव्य, गुण, पर्याय में हैं; पररूप नहीं। आहाहा! कोई किसी का स्वभाव नहीं लेता। कोई द्रव्य किसी का

स्वभाव (नहीं लेता) । यह पुद्गल का स्वभाव जीव नहीं लेता और जीव का स्वभाव पुद्गल नहीं लेता । आहाहा ! ऐसा ही कथन श्री पंचास्तिकाय में है ।

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णस्स ।

मेलंता वि य णिच्चं सगं सब्भावं ण विजहंति ॥

यह शब्दार्थ ही इसका है । इसका अर्थ ऐसा है कि यद्यपि ये छहों द्रव्य परस्पर में प्रवेश करते हुए देखे जाते हैं, तो भी कोई किसी में प्रवेश नहीं करता,... समझ में आया ? मानो लोकालोक ज्ञान में आ गये, तथापि वे द्रव्य यहाँ आते नहीं, तथा ज्ञान वहाँ चला नहीं जाता । आहाहा ! यद्यपि अन्य को अन्य अवकाश देता है,... जहाँ है, वहाँ दूसरे आते हैं न ? अवकाश है, परमाणु, आकाश, सबमें अवकाश है, हों ! सबमें अवकाश लेंगे । तो भी अपना-अपना अवकाश आपमें ही है, पर में नहीं है,... एक परमाणु हो वहाँ दूसरे परमाणु आते हैं, एक आत्मा (हो), वहाँ दूसरे आते हैं । प्रत्येक द्रव्य में अवकाश (देने का) गुण है । असाधारण अवकाश का गुण है आकाश में और वह महा, महा असाधारण और यह एक प्रत्येक में अवकाश देने पर भी, आपमें ही है, पर में नहीं है, यद्यपि ये द्रव्य हमेशा से मिल रहे हैं, तो भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते । अपने स्वभाव को कोई छोड़ता नहीं । कर्म का एक-एक रजकण उसके स्वभाव को छोड़ता नहीं । आत्मा की एक-एक पर्याय अपने धर्म को छोड़ती नहीं । आहाहा ! अब कर्म से यहाँ हो और यहाँ से वहाँ हो । कितनी गड़बड़ करते हैं परन्तु । समझ में आया ?

यहाँ तात्पर्य यह है कि व्यवहारसम्यक्त्व के कारण... देखो यह । यह व्यवहार समकित का कारण छह द्रव्य में... यह छह द्रव्य व्यवहार समकित में निमित्त । छह द्रव्यों में वीतराग चिदानन्द अनन्त गुणरूप जो शुद्धात्मा है,... वह अन्तर ध्यानेयोग्य है । छह द्रव्य का इस प्रकार से स्वरूप जानकर, फिर भगवान् आत्मा वीतराग चिदानन्द रागरहित ज्ञानानन्दस्वरूप रागरहित आनन्द, ज्ञानानन्दस्वरूप अनन्त गुणरूप वापस । चिदानन्द और अनन्त गुणरूप वह शुद्धात्मा—अपना शुद्ध आत्मा पुण्य-पाप, कर्म, शरीररहित । भले कहा था पुण्य-पाप का परिणमन का कर्ता आदि, परन्तु उनसे रहित और इसके (अपने) अनन्त गुणसहित ऐसा शुद्धात्मा है । वह शुभ, अशुभ, मन, वचन,

काय के व्यापार से रहित हुआ ध्यावनेयोग्य है। लो! इसका सार कहा। यह सब व्यवहार समकित के विषय का जानना भले हो, परन्तु उपादेयरूप से यह एक आत्मा वीतराग ज्ञान के आनन्द का कन्द प्रभु है। यह दुनिया का आनन्द जो रागवाला है, वह तो दुःखरूप आनन्द है। यह भगवान आनन्द, वीतराग आनन्द, वीतरागी चिदानन्द आनन्द आत्मा में है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या पाना ? यह क्या आया ? यह सब जानने का। जानकर आदर करने का यह। यह जानकर जानने का यह वापस। साधना यह। इसके बिना वह व्यवहार समकित का भी कारण नहीं हो सकता। उसे किस प्रकार से व्यवहार कहना ? यह निश्चय करे, तब व्यवहार समकित के ये कारण हैं, उसे व्यवहार समकित कहा जाता है। समझ में आया ? यह तो भाषा बराबर ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसी है, हों! इसमें कहीं बहुत ऐसी नहीं। गुजराती कहीं ऐसी नहीं वापस। छह द्रव्य में भगवान आत्मा वीतराग चिदानन्द अनन्त गुणरूप शुद्धात्मा, उसके ऊपर दृष्टि गयी, उसका ध्यान करनेयोग्य है। समझ में आया ?

वह शुभ, अशुभ, मन, वचन, काय के व्यापार से रहित हुआ... कहते हैं कि पर के लक्ष्य का जो शुभराग है न उस ज्ञान का, वह शुभ समकित का विषय कहा, वह शुभराग विकल्प है वहाँ। उसे भी छोड़कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह भगवान अन्तर आनन्द का कन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द जिसमें फाँसा अनन्त आनन्द का... पड़ा है पूरा, उसकी अन्तर दृष्टि करके, उसका ध्यान करनेयोग्य है। यह आत्मा का मोक्षमार्ग है, बाकी सब जाननेयोग्य है। आहाहा! कहते हैं कि वे दूसरे जानने के भाव कहे न, उनके विकल्प से भी निवृत्त हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है वह। पर सन्मुख का लक्ष्य है न, वह विकल्पवाला ज्ञान है। व्यवहार समकित अर्थात् राग, राग शुभ उपयोग, उसे भी छोड़कर यह निश्चय आत्मा वीतरागीस्वरूप, (उसे ध्याना)। अब यह वस्तु भी अभी जाने नहीं, माने नहीं

व्यवस्थित। अब उसकी ओर से लक्ष्य छोड़ना। ऐसा व्यवस्थित माने तो उससे लक्ष्य छोड़ना, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। यहाँ तो अभी व्यवस्थित मानता नहीं, उसकी तो बात क्या करना? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : एक सेकेण्डमात्र में। कहो, समझ में आया? एक समयमात्र में। सेकेण्ड तो मैंने उपयोग का काल है, इसलिए कहा। समझ में आया? उपयोग काल अधिक है न जरा? असंख्य समय का उपयोग काल है। आहाहा!

कहते हैं, भाई! तू एक आत्मा है। तेरे एक समय के शुभ उपयोग के विकल्पवाले ज्ञान में भी ऐसी बात छह द्रव्य-गुण-पर्याय की जहाँ ज्ञात हो जाये, समाहित हो जाये। एक समय का परलक्ष्यी क्षयोपशमज्ञान के विकल्पवाला ज्ञान, उसमें भी इतना एक जिस प्रकार से है, उस प्रकार से उसे जानता है। उसका भी लक्ष्य छोड़कर त्रिकाल ज्ञायकमात्र भगवान आत्मा को ध्यानेयोग्य और ध्यान में ध्येय करनेयोग्य वह है। अर्थात् कि उसका विषय करनेयोग्य है, ऐसा दूसरे प्रकार से कहा। यह व्यवहार का जो विषय कहा था, सम्यग्दर्शन का विषय, (उसके) इतने अधिक प्रकार किये, वे जानकर भी स्वविषय करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लो! यह २८ गाथा हुई। समझ में आया?

इस प्रकार उन्नीस दोहों के स्थल में निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग के कथन की मुख्यता से तीन दोहा कहे। ऐसे चौदह दोहों तक व्यवहारसम्यक्त्व का व्याख्यान किया, जिसमें छह द्रव्यों का श्रद्धान मुख्य है। मुख्य समझे न? मूल वह आ गया अन्दर। अब ज्ञान की व्याख्या। एक ज्ञान की व्यवहार की और एक चारित्र निश्चय की, ऐसा कहते हैं। व्यवहार में भी निश्चय डालेंगे।

★ ★ ★

गाथा - २९

आगे संशय विमोह विभ्रम रहित जो सम्यग्ज्ञान है, उसका स्वरूप प्रगट करते हैं। स्व-पर का जानपना, ऐसे दो इकट्ठे करना, वह भी अभी व्यवहारज्ञान कहलाता है, ऐसा कहेंगे। स्व-पर का दो ज्ञान इकट्ठे, स्व का और पर का इकट्ठा, इसका नाम व्यवहारज्ञान। अकेले स्व का अन्तर में ज्ञान, वह निश्चयज्ञान। ऐसी शैली वर्णन करते हैं। समझ में आया ?

१५५) जं जह थक्कड दब्बु जिय तं तह जाणइ जो जि।

अप्पहं केरड भावडउ णाणु मुणिज्जहि सो जि॥ २९॥

यह शब्द आया था १५ में, १५वीं गाथा में आया था। 'अप्पहं केरड भावडउ' यह श्रद्धा का वहाँ शब्द था, यहाँ ज्ञान का शब्द है। समझ में आया ? वाह ! परमात्मप्रकाश भी... गजब बात की है परमात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव ने भी।

मुमुक्षु : परमात्मा....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! परमात्मप्रकाश गजब है ! समयसार में भी, यह भी एक अलौकिक शास्त्र है। बहुत जगह अध्यात्म ग्रन्थों में इसका नाम आता है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, परमात्मप्रकाश, समाधिशतक ऐसे अध्यात्म के ग्रन्थों में इसका नाम आता है। कहते हैं, सम्यग्ज्ञान स्व-पर का किसे कहना, यह विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

पौष शुक्ल १०, रविवार, दिनांक - ०२-०१-१९६६

गाथा - २९, प्रवचन - ९२

यह परमात्मप्रकाश है, इसकी २९वीं गाथा। देखो, क्या कहते हैं ? कि आगे संशय विमोह विभ्रमरहित जो सम्यग्ज्ञान है, उसका स्वरूप प्रगट करते हैं—

१५५) जं जह थक्कउ दव्वु जिय तं तह जाणइ जो जि ।

अप्पहं केरउ भावडउ णाणु मुणिज्जहि सो जि ॥ २९ ॥

हे जीव!... इस जगत के अन्दर सब पदार्थ हैं। जिस प्रकार से पदार्थ—वस्तु का स्वरूप है, अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, यह मिट्टी-रजकण आदि छह द्रव्य हैं, जैसे तिष्ठ रहे हैं, तिष्ठ है जैसी वस्तु जगत में। जैसा इनका स्वरूप है, उनको वैसा ही संशयादि रहित... संशयरहित, भ्रमणारहित, मूढ़तारहित, उसे जान कि जिससे तेरा स्व और पर की भिन्नता का सच्चा ज्ञान व्यवहार से हो। अभी तो यह व्यवहारज्ञान। समझ में आया ? जो आत्मा है, यह शरीर है, दूसरे आत्मायें हैं, दूसरों के शरीर, रजकण सत् है, वस्तु है। उसका जिस प्रकार से स्वरूप है, उस प्रकार से ज्ञान में जान तो तुझे स्व और पर दोनों भिन्न क्या हैं, ऐसा तेरा रागवाला ज्ञान, व्यवहार से सच्चा ज्ञान होगा। समझ में आया ? व्यवहार अर्थात् यह तुम्हारे लोक के व्यवहार की बात नहीं।

अन्दर पुण्यबन्ध का शुभभाव... यह आत्मा क्या वस्तु है, भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा कैसा देखा ? अनन्त आत्मा कैसे हैं ? रजकण रजकण का स्वरूप क्या है ? जैसा उनका स्वरूप है, वैसा स्वयं अपने से पर की भिन्नता का ज्ञान करे, तब उसे व्यवहारज्ञान, पुण्य के भाव का ज्ञान, व्यवहारज्ञान सच्चा कहा जाता है। उसमें आत्मा निर्विकल्प आनन्दस्वरूप है। यह आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। आत्मा सत्-शाश्वत् ज्ञानानन्द, उसका अन्तर में सम्यग्ज्ञान होना, इसका नाम आत्मा की शान्ति और इसका नाम धर्म कहा जाता है। समझ में आया ?

यह आत्मा ही निर्विकल्प वीतराग—रागरहित चीज़ है। वीतराग आनन्दमय है, उसमें—आत्मा में आनन्द पड़ा है, आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है। ऐसे आनन्दमय ज्ञानस्वरूप को रागरहित वीतरागी दृष्टि द्वारा स्वरूप का अनुभव करे, दृष्टि करे, तब उसे आत्मज्ञान कहा जाता है। तब उसने आत्मा की कीमत की, ऐसा कहा जाता है। तब उसने दूसरे सब पदार्थों की कीमत आत्मा के पीछे उड़ गयी। समझ में आया? यह आत्मा अखण्ड आनन्दमूर्ति है, ऐसा जो ज्ञान करे, उसे अन्दर आत्मा की कीमत हुई। उसे सम्यग्ज्ञान अर्थात् कि वास्तविक कीमत की, उस ज्ञान का नाम सम्यग्ज्ञान। समझ में आया? शान्तिभाई! यह कैसा?

उसे यह आत्मा वस्तु सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वत् सत्—शाश्वत् आत्मा है (अर्थात्) त्रिकाल ऐसा का ऐसा नित्य रहनेवाला है और उसमें—आत्मा में ज्ञान और आनन्द पड़ा है। उसके ज्ञान का ज्ञान और आनन्द का ज्ञान अन्दर करे, उसका नाम सच्चा ज्ञान, सच्ची धर्म की कीमत, सच्चे आत्मा को उसने पहिचाना कहलाता है। तब वह ज्ञानी हुआ और आत्मा के भाव की उसने पहिचान की। तब उसे शान्ति और सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन। उस समय अथवा पहले विचार के काल में स्व क्या? पर क्या? ऐसी चीजों की विचार भूमिका में चले उसे व्यवहारज्ञान, पुण्यबन्धन का कारण, व्यवहार सच्चा—व्यवहार से सच्चा ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? निश्चय सच्चा तो आत्मा का ज्ञान करे, वह है। गजब बातें, भाई! शान्तिभाई! कभी यह खबर नहीं होती। ऐई! कान्तिभाई! कहाँ गये?

यह आत्मा अपना स्वभाव अन्दर वस्तु आनन्दमूर्ति है वह। वीतराग अर्थात् अविकारी उसका स्वभाव है। उसकी दशा में विकार और भ्रमणा भले हो, वस्तुस्वरूप में वह नहीं है। ऐसे वस्तु के स्वरूप का अन्तर में 'वीतराग परमानन्दमूर्ति मैं हूँ' ऐसा जो अन्तर में निश्चय का, स्व का ज्ञान होना, उसका नाम वास्तविक धर्म है। उसने आत्मा की कीमत की और उसे पुण्य-पाप के भाव और उसके फल की कीमत अन्तर में से उड़ गयी। समझ में आया? उसे पुण्य-पाप के भाव हों, उनकी कीमत रही नहीं और उसके भाव के बन्धनरूप से पुण्य-पाप बँधे और उनके फल यह मिले अनुकूल,

प्रतिकूल बाहर (में), उनकी कीमत धर्मी को अन्तर दृष्टि में रहती नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? परन्तु इससे पहले जरा विकल्प अवस्था में सच्चा तत्त्व का (स्वरूप) क्या है, (उसका) ज्ञान इसको होना चाहिए। यह बात करते हैं, देखो!

भावार्थ :- जो द्रव्य है... तीन लक्षण वर्णन किये, भाई! पंचास्तिकाय में है न यह? 'थक्कउ' है न? रहे हैं। ये रहे हैं, उसमें से तीन बोल निकाले। सत्ता, उत्पाद-व्यय-ध्रुव और गुण-पर्याय ऐसे तीन निकाले। यह 'थक्कउ' में से निकाले। समझ में आया? क्या कहते हैं? यह आत्मा, यह रजकण वे जैसे हैं, उनकी सत्ता अर्थात् अस्तित्व उसका स्वरूप है। है, है, पदार्थ है न? यह रजकण, शरीर, कर्म, वाणी यह बाह्य पदार्थ हैं। आत्मा है। उसे 'है' अर्थात् सत्तावाला पदार्थ, उसका उसे ज्ञान पहले (होना चाहिए)। वह सत्ता लक्षण है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है,... प्रत्येक वस्तु उसकी वर्तमान अवस्था से नयी उपजती है, पुरानी अवस्था से व्यय होती है, बदलती है और अपने ध्रुवरूप से, सत्तरूप से कायम रहती है। ऐसा ही उसका स्वभाव है। किसी के कारण से नहीं। समझ में आया?

इस शरीर का एक-एक रजकण... यह बहुत रजकणों का दल है, यह कोई एक वस्तु नहीं है। बहुत पॉइन्ट इकट्ठे होकर यह दिखता है। इसका एक पॉइन्ट जो टुकड़ा करते हुए अन्तिम रहता है, उस एक-एक रजकण में और इस एक-एक आत्मा में एक समय में तीन अंश हैं। सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन अंश हैं। नयी अवस्था का होना। पर्याय-अवस्था नयी होना। देखो! यह अवस्था है न यह? पहले थी दाल-भात की, अभी यह रक्त की अवस्था है उन परमाणु की। उस अवस्था का होना, हुआ... समझ में आया? आज तो रविवार है न, वापस लड़के आये हैं। वे तो आये परन्तु यहाँ हमारे लड़के आज आये हैं, इसलिए खचाखच हो गया है भाई! बोर्डिंग के लड़के आये हैं न। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ों को रविवार आता नहीं। आया है न। अभी तो आये हैं। यहाँ कहते हैं, इस जगत में अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त परमाणु—अनन्त गुणे

रजकण हैं। दूसरे चार द्रव्य हैं, वह जरा सूक्ष्म पड़े। उसमें प्रत्येक में उत्पाद-व्यय-ध्रुव होता है, ऐसा कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ को समय-समय में—छोटे काल में नयी अवस्था उपजती है, पुरानी अवस्था बदलती है और स्वयं ध्रुवरूप से कायम रहता है। उसके उपजने में दूसरा पदार्थ उपजावे, ऐसा नहीं — ऐसा कहते हैं। इस शरीर को ठिकाना, वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वह तो रोटी के अधिकार की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटी के अधिकार की बात नहीं। रोटी के रजकण स्वतन्त्र अपनी पर्याय से उपजते हैं। इस शरीर के रजकण अपनी अवस्था से स्वतन्त्र उपजते हैं। रोटी के कारण से यह उपजते हैं, ऐसा है नहीं। क्योंकि वे अनन्त पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं। शान्तिभाई! आहाहा!

यह कहते हैं। प्रत्येक वस्तु वर्तमान स्वयं के कारण से नयी अवस्था के कार्यरूप से परिणमे, वह स्वयं से है, पर के कारण से नहीं। बड़ा विवाद पूरा कार्य-कारण का वह विवाद उठावे। उसका ठिकाना नहीं होता। समझ में आया? इस शरीर की अवस्था को ऐसे चलाऊँ, यह आत्मा के अधिकार की बात नहीं, क्योंकि उसका उत्पाद हिलने की उस उत्पाद की पर्याय का कर्ता वे रजकण हैं, आत्मा नहीं। और आत्मा की पर्याय हो जानने-देखने की, वह अवस्था शब्द और पर से नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया? ऐई भीखाभाई!

आत्मा है न? उसमें अनन्त गुण हैं ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि, वे ध्रुव हैं और उनकी वर्तमान अवस्था उपजती है जानने की, देखने की, मानने की, वह अवस्था आत्मा से उपजती है, शरीर से नहीं, कान से नहीं, सुनने से नहीं।

मुमुक्षु : दो दिखाई दे ऐसा है? या एक दिखाई दे?

पूज्य गुरुदेवश्री : दो दिखाई दे ऐसा है। एक कहाँ दिखता है? कौन कहता है? दो दिखते हैं यहाँ तो। आत्मा और यह दो। समझ में आया? नहीं दिखता यह? यह

शरीर और आत्मा जाननेवाला भिन्न और यह भिन्न। जाननेवाला भिन्न और यह शरीर (भिन्न)। आत्मा ऐसा कहता है कि मैं शरीर हूँ? मैं तो इसका जाननेवाला हूँ। यह शरीर है, मैं इसका जाननेवाला चैतन्य, दोनों भिन्न चीजें हैं। और लोग भी नहीं कहते कि भाई! यह चैतन्य गया, अब मरे तब। ऐसा कहते हैं कि यह चैतन्य और शरीर दोनों गये यहाँ से?

मुमुक्षु : शरीर तो सौंपकर जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सौंपे कहाँ? पड़ा रहता है वहाँ। वहाँ कहाँ साथ में इसके बाप का था, वह साथ रहे? बाप का हो तो कहाँ इसका बाप भी इसका है? जरा भी नहीं?

यहाँ तो भगवान ऐसा कहना चाहते हैं कि पहली बात तो यह है कि जितने तत्त्व हैं, उन तत्त्वों का अस्तित्व इसे स्वीकारना, निश्चित करना चाहिए। और उस अस्तित्व में उसकी नयी-नयी अवस्था जिस क्षण में होती है, वह उसके तत्त्व से होती है, दूसरे तत्त्व से नहीं। ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए, तब इसे व्यवहार से सच्चा ज्ञान हुआ कहलाये। व्यवहार से सच्चा ज्ञान, हों! निश्चय तो आत्मा का ज्ञान करे वह है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें ही भूल।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें ही पूरी भूल। समझ में आया? कहो, कान्तिभाई! क्या यह लकड़े के कितने करे ये? कहते हैं, देखो! है?

प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है। जब वस्तु ही स्वयं नयी अवस्थारूप हो, ऐसी है; पुरानी अवस्थारूप से जाये, ऐसा है; टिकनेरूप से रहे, ऐसा है। क्या कहा? प्रत्येक वस्तु अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु, एक रुपया, वह भी अनन्त रजकणों का बना हुआ है, प्रत्येक वस्तु वर्तमान अवस्था से होती है, ऐसा है। दूसरे की अवस्था से हो, ऐसा नहीं है। भाई!

मुमुक्षु : आप बात करते....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और बाद में, यह तो अभी। है, यह है। इससे यह, इससे

यह, इससे यह—ऐसा नहीं। इस शरीर की यह अवस्था, वह इससे है, वह अवस्था इससे है। इसका अर्थ कि आत्मा की अवस्था से वह नहीं। आत्मा को इच्छा हुई, इसलिए यह अवस्था है, ऐसा नहीं। इच्छा के कारण से इच्छा है, इसकी अवस्था के कारण से इसकी अवस्था है। शान्तिभाई! बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! ऐसा ही है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने द्रव्य ऐसे देखे और ऐसे हैं, ऐसा कहते हैं, ऐसा तू जान — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

प्रत्येक वस्तु। देखो! कर्म के रजकण भी। कर्म जो अन्दर है, वे भी अपनी अवस्था से कर्मरूप से उपजते हैं, पूर्व की वर्गणा की अवस्था से व्यय होते हैं और रजकणरूप से वे (टिके रहते हैं)। इस प्रकार से वे हैं, आत्मा के कारण से वे हैं, आत्मा के कारण से कर्म हैं—ऐसा नहीं। कर्म के कारण से आत्मा है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? उत्पाद-व्यय-ध्रुव महासिद्धान्त डाले हैं। एक-एक रजकण का और एक-एक आत्मा का एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में—एक समय सूक्ष्म काल में प्रत्येक पदार्थ अपने से कार्यरूप से, अवस्थारूप से होता है, पुरानी अवस्था के कार्य की दशारूप से अभाव होता है, अपना ध्रुवरूप से टिकाता है। ऐसा वह है, वह ऐसा है, दूसरा ऐसा है, तीसरा ऐसा है। ऐसे अनन्त पदार्थ अपने से ऐसे हैं। उन्हें जैसा है, वैसा इसे जानना चाहिए। तब इसका व्यवहार ज्ञान सच्चा हुआ कहलाये। समझ में आया? इतना करे वहाँ यह तो अभी पुण्यबन्ध का कारण (होता है), यह धर्म नहीं। सविकल्पात्मक व्यवहारज्ञान की यह बात चलती है। समझ में आया? आहाहा!

और सभी द्रव्य-गुण-पर्याय को धारण करते हैं,... प्रत्येक वस्तु। द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्ति, पर्याय अर्थात् अवस्था। उत्पाद-व्यय पर्याय में जाता है, ध्रुव गुण में जाता है। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु द्रव्य-गुण-पर्याय को धारण करती है। स्वयं के कारण से द्रव्य, गुण-पर्याय को धारण करती है। परमाणु, परमाणु के द्रव्य के कारण से, उसके गुण के कारण से और उसकी पर्याय के कारण से रहा है। आत्मा अपना द्रव्य, अपने अनन्त ज्ञानादि गुण, उसकी अवस्था के कारण से आत्मा रहा हुआ है। किसी के कारण से यह नहीं और इसके कारण से कोई नहीं। आहाहा!

कहो, यह पैसा, कहते हैं कि यहाँ साथ में आवे, वह आत्मा की पर्याय के कारण से नहीं आते, ऐसा कहते हैं। क्या होगा यह ? क्योंकि पैसा, वे रजकण हैं, रजकणों का अवस्था का उपजना, ऐसा होना, वह उसके कारण में उसमें है। वह आत्मा की इच्छा के कारण से ऐसे आते हैं या ऐसे जाते हैं, ऐसा है नहीं। कठिन बात, भाई! क्या जमुभाई! भारी कठिन। यह तो अभी व्यवहारिक ज्ञान। इसमें से छोटकर भगवान आत्मा शुद्ध अखण्ड ज्ञान का पिण्ड है, ऐसा अन्तर में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का होना, उसका नाम निश्चयदर्शन और निश्चयज्ञान है। उसका नाम सच्चा सत्य और सच्चा ज्ञान है। यह तो व्यवहार सत्य वह तो कहने में आता है। आहाहा! अभी तो व्यवहार सत्य ज्ञान का ठिकाना नहीं होता, उसे निश्चय सत्यज्ञान प्रगट किस प्रकार हो ? समझ में आया ?

कहते हैं, प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक रजकण अपना द्रव्य अर्थात् वस्तु, वह प्रत्येक द्रव्य की शक्तियाँ जो गुण त्रिकाल और उसकी वर्तमान अवस्था को वह वस्तु धारण करती है। आत्मा शरीर को धारण नहीं करता, शरीर आत्मा को नहीं रखता, ऐसा कहते हैं। यह आत्मा शरीर को धारण नहीं करता, आत्मा ने कर्म को धारण नहीं किया, शरीर ने आत्मा को धारण नहीं किया, कर्म ने आत्मा को यहाँ रखा नहीं। आहाहा! कहो, बल्लभदासभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिखता है न आँख से, परन्तु इसे खबर नहीं होती ? ऐसा मानता नहीं।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान था। वे भगवान परमेश्वर इन्द्रों के समक्ष फरमाते हैं। इन्द्र बड़े अर्धलोक के स्वामी। तुमने शरीर धारण नहीं किया, तुम्हारे कारण से यह वैमान के देव और वैमान के शरीर नहीं। प्रत्येक के रजकण स्वयं अपने से गुण-पर्याय से धरे हुए, टिके हुए हैं। तुम तुम्हारे गुण और पर्याय से तुम टिके हुए हो। तुम नहीं टिकाते पर को और पर नहीं टिकाते तुमको। स्त्री, पुत्र को तो निभाता होगा या नहीं ? अच्छे नौकरों-बोकरों को निभावे या नहीं ?

मुमुक्षु : इतना बोला जाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या बोले ? आहाहा ! कहो, समझ में आया इसमें ? परन्तु क्या कहा जाता है यह ?

प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुव और प्रत्येक वस्तु द्रव्य-गुण-पर्याय को धारण करनेवाली । गुण-पर्याय के बिना कोई नहीं है । कोई भी वस्तु, अपनी कायम की शक्ति और उसकी वर्तमान कार्य की दशा बिना का कोई पदार्थ होता नहीं । अब कौनसा पदार्थ उसके कार्य की दशारहित है, तो दूसरा पदार्थ उसका कार्य करने जाये ? गजब ! कान्तिभाई ! यह घड़ी-बड़ी के काम कहते हैं कि वह परमाणु की पर्याय, परमाणु की पर्याय बिना का वह परमाणु होता नहीं । उसके गुण और पर्याय बिना का वह द्रव्य होता नहीं । फिर तूने वहाँ क्या गुण और पर्याय डाली वहाँ ? पर्याय अर्थात् अवस्था ; अवस्था अर्थात् कार्य । समझ में आया ? आहाहा ! देखो ! यह भाषा के रजकण उठते हैं न भाषा ? आवाज आती है न कान में ? वे रजकण हैं । उन रजकणों ने अपने गुण-पर्याय को धारा है । वह भाषा की अवस्था और उसकी शक्ति, उन रजकणों ने धारी है, आत्मा ने नहीं, इस होंठ ने नहीं । भारी कठिन बातें ! समझ में आया ? यह हाथ में छुरी हो न छुरी । कहते हैं कि इस छुरी ने अपने गुण-पर्याय को धारण किया है । हाथ ने इसे पकड़ा नहीं और धारा नहीं ।

मुमुक्षु : मदद तो करे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सहायता नहीं करता किसी की । मुफ्त का शोर मचाता है वहाँ । पड़ोसी तो उसके उसमें रहा । वह वस्तु है या नहीं ? वह वस्तु हे या नहीं ? तो वस्तु में उसकी शक्ति और गुण होते हैं या नहीं ? और शक्ति और गुण हो, उसका कोई वर्तमान दशा-कार्य-पर्याय होती है या नहीं ? तो पर्याय बिना का वह (है नहीं) । उसने तो उसके गुण-पर्याय को धारा है । तुम्हारे गुण, पर्याय को कहाँ धारने आता था निवृत्त ? समझ में आया ? तुमने तुम्हारे गुण-पर्याय को धारा । तुम आत्मा । यह आत्मा अन्दर है, उसने अपने गुण—अनन्त गुण है ज्ञान, दर्शन उसे धारा और उसकी अवस्था को धारा, बस इतना । नहीं धारा उसने शरीर, नहीं धारा उसने वाणी, नहीं रखा

उसने कर्म, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कैसे होगा यह? बैठती होगी कान्तिभाई, यह बात? परन्तु पूरे दिन लकड़े वे करते हों और कुर्सियाँ बनाते हों और फलाना करते हों और क्या कहलाये? फर्नीचर, फर्नीचर। समझे? वह यहाँ इनकार करते हैं। फोटो देखो दिया, कहते हैं, शान्तिभाई कहते हैं, लो! यह लकड़ी भी रजकण है या नहीं? रजकण का अस्तित्व है या नहीं? अस्तित्व है, उसमें उसकी अवस्था है या नहीं? तो उसकी अवस्था को अस्तित्वरूप से—द्रव्य ने की है। अस्तित्वरूप से अवस्था उसके कारण से टिकी है। दूसरे हथियार के कारण से भी वह अवस्था हुई नहीं। अरे! गजब बात यह। वीतराग का मार्ग जगत को समझना... समझ में आया?

मुमुक्षु : किसी दिन आवे, उसे नहीं समझ में आये यह।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझ में आये ऐसी बात है, किसी दिन आवे उसे। कहो!

दो चीजें भिन्न हैं। देखो! आत्मा जाननेवाला है। तो आत्मा वस्तु है। उसमें जानने के ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण हैं और उसकी वर्तमान अवस्था—हालत होती है। वह उसने धारी है, उसमें वह है, उसके अस्तित्व में वह है। वह कर्म के, शरीर के रजकण और भाषा के अस्तित्व में वह आत्मा नहीं। और यह भाषा और शरीर और कर्म के अस्तित्व में आत्मा नहीं। यह इसके अस्तित्वपने यह है और इसके अस्तित्वपने ऐसे त्रिकाल ऐसा का ऐसा टिक रहा है। समझ में आया? यह इसके कारण टिके, मैं मेरे कारण से टिका, ऐसा जो भेद करना, ऐसा विकल्पात्मक ज्ञान पहले व्यवहार, उसे व्यवहारिक सच्चा ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? फिर अन्दर निर्विकल्प भगवान् अकेला चिदानन्दस्वरूप की अन्तर्मुख दृष्टि करके राग के अवलम्बनरहित, वह पर्याय उसमें है, राग ने धारी है उसे, उसकी भी धारणा लक्ष्य छोड़कर अकेला ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप, उसकी अन्तर दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है, वह आत्मा की शान्ति का उपाय है। समझ में आया?

मैं पर में नहीं, इसलिए पहले प्रेम छोड़ा पर का। फिर राग उतना मैं नहीं, उसका छोड़ा राग का प्रेम। पर में मैं नहीं, मैं मुझमें हूँ। इसलिए पर का प्रेम इसे कुछ काम का नहीं। इसलिए पर का प्रेम छोड़ा। अब मुझमें रागादि है। अब मुझमें राग (हो) तो राग

में मैं पूरा नहीं। एक समय में पुण्य-पाप और विकार है, उसमें पूरा तत्त्व नहीं। इसलिए पूरे तत्त्व के ऊपर जाने से राग-द्वेष में मैं नहीं और राग-द्वेष मुझमें नहीं। ऐसे ज्ञायक चैतन्य की प्रतीति और भान होने पर उसे सम्यग्दर्शन और धर्म की पहली दशा होती है। समझ में आया? कहो, हिम्मतभाई! गजब बात! जितने द्रव्य हैं, वे सब सत्ता-अस्तिवाले हैं, ऐसा कहा। अस्तिवाले हैं, इसलिए उसमें तीन लक्षण हैं। नयी अवस्था का होना। ओहोहो! इतनी बात में अभी विवाद उठता है। अभी सामने के द्रव्य की पर्याय मैं करूँ। तो वह पर्याय उसने धारी है या तूने धारी है? आहाहा!

मुमुक्षु : इसका प्रभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! प्रभाव की व्याख्या क्या परन्तु? प्रभाव की व्याख्या कुछ भाव मस्तिष्क में आना चाहिए न!

यह वस्तु रजकण-रजकण, आत्मा ने आत्मा अपनी ध्रुवता को टिकाकर वर्तमान अवस्थारूप से स्वयं टिक रहा है। उसकी अवस्था में दूसरे का आना—प्रवेश होना नहीं है और जगत के दूसरे पदार्थ जो आत्मायें, जड़ हैं, उनकी अवस्था में इस आत्मा का जाना होता नहीं और इस आत्मा के कारण से टिके, रहे, टूटे-फूटे, ऐसा है नहीं। समझ में आया? इतना करे तो उसे व्यवहारिक ज्ञान का शुभराग पुण्य का सच्चा हो, कहते हैं। ऐसा न माने तो उसे पाप का राग और पापज्ञान हो। समझ में आया? एक-दूसरे की पर्याय को करे और करूँ, ऐसा जाने, तो उसका नाम पापज्ञान (कहते हैं), उसे भाव में पाप हुआ। वे टिके मेरे कारण से, मैं टिका उनके कारण से, ऐसी मान्यता का भाव, वह पापभाव है। जगत के प्रत्येक पदार्थ अपने कारण से टिक रहे हैं, बदल रहे हैं, उपज रहे हैं — ऐसा न माने और मुझसे उसमें उपजे और उससे (मुझमें उपजे), यह तो असत्य बात हुई, असत्य ज्ञान हुआ। असत्य ज्ञान, वह पाप हुआ; पाप अर्थात् बन्धन हुआ, दुःखरूप दशा हुई उसे। परन्तु प्रत्येक पदार्थ उसके कारण से उपजता है, टिकता है; मैं मेरे कारण से उपजकर टिकता हूँ, ऐसा ज्ञान (होने पर) उसे पुण्य हुआ, अभी धर्म नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान कौन था ? भगवान दूसरा कोई है नहीं। प्रेमभाई !

प्रत्येक वस्तु स्वयं ही अपनी कर्ता-हर्ता है। समझ में आया ? यहाँ तो तीसरा न्याय रखा, भाई ! जरा कि जगत में अनन्त आत्मायें और अनन्त रजकण—यह पॉइन्ट है। यह है, उसे भगवान कहते हैं कि सब सबसे है, उसमें ऐसा नहीं मानकर, मुझसे शरीर है और शरीर से मैं हूँ और पैसे से मैं हूँ और मुझसे पैसा है — ऐसा माननेवाले के परिणाम में असत्यपना है अर्थात् पाप है।

(अस्तिरूप से) जो वस्तु है, प्रत्येक आत्मायें (या दूसरे द्रव्य)। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी परमेश्वर ने अनन्त पदार्थ आत्मा, अनन्त रजकण ऐसे स्वतन्त्र देखे हैं और वे कहते हैं। वे टिके हैं, वे स्वयं के ध्रुवपने और बदलते हैं, वे अपनी पर्यायपने। वे अपनी पर्याय से बदलते हैं और ध्रुवपने स्वयं से टिकते हैं। इस प्रकार न मानकर दूसरे से उसमें टिकना हो, बदलना हो, उससे इसमें बदलना, टिकना हो, ऐसा उसका ज्ञान, पापज्ञान है। उसे पापरूपी परिणाम होते हैं। असत्य का भाव करे, इसलिए पाप होता है। आहाहा !

दूसरी बात। प्रत्येक पदार्थ स्वयं से टिके हैं और उससे अवस्था उसके कारण से हुई है, किसी के कारण से कुछ (हुआ नहीं), ऐसा जो ज्ञान, उसका नाम पुण्यरूपी परिणाम-भाव है, वह धर्मभाव नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? विकल्प द्वारा ज्ञान में ऐसी चीजें अनन्त छह द्रव्य हैं, इस प्रकार से इसने निर्णय किया, तब इसके ज्ञान में शुभभाव में पुण्यभाव हुआ। सच्चा, वह व्यवहारिक ज्ञान सच्चा हुआ। इसमें स्व का ज्ञान आया नहीं अभी। भेदवाला, स्व-पर के भेदवाला विकल्पवाला ज्ञान सच्चा हुआ। यह पुण्य के परिणाम हुए। सूक्ष्म बात है, भाई ! और वह आत्मा स्वयं पर से तो भिन्न है, पर का कर्ता नहीं, परन्तु आत्मा में जितने पुण्य-पाप के विकल्प और विकार उठते हैं, वे मेरे त्रिकाल स्वभाव में नहीं। क्योंकि उस पूर्ण सत् में ये नहीं। जैसे उसके सत् में यह नहीं, इस सत् में वे नहीं। ऐसा जो निर्णय होना, वह पुण्य परिणामरूपी ज्ञान है। फिर आत्मा में विकार के परिणाम जितने पुण्य-पाप के हैं, वे कृत्रिम अस्तित्वरूप से हैं, मेरे त्रिकाल ज्ञानानन्दस्वरूप में नहीं। ऐसे परमानन्द महासत् की दृष्टि होने पर विकल्पों के

परिणाम मेरे नहीं, निर्विकल्प स्वभाव, वह मेरा है — ऐसी दृष्टि होना, उसे धर्मदशा, धर्मदृष्टि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया या नहीं? पुण्य, पाप और धर्म तीन इस प्रकार से हैं।

मुमुक्षु : तत्त्व की बात चलती है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तत्त्व की, किसकी बात चलती है यह ? आहाहा! ऐई! भीखाभाई! कहाँ गये ? यह तुम्हारे... जमुभाई! आहाहा!

अरे! प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर समवसरण में सौ इन्द्रों की उपस्थिति में ऐसा फरमाते थे। वह बात यहाँ आचार्य कहते हैं। अनन्त तीर्थकर हो गये, वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में तीर्थकर परमेश्वर साक्षात् विराजमान हैं सीमन्धर भगवान त्रिलोकनाथ। उन सब परमेश्वर का कथन ऐसा आया है और ऐसा है कि इस जगत के जितने पृथक्-पृथक् पदार्थ हैं—आत्मा अनन्त, रजकण भी अनन्त और दूसरे चार हैं अरूपी—धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल—प्रत्येक की सत्ता का अस्तित्व स्वयं के कारण से है, कोई उसका दूसरा कर्ता नहीं। उसकी सत्ता के वर्तमान के अंश पलटते हैं, वे भी उसकी सत्ता के कारण से हैं, उसकी सत्ता के कारण से हैं, दूसरे की सत्ता के कारण से नहीं। ऐसी प्रत्येक वस्तु की सत्ता स्वतन्त्र स्वीकार की और उसकी वर्तमान दशा उससे होती हुई स्वीकार करे, तब उसका नाम पुण्य के परिणामवाला ज्ञान हुआ कहा जाता है। ऐसा न माने और एक-दूसरे से दूसरे में होता है, इससे उसमें होता है, इसका टिकना दूसरे के कारण से, दूसरे का टिकना (इसके कारण से), इसका नाम पापपरिणामवाला ज्ञान कहा जाता है। असत्य है, इसलिए पाप; वह सत्य है परन्तु अभी रागमिश्रित है, इसलिए पुण्य। समझ में आया ? आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्द का कन्द प्रभु है आत्मा, वस्तु है। जैसे बर्फ की शीतल शिला है, उसी प्रकार आत्मा आनन्द की एक शिला है अन्दर। किसके खबर भान कब ? देखा है कब इसने ? यह देह प्रमाण एक अतीन्द्रिय आनन्द की शिला आत्मा है। समझ में आया ? ऐसे अतीन्द्रिय आत्मा के अन्तर में दृष्टि-स्वभाव की दृष्टि करना, इसका नाम धर्म। पर और स्व को भिन्न-भिन्न जैसा है, वैसा बराबर जानना, इसका नाम पुण्य और

पर और स्व जैसे भिन्न हैं, वैसे न मानना, मिलावट मानना, इसका नाम पाप। लो! और इसमें उतर गये भाई तीन। समझ में आया? बल्लभदासभाई! आहाहा! क्या करे परन्तु? इसे जगत की झंझट के कारण व्यवहार क्या है, जगत के तत्त्व भिन्न-भिन्न (कैसे हैं), उसकी इसे खबर नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सी क्रिया? पहला, प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न है, ऐसा ज्ञान करके ऐसे विकल्प की ओर का लक्ष्य छोड़कर निर्विकल्प आत्मा की ओर दृष्टि करना, वह इसका कार्य। पश्चात् बारम्बार स्वरूप में स्थिर होना, इसका नाम चारित्र। आहाहा! यह क्रिया दर्शन और चारित्र की। परन्तु क्या हो? यह ऐसे अनादि काल का अशरण, अशरण में मरकर भटका अनन्त काल से, उसे कोई सामने देखनेवाला नहीं। यह कुटुम्ब-कबीला सब इकट्ठे हुए और मरना हाय...! यह बीस वर्ष का लड़का। अभी तो एक छह महीने विवाह किये हुए। चलता है। क्या करे तब, बापू? ...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : शरण तो कहाँ है, कहते हैं? शरण आत्मा में है या बाहर? ऐसा कहते हैं यहाँ तो।

मुमुक्षु : दोनों रहे तो क्या बाधा?

पूज्य गुरुदेवश्री : दो का पर का विकल्प, वह पुण्यभाव है। कहो, समझ में आया? आहाहा! यह पुण्यभाव वास्तविक शरण नहीं। अन्तर आत्मा ज्ञानस्वरूप नजर डालने से जहाँ निधान चिदानन्दस्वरूप है, ऐसी अन्तर प्रतीति और भान होना, उसमें शरण है। बाकी सब कुत्ते और कौवे की भाँति मरते हैं, ऐसे राजा और रंक सब मर जाये, ऐसे चले जायें चार गति में। एक के बाद एक चले जायें धारा (वाही) चार गति में भटकने। आहाहा! समझ में आया?

आचार्य की वीतराग के कथन की कोई भी शैली देखो तो अलौकिक बात है! है अनन्त द्रव्य। आहाहा! ऐसा भगवान की वाणी में आया। है अनन्त पदार्थ। वहाँ ही ऐसा हो गया कि अनन्त अपने-अपने कारण से है। प्रत्येक पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्

है। प्रत्येक वस्तु नयी अवस्था से उपजनेवाली, पुरानी अवस्था से बदलनेवाली और अपने कारण से ध्रुव जाति से टिकनेवाली, ऐसी वह है, ऐसा है। प्रत्येक वस्तु गुण-पर्यायवाली है। प्रत्येक परमाणु या आत्मा में प्रत्येक को गुण होते हैं। जड़ को जड़ के गुण, आत्मा को आत्मा के गुण और उसकी अवस्था से धारा हुआ वह पदार्थ है। वह द्रव्य अपने गुण-पर्याय को धारता है। गुण अर्थात् कायमी शक्ति, पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा, उसे प्रत्येक पदार्थ धारता है। किसी के गुण-पर्याय को किसी का द्रव्य धारता है (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतरागी विज्ञान है, वीतरागी विज्ञान पाठ। यह लड़के पढ़ते हैं न कमाने के लिये, मरने के लिये। कमाने के लिये यह पढ़े एम.ए. और एल.एल.बी. की डिग्री लगाने को। उसमें भी वापस पुण्य हो तो पैसा मिले। पढ़े तो भी मिलता नहीं। है या नहीं?

मुमुक्षु : पढ़े जीने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका जीना? किसका जीना? आत्मा का या शरीर का? शरीर शरीर के कारण से जीवे, आत्मा आत्मा के कारण से जीवे। किसे जिलाना है? शान्तिभाई! भाई! यह तो पाठशाला दूसरे प्रकार की है यह। यह रजकण रजकण ऐसे इनके कारण से टिके हैं। ऐसे चलने लगेंगे तब लाख बड़े इन्द्र ऊपर से आयेंगे तो नहीं रहेंगे। इन्द्र के शरीर चली जाते हैं न। ऐसे इन्द्र, चौरासी हजार देव चारों ओर खड़े हों, ऐसे शरीर के रक्षक। जहाँ स्थिति पूरी हुई, कपूर की गोली की भाँति रजकण समाप्त हो जाते हैं। चौरासी हजार देव की टुकड़ी (देखे) कि, यह कहाँ गये स्वामी? समाप्त। अपनी तरह यह शरीर पड़ा रहे मुर्दा। यहाँ जीव जाये, तब मुर्दा पड़ा रहता है यहाँ। उन्हें जहाँ जीव जाये तो कपूर की गोली की भाँति रजकण बिखर जाते हैं। जीव परगति में चला जाता है। कौन रखे किसे? आहाहा! जिसकी स्थिति वहाँ (रहने की थी), वह भी स्वयं आयुष्य से रहे नहीं थे। उनकी स्वयं की पर्याय की योग्यता से वहाँ टिककर रहे थे। आहाहा! कठिन बात, भाई! यह आयुष्य प्रमाण आत्मा का शरीर में रहना, यह बात भी खोटी ठहरती है यहाँ।

यहाँ तो आत्मा प्रत्येक समय में अपनी पर्याय और ध्रुव से टिककर रहा है, पर

के कारण से रहा नहीं। आहाहा! नेमिदासभाई! क्या होगा? यह सब तुम सब बहुत बड़े... कहलाते हो यह गोशाला के। दूसरे को रखे, बहुतों को हाथ पकड़े, बहुतों को पैसा-बैसा दे और ऐसे करे। हाय.. हाय! कठिन भाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल का सहारा नहीं किसी को। मुफ्त का... है दबैल, मुफ्त होता है। किसी की अवस्था किसी से तीन काल में नहीं होती। इसके लिये तो यह बात करते हैं यहाँ। आहाहा! समझ में आया? यह शरीर की अवस्था आयी है, इसलिए जीव को ठीक रहता है, ऐसा है नहीं। यह स्वयं माने अपनी मान्यता से, उसके कारण से वह स्वयं है, इसके कारण से नहीं। गजब बात, भाई! समझ में आया?

यह शक्कर और गुड़ स्वयं है, वह चीज़ स्वयं से ऐसे (रही है)। यहाँ होता है मीठे का ज्ञान। तो कहते हैं कि वह ज्ञान की पर्याय इससे है और मीठे की पर्याय उससे है। दोनों अपने-अपने कारण से है। आहाहा! अभी तो मीठा मीठे की अवस्था के उत्पाद को धारता है, यहाँ ज्ञान की पर्याय उसे जानती है या ज्ञान उसे धारता है? उसके कारण से यह नहीं और इसके कारण से वहाँ नहीं, ऐसा तो अभी स्व-पर का भेद होना, वह तो विकल्पात्मक ज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बहुत छोटी है अभी। बापू! चारित्र की बातें यह तो... आहाहा! ऐसे चक्रवर्ती के राजकुँवर जिन्हें एक-एक... आता है चक्रवर्ती—भरत चक्रवर्ती का पुत्र अर्ककीर्ति। भरत चक्रवर्ती का एक अर्ककीर्ति राजकुमार है। भरत चक्रवर्ती कहते हैं कि यह राजकुमार दो घड़ी यदि कोर्ट (दरबार) में आयेगा तो इसे एक करोड़ सोना मोहर दूँगा। एक दो घड़ी कोर्ट में बैठेगा बस। कोर्ट समझे न? यह राजसभा दरबार। वह तो बड़े चक्रवर्ती हैं न। राजकुमार उस भव में मोक्ष जानेवाले हैं। अन्तिम शरीर। अर्ककीर्ति राजकुमार है भरत का। यह हमारी राजसभा में सिंहासन में आकर दो घड़ी बैठेगा तो सभा की शोभा है तो इसे इस राजकुमार को एक करोड़ सोना मोहर दूँगा। ऐसे ऐसे इक्कीस करोड़ सोना मोहर इकट्ठी हुई। अन्त में जब वैराग्य हुआ,

तब छोड़कर चल निकले। हम इसमें नहीं और हम हैं, वहाँ यह नहीं। शान्तिभाई! हम जहाँ हैं, वहाँ यह नहीं और यह है, वहाँ हम नहीं। पिताजी ने यह पैसे क्यों दिये थे? किसलिए? हम सुन्दर और रूपवान और राजकुमार। जरा बैठें तो शोभे। किसकी शोभा? किसकी शोभा? हम तो हमारे में हैं, वे उनमें हैं, उस चीज़ में हमारी अस्ति नहीं, हमारी अस्ति विकार के परिणाम में नहीं, वे इसकी अस्ति में होते हैं, इसमें नहीं तो उसमें हम कहाँ हैं? निकल गये। समझ में आया? (दृष्टि में) निकले हुए तो थे, ऐसे संयोग में से पृथक् पड़े, ऐसा दुनिया को दिखाई दिया। राग में से पृथक् पड़े, उसे दिखाई दिया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं... कल कहा नहीं था राजकुमार का? रामचन्द्रजी के लव और कुश ऐसे जवान योद्धा जैसे चरमशरीरीर—अन्तिम शरीर। पावागढ़ से मोक्ष गये हैं, पावागढ़। है न यह फोटो देखो न। आज्ञा माँगते हैं, पिताजी! हम मुनि होंगे अब, हों! अरे! इन काका की यह दशा। लक्ष्मण वासुदेव जिनके एक बाण से, एक चक्र से रावण मरा, वे स्वयं मर गये। अरर! यह दशा! और हमारे पिताजी कन्धे पर लेकर चलते हैं छह-छह महीने से। अरे! यह दशा! पिताजी! हमारा आत्मा सम्हालने हम जाते हैं। अन्तर के स्वभाव में अपनी अस्ति पहले मानी थी। पर की अस्ति से मैं नहीं और राग भी मेरी अस्ति से मेरे कारण से होता था, वह अब छोड़ दिया। प्रभु! मेरी अस्ति में वह राग हो? मैं तो अस्तिवाला चैतन्य आनन्दकन्द का तत्त्व मेरा स्वभाव, उसमें यह तो नहीं, परन्तु राग भी नहीं। अन्तर में प्रविष्ट हुए, दृष्टि करके स्थिर हुए, इसका नाम संयम कहलाता है। समझ में आया? राजकुमार ऐसे देखो तो मणिरत्न के पुतले हों। अरे! यह तो देह है न? मिट्टी है न? इस मिट्टी में हम कहाँ हैं? और हम हैं, वहाँ मिट्टी हमको छूती नहीं। शान्तिभाई! आत्मा को यह मिट्टी स्पर्श करती है? यह तो भिन्न चीज़ है। अन्दर का अस्तित्व आत्मा का आत्मा में है, उसका अस्तित्व जड़ का जड़ में है। दोनों के अस्तित्व को कुछ भी सम्बन्ध नहीं—मेल नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं न कि माना है वह तेरी भ्रमणा है। इसके लिये

तो बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया इसमें? लो! और आज इसमें चार बोल आये थे अपने, हों!

गुण-पर्याय के बिना कोई नहीं है। इसमें भाई मुश्किल से पहले-पहले आये हैं, आज और जरा बात आयी। भाई! पूनमचन्दभाई के भागीदार भाई आये हैं। दमन से आये हैं। वहाँ गये थे न, इनके घर में रुके थे। दमन से आये हैं आज। पूनमचन्दभाई के भागीदार हैं। वहाँ वे लोग कहते थे कि पूनमचन्दभाई को तो दो, तीन करोड़ हुए, परन्तु यह इनके भागीदार को भी इतने लाख हो गये। ऐसी लोग बातें दुनिया धूल की करे न लोग? ... उतरे थे न बाहर? बाहर उतरे थे न भाई! क्या कहलाता है मकान? डाकबंगला। ... वहाँ भाई आये थे न, सामने आये थे न! लोग बातें करते कि यह पूनमचन्दभाई... भागीदार... दुनिया में यही महिमा चलती है कि इसके पास तो दो, ढाई करोड़ हो गये, परन्तु इनके भागीदार के पास पन्द्रह, पन्द्रह लाख हो गये वापी में। ऐसी वहाँ बातें करते थे। अरे! आत्मा के लक्ष्य बिना कोई लखपति होता नहीं। समझ में आया? वह लक्ष्मी अपनी अपने में पड़ी, उसका लक्ष्य करे तो लखपति हो, बाकी यह दुर्लक्षपति है। सही बात है? कहो, समझ में आया इसमें?

अथवा सब ही द्रव्य सप्तभंगीस्वरूप हैं... अब अस्ति-नास्ति की। क्या कहा? प्रत्येक वस्तु है, ऐसा सिद्ध किया है। है, उसकी बात होती है न? अनन्त है। इस 'है' में तीन अंश होते हैं समय-समय में। नयी अवस्था उपजे, पुरानी अवस्था बदले और ध्रुव। एक समय में, हों! सेकेण्ड के असंख्य भाग में। तीसरी बात, गुण पर्याय को धारा है इन्होंने। यह प्रत्येक वस्तु उसकी शक्ति और अवस्था को धार रखा है। अब कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु अपने से है और पर से नहीं। यह सप्तभंगी है। उसमें आ गयी थी। अस्तिरूप से आया था। अब इसमें एक में अस्तित्व में दूसरा नहीं, ऐसा यहाँ आया है। समझ में आया? उसमें अस्तित्व सिद्ध किया था। द्रव्य, गुण, पर्यायरूप से है, अस्तिरूप से है, उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप से है इतना।

अब सप्तभंगी अर्थात् प्रत्येक आत्मा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है और पर रजकण के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं। अर्थात् क्या और? द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव

अर्थात् क्या, यह भी सुना न हो। समझ में आया? देखो यह। यह लकड़ी है न, देखो यह लकड़ी। यह सूखड़ की लकड़ी है। यह वस्तु कहलाती है, वस्तु। इसका क्षेत्र यह इतना चौड़ा कहलाता है। इसकी शक्तियाँ हैं सुगन्ध आदि, यह उसका भाव कहलाता है और उसकी कोमल अवस्था, ऐसी भारवाली अवस्था, वह अवस्था कहलाती है, वह काल कहलाता है।

प्रत्येक वस्तु के चार भाग होते हैं—वस्तु, उसका क्षेत्र अर्थात् चौड़ा, उसकी शक्तियाँ अर्थात् गुण, उसकी वर्तमान हालत को काल कहते हैं। तो प्रत्येक वस्तु द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अपने से है और अँगुली से यह नहीं। अँगुली का द्रव्य अर्थात् यह क्षेत्र—चौड़ाई, अवस्था यह दिखती है वह, गुण इसका रंग, गन्ध। वह यह लकड़ी इसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं और इसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से वह स्वयं से है। उसी प्रकार आत्मा अपने द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् शरीर प्रमाण की चौड़ाई, भाव अर्थात् उसकी त्रिकाली शक्ति, काल अर्थात् उसकी वर्तमान दशा। वह स्वयं आत्मा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है, यह रजकण और शरीर के, कर्म के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं। आहाहा! कहो, बल्लभदासभाई! उसमें एक अस्ति सिद्ध की और अब उसमें यह नहीं और इसमें वह नहीं। स्थित है न, उसमें से निकाला। आहाहा! गजब बात! कहो, यह होशियारी के कारण पैसा और पैसे के कारण होशियारी, ऐसा होगा या नहीं?

मुमुक्षु : पहले ऐसा मानते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते थे? प्रत्येक वस्तु उसके कारण से है, किसी के कारण से नहीं। यह आवाज उठती है न? यह आवाज रजकणों की अवस्था है। इसलिए उतरती है न? यह उतरती है न रिकॉर्डिंग में। वह कहीं आत्मा उतरे? देखो, रिकॉर्डिंग में उतरती है यह। यह रजकण ध्वनि है, वह रजकण वे द्रव्य हैं, उनमें रंग, गन्ध गुण है और यह अवस्था उनकी भाषारूप हो, वह अवस्था है और उनकी जो रजकणों की चौड़ाई है, जितने में रहते हैं, वह उनका क्षेत्र है। यह भाषा के रजकणों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव भाषा में है, आत्मा के कारण से नहीं। आत्मा के कारण भाषा नहीं होती। गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : दुनिया से तो अलग चलता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया तो पागल हो तो उससे तो अलग ही हो न ! समझ में आया ? आत्मा, एक आत्मा स्वयं है, वह दूसरे आत्मा के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं । कहो, पिता का आत्मा और पुत्र का आत्मा दोनों आत्मा भिन्न । भिन्न होंगे ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वे आनेवाले हैं, एक-दो दिन में आनेवाले हैं । नहीं ? आनेवाले हैं, भाई प्राणभाई ? सेठ आनेवाले हैं, भाई कहते थे । वह पिता का आत्मा शरीर से भिन्न । वह अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है और उसका आत्मा, दूसरे का आत्मा उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है । द्रव्य अर्थात् वस्तु, क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई, भाव अर्थात् गुण और काल अर्थात् उसकी अवस्था । उसमें वह और इसमें यह । इससे वह नहीं और उसमें यह नहीं । बराबर होगा ?

एक आत्मा में दूसरे आत्मा का भाव, क्षेत्र, काल और द्रव्य नहीं । दूसरे आत्मा के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में यह आत्मा नहीं । द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव नहीं । एक रजकण अब । एक रजकण है न पॉइन्ट ? अन्तिम इस टुकड़े को टुकड़े-टुकड़े करते... करते... करो तो इसके टुकड़े होते हैं । इतने टुकड़े होते हैं कि अन्तिम एक रजकण रहे बारीक । उसके चार बोल हैं । वह रजकण स्वयं द्रव्य है, द्रव्य अर्थात् वस्तु । उसकी चौड़ाई उसका क्षेत्र, उसके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श वह गुण । उसकी अवस्था रूपान्तर होना, वह उसकी पर्याय । वह रजकण अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है । दूसरे रजकण के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव उस रजकण में नहीं । समझ में आया ?

यह ऐसा सत् है, उसे समझने की दरकार नहीं होती, सुनने को मिलता नहीं । यह करो और यह करो, दया पालन करो और भक्ति करो, पैसा दो और दान करो । कहते हैं कि वह चीज़ तेरी नहीं और उसमें तुझे कर... कर... करना है, इसका नाम भ्रमणा है, ले । जिसमें तू नहीं, उसे तू कर । इसका कर, इसकी दया पाल, इसका ऐसा कर, इसे ऐसा कर । यह तो तुझमें नहीं, उसका कर, यह तो असत्य दृष्टि हुई । क्या हो ?

मुमुक्षु : परोपकार....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन परोपकार करनेवाला है ? किसने किया है परोपकार ?

मुमुक्षु : सेठिया करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी करता नहीं सेठिया। और सेठिया किसे कहना ? उसका आत्मा उसमें रहा हुआ। सेठिया का आत्मा शरीर में रहा है, शरीर के रजकण के कारण ? उसमें रहा हुआ हो तो आत्मा जाये तो इकट्ठा शरीर साथ में जाना चाहिए। शरीर शरीर में, आत्मा आत्मा में है। दोनों भिन्न-भिन्न चीजें हैं। अभी भिन्न, त्रिकाल भिन्न है। बराबर है ? शान्तिभाई ! आहाहा ! परन्तु वह मरते समय होता है कि हाय... हाय.. ! कोई नहीं। अब देखो वापस। इंजेक्शन-बिन्जेक्शन घुसावे सब करके, फिर उसमें ऐसा निर्णय हो कि अब नहीं रहेगा। क्योंकि अब घड़ी, दो घड़ी... बोले नहीं। ऐसा जरा सा भी अब रहने दो, अब देखो। अर्थात् क्या ? कि अब मरने दो, ऐसा। अब देह छूट जाने की तैयारी है। बापू ! छूटा ही पड़ा है। उसे ऐसे भिन्न पड़े, तब इसे लगा कि यह छूटा। बाकी भिन्न-भिन्न ही है, कब इकट्ठे थे तीन काल में ? आहाहा ! भ्रमणा।

यहाँ तो आचार्य इतना कहना चाहते हैं कि प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक रजकण अपने से है और पर से नहीं, इतना अभी ज्ञान अनन्त का करे तो वह व्यवहारिक ज्ञान कहलाता है। ओहोहो ! अभी व्यवहारिक सम्यक्, व्यवहार सम्यक्त्व कहलाता है, निश्चय सम्यक् नहीं। आहाहा ! अन्तःतत्त्व और बहिर्तत्त्व यह सब, इन दो का ज्ञान भिन्न रखे तो भी वह व्यवहार समकित है। आहाहा ! मेरा अन्तःतत्त्व परमात्मा भिन्न और ये बहिर्तत्त्व सब भिन्न। इनका भेदज्ञान करे तो भी वह व्यवहारिक विकल्प व्यवहारिक ज्ञान, व्यवहारी श्रद्धा है। अकेला भगवान अखण्ड आनन्द का कन्द अकेला सत्, महासत्। ध्रुव सत् की अन्तर दृष्टि करे, तब उस अन्तर दृष्टि को सम्यग्दर्शन और निश्चय दर्शन कहा जाता है। कहो, इसके अतिरिक्त का यह सब ज्ञान, वह व्यवहारिक ज्ञान है। जिसके व्यवहार ज्ञान का ठिकाना नहीं, उसे विपरीत... विपरीत... विपरीत... अरे ! अभी गजब काम करते हैं न, भाई ! इसका एक कोई बोल वह सत् है, उत्पाद-व्यय-ध्रुव से। बात पूरी हो गयी। किसी के कारण से कोई है ? समय-समय में किसी के कारण से कोई है, ऐसा नहीं रहता। इतना पर से अनन्त-अनन्त ऐसे के ऐसे भिन्न काम

कर रहे हैं, ऐसा अभी ज्ञान करे, तब उसे व्यवहारिक सच्चा ज्ञान हुआ कहलाता है, परन्तु वह परलक्ष्यी ज्ञान है, इससे दो के दो यह और यह, यह और यह, ऐसा व्यवहारिक ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया ?

सब ही द्रव्य सप्तभंगीस्वरूप हैं, ऐसा द्रव्यों का स्वरूप... देखो, सभी द्रव्य हों! रजकण रजकण। ऐसे सात बोल हैं। स्व से है और पर से नहीं। अस्ति-नास्ति, अस्ति-नास्ति, (अव्यक्तव्य)। ऐसे सात बोल हैं, सूक्ष्म बात है, परन्तु यह इतने में समाहित हो जाती है। जो निःसन्देह जाने, आप और पर को पहचाने, ऐसा जो आत्मा का भाव (परिणाम) वह सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया ? अभी व्यवहार सच्चा कहलाये। शान्तिभाई! तुम्हारे व्यवहार की बात नहीं यह, हों! आहाहा! उसमें से आत्मा को छाँट लेना। शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, वह ज्ञेय और ज्ञान दो, ऐसा भी लक्ष्य छोड़कर अकेला आत्मा को ज्ञेय बनाकर दृष्टि का अनुभव करना, इसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चयज्ञान है। यह आत्मा को हित का कारण और मोक्ष का कारण है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ११, सोमवार, दिनांक - ०३-०१-१९६६

गाथा - २९ से ३१, प्रवचन - ९३

परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की २९वीं गाथा है। यहाँ तक आया, देखो! जगत के जो छह द्रव्य हैं, उनके स्वरूप को निःसन्देह जाने। जैसा छह द्रव्य का उत्पाद-व्यय-ध्रुव, गुण-पर्यायरूप या सत्तारूप या सप्तभंगीरूप... कल आया था न! **ऐसा द्रव्यों का स्वरूप जो निःसन्देह जाने,...** व्यवहार से अभी, हों! यह व्यवहार की बात है। प्रत्येक द्रव्य अपनी अवस्था से उपजता है, दूसरे की अवस्था से नहीं उपजता। ऐसा हुआ न सप्तभंगी में? प्रत्येक द्रव्य अपनी वर्तमान पर्याय जो थी, उसका नाश करके नयी पर्यायरूप से उत्पन्न होता है और ध्रुवरूप से कायम रहता है। ऐसे छह द्रव्य का भगवान केवली ने स्वरूप देखा है, ऐसा यह है, ऐसा उसे बराबर जाने।

आप और पर को पहचाने,... फिर स्वयं आत्मा और पर, यह वस्तुएँ, इनका ज्ञान बराबर करे, वह भी व्यवहारज्ञान है। दो हुए न? आत्मा यह है ज्ञानानन्द शुद्ध, रागादि पर और शरीरादि परद्रव्य, उनका ज्ञान—दो का विकल्पवाला ज्ञान, उसे यहाँ व्यवहारज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? **ऐसा जो आत्मा का भाव (परिणाम)...** यह व्यवहार परिणाम, निश्चय परिणाम तो साथ में है। ऐसे व्यवहार परिणाम का सम्यग्ज्ञान व्यवहार। निश्चय अन्तर के वेदन का ज्ञान, वह निश्चय परिणाम। यह मुख्यरूप से अभी व्यवहार की बात है।

सारांश यह है कि व्यवहारनयकर विकल्पसहित अवस्था में तत्त्व के विचार के समय आप और पर का जानपना ज्ञान कहा है,... पहले विकल्प जो राग की अवस्था के विचार काल में, यह आत्मा है, यह कर्म, शरीर आदि पर है—ऐसा जो रागवाला ज्ञान, उसकी पहले विचार श्रेणी में व्यवहार का ज्ञान पहला कहा। पहला कहा अर्थात् यहाँ कहा, ऐसा। होता तो साथ में है। इसमें ज्ञान की बात है। आत्मा अखण्ड ज्ञान

चैतन्यमूर्ति है और शरीर, कर्म आदि पर हैं, दो का बराबर ज्ञान, उसे व्यवहारज्ञान, रागमिश्रित ज्ञान, पुण्यबन्धन के कारणरूप ज्ञान, उसे व्यवहारज्ञान कहते हैं। समझ में आया ?

और निश्चयनयकर वीतराग निर्विकल्प समाधिसमय... आत्मा अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप की दृष्टि करके अन्तर ज्ञान में रमे, उस काल में **पदार्थों का जानपना मुख्य नहीं लिया...** यह छह द्रव्य का अथवा स्व-पर के भेद का ज्ञान वहाँ मुख्य नहीं, वहाँ गौण हो गया। और क्या (कहा) ? है न, अन्दर गौण शब्द आगे है। गौणत्व है न उसमें ? इसलिए यहाँ मुख्य कहा। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप का रागरहित ऐसा अन्तर का स्वसंवेदनज्ञान, शान्ति का अन्तर ज्ञान, वह निश्चयज्ञान, वह सच्चा ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग। उसके अन्दर में छह द्रव्य का ज्ञान या स्व-पर का ज्ञान, उसमें मुख्य नहीं। उसमें मुख्य तो अपना निर्विकल्प ज्ञानवेदन, वह मुख्य है। समझ में आया ?

मुख्य नहीं लिया... उसमें मुख्य इसे नहीं लिया। व्यवहार के विचार काल में मुख्यता उसकी। आत्मा ज्ञानसूर्य चिदानन्दस्वरूप की अन्तर एकाग्रता के काल में छह द्रव्य और स्व-पर के ज्ञान की मुख्यता होती नहीं। परन्तु विकल्प अवस्था में, विचार की अवस्था हो, तब यह छह द्रव्य का ज्ञान और स्व-पर का ज्ञान, उसे मुख्य है। निर्विकल्प ज्ञान वहाँ गौण हो गया है। और अन्तर के निर्विकल्प ज्ञान में मुख्य ज्ञान हुआ है आत्मा का, वह ज्ञान गौण हो गया, मुख्य नहीं। समझ में आया ? कठिन बात, भाई ! ऐसा धर्म समझना और यह करना। क्या दिक्कत है ? ऐई ! जमुभाई कहते हैं। दिक्कत कुछ नहीं, परन्तु इसे कठिन लगता है।

केवल स्वसंवेदनज्ञान ही निश्चयसम्यग्ज्ञान है। देखो ! सच्चा ज्ञान तो आत्मा ज्ञानमूर्ति शुद्ध चैतन्य है, उसका अन्तर में ज्ञान (हो), उसे सच्चा ज्ञान कहा जाता है। स्व-पर का और छह द्रव्य का ज्ञान, वह उपचारिक व्यवहारिकज्ञान कहा जाता है। ओहोहो ! समझ में आया ? यहाँ तो अभी छह द्रव्य क्या, उसके ज्ञान का ठिकाना नहीं हो और हम धर्म करते हैं, (ऐसा लोग मानते हैं)।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ धर्म क्या करते हैं ? भान नहीं अभी धर्म और धर्म कहाँ से किया ? क्यों, जुगराजजी !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे कहाँ... ? हम ऐसा कि गृहस्थ । हमारा तो जो हो, वह सच्चा पकड़ लेना, खोटा छोड़ देना । उनको कठिन पड़े । कहते हैं कि भाई ! एक बार समझ तो सही कि यह आत्मा अपने स्वरूप में शुद्ध चिदानन्द है, ऐसा अन्तर का ज्ञान होना, उसे सच्चा ज्ञान कहते हैं । वही वास्तविक मोक्ष का मार्ग है । मोक्ष और मार्ग का ज्ञान और उस काल में जब अन्तर होता है, तब मुख्य छह द्रव्य का ज्ञान या स्व-पर का ज्ञान वहाँ मुख्य नहीं होता । गौण हो गया है वहाँ । और जब विचारकाल में वर्तता हो, तब अन्तर का ज्ञान हो, परन्तु वह गौण होता है । वह स्व-पर और छह द्रव्य का ज्ञान उसे मुख्य होता है । ऐसी बात की है यहाँ । समझ में आया ?

व्यवहारसम्यग्ज्ञान तो परम्पराय मोक्ष का कारण है,... लो ! यह व्यवहार छह द्रव्य का बराबर वास्तविक जैसा है, वैसा ज्ञान और स्व-पर का भेदवाला, विकल्पवाला ज्ञान, वह परम्परा मोक्ष का कारण । अर्थात् कि उसे छोड़कर स्थिर होगा, तब मुक्ति होगी । समझ में आया ? यह छह द्रव्य का ज्ञान और स्व-पर का ज्ञान, ऐसा व्यवहारज्ञान, उसे वहाँ निश्चयज्ञान में निमित्तरूप से कहा गया है । व्यवहाररूप से कहो, निमित्तरूप से कहो, उपचाररूप से कहो या गौणरूप से कहो । समझ में आया ? और आत्मा का ज्ञान—स्वसंवेदनज्ञान, ज्ञान का ज्ञान, चैतन्य का ज्ञान, अनुभव, वह ज्ञान मोक्ष के मार्ग के लिये मुख्य है । मुख्य है, यथार्थ है, निश्चय है, साक्षात् निर्जरा और मोक्ष का कारण है । समझ में आया ?

और निश्चयसम्यग्ज्ञान साक्षात् मोक्ष का कारण है । देखो ! दोनों आये । व्यवहार सम्यग्ज्ञान परम्परा (कारण) है । क्योंकि वह राग है न, वह विकल्पात्मक ज्ञान है । इसलिए वह छूटकर फिर स्थिर होगा, इस अपेक्षा से व्यवहार से व्यवहारनय से परम्परा कारण कहा है । वह व्यवहारनय से व्यवहारज्ञान को परम्परा कारण कहा है । वापस दो

ऐसे कि निश्चयनय से ऐसा नहीं है। व्यवहारनय से व्यवहारज्ञान को परम्परा कारण कहा है। समझ में आया? निश्चय-सत्यनय से साक्षात् आत्मा का ज्ञान, साक्षात् मोक्ष का कारण है। यह २९ गाथा हुई। ३०वीं (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ३०

आगे निज और परद्रव्य को जानकर रागादिरूप जो परद्रव्य में संकल्प-विकल्प हैं, उनके त्याग से जो निजस्वरूप में निश्चलता है, वह ज्ञानी जीवों के सम्यक्चारित्र हैं, ऐसा कहते हैं—चारित्र की व्याख्या करते हैं।

१५६) जाणवि मण्णवि अप्पु परु जो पर-भाउ चाएइ।

सो णिउ सुद्धउ भावडउ णाणिहिं चरणु हवेइ ॥ ३० ॥

जो सम्यग्ज्ञान से आपको और पर को जानकर... यह भी व्यवहारज्ञान। और सम्यग्दर्शन से आप और पर की प्रतीति करके... स्वयं आत्मा और पर की, यह भी व्यवहार सम्यग्दर्शन द्वारा पहले प्रतीति करके। पश्चात् जो परभाव को छोड़ता है... फिर सब विकल्पों को छोड़कर, वह आत्मा का निज शुद्ध भाव ज्ञानी पुरुषों के चारित्र होता है। स्वरूप में स्थिर हो आत्मा के आनन्द में, तब उसे चारित्र कहा जाता है। यह सच्चा चारित्र वह है। समझ में आया?

भावार्थ :- वीतराग सहजानन्द अद्वितीय स्वभाव जो आत्मद्रव्य... आत्मा की व्याख्या की। कैसा है आत्मा? रागरहित सहज आनन्द अजोड़ स्वभाव ऐसा जो आत्मपदार्थ। उससे विपरीत पुद्गलादि परद्रव्यों को सम्यग्ज्ञान से पहले तो जानें,... ऐसा। पूर्व में शब्द पड़ा है न। समझ में आया? 'पूर्व ज्ञात्वा' है न? अन्दर है। छठवीं लाईन संस्कृत की है। क्या कहते हैं? यह आत्मा परम आनन्दस्वभाव वीतरागस्वरूप आत्मा अभी है। उससे छह द्रव्य का ज्ञान-परपदार्थ का विपरीत ज्ञान है। उससे विपरीत सब छहों द्रव्य हैं। आत्मा से सब छहों द्रव्य विपरीत हैं। दूसरे भिन्न हैं या नहीं? दूसरी आत्मायें, पुद्गल सब भिन्न हैं। विपरीत पुद्गलादि परद्रव्य... भगवान भी आत्मा से

विपरीत हैं। इस आत्मा से भगवान सिद्ध भी विपरीत—दूसरी जाति के हैं। इस जाति के कहाँ हैं वे? समझ में आया?

वीतराग सहजानन्द अजोड़ स्वभाव एक आत्मा, उससे विपरीत पुद्गलादि परद्रव्यों को सम्यग्ज्ञान से पहले तो जानें,... अपने अतिरिक्त छह द्रव्यों को सब अनन्त निगोद, अनन्त सिद्ध, केवली, तीर्थकर, पुद्गलादि परमाणु स्कन्ध सबको। वह सम्यग्ज्ञान संशय, विमोह और विभ्रम इन तीनों से रहित है। यह अभी व्यवहारज्ञान, हों! यह व्यवहार सम्यग्ज्ञान भी संशयरहित, विमोहरहित, विभ्रमरहित है, भ्रमणारहित है। समझ में आया? तथा शंकादि दोषों से रहित जो सम्यग्दर्शन है,... यह व्यवहार है। उससे आप और पर की श्रद्धा करे,... उससे व्यवहार सम्यग्दर्शन द्वारा भी 'यह आत्मा है और यह पर है' ऐसी श्रद्धा करे, वह भी व्यवहार सम्यग्दर्शन शुभराग है, शुभ विकल्प है। समझ में आया? आहाहा!

अच्छी तरह जानके प्रतीति करे,... स्व और पर को बराबर जानकर श्रद्धा करे। यह भी अभी शुभ विकल्परूप व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। और माया, मिथ्या, निदान इन तीन शल्यों को आदि लेकर... अब निश्चयचारित्र कहते हैं। कपट, मिथ्या और निदान तीन शल्यों को छोड़कर, समस्त चिन्ता-समूह के त्याग से... सब विकल्पों का त्याग। निज शुद्धात्मस्वरूप में तिष्ठे है,... अपना आनन्दस्वभाव जो पहले कहा वीतराग सहजानन्दस्वभाव, उसमें जो स्थिर होता है। वह परम आनन्द अतीन्द्रिय सुखरस के आस्वाद से तृप्त हुआ... उसका नाम चारित्र है। उस आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में तृप्त हो जाता है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है आत्मा में। अतीन्द्रिय आनन्द, जैसा सिद्ध को प्रगट आनन्द है परमात्मा को, वैसा ही आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द की पहले श्रद्धा, ज्ञान किये हैं, फिर स्वरूप में स्थिर होता है, लीन होता है। किस प्रकार लीन होता है?

परम आनन्द अतीन्द्रिय सुखरस के आस्वाद से तृप्त... आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव से ऐसे तृप्त-तृप्त हुआ है, उसे चारित्र कहते हैं। भगवान उसे चारित्र कहते हैं। समझ में आया? यह चारित्र, वह मुक्ति का कारण है। कपट-कपट। यह

कपट करता है। यह जगत में नहीं करते? यह झूठ बोलना, वह करना, कुछ हो और कुछ बतलाना, माया में नहीं करते?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यह समुच्चय बात की है। समुच्चय बात की है। व्रत है सही न? निःशल्योव्रती है न, इसलिए बतलाया। शल्य फिर माया का शल्य न हो, मिथ्यात्व का शल्य न हो और निदान का न हो। सूक्ष्म अन्दर हो, वह न हो। स्वरूप में स्थिर हो। उसे चारित्र कहते हैं कि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से, अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन से तृप्त-तृप्त हो, ऐसी दशा को चारित्र कहते हैं। कहो, यह चारित्र की व्याख्या। समझ में आया?

पुरुष ही अभेदनय से निश्चयचारित्र है। ऐसा कहते हैं। यह आत्मा चारित्र है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा तो है। आत्मा अर्थात् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति। शरीर, वाणी, मन, कर्म तो पर। अन्दर दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव हों, वह तो विकार। विकाररहित, वह चीज निर्विकारी आनन्द की पुतली है आत्मा। अरे! आत्मा कौन, उसकी इसे खबर नहीं होती। समझ में आया? ऐसे आत्मा का पहले सम्यग्दर्शन हुआ है, सम्यग्ज्ञान अन्तर का हुआ है। अब वह व्यवहार सम्यग्दर्शन आदि के और व्यवहारज्ञान के विकल्प आदि छोड़कर स्वरूप में स्थिर होता है। अतीन्द्रिय आनन्द की लहजत में मौज मनाता है, तृप्त होता है। ऐसे पुरुष को चारित्र है, निश्चय से वह पुरुष ही चारित्र है, ऐसा कहते हैं। वह आत्मा ही चारित्र है, ऐसा कहते हैं। अभेद है न। समझ में आया? यह आत्मा का चारित्र, ऐसा नहीं, परन्तु यह आत्मा ही चारित्र है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गजब मार्ग!

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ जिन्होंने इस जगत में केवलज्ञान से छह द्रव्य देखे। उन छह द्रव्यों में छहों द्रव्यों का स्वरूप पहले बराबर जैसा है, वैसा होता जाने और उनका ज्ञान करे, उनकी श्रद्धा करे। समझ में आया? वे सब द्रव्य, भगवान आत्मा, यह आत्मा वीतरागस्वभाव से अभेदस्वरूप प्रभु आत्मा का, उससे सब द्रव्य भिन्न। सिद्ध भगवान हो या अरिहन्त हो या तीर्थकर, वे भी इस द्रव्य से भिन्न।

उनका सबका सच्चा ज्ञान, सच्ची श्रद्धा और आत्मा भी उनसे भिन्न, ऐसा उसका ज्ञान और सच्ची श्रद्धा (करे)। ऐसे विकल्पवाली श्रद्धा को, ज्ञान को व्यवहार ज्ञान और व्यवहार श्रद्धा कहते हैं। पुण्यबन्ध का कारण। समझ में आया? उससे निकलकर विकल्प से, राग से, शुभ उपयोग से छूटकर अन्तर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, उसका ज्ञान स्वसंवेदन, उसकी प्रतीति निर्विकल्प, उसकी रमणता—आनन्द के तृप्त-तृप्त में होना, उसका नाम चारित्र। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता हुई, वह पुरुष ही चारित्र है, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तृप्ति छठवें गुणस्थान की तृप्ति उस-उस प्रकार की तृप्ति। चौथे में तृप्ति थोड़ी होती है, पाँचवें में उससे अधिक, छठवें में उससे ऊँची। सिद्ध को अनन्तगुणी तृप्ति पूरी। समझ में आया? यहाँ चारित्र जितनी तृप्ति लेना है न! सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली दशा होने पर, धर्म की पहली दशा होने पर, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद थोड़ा होता है। श्रद्धा-ज्ञान में उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद थोड़ा होता है। पाँचवें गुणस्थान में जब श्रावक होता है, सच्चा श्रावक, हों! यह वाड़ा की बात नहीं। तब उसे अतीन्द्रिय आनन्द का अंश विशेष बढ़ता है, शान्ति बढ़ती है। विकल्प भाव आदि है। और छठवें में जाता है, तब चारित्र और सातवें में जाता है, तब चारित्र विशेष तृप्त-तृप्त हो जाता है, बहुत शान्ति और बहुत आनन्द होता है। उसकी यह बात अभी चलती है। समझ में आया?

एक ओर जब बात चले, तब ऐसा लिया जाये कि सम्यग्दृष्टि नरक में पड़ा होने पर भी 'बाहिर नारकीकृत दुःख भोगत, अंतर सुखरस गटागटी।' वह सम्यग्दृष्टि नरक में हो, नारकी में। अभी श्रेणिकराजा नरक में हैं पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में। पहली नरक में है। तो भी उन्हें आनन्द की मुख्यता के कारण, कहते हैं कि आनन्द में गटागटी है आंशिक। एक ओर मुनि हैं, वे आत्मा का ध्यान और ऐसा चारित्र करते हैं, उन्हें जरा राग रह जाता है और मरकर स्वर्ग में जाते हैं, तब वहाँ क्लेश भोगते हैं, (ऐसा कहे)। वह राग की प्रधानता के कथन की बात है। आहाहा! किस अपेक्षा से

बात है, यह जानना चाहिए न! समझ में आया? समझ में आया इसमें?

यह रास्ते में कहा था आज कि देखो भाई! शास्त्र की शैली। कथनी देखो यह वस्तु। एक ओर सम्यग्दृष्टि बाह्य (नारकी) कृत दुःख भोगत, अन्दर सुख में गटागटी। एक ओर छठवें गुणस्थान में ऐसा चारित्र, हों! भानवाले चारित्र से अन्दर में तृप्त, उन्हें जरा अभी राग रह गया है। पुण्य का बन्ध हो गया है, स्वर्ग में जाते हैं, वहाँ उस स्वर्ग में उस राग में इन्द्राणी के दुःख में वे सिंकते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : छठवेंवाले हैं नहीं, चौथेवाले हैं। मुझे तो यहाँ उस नरक के साथ मिलान करना था। नरकवाले को सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से सुख कहा और वह का वह सम्यग्दृष्टि भले यहाँ छठवें से चौथे में गया, वहाँ देवलोक में, परन्तु उसे जितना राग भाग इन्द्राणियों और सामग्री बहुत अनुकूल है, यहाँ तो वह धूल भी नहीं, यह तो सब भिखारी सब हैं यहाँ अभी तो।

मुमुक्षु : करोड़पति ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करोड़पति भिखारी। अब करोड़पति कहाँ अभी गिनती में था? बड़ा राजा भिखारी है न। यह तो देव, जिनकी सामग्री का पार नहीं, वे भी अन्दर में परलक्ष्य से राग से सिंकते हैं, जलते हैं, दुःखी हैं। कहो, शशीभाई! यह दो बात। किस अपेक्षा से लेनी है, यह समझना चाहिए न! सम्यग्दर्शन में आत्मा का जितना भान होकर जितनी शान्ति प्रगटी है, उतनी शान्ति और आनन्द का वेदन तो नरक में भी नारकी को है। समझ में आया? अज्ञानी जो है मिथ्यादृष्टि, जिसे पुण्य में मिठास है, पाप में मिठास है, परसामग्री मेरी है, ऐसी मिथ्यादृष्टि है, वह तो अकेले कषाय से जलकर सुलग रहे हैं। समझ में आया?

तीन भाग करने हैं, लो! एक जो भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसकी मिठास और दृष्टि की खबर नहीं, उसे पुण्य-पाप के विकल्प वर्ते, उसमें मिठास वर्तती है और यह सब मेरा और मैं इनका, ऐसा मिथ्यात्वभाव वर्तता है। वह मिथ्यादृष्टि भले राजा हो या बड़ा देव हो, अकेले कषाय की अग्नि से सिंककर जलता है। बाहर से

भले ऐसा मानते हैं कि हम सुखी हैं, मूढ़रूप से अन्दर दुःखी है। जब धर्म का सम्यग्दर्शन आत्मभान हुआ, आत्मभान हुआ कि मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ। दया, दान के विकल्प उठें, वह भी मेरी चीज़ नहीं, मुझे लाभदायक नहीं, मेरा भाव नहीं। शरीर, वाणी, मन तो कहीं रह गये धूल में, पर मैं। ऐसा जहाँ अन्तर में सम्यक् भान हुआ... उसे प्रतिकूल सामग्री का पार न हो नरक के अन्दर, नरक में पड़े हैं उन्हें, तथापि उन्हें स्वरूप के आनन्द के अंश का स्वाद है, उसकी मुख्यता से उन्हें ऐसा कहा गया है कि सुख को वेदते हैं। बाकी तीन कषाय (चौकड़ी) जितने पड़े हैं, उतना उन्हें दुःख तो है। आहाहा! तब सम्यग्दृष्टि वह मुनि होकर आत्मा के आनन्द के वेदन में अन्दर रहा, उसे भी जरा एक राग का कण बाकी रह गया और परमात्मदशा प्राप्त नहीं की, ऐसे दया, दान, व्रत के परिणाम से पुण्य का बन्धन हो गया। स्वरूप के आनन्द का भान है, रमणता थी परन्तु इतना विकल्प रह गया। उसका पुण्य बँधा, वह गया स्वर्ग में। वह स्वर्ग में राग के फलरूप से पुण्य की सामग्री में उस कषाय से सिंकता है, जलता है, अंगारों से जलता है वह। आहाहा! अन्तर आनन्द है सम्यग्दर्शन जितना, हों! समझ में आया?

यह तो वीतराग के ज्ञान के गज हैं। दुनिया के माप से यह माप आवे, ऐसा नहीं। सच्ची बात है? रात्रि में कहाँ वापस खोटी हो जाती है? कहो, समझ में आया इसमें? क्या करते हैं? आज भी फरियाद लेकर आये थे। क्या है परन्तु? घड़ीक में बदल जाते हैं। अन्दर खलबलाहट शुभाशुभ विकल्प और राग की वृत्ति। यह तो और अशुभ की वृत्ति, वह तो महा दुःख। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के परिणाम, वह राग का मन्द भाव, वह भी कषाय है। आहाहा! बापू! भगवान आत्मा तो अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु तो है। उसके विरुद्ध के जितने विकल्प पुण्य-पाप के उठें, वे सब दुःखरूप और आकुलता है। कहाँ खबर है इसे (कि) क्या है और क्या होता है? बेखबर है न अनादि का। दुनिया में भले चतुर दुनिया कहे।

शास्त्र कहते हैं कि उन्माद है, उन्माद। रात्रि में नहीं कहा था कल? पागल। समाधिशतक में तो मुनि को भी जितना उपदेश देने का राग का उदय आवे, विकल्प (आवे), कहते हैं कि उतना वह उन्माद है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आनन्दस्वरूप

में वेदते हैं, हों! महागणधर जैसे। परन्तु वह विकल्प उठता है न (कि) शास्त्र रचूँ। आहाहा! कहते हैं कि वह विकल्प है, उतना राग है, उतना चारित्रमोह का उन्माद है। ऐई! उसमें जिसे यह शरीर, वाणी, मन और पैसा मुझे ठीक है और प्रतिकूल से मुझे ठीक नहीं और पुण्य-पाप के भाव, वे मेरे और ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसके उन्माद का क्या कहना? उसके पागलपन का क्या कहना? वह तो पागल, गहल, उन्माद में मच पड़े हैं, कहते हैं। जुगराजजी! यह सब पैसेवाले तुम दुःखी? ऐसा कहते हैं यहाँ। पाँच-पाँच लाख, दस-दस लाख, बीस-बीस लाख, पचास लाख, सब दुःखी होंगे? ...भाई! आहाहा! धूल में यह लाख वहाँ तो धूल है, वह तो पर है। उसमें तुझे क्या आया? मेरे, मुझे मिले—ऐसा भाव वह विकारी, दुःखदायक, आकुलता और अग्नि है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रश्न कहाँ किया? वस्तु से कहाँ मैंने कहा? वस्तु न हो, तब मुझे नहीं, ऐसे विकार के भाव, वह उसे आकुलता है। आहाहा! समझ में आया? वह चीज़ आकुलता का तो निमित्त है। आकुलता तो स्वयं उत्पन्न करता है। थोड़ी लक्ष्मी हो, उसे आकुलता बहुत हो, बहुत लक्ष्मी हो, उसे आकुलता अल्प हो या थोड़ी हो। यह कहीं लक्ष्मी की संख्या के ऊपर आकुलता का माप नहीं है। आहाहा! कैसे होगा? कामदार!

यहाँ तो भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव कहते हैं, भाई! कहते हैं कि, यह आत्मा जितना सम्यक् स्व का ज्ञान और स्व का सम्यग्दर्शन करे, उतना उसे सत्य और मोक्ष का मार्ग है। उसमें जितना व्यवहारज्ञान स्व-पर का और छह द्रव्य का रहे और व्यवहार श्रद्धा रहे, उतना शुभभाव। यह परम्परा अर्थात् कि उसे छोड़कर मोक्ष होगा। वह स्वयं मोक्ष का वास्तविक कारण नहीं। फिर स्वरूप में रमता है चारित्र में, वह अन्तर में आनन्द में रमे, उसका नाम चारित्र। वह खास मोक्ष का कारण। बीच में यह पंच महाव्रत के परिणाम आदि रहे, वह भी रागभाग है, वह पुण्यबन्धन है, उससे स्वर्ग मिलेगा। उस स्वर्ग में वह पुण्य के फल में राग के भाग से देवलोक में क्लेश पाते हुए उसे अनुभव करेगा। आहाहा! समझ में आया? सुजानमलजी! समझ में आया इसमें?

अभेद निज शुद्धात्मस्वरूप में तिष्ठे है, वह परम आनन्द अतीन्द्रिय सुखरस के

आस्वाद से... देखो! समझ में आया? ३०, ३० है न? 'निजशुद्धात्मस्वरूपे परमानन्द-सुखरसास्वादतृप्तो भूत्वा' अहो! सन्त की दशा उसे कहते हैं कि जिसे बाह्य में तो नग्नदशा वर्तती है। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की तृप्ति का उछाला मारता है। अकेले अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र भरा भगवान आत्मा। उसकी रमणता में, उसके आनन्द में तृप्त... तृप्त... तृप्त... तृप्त अतीन्द्रिय आनन्द में है। उसे चारित्रवन्त अथवा वह चारित्र पुरुष ही अभेदनय से चारित्र है। समझ में आया? यह चारित्र, निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्ज्ञान बिना होता नहीं। और निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान अकेला हो, वहाँ भी चारित्र ऐसा होता नहीं। निश्चय आत्मभानसहित, दर्शनसहित की स्थिरता, आनन्द की रमणता, उसे त्रिलोकनाथ परमेश्वर चारित्र कहते हैं। वह चारित्रवन्त, वह मुक्ति के मार्ग में चढ़ा हुआ है। आहाहा! मुक्ति के मार्ग में दुःख नहीं, ऐसा कहते हैं। चारित्रवन्त, अरे! दुःखी, कितना सहन करना पड़े और कितना यह और राजा के कुंवर मुनि तो आत्मा के आनन्द में मुनिपना... नहीं, नहीं, कहते हैं, तू चारित्र को समझता ही नहीं। चारित्र, वह दुःखदायक नहीं, दुःख का दाता नहीं। दुःख हो, उसे चारित्र कहते नहीं। वह तो आर्तध्यान है। आहाहा!

भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की लहरें उठे अन्दर से। शान्त... शान्त... शान्त हो गया, निर्विकल्प आनन्द में, क्रीड़ा में, मौज में पड़ा है। उसे आनन्द है, उसे चारित्र कहते हैं, समझ में आया? अभी तो चारित्र की खबर नहीं, किसे कहना? सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और हम धर्म करते हैं? कौन इनकार करता है? पागल कहे कि हम हमेशा पाँच-पाँच लाख कमाते हैं। निंबोली इकट्टी की हो न। समझ में आया? यहाँ तो आचार्य कहते हैं कि 'एवाभेदेन निश्चयचारित्रं भवतीति' वह स्वयं चारित्र है, आत्मा चारित्र है, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अपने स्वरूप के अतीन्द्रिय निराकुल आनन्द में परिणम गया है, उसमें स्थित है, वह पुरुष ही स्वयं चारित्रवन्त है। समझ में आया? यह ३० गाथा हुई। इस प्रकार सब व्याख्या हो गयी, लो न सब। इस प्रकार उन्नीस दोहों का स्थल पूरा हुआ। उन्नीस दोहे कहे उसमें पहले।

गाथा - ३१

आगे अभेदरत्नत्रय के व्याख्यान की मुख्यता से आठ दोहा-सूत्र कहते हैं, उनमें से पहले रत्नत्रय के भक्त भव्यजीव के लक्षण कहते हैं—

१५४) जो भक्तउ रयणत्तयहँ तसु मुणि लक्खणु एउ ।

अप्पा मिल्लिवि गुण-णिलउ तासु वि अण्णु ण झेउ ॥ ३१ ॥

जो जीव... अब उत्कृष्ट बात है ऊँची। मुनि की बात है। भावलिंगी सन्त मुनि कैसे होते हैं, वे रत्नत्रय के भगत हैं। भगवान के भगत नहीं, भगवान के भगत तो अभी विकल्प कहलाता है। उसका स्वरूप जानना तो चाहिए न कि रत्नत्रयरूप चारित्र और उसके भक्त कैसे होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, जो जीव रत्नत्रय का भक्त है,... उस जीव का लक्षण कहते हैं। उसका यह लक्षण जानना, हे प्रभाकरभट्ट! रत्नत्रय धारक के ये लक्षण हैं। गुणों के समूह आत्मा को छोड़कर... लो! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द, अतीन्द्रिय अनन्त शान्ति आदि ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है, उसे छोड़कर। आत्मा को छोड़कर आत्मा से अन्य बाह्य द्रव्य को न ध्यावे,... उसके अन्तर के आत्मा के ध्यान आनन्द के समक्ष दूसरा देव-गुरु-शास्त्र का भी ध्यान उसे होता नहीं। समझ में आया? भगवान परमानन्द की मूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द की शीतल शिला आत्मा है। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द और शीतल अकषायस्वभाव से भरपूर प्रभु आत्मा अभी है। उसमें अन्तर की दृष्टि-ज्ञान करके उसमें स्थिर होता है। कहते हैं कि ऐसा आत्मा अपने गुण के भान और श्रद्धा और रमणता छोड़कर। आत्मा से अन्य बाह्य द्रव्य को... यहाँ क्या कहना है? कि स्वद्रव्य के गुणों के आश्रय में स्थित है, उसे रत्नत्रय का भगत कहते हैं। परद्रव्य देव-गुरु-शास्त्र आदि का विकल्प है, वह राग है, उसमें उसका ध्येय होता नहीं।

परमात्मप्रकाश है न, इसलिए परमात्मा तुरन्त किसे प्राप्त हो? जिसे अन्तर में अभेद रत्नत्रय की प्राप्ति है, उसे परमात्मा तुरन्त प्राप्त होता है। भगवान आत्मा अकेले

ज्ञान प्रकाश की मूर्ति, आनन्द का कन्द, शान्त के रस की पुतली। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का रूप भगवान आत्मा का है। ऐसे गुणों के ध्यान के समक्ष दूसरे द्रव्यों का ध्यान उसे नहीं होता, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य, देव-गुरु-शास्त्र, प्रतिमा या देवालय या सम्मोदशिखर आदि का ध्यान, वह शुभ विकल्प है। परद्रव्य की ओर का लक्ष्य जाता है, वह सब शुभराग है, पुण्य है। समझ में आया? रत्नत्रय का भगत, उसे भगत लिया यहाँ। आहाहा! 'जननी जण तो भक्त जण' आता है न? 'या दाता या सूर, वरना रहना बांझणी परन्तु मत गुमाना नूर' तेरी जवानी के नूर को मत गंवाना। भक्त रत्नत्रय का भक्त हो, उसे जन्म देना। ऐसा हो वह। यह लोग लौकिक बात करते हैं या नहीं? वह भी कौन भगत? भगवान-भगवान भजे, ऐसा नहीं। भगवान-भगवान भजे, वह तो शुभराग-विकल्प पुण्य को भजता है। ओहोहो!

इसलिए आचार्य कहते हैं, यह आत्मा के गुण का निलय देखो! गुण का निलय है न? अकेला भण्डार निलय—अकेली खान, आत्मा तो अनन्त गुण की खान है। जिसमें से अतीन्द्रिय आनन्द झरे, अतीन्द्रिय केवलज्ञान प्रगट हो, अतीन्द्रिय दर्शन प्रगट हो, अनन्त बल-वीर्य जो है, वह अन्दर में से प्रगट हो। ऐसे अनन्त गुण की खान आत्मा भगवान सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? 'पाँच कोड़ीने कोरडे' वह आता है न? वह कुमारपाल और ... दोनों का आता है न? क्या हुआ परन्तु उसमें? लोगों को ऐसे रास्ते चढ़ा दिया बेचारों को। ऐसे पाँच कोड़ी के कुलडे चढ़ाया तब देव हुए। धूल हुआ उसमें क्या हुआ परन्तु अब? उसमें आत्मा को क्या? समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुण का घर है। निलय अर्थात् क्या? ऐई! स्थान। निलय-स्थान। वह आनन्द का स्थान, वह तू है, ज्ञान का स्थान तू है, शान्ति का स्थान अन्दर में तू है। जितने अनन्त आनन्द आदि गुण कहलाते हैं, उनका स्थान वह आत्मा है अन्दर में। वह अन्यत्र कहीं से मिले, ऐसा नहीं। दूसरे आत्मा में से मिले, ऐसे नहीं। तुझमें सब भरे हुए हैं। आहाहा!

शिष्य को गुरु कहते हैं, हे प्रभाकर! है न? रत्नत्रय को छोड़कर। इस रत्नत्रय के लक्षण यह कि आत्मा को छोड़कर। स्वद्रव्य भगवान आत्मा का अन्दर निर्विकल्प

दर्शन, ज्ञान और रमणता। स्वद्रव्य आत्मा से अन्य बाह्य द्रव्य को न ध्यावे,... दूसरे द्रव्य को लक्ष्य में न ले। स्वद्रव्य का लक्ष्य—दृष्टि करके स्थिर हो, वह रत्नत्रय का भगत, वह आत्मा का भगत है। ओहोहो! समझ में आया? कब परन्तु सुना कब है? माना कब है? बाहर और बाहर यह धूल ढेर और पुण्य-पाप के परिणाम में पचा है पूरे दिन अनन्त काल से। मोहनभाई! आहाहा! अनादि काल से त्यागी अनन्त बार हुआ, परन्तु वह पुण्य और पाप के विकल्प, पुण्य के विकल्प में पचा रहा। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के शुभराग, वह भी राग-विकल्प कषाय है। उसमें पचा परन्तु उससे रहित चीज़ कौन है, वह श्रद्धा में ली नहीं। आहाहा! अनन्त बार साधु हुआ।

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो;

पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।

अनन्त बार मुँडाया इसने। हजार बार रानियाँ छोड़कर बाबा-साधु जैन का हुआ। क्या हुआ परन्तु उसमें? भटकने के रास्ते बढ़ाये वापस। वस्तु की खबर नहीं होती। अखण्डानन्द प्रभु चिदानन्द की मूर्ति हूँ मैं, उसकी दृष्टि नहीं होती और दूसरे में प्रेम छूटा नहीं। यह पुण्य के, पाप के परिणाम का प्रेम छूटा नहीं। समझ में आया? जो छोड़ना है, वह छोड़ा नहीं। बाहर के स्त्री, पुत्र तो छूटे ही पड़े हैं, कब घुस गये थे आत्मा में? समझ में आया? बापू! मार्ग तो वीतराग का दूसरे प्रकार का है।

मुमुक्षु : प्रयत्न तो बहुत किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयत्न उल्टा किया। बहुत किया, यह कहाँ से कहा? समझ में आया? बाह्य त्याग किये और उसका यह किया, और मैंने यह ग्रहण किया न, वह तो बाह्य ग्रहण-त्याग का विकल्प राग है। राग है, उसमें प्रयत्न क्या किया इसने? भगवान आत्मा विकल्परहित चीज़ अन्दर अखण्डानन्द अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका तो अनुभव दृष्टि में लिया नहीं। कुछ किया नहीं। उल्टा पुरुषार्थ किया था। हेतु उल्टा था। भान नहीं होता अपना हेतु-लक्ष्य क्या है, उसकी तो खबर नहीं होती। अब हेतु किसे कहना? भले माने कि हम मोक्ष के लिये करते हैं। परन्तु हेतु तो अकेले राग का है। समझ में आया? यह तो अजर प्याला की बातें हैं, भाई!

यहाँ तो भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा कहते हैं, वे मुनि कहते हैं। हे आत्मा! रत्नत्रय के भगत के लक्षण ऐसे हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारक के लक्षण ऐसे हैं कि जिसमें स्वद्रव्य के गुण को छोड़कर परगुण को ध्याता नहीं। आहाहा! जिसके स्वद्रव्य में अनन्त गुणों के लक्ष्य को छोड़कर दूसरे अनन्त द्रव्य चाहे जो हों, सिद्ध अनन्त या परमेश्वर हों, उस परद्रव्य को लक्ष्य में, ध्यान में लेता नहीं। आहाहा! वह आ जाये ऐसे, परन्तु उसे विकल्प कहा जाता है, शुभराग है। भगवान! यह बात करेंगे। जब तक स्थिर नहीं हो तो राग आवे, विकल्प आवे, परन्तु वह कहीं निश्चय रत्नत्रय का स्वरूप नहीं। वह मोक्ष के वास्तविक मार्ग का स्वरूप नहीं। जितना परद्रव्य का आश्रय विकल्प उठता है, उतना सब पुण्यबन्धन का कारण है। यह मार्ग, मार्ग की खबर नहीं होती। दौड़ जाये मुट्ठी बाँधकर पश्चिम में और जाना हो पूर्व में। वह पुरुषार्थ कहलाये? उल्टा कहलाये। अरे! इसे उल्टे-सुलटे की भी खबर नहीं होती। ऐसा का ऐसा अन्धी दौड़ से मूढ़रूप से अनन्त काल व्यतीत किया। समझ में आया?

निश्चयनय से एक आत्मा ही ध्यावनेयोग्य है, अन्य नहीं। निश्चयरत्नत्रय का धारक तो भगवान आत्मा को ही ध्यान में लेकर घूमता है। अब जरा व्यवहार को स्थापते हैं।

भावार्थ :- व्यवहारनयकर वीतराग सर्वज्ञ के कहे हुए... परमात्मा परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी परमात्मा ने कहे हुए शुद्धात्मतत्त्व आदि छह द्रव्य,... देखो! शुद्धात्मा आदि छह द्रव्य। उनका सब इकट्ठा, सबका इकट्ठा ज्ञान, वह व्यवहार—ऐसा कहना है। समझ में आया? छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंच अस्तिकाय का श्रद्धान - जाननेयोग्य है,... श्रद्धान और ज्ञान करनेयोग्य है, व्यवहार से करनेयोग्य है। भगवान परमेश्वर ने देखे हुए छह द्रव्य। उनके भाग करें तो सात पदार्थ—तत्त्व, उनके भाग करें तो पुण्य-पाप आदि मिलकर नौ पदार्थ और पाँच अस्तिकाय। काल है, वह अस्ति है, काय नहीं, पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं। उनका श्रद्धान-जाननेयोग्य है, और हिंसादि, पाप, त्याग करनेयोग्य हैं, व्रत, शीलादि पालनेयोग्य हैं,... शुभराग। व्यवहार जाने व्यवहार। निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान और निश्चय चारित्र के अन्दर ऐसे परिणाम उसे विकल्परूप से होते हैं। ये लक्षण व्यवहाररत्नत्रय के हैं,... आत्मा

शुद्ध है, उसके सहित छह द्रव्य का ज्ञान विकल्पवाला। सात तत्त्व की श्रद्धा का ज्ञान और श्रद्धा, नौ पदार्थ का ज्ञान और श्रद्धा, पंचास्तिकाय की श्रद्धा और ज्ञान तथा हिंसा, झूठ का त्याग; व्रत, शीलादि का पालना शुभभाव, वह सब लक्षण व्यवहाररत्नत्रय का है। वह व्यवहाररत्नत्रय अर्थात् शुभभाव का वह लक्षण है। वह परमार्थ धर्म का लक्षण नहीं। गजब, भाई! क्या कहते हों? क्या कहा?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में, बाद में, सुनो तो सही अभी आये बिना? यह सामने कहाँ चले गये। प्रभाव, प्रभाव नहीं। भेदरत्नत्रय से अज्ञात है। इतना ही पाठ है। 'भेदरत्नत्रयस्य' इसका अर्थ यह प्रभाव इसका तुम लेकर रखो अन्दर से। यह शब्द नहीं परन्तु टीका में। यहाँ तो 'भेदरत्नत्रयस्य निश्चयेन वीतरागसदानन्दैकरूप' है न, भाई!

यहाँ तो ऐसा बतलाना है, भाई! धीर हो। तेरी बातें करने में भी इसे कठिन पड़े। किसी प्रकार से उस व्यवहार से निश्चय होगा? व्यवहार तो शुभराग है। राग का अभाव करके स्थिर हो, तब निश्चय होता है। आहाहा! परद्रव्य के आश्रय से जितना विकल्प (होता है), वह निर्विकल्प स्वाश्रय में जाने पर उसके विकल्प का अभाव होता है। उसे ऐसा कहा जाता है कि यह व्यवहार था तो यह निश्चय हुआ, ऐसा कहा जाता है निमित्तरूप से।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह कहाँ, उसे कहाँ है? परन्तु कहाँ है वह तो? वह तो उसके प्रभाव से, रत्नत्रय आराधन, उसके प्रभाव से कहा है। भेदरत्नत्रय सब तीनों का इकट्ठा डाला है। छह द्रव्य का ज्ञान, छह द्रव्य की श्रद्धा, पाँच महाव्रत के परिणाम आदि शुभभाव। इन तीन को रत्नत्रय, व्यवहाररत्नत्रय कहा। अर्थात् कि जो शुभविकल्प और पुण्यभाव है।

मुमुक्षु : यहाँ तो प्रभाव से हिन्दी

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है हिन्दी? यह तो अभी नीचे कहाँ आया है परन्तु इसमें?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है परन्तु इसमें ? अभी तो आया नहीं वहाँ ? आवे तब तो अर्थ होने दो इसका । इसका अर्थ करना न आवे इसे । यहाँ तो अभी एक बात चलती है कि व्यवहार किसे कहना ।

सो व्यवहार का नाम भेद है, वह भेदरत्नत्रय आराधनेयोग्य है, ... व्यवहार से । विकल्प आवे, उतना अशुभ टालने के लिये ऐसी भूमिका होती है, ऐसा कहते हैं । उसका प्रभाव शब्द नहीं शास्त्र में । वह है और निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति है, ऐसा । ऐसा एक विकल्पात्मक भाव है, शुभरागमय, उसे व्यवहार कहते हैं । भगवान् स्वद्रव्य के आश्रय से श्रद्धा, ज्ञान और लीनता हो, उसे निश्चय कहते हैं । बस ! यह दो बातें हैं एक साथ । समझ में आया ? और एक साथ में भी है । ऐसे निश्चय वर्तता है, यहाँ विकल्प है । स्थिर हो, तब विकल्प छोड़कर अन्दर स्थिर होता है । बापू ! मार्ग तो ऐसा है, अलौकिक मार्ग है । इसने मार्ग सुना नहीं, सुना नहीं और सुना हो तो इसने विचार में लिया नहीं । तब सुना कहलाये न ! ऐसे के ऐसे अनन्त बार शास्त्र सुने और रट डाले और पढ़ा, गुना उसमें थोथा हुआ, कुछ हुआ नहीं उसमें । समझ में आया ?

अहो ! यहाँ तो स्वद्रव्य और परद्रव्य आश्रय की दो बात है, बस । इतनी बात है यहाँ तो । 'अप्पा मिल्लिवि गुण-णिलउ तासु वि अण्णु ण झेउ' दूसरा ध्यान हो नहीं, तथापि व्यवहार समझाया है । समझ में आया ? आहाहा ! अभी तो सच्चे शुद्धात्मसहित छह द्रव्य का सच्चा श्रद्धा-ज्ञान, सात तत्त्व और नौ पदार्थ का ज्ञान, पाँच अस्तिकाय का ज्ञान और हिंसा आदि के परिणाम का त्याग, व्रतादि के शुभ परिणाम, शीलादि आदि का भाव, वह लक्षण व्यवहार रत्नत्रय अर्थात् शुभ पुण्य के भाव हैं । इसका नाम भेद रत्नत्रय है । भेद कहो, व्यवहार कहो, उपचार कहो, गौण कहो, इसकी—निश्चय की अपेक्षा से । समझ में आया ? इसे मुख्य कहो तो उसे गौण कहो, इसे मुख्य कहो तो उसे गौण कहो । इसका अर्थ । ओहोहो !

निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति है । यह व्यवहार है, उसे छोड़कर अन्दर में निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति करता है । निर्विकल्प करता है न आत्मा । पहला सम्यग्दर्शन निश्चय का है,

सम्यग्ज्ञान है, चारित्र भी स्थिरता है और इस प्रकार में छठवें गुणस्थान में तीन रत्नत्रय विकल्प वर्तते हैं, उन्हें छोड़कर स्थिर होता है। सातवाँ। तब वे पूर्व में थे, ऐसा कहा जाता है। प्रभाव शब्द कहीं शास्त्र में नहीं है। उसके प्रभाव से और तुम्हारे कारण से। हे आचार! तुम्हारे कारण से मैं... उसे सब व्यवहार सब भाषा ऐसी आवे।

मुमुक्षु : चला जाता है उसका प्रभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो लक्षण हैं। इसका लक्षण अलग, उसका लक्षण अलग। इसका फल अलग, उसका फल अलग। तथापि इसका फल उसे बताना, वह व्यवहार है।

वीतराग सदा आनन्दरूप जो निज शुद्धात्मा आत्मीक सुखरूप सुधारस के आस्वाद कर परिणत हुआ... बस, यह निश्चय। भगवान् आत्मा, वीतराग आत्मा रागरहित अभी अन्दर में, हों! सदा आनन्दरूप जो निज शुद्धात्म द्रव्य कहा। उससे आत्मिक सुखरूप सुधारस, वह पर्याय। आत्मिक सुख सुधारस का आस्वादकर परिणत हुआ। अतीन्द्रिय आनन्द से परिणमन हो गया। **उसका सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रय है,**... उसे निश्चयरत्नत्रय सच्चे रत्न कहा जाता है। लो! **उसका जो भक्त (आराधक) उसके ये लक्षण हैं,**... लो! यह जानना। समझ में आया? उसके लक्षण हैं, वह जानो, उसका यह लक्षण है। अब, यह व्यवहार की व्याख्या की बात करेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १२, मंगलवार, दिनांक - ०४-०१-१९६६

गाथा - ३१ से ३३, प्रवचन - ९४

परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की ३१ गाथा। नीचे लाईन है। इसमें है। वीतराग सदा आनन्दरूप जो निज शुद्धात्मा... यह आत्मा वीतराग सदा आनन्द। राग-विकल्परहित सदा आनन्दरूप जो निज शुद्धात्मा। अपना जो निज शुद्धात्मा आत्मीक सुखरूप सुधारस के आस्वाद... ऐसे आत्मा के सुखरूपी अमृत के रस में आस्वाद कर परिणत हुआ... वह परिणमित। उसका सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रय है,... लो! यह निश्चयरत्नत्रय मोक्ष का मार्ग। सच्चा रत्नत्रय—जिस रत्न से मुक्ति प्राप्त हो। वह निश्चयरत्नत्रय, उसका स्वरूप क्या? कि सदा आनन्दरूप, सुखरूप के स्वाद से परिणत हुआ। आत्मा अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द से पर्याय में परिणत हुआ। समझ में आया? ऐसा आत्मा, उसकी सम्यक् श्रद्धा—उसकी सच्ची श्रद्धा अन्दर, उसका सच्चा ज्ञान और उसके आचरणरूप अभेदरत्नत्रय है। कहो, समझ में आया इसमें?

उसका जो भक्त (आराधक) उसके ये लक्षण हैं,... उसका जो सेवन करनेवाला, उसके यह लक्षण हैं। यह जानो। वह ऐसा जानो, समझो। समझ में आया? वे कौनसे लक्षण हैं—वे लक्षण किसके हैं, यह बाद में कहेंगे, परन्तु बीच में थोड़ा डालते हैं। यद्यपि व्यवहारनयकर सविकल्प अवस्था में... व्यवहार से राग का विकल्प है, तब तक चित्त के स्थिर करने के लिये... चित्त को स्थिर करने के लिये, अशुभ से हटने के लिये, पंच परमेष्ठी का स्तवन करता है,... शुभराग से पंच परमेष्ठी का स्तवन करे, गुणगान करे। शुभ विकल्प राग। जो पंच परमेष्ठी का स्तवन देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि विभूति का कारण है,... वापस वह विकल्प कैसा है? कि देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि विभूति का कारण है। आत्मा की मोक्ष की विभूति का कारण नहीं, ऐसा साथ में कहते हैं। समझ में आया? मोक्षरूपी लक्ष्मी-विभूति, उसका कारण तो अभेदरत्नत्रय है। समझ में आया? ऐसा विकल्प जो बीच में हो, वह पुण्यबन्ध का कारण है। देवेन्द्र चक्रवर्ती

आदि विभूति का कारण है, और परम्पराय शुद्ध आत्मतत्त्व की प्राप्ति का कारण है,... क्योंकि वह विकल्प छूटकर, निमित्त है, छूटकर स्वरूप स्थिर होगा, इससे व्यवहारनय से, व्यवहार भाग विकल्प परम्परा कारण व्यवहारनय से कहा गया है।

सो प्रथम अवस्था में भव्य जीवों को पंच परमेष्ठी ध्यावनेयोग्य हैं,... विकल्प में। निर्विकल्प में स्थिर न हो, दृष्टि शुद्ध चैतन्य की है, ज्ञान शुद्ध चैतन्य का है (परन्तु) स्वरूप में निर्विकल्प शुद्ध उपयोग से स्थिर नहीं हो, तब उसे पहले ऐसा भाग शुभ विकल्प होता है। ध्यावनेयोग्य हैं, उनके आत्मा का स्तवन... पाँच परमेष्ठी के आत्मा के गुणग्राम करना चाहिए। आत्मा के गुणग्राम। ऐसा कहते हैं। पंच परमेष्ठी का समवसरण और पुण्य के वैभव को, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? साधु आदि के अट्ठाईस मूलगुण भी नहीं। उनके गुण का स्तवन करना चाहिए। अरिहन्त के गुण, सिद्ध के गुण, आचार्य, उपाध्याय और साधु। जो आत्मिक गुण हैं, उनका स्तवन करना चाहिए। वह विकल्प है शुभराग—पुण्य।

गुणों की स्तुति... उनके द्रव्य का स्तवन अथवा उनके गुणों का स्तवन अथवा वस्तु स्तवन, ऐसा लिखा है मूल तो। समझ में आया? है न अन्दर? परमेष्ठीरूप स्तवन, वस्तु स्तवन और गुण स्तवन। यह पहले आ गया है १४८ पृष्ठ पर। वस्तु स्तवन। वस्तु अर्थात् आत्मा के गुणग्राम गिने स्वयं अपने आत्मा के। ऐसा आत्मा, ऐसा आत्मा, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त सम्पदावाला। ऐसे वस्तु के गुणग्राम करे अथवा भगवान् पंच परमेष्ठी की वस्तु के गुणग्राम करे, वह सब शुभ विकल्प है। जिसके फल में चक्रवर्ती आदि (पद की प्राप्ति होती है)। सम्यग्दृष्टि की बात है, हों! मिथ्यादृष्टि की बात नहीं यहाँ। समझ में आया?

आत्मा प्रथम से शुद्ध वीतराग निर्विकल्प वस्तु है, ऐसी अन्तर में, अनुभव में प्रतीति हुई है, सम्यग्ज्ञान आत्मा का है, परन्तु स्वरूप में स्थिरतारूपी दशा नहीं, तब ऐसी प्रथम दशा में ऐसे विकल्प शुभभाव धर्मी को व्यवहाररत्नत्रयरूप से होते हैं। गुणों की स्तुति, वचन से उनकी अनेक तरह की स्तुति करनी,... वचन से स्तुति करे। उसमें विकल्प होता है न शुभ? और मन से उनके नाम के अक्षर... उनके नाम के अक्षर सिद्ध

या ॐ इत्यादि। तथा उनका रूपादिक ध्यावनेयोग्य हैं,... भगवान का रूप—स्वरूप क्या, वह ध्यान करनेयोग्य है। तो भी... वहाँ लिया। कौन से लक्षण हैं... ऐसा शब्द था न दूसरी लाईन में? उसके लक्षण, उन्हें जानो। कौन से लक्षण हैं? वे यह। बीच में यह (विकल्प) आवे, तथापि उसका लक्षण यह (निश्चयरत्नत्रय है), ऐसा कहते हैं। समझ में आया? किसके लक्षण की बात चलती है? अभेदरत्नत्रय भक्त के लक्षण। उसे बीच में ऐसे शुभ विकल्प होने पर भी, तो भी पूर्वोक्त निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति के... पूर्व में पहला शब्द कहा यह। वीतराग सदा आनन्दरूप जो निज शुद्धात्मा आत्मीक सुखरूप सुधारस के आस्वाद कर परिणत हुआ... परिणमित वर्तमान आत्मा, हों!

निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति के समय केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप परिणत... वर्तमान परिणत। केवलज्ञानादि केवल अर्थात् ज्ञान, आनन्द आदि जो पर्याय है,... यह ऊपर कहा था, वह की वह बात है। जो निज शुद्धात्मा, वही आराधने योग्य है,... यह शुद्ध आत्मा, इसे अन्तर में आराधनेयोग्य है। अन्य नहीं। ये वे पहले कहे, वे नहीं। समझ में आया? कठिन बात, भाई! महान वस्तु बेहद ज्ञान, आनन्द से भरपूर पदार्थ, उसकी श्रद्धा, ज्ञानसहित शुद्धात्मा के अनन्त गुण की परिणतरूप आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, उसका भक्त, उसे अभेद रत्नत्रय का भगत कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमित। केवलज्ञान (अर्थात्) वह केवलज्ञान नहीं। ज्ञान आदि, दर्शन आदि जो है अकेला। केवल अर्थात् राग बिना, ऐसा। राग बिना वह ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण की... ऊपर कहा था न? सुधारस के आस्वाद कर परिणत हुआ... उसकी श्रद्धा-ज्ञान और आचरण। उसका नाम श्रद्धा, ज्ञान और आचरण, वह अभेदरत्नत्रय है। समझ में आया? क्या है? समझ में आता है या नहीं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कहा न बीच में। व्यवहार होता है। इन्होंने क्या डाला, देखो न! यह जानो, किसके लक्षण हैं? कौनसे लक्षण हैं? लक्षण तो यहाँ बताये अब। वह तो बीच में थोड़ा विकल्प आते थे, इसलिए उसे बताया और उसका फल

वापस देव की ऋद्धि और चक्रवर्ती की ऋद्धि—संयोग मिले। संयोगी भाव से संयोगी वस्तु मिले। स्वभावभाव से स्वभावभाव मिले, ऐसा कहते हैं यहाँ तो।

मुमुक्षु : दो नय समान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो नय समान हैं न जानने के लिये। जानने के लिये। आदरने के लिये एक नय, एक है छोड़ने के लिये। कहो, दो नय का ज्ञान हो, प्रमाणज्ञान होता है न, ज्ञान में सहायता करता है न इतना व्यवहारनय जानने में। समझ में आया ?

वस्तु जो है, यहाँ तो निज द्रव्य वस्तु अखण्ड गुण का पिण्ड उसके... यहाँ तो आनन्द के अतीन्द्रिय आनन्द के परिणत सहित की अभेदरत्नत्रय की उसमें उसकी श्रद्धा, ज्ञान, रमणता, ऐसा लिया है। समझ में आया ? यह निश्चयरत्नत्रय कहो, अभेदरत्नत्रय कहो, सच्चा रत्नत्रय कहो या सच्चा मोक्ष का मार्ग कहो। समझ में आया ? वही... भगवान् आत्मा की अन्तर दृष्टि आत्मा के शुद्धस्वरूप की करके, उसका ही ज्ञान करके और उसमें रमणतारूप परिणति की, उसमें सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान का रत्न अभेद वर्तता है, वह रत्नत्रय का भगत है। क्योंकि रत्नत्रय भजता है। वर्तमान उसे रत्नत्रय का भजन वर्तता है। समझ में आया ? कठिन बात, भाई !

तात्पर्य यह है कि ध्यान करनेयोग्य या तो निज आत्मा है, या पंच परमेष्ठी हैं,... निश्चय में निज आत्मा और व्यवहार में विकल्प आवे तो पंच परमेष्ठी। समझ में आया ? **अन्य नहीं...** अन्य कोई ध्यान करनेयोग्य नहीं। **प्रथम अवस्था में तो पंच परमेष्ठी का ध्यान करनायोग्य है,...** विकल्प के काल में... जब स्वरूप में स्थिर नहीं हो अभेद रत्नत्रय परिणति में, तब शुभ विकल्प में पंच परमेष्ठी का ध्यान (करे)। **और निर्विकल्पदशा में निजस्वरूप ही ध्यावनेयोग्य है,...** अन्तर में स्थिरता के काल में तो भगवान् आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है। **निजस्वरूप ही उपादेय हैं।** वह अपना आत्मा ही शुद्ध चिदानन्द महान सागर पूर्ण गुण से भरपूर वही अन्तर में उपादेय है। यह आठवें गुणस्थान के ऊपर की बात नहीं, हों ! यह नीचे की बात है। सविकल्प करता है और उसमें वापस स्थिर होता है, उसकी बात है। छठवें में है, तब विकल्प ऐसे होते हैं। स्थिर होता है, तब नहीं। आठवें में चढ़ जाये न और वापस आवे, ऐसा है कुछ ? समझ में आया ? ओहो !

दृष्टि में भी आत्मा, ज्ञान में भी आत्मा और स्थिरता में भी आत्मा, ऐसा कहते हैं यहाँ तो मूल। यह दृष्टि-ज्ञान किये होने पर भी स्थिर न हो सके, तब उसे वे विकल्प बीच में होते हैं। परन्तु उनका फल तो संयोग मिलेगा, कहते हैं। समझ में आया? परम्परा अर्थात् तोड़कर वीतराग होगा, ऐसा। उसका अभाव करके होगा, उसे रखकर होगा नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : विभूति कहा न। यह ऊपर से दूसरी जगह कहेंगे कि वहाँ राग के अंगारों से सिंकता है, ऐसा कहेंगे। यहाँ तो मात्र उसका फल क्या? अभेदरत्नत्रय का फल क्या? कि मुक्ति। तब बीच में ऐसे विकल्प आवे, उसका फल क्या? कि देवेन्द्र और चक्रवर्ती का पद, ऐसे दो फल बताये हैं। समझ में आया? जितना राग बाकी रहा, उसके फल में तो पुण्य के फल मिलेंगे। वहाँ लक्ष्य परपदार्थ में जायेगा, इतना तो अशुभभाव में सिंकेगा, कषाय में (सिंकेगा)।

मुमुक्षु : शुभ में भी सिंकेगा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ में भी, यह तो अशुभभाव, पुण्य के फल में मिलेंगे, और उसके आश्रय से अशुभ होता है, ऐसा कहना है मूल तो। शुभभाव के फल में संयोग मिलेंगे, परन्तु संयोग के लक्ष्य में कहीं शुभभाव नहीं होंगे। समझ में आया? उनके भोगने में तो अशुभभाव होगा।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, पड़ोसी-बड़ोसी नहीं। वह दूर रहा हुआ, उसमें से हटकर अन्दर जाये। जाति ही अलग है। यह तो एक बीच में होता है, यह बतलाना है न? छठवें गुणस्थान में श्रद्धा, ज्ञान बराबर है, परन्तु स्थिरता नहीं, अभेदरत्नत्रय की—तीनों की एकता नहीं, इसलिए पहले उसे ऐसे पंच परमेष्ठी आदि के विकल्प होते हैं। ऐसे चौथे, पाँचवें में भी ऐसा होता है। स्थिरता में अकेला आत्मा ही जहाँ निश्चय शुद्ध परिणति में पड़ा, अभेदरत्नत्रय—तीनों एक होकर पड़ा, उसमें कुछ विकल्प है नहीं। मूल मार्ग उसे मोक्षमार्ग कहा जाता है। कहो, समझ में आया? परन्तु मोक्षमार्ग, वह

आत्मा के आश्रय से हुई दशा मोक्षमार्ग होगी ? या पर के आश्रय से हुआ विकल्प मोक्षमार्ग होगा ?

मुमुक्षु : शास्त्र में लिखा हो, वह होगा ।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र में लिखा, यह लिखा है । कहा नहीं ? पर के आश्रय से कहा, वह तो व्यवहार कहा ।

मुमुक्षु : अन्तर है न ।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या अन्तर है ?

मुमुक्षु : पंच परमेष्ठी ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंच परमेष्ठी हो या सिद्ध हो, चाहे जो हो, क्या है ? सिद्ध आ गये न, वे परद्रव्य हैं । परद्रव्य का लक्ष्य करना, ध्यान करना, वह शुभराग है । क्या है, कहो ? बहुत आ गया है पहले । उनके गुण का स्तवन, उनके आत्मद्रव्य का स्तवन, वह सब विकल्प है । स्वद्रव्य के स्तवन की एकाग्रता, अन्दर द्रव्यदृष्टि, ज्ञान और रमणता, वही मोक्ष का मार्ग है । समझ में आया ?

जितना आश्रय में आत्मा आया, आत्मा का आश्रय आया, उतना दर्शन, ज्ञान और चारित्र । जितना पर का आश्रय रहा, उतना उसमें वह दोष । समझ में आया ? फिर भले उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहे, उससे परम्परा मोक्ष होता है, ऐसा कहे, सब कहे । वह निमित्त का ज्ञान कराने के लिये (कहे) । साक्षात् यह कारण है, वह परम्परा अर्थात् (उसे) छोड़कर इसमें स्थिर होगा, ऐसा । निश्चय होगा, तब होगा । समझ में आया ? वस्तु तो त्रिकाल ऐसी है । इसीलिए तो यहाँ परिणत लिया । निश्चयरत्नत्रय के काल में परिणत ऐसा आत्मा वह, ऐसा परिणत हुआ आत्मा, वह ध्यान करनेयोग्य है, ऐसा कहा । समझ में आया ? ३२ ।



गाथा - ३२

आगे जो ज्ञानी निर्मल रत्नत्रय को ही आत्मस्वरूप मानते हैं,... देखो ! और अपने को ही शिव जानते हैं, वे ही मोक्षपद के धारक हुए निज आत्मा को ध्यावते हैं, ऐसा निरूपण करते हैं—

१५५) जे रयण-तउ णिम्लउ णाणिय अप्पु भणंति ।

ते आराहय सिव-पयहँ णिय-अप्पा झायंति ॥ ३२ ॥

जो (धर्मात्मा) ज्ञानी 'निर्मलं रत्नत्रयं'... देखो ! इस अभेदरत्नत्रय को निर्मल रत्नत्रय कहा । वह व्यवहाररत्नत्रय, वह मल रत्नत्रय है । इसीलिए तो यह शब्द प्रयोग किया है । व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान और व्यवहारचारित्र के परिणाम, वे मैल हैं, शुभराग का मैल है । उससे पुण्य बँधता है । इसलिए कहते हैं, निर्मल रागादि दोषरहित रत्नत्रय को आत्मा कहते हैं... लो ! निर्मल रागादि दोषरहित रत्नत्रय को आत्मा कहते हैं... यह रत्नत्रय, वह आत्मा है । जो रागादि होते हैं, वह आत्मा नहीं, ऐसा बतलाने के लिये कहा है । समझ में आया ? आत्मा शुद्ध चैतन्य पदार्थ परमात्मस्वरूप निर्मल, उसकी सम्यक् श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र निर्मल, यह निर्मल रत्नत्रय, वही आत्मा है । अभेद कहा है न, अभेद ?

वे शिवपद के आराधक हैं,... वही मोक्षपद का आराधक है । वह आत्मा स्वयं अपनी निर्मल सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वह आत्मा ही स्वयं शिवपद—मोक्ष का आराधक है । उसमें बीच में लप-बप निमित्त और राग की बात यहाँ है नहीं । अकेला भगवान पूर्णानन्द प्रभु । यहाँ तो आनन्द से ही बात ली है । समझ में आया ? वे शिवपद के आराधक हैं, और वे ही 'निजात्मानं' मोक्षपद के आराधक हुए अपने आत्मा को ध्यावते हैं । 'निजात्मानं' ध्याते हैं । सब तीनों स्वयं ने डाला अन्दर । निर्मल रत्नत्रयरूप आत्मा की परिणति, वह आत्मा, ऐसा कहते हैं । ऐसा कहकर वह विकल्प उठे, वह अनात्मा है, ऐसा सिद्ध करना है । व्यवहाररत्नत्रय उठे, वह अनात्मा है, ऐसा सिद्ध करना है । समझ में आया ? और उस अनात्मा का फल शिवपद नहीं, वह शिव का आराधक

नहीं, ऐसा कहते हैं। जितना भगवान् आत्मा अन्तर में पूर्णानन्द की श्रद्धा, ज्ञान, रमणता, वह आत्मा। वही मोक्ष का आराधक और उस निजात्मा को ध्याता है। अपने आत्मा का ध्यान करता है, देखो! तीनों शब्द यह लिये। ओहोहो! पर आत्मा नहीं, ऐसा। परमेष्ठी, सिद्ध आदि पर आत्मा नहीं।

भावार्थ :- जो कोई वीतराग, स्वसंवेदनज्ञानी,... देखो! जो कोई रागरहित आत्मा का अन्तर ज्ञान करके। आत्मा का ज्ञान, स्वसंवेदनज्ञान, ज्ञान का ज्ञान। ज्ञानी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप आत्मा को मानते हैं,... वह सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र तो आत्मा को मानते हैं। आत्मा उसरूप परिणामा, वह आत्मा है। वे ही मोक्षपद के आराधक हुए... वह शिवपद का आराधक। निश्चयनयकर केवल निजरूप को ही ध्यावते हैं... लो! निश्चय दृष्टि से अकेला आत्मा के आनन्दस्वरूप को ही ध्याता है, उसे मोक्ष के मार्गी कहा जाता है। कहो, समझ में आया? गजब सार सार माल रखा है इसमें। परमात्मप्रकाश।

★ ★ ★

गाथा - ३३

आगे यह व्याख्यान करते हैं—जो अनन्त गुणरूप रागादि दोषरहित निज आत्मा को ध्यावते हैं, वे निश्चय से शीघ्र ही मोक्ष को पाते हैं—इसकी विशेष व्याख्या स्पष्ट करते हैं।

१५६) अप्या गुणमउ णिम्मलउ अणुदिणु जे झायंति ।

ते पर णियमें परम-मुणि लहु णिव्वाणु लहंति ॥ ३३ ॥

जो पुरुष केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप... केवलज्ञानादि अर्थात् आत्मा केवलज्ञान—अकेला ज्ञान, ऐसा। जिसमें राग की गन्ध नहीं। अकेला ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, श्रद्धास्वरूप, शान्तिस्वरूप, अस्तिस्वरूप। समझ में आया? ऐसे प्रभुत्वस्वरूप, ऐसे अनन्त गुणस्वरूप। केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप निर्मल भावकर्म,... पुण्य-पाप के विकल्प, वे भावकर्म; जड़ कर्म आठ; नोकर्म वाणी, शरीर। ऐसे तीन मल

से रहित। ये तीनों मल हैं—मैल हैं। पुण्य-पाप के भाव, वे मैल हैं, आठ कर्म, वह मैल है, वाणी, शरीर मैल है। इन तीनों को मैल में डाला।

मुमुक्षु : पुण्य किसमें आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य किसमें आया ? ऐई ! मैल में ? मैल, मैल में ? मल में। मल अर्थात् मैल। इसीलिए तो शब्द प्रयोग किया है, देखो ! 'निर्मल' मलरहित निर्मल आत्मा को 'अणुदिणुं' निरन्तर... समझ में आया ? है न निरन्तर ?

'अणुदिणुं' ३३वाँ है न यह ? 'अणुदिणुं' का अर्थ किया है न ? यह 'अणुदिणुं' 'दिनं दिनं प्रति' अथवा 'अनवरतम' दो शब्द हैं न संस्कृत में। निरन्तर—ऐसा 'अनुदिनं' अर्थात् निरन्तर कहा, 'अनुदिनमनवरतम' निरन्तर। दिन-दिन प्रति कहो या निरन्तर कहो। ऐसा कहते हैं। 'अनवरतम' 'दिनं दिनं प्रति' अर्थात् निरन्तर, ऐसा। समझ में आया ? जो कोई भगवान आत्मा को पूर्ण आनन्दस्वरूपी आत्मा है, अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है, उसे—आत्मा को निरन्तर ध्यावते हैं,... उसका अन्तर श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति से ध्यान करते हैं, वे ही परममुनि... वे परम साधु। निश्चयकर निर्वाण को शीघ्र पाते हैं। वास्तव में उन्हें मुक्ति मिलती है। कहो, समझ में आया ?

भावार्थ :- यह कथन श्रीगुरु ने कहा, तब प्रभाकरभट्ट ने पूछा कि हे प्रभो ! तुमने कहा कि जो शुद्धात्मा का ध्यान करते हैं, वे ही मोक्ष को पाते हैं,... आप तो कहते हो कि आत्मा शुद्धस्वरूप परमानन्द की मूर्ति एक समय का विकल्प है, उसे छोड़कर, अकेला द्रव्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द से भरपूर, उसका ध्यान करे, उसकी मुक्ति होती है। दूसरा नहीं। महाराज ! तथा चारित्रसारादिक ग्रन्थों में ऐसा कहा है... दूसरे शास्त्र हैं, चारित्रसार आदि, उनमें ऐसा कहा है। ऐसा कहते हैं। जो द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु का ध्यान करें, वे केवलज्ञान को पाते हैं। शिष्य का प्रश्न है कि दूसरे ग्रन्थ में ऐसा कहा है कि द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु का ध्यान करे तो केवलज्ञान को पावे। आप कहते हो कि आत्मा का ध्यान करे, वह केवलज्ञान पावे। इसका मेल किस प्रकार करना ? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। शिष्य पढ़ा हुआ है। चारित्रसार आदि। इस विषय में मुझको सन्देह है। तुम कहो कि आत्मा का ध्यान... आत्मा का ध्यान... लगे

हो, परन्तु उसमें द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु का ध्यान कहा है चारित्रसार में। और उन पंच परमेष्ठी का ध्यान कहा, यह और नहीं पूछता वह। समझ में आया? वह तो छोड़ दिया।

यह तो कहते हैं कि ध्यान में तुम आत्मा कहते हो और दूसरी जगह द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु कहा। बात तो वह की वह ध्यान की बात, मोक्ष के मार्ग की बात है। उन पंच परमेष्ठी का ध्यान, वह तो और व्यवहार का, यह प्रश्न नहीं रहा उसे। समझ में आया? परन्तु दूसरी जगह द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु के ध्यान से केवल (ज्ञान) कहा, यहाँ आत्मा के ध्यान से केवल (ज्ञान) कहा। बात तो केवल की ही लेनी है दोनों में, भाई! वह प्रश्न नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आता है। धीर हो न। यह पूछते हैं न।

इस विषय में मुझको सन्देह है। तब योगीन्द्रदेव समाधान करते हैं... देखा! योगीन्द्रदेव समाधान करते हैं। टीकाकार तो स्वयं है, परन्तु पाठ में आया न,

१५६) अप्या गुणमउ णिम्मलउ अणुदिणु जे झायंति ।

ते पर णियमें परम-मुणि लहु णिव्वाणु लहंति ॥ ३३ ॥

ऐसा वजन योगीन्द्रदेव ने दिया न, इसलिए टीकाकार भी योगीन्द्रदेव के नाम से स्पष्टीकरण करते हैं, ऐसा।

समाधान करते हैं - द्रव्य परमाणु से द्रव्य की सूक्ष्मता... परमाणु नहीं लेना, द्रव्य की सूक्ष्मता लेना, आत्मा की सूक्ष्मता। यह स्पष्टीकरण करेंगे। और भाव परमाणु से भाव की सूक्ष्मता कही गयी है। भाव की सूक्ष्मता। दोनों का स्पष्टीकरण करेंगे। उसमें पुद्गल परमाणु का कथन नहीं है। परमाणु के ध्यान की बात नहीं। लो! शुक्लध्यान की बात आती है न, वह सब इसमें आयेगा। ऐई! चलती है न तुम्हारे तुम्हारे वहाँ? तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में भी ऐसा ही कथन है,... देखो! आधार दिया कि भाई! सर्वार्थसिद्धि की जो टीका है न, उसमें भी द्रव्यपरमाणु अर्थात् सूक्ष्म आत्मा, भावपरमाणु अर्थात् सूक्ष्म स्वसंवेदन वीतरागीदशा, ऐसा ही कथन है। सूक्ष्म से बात

नहीं। समझ में आया ? यहाँ **अन्य द्रव्य का कथन न लेना**। निज द्रव्य और निज गुण-पर्याय का कथन है यहाँ तो। समझ में आया ? वह द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु में निज द्रव्य और निज गुण का ही कथन है। पर की बात नहीं। कहो, यह बात तुम्हारे वहाँ बहुत चलती थी न ? उसका स्पष्टीकरण इसमें आता है। शुक्लध्यान में परद्रव्य ध्यान में आता है। वह तो आ जाये अन्दर... ध्यान तो इसका वर्तता है। समझ में आया ? उसका ही स्पष्टीकरण किया है इसमें। वह तो यह भाई ! आता है न वह ? क्या कहलाता है वह ? धवल में। आवे, परद्रव्य ध्यान में है न विकल्प ? आवे वह विकल्प, तथापि वह चीज़ स्थिर करने के लिये आता है। वह फिर स्थिर हो उसमें वह नहीं होता, वह तो विकल्प के काल में उसका होता है। स्थिर हुआ तो फिर उसमें होता नहीं।

यहाँ कहते हैं, **निज द्रव्य तथा निज गुण-पर्याय का ही कथन है, अन्य द्रव्य का प्रयोजन नहीं है**। दूसरे द्रव्य का प्रयोजन नहीं। दूसरे द्रव्य का लक्ष्य करे तो विकल्प उठता है। यहाँ तो निज द्रव्य के ध्यान से मुक्ति का कारण लेना। आत्मा, भगवान् वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा आत्मा देखा, वैसे आत्मा का तू ध्यान कर, तब तुझे मुक्ति होगी। किसी परद्रव्य का ध्यान करने से, भगवान् का ध्यान करने से मुक्ति होती होगी ? भगवान् तो पर हैं, उनके ऊपर लक्ष्य जाये तो शुभराग होता है। समझ में आया ? होवे सही भले, परन्तु उससे मुक्ति नहीं होती। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जब राग में आता है, तब वह होता है। मुक्ति का कारण नहीं। हो रहा। मुक्ति का कारण नहीं, बीच में आता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। मुक्ति में स्वद्रव्य के अतिरिक्त कारण हो नहीं सकता। ऐसा कहते हैं यहाँ तो। कहो, समझ में आया ? उसमें कुछ चले ऐसा नहीं, उसमें कुछ। और वह उसमें तो पंच परमेष्ठी डाले नहीं। उसने तो यह नहीं। उसने शिष्य की बात ही नहीं ली। इसलिए उसने तो (कहा कि) तुम कहते हो केवलज्ञान उसमें उस द्रव्यपरमाणु, भावपरमाणु की बात है न ? वह न केवलज्ञान पावे और स्वद्रव्य आत्मा से केवलज्ञान पावे, दोनों का मेल क्या ? कि बापू ! वह द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु की पर की बात नहीं। द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु स्व की बात है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दूसरी जगह कहा न।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वहाँ द्रव्यपरमाणु कहा है। यहाँ कहते हैं कि तुम आत्मा का ध्यान करो, आत्मा का ध्यान (करो), परन्तु वहाँ द्रव्यपरमाणु के ध्यान से केवलज्ञान लिया है दूसरे शास्त्र में। दूसरे शास्त्र में द्रव्यपरमाणु, भावपरमाणु का ध्यान करने से मुक्ति होती है, उसे याद है। समझ में आया? तुम कहते हो कि अकेले आत्मा का—आत्मा का, वहाँ दूसरे द्रव्यपरमाणु, भावपरमाणु के ध्यान से आता है। तो दोनों का मेल किस प्रकार? कहा न। यह मुझे सन्देह है। कहा नहीं यह? **मुझे सन्देह है**। समझ में आया या नहीं? ऐसे बिना भान के माननेवाला नहीं। यह क्या तब? तुम इस जगह यह कहो, दूसरी जगह दूसरा कहा, उसका मेल क्या? दूसरी जगह दूसरा, ऐसा कहा नहीं, कहते हैं। द्रव्यपरमाणु अर्थात् अन्य रजकण और उनकी सूक्ष्मता, यह बात वहाँ है ही नहीं। आत्मा की ही वहाँ बात है।

द्रव्यपरमाणु अर्थात् **आत्मद्रव्य उसकी सूक्ष्मता...** देखो! वह द्रव्यपरमाणु कहा जाता है। उसे द्रव्यपरमाणु कहा जाता है। सूक्ष्म अरूपी अकेला आत्मद्रव्य, निर्विकल्प चैतन्यद्रव्य अकेला, उसे यहाँ द्रव्यपरमाणु कहा जाता है। द्रव्य-परम-अणु। द्रव्य से परम सूक्ष्म। द्रव्य से परम सूक्ष्म, वह आत्मा। पुण्य-पाप विकल्परहित आत्मा की चीज द्रव्य से परम सूक्ष्म। वह द्रव्यपरमाणु आत्मा। वह रागादि विकल्प की उपाधि से रहित है, उसको सूक्ष्मपना कैसे हो सकता है? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया। तो कहते हैं, द्रव्य आत्मा को सूक्ष्मपना कैसे आता है? ऐसा कहते हैं। कि मन, इन्द्रियों के अगोचर होने से सूक्ष्म कहा जाता है,... वह आत्मा द्रव्य सूक्ष्म कैसे कहा? कि मन और इन्द्रिय से अगम्य है, इसलिए उसे—आत्मद्रव्य को सूक्ष्म कहा। अभी आत्मद्रव्य की बात चलती है, हों! भावसूक्ष्म की बात बाद में आयेगी। आत्मद्रव्य को सूक्ष्म क्यों कहा? कि मन को, इन्द्रियों को, विकल्प को गम्य नहीं, इसलिए उसे—आत्मद्रव्य को सूक्ष्म कहा गया है। आहाहा! यह एक बात हुई। यह द्रव्यपरमाणु की बात हुई। द्रव्यपरमाणु अर्थात् क्या

कहा ? द्रव्य से आत्मा परम अणु अर्थात् सूक्ष्म । वस्तु आत्मा मन, वाणी, विकल्परहित सूक्ष्म है । क्योंकि मन और इन्द्रिय और राग से वह जानने में नहीं आता । अगम्य है मन और इन्द्रिय को, इसलिए सूक्ष्म । कहो, समझ में आया इसमें ?

तथा भाव (स्वसंवेदनपरिणाम) भी परमसूक्ष्म हैं,... अब भावपरमाणु की बात चलती है । स्वसंवेदन परिणाम है वह भाव सूक्ष्म । वह द्रव्य था, यह भाव सूक्ष्म । वीतरागी ज्ञान का वेदन, वीतरागी पर्यायवाला ज्ञान का वेदन, उसे भावसूक्ष्म कहा जाता है । समझ में आया ? आत्मा, वह स्वद्रव्य के आश्रय से वस्तु की जाति से भात पड़े या किसी परद्रव्य की जाति से स्व में भात पड़े ? आहाहा ! स्वद्रव्य वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है । अनादि ऐसा का ऐसा है, निगोद में भी ऐसा है । समझ में आया ? ऐसा द्रव्य—स्ववस्तु के ही आश्रय से श्रद्धा, ज्ञान और ध्यान करने से मुक्ति होती है । परद्रव्य के आश्रय से (मुक्ति होती) नहीं । बीच में भाव भले हो पंच परमेष्ठी का विकल्प । कहो, समझ में आया ? शुभभाव हो, पूजा-भक्ति हो, मन्दिर आदि का (हो), परन्तु वह सब पुण्यबन्ध का कारण है । समझ में आया ? इतना सब जोर देना और यह वापस यह सब (करना) । वापस मन्दिर बनाना और वापस पूजा और उसकी बड़ी शोभायात्रा (निकाले) । वह कौन करे ? उसे शुभभाव हो, उस समय होनेवाला हो, वह होता है, वह शुभभाव पुण्यबन्ध का कारण है । अन्दर स्थिर नहीं, इसलिए ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं, परन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं है । समझ में आया ? गजब बात !

भाव... आत्मा अत्यन्त द्रव्य अर्थात् सूक्ष्म । मन-इन्द्रिय से गम्य नहीं इसलिए । भाव-वीतरागी स्वसंवेदन पर्याय । रागरहित, मनरहित आत्मा की ज्ञान शक्ति और आनन्द की शक्ति का वेदन, ऐसा सूक्ष्म पर्यायरूप भाव । वह भावसूक्ष्म है, वह परम सूक्ष्म है, देखो ! समझ में आया ? द्रव्य है, वह सूक्ष्म इन्द्रिय और मन को अगम्य है, इसलिए (सूक्ष्म) है । परन्तु यह तो परम सूक्ष्म । यह तो पर्याय है । भावसूक्ष्म तो अरागी आत्मा की शुद्ध स्वसंवेदनज्ञान में ज्ञान के वेदनवाली वीतरागी पर्याय, वह भावसूक्ष्म, परम सूक्ष्म । वह परम सूक्ष्म ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य, पूरी बात ली। यह पर्याय है बात। क्या कहा ? वह द्रव्य है और यह पर्याय है। भेद है न ? परन्तु बात यह एक समय की पर्याय है, वीतरागी पर्याय है। वह त्रिकाली द्रव्य है, वह अकेला द्रव्य शुद्ध है, मन और वचन को अगम्य। समझ में आया ? 'स्वसंवेदनपरिणामः तस्य भावस्य परमाणुशब्देन सूक्ष्मावस्था ग्राह्या।' देखो ? 'सूक्ष्मा कथमिति चेत्। भावविषयत्वेन पञ्चेन्द्रियमनोविषयातीतत्वादिति।' सब इकट्ठा ले लिया। सब इकट्ठा ही है। द्रव्यसूक्ष्म, भावसूक्ष्म इकट्ठा है। कहो, समझ में आया ? है न वहाँ, देखो !

'द्रव्यात्मद्रव्यं तस्य परमाणुशब्देन सूक्ष्मावस्था ग्राह्या।' वस्तु, हों ! 'रागादिक-विकल्पोपाधिरहिता तस्य सूक्ष्मत्वं कथमिति चेत्, निर्विकल्पसमाधिविषयत्वेनेन्द्रिय-मनोविकल्पातीतत्वात्। भावशब्देन स्वसंवेदनपरिणामः तस्य भावस्य परमाणुशब्देन सूक्ष्मावस्था ग्राह्या।' यह सूक्ष्म अवस्था। वह त्रिकाली द्रव्य। 'सूक्ष्मा कथमिति चेत्। वीतरागनिर्विकल्पसमरसीभावविषयत्वेन पञ्चेन्द्रियमनोविषयातीतत्वादिति।' लो ! कहते हैं, वह वीतराग निर्विकल्प परमसमरसीभावरूप हैं, वह मन और इन्द्रियों को गम्य नहीं हैं,... अकेला मन मरे, विकल्प मरे, तब वीतराग परिणति होती है। वहाँ मन और विकल्प को गम्य नहीं।

इसलिए सूक्ष्म है। ऐसा कथन सुनकर फिर शिष्य ने पूछा, कि तुमने परद्रव्य के आलम्बनरूप ध्यान का निषेध किया, और निज शुद्धात्मा के ध्यान से ही मोक्ष कहा। ऐसा कथन किस जगह कहा है ? ऐसा कथन कहाँ है ? आधार माँगता है वह। इसका समाधान यह है... क्या करूँगा ? यह आधार है कहीं ? वह तो आधार हमने बताया और तुमने आधार कहा उसका, ऐसा कहते हैं। द्रव्यपरमाणु और सूक्ष्म भावपरमाणु का आपने आधार कहा। इसका कोई आधार है ? इस जगह से कहा, परन्तु अन्यत्र है ? कि इसी और इसी ग्रन्थ में है, सुन ! है न पहला अध्याय, पहले गाथा ९७, गाथा ९७ है पहले अध्याय की। समझ में आया ? क्या कहते हैं, देखो ! 'अप्पा ज्ञायहि णिम्मलउ' समझ में आया ? १०१ पृष्ठ है। १०१ पृष्ठ यहाँ हमारे, हों ! तुम्हारे चाहे जो हो। ९७ (गाथा)।

अप्पा ज्ञायहि णिम्मलउ किं बहुएँ अण्णेण।

जो ज्ञायंतहँ परम-पउ लब्भइ एक्क-खणेण ॥९७॥

९७ गाथा। समझ में आया ? ... कहीं लिखा है अवश्य। बराबर है। ... कहो, समझ में आया ? देखो ! निर्मल आत्मा को ध्यावो, ऐसा कथन इस ही ग्रन्थ में पहले कहा है, ... है न वहाँ १०१ पृष्ठ पर ९७ गाथा। क्या कहा ? देखो ! निर्मल आत्मा का ही ध्यान कर, और बहुत पदार्थों से क्या। देश काल पदार्थ आत्मा से भिन्न हैं, उनसे कुछ प्रयोजन नहीं है, रागादि-विकल्पजाल के समूहों के प्रपंच से क्या फायदा, एक निज स्वरूप को ध्यावो, निज परमात्मा के ध्यान करनेवालों को क्षणमात्र में मोक्षपद मिलता है। समझ में आया ? भारी कठिन पड़े लोगों को, इसलिए यह बाहर से यदि व्यवहार से हो जाता हो न। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा से धर्म हो जाता हो तो वह ठीक पड़े। उसे व्यवहार भी कहाँ था ? उसकी तो दृष्टि एकदम खोटी है। स्वद्रव्य की दृष्टि हुए बिना, परद्रव्य का आलम्बन का व्यवहार कहा किसे जाये ? और परद्रव्य के अवलम्बन से स्वद्रव्य की पर्याय प्रगटे ? समझ में आया ?

मार्ग भाई ! वीतरागमार्ग है, वह बहुत सूक्ष्म है। साधारण जीव को (शीघ्र पकड़ में आये, ऐसा नहीं)। यह तो अनन्त केवली, तीर्थकर, एक समय में जो आत्मा भगवान ने देखा और प्रगट हुआ भगवान केवली को, ऐसा आत्मा सबका अन्तर वस्तु है। ऐसा आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प, मन, कर्म से रहित, उसकी अन्दर श्रद्धा, ज्ञान और रमणता का ध्यान, वही मुक्ति का कारण है। बाकी बीच में सब विकल्प हों, वे सब पुण्यबन्ध का कारण है। दो, दो के दो फल हैं। दो भाव, दो की दिशा में अन्तर, दो के दो फल। समझ में आया ? भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्य, उसका आश्रय श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्ष, स्वद्रव्य विषय स्व। विकल्प का विषय पर, उसका बन्ध, उसका फल संयोग। वरना दो कैसे हुए ? होता अवश्य है। होता है, दो होते हैं सही, परन्तु दो के फल में अन्तर, दो के विषय में अन्तर, दो का वर्तमान बन्ध और अबन्ध में अन्तर। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : तुरन्त ख्याल में आ जाये। तुम्हारे क्या है ? किसने कहा ?

मुमुक्षु : दो इकट्ठे हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : इकट्ठे साथ में हों। उसमें क्या है? कंकड़ और दाने इकट्ठे नहीं होते? कंकड़ और दाने इकट्ठे नहीं होते? इकट्ठे नहीं होते? कहो, समझ में आया इसमें? ... बात है फिर? क्या कहा? भिन्न ही पड़े हैं अभी, वे भिन्न पड़े तब अत्यन्त वह न रहे, यह रह जाये निर्मल, ऐसा। आहाहा! भारी कठिन जगत को। वह तो माने कि शुभभाव, वह पुण्य, 'पुण्यातीजि पुण्यम्' पवित्र करे और केवलज्ञान और निश्चय रत्नत्रय से पुण्य है, जाओ।

मुमुक्षु : सती होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सती हो क्या? वह भी सती है। आत्म सत्स्वरूप है न, उसमें सती हो, ऐसा कहते हैं। सतो दूसरा कहाँ था? सच्चिदानन्दस्वरूप है। या होम करके जाये अन्दर वह सती। सती दूसरी कहाँ होनी थी? जहाँ वस्तु पड़ी है बड़ी महान, (उसमें) या होम, स्वाहा (हो जा)। निर्विकल्प ध्यान द्वारा स्वाहा हो जा। मन, इन्द्रियों को गम्य नहीं। और समाधिशतक में भी श्रीपूज्यपादस्वामी ने कहा है... देखो! सिद्धभक्ति। गाथा-४। अर्थात् जीवपदार्थ अपने स्वरूप को अपने में ही अपने करके... देखो! षट्कारक। समझ में आया? जीवपदार्थ अपने स्वरूप को (शुद्ध) अपने में ही, अपने करके एक क्षणमात्र भी निर्विकल्प समाधिकर आराधता हुआ सर्वज्ञ वीतराग हो जाता है। कहो, ठीक! समझ में आया? 'स्वयंभूः प्रवृत्तः' बहुत बोल अन्दर लिये हैं, नहीं? 'आत्मानं कर्मतापन्नं आत्मा कर्ता आत्मन्येवाधिकरणभूते असौ पूर्वोक्तात्मा आत्मना करणभूतेन क्षणमन्तर्मुहूर्तमात्रं उपजनयन् निर्विकल्पसमाधिनाराधयन् स स्वयंभूः प्रवृत्तः सर्वज्ञो जात' लो! है न? प्रवचनसार की १६वीं गाथा 'सर्वज्ञ भूतः'। आत्मा अपने से, अपने में, अपने के लिये अपने आधार से अपने को सेवन करता हुआ।

एक क्षणमात्र भी निर्विकल्प समाधिकर आराधता हुआ वह सर्वज्ञ वीतराग हो जाता है। समझ में आया? इतने अधिक बोल उतारे हैं इसमें? थोड़े हैं? अर्थ, ऐसा करके किया है न संस्कृत? 'आत्मानं आत्मा आत्मन्येव...' बस इतना। फिर इसके अर्थ में तो बड़ा लम्बा किया है। यह उतारा है इसमें? बहुत नहीं उतारा, सब है न देखो! 'आत्मानं कर्मतापन्नं आत्मा कर्ता आत्मन्येवाधिकरणभूते असौ पूर्वोक्तात्मा आत्मना

करणभूतेन क्षणमन्तर्मुहूर्तमात्रं उपजनयन् निर्विकल्पसमाधिनाराधयन् स स्वयंभूः' स्वयंभू स्वयं। छह कारक कहे हैं न प्रवचनसार में? प्रवचनसार १६वीं (गाथा)। 'स्वयंभूः' स्वयं कर्ता अपने स्वरूप का, निर्मलानन्द अपना निर्मल कर्म, निर्मल साधन, निर्मल सम्प्रदान, निर्मल में से प्रगट होता, निर्मल के आधार से। पूर्णानन्द की प्राप्ति स्वयंभू स्वयं होती है। दूसरे षट्कारक को शोधने की तुझे आवश्यकता नहीं। आहाहा!

पूरा चैतन्य वहाँ अन्दर घुलता है अन्दर। पुण्य-पाप के विकल्परहित दृष्टि में पूरा आत्मा लेकर उसमें स्थिरता द्वारा यह षट्कारक का परिणमन स्वयं अपने से करता है। इसलिए स्वयंभू केवलज्ञानी होता है। स्वयंभू स्वयं अपने से प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। विकल्प और व्यवहार से प्रगट नहीं होता। ओहोहो! ऐसी बात करने पर अभी इसे स्वीकार करना कठिन पड़े। समझ में आया या नहीं? उसको व्यवहार... है। इसे व्यवहार होता है, होता है, होता है करके उत्साह होता है, तब उसको व्यवहार से होता है, ऐसा पहले से निश्चित करता है। व्यवहार सातवें तक व्यवहार होता है। पर का आश्रय व्यवहार तो अनादि का है। व्यवहार कहनेवाला निकला कौन परन्तु इसे? यहाँ स्वद्रव्य का आश्रय हुए बिना पर का व्यवहार कहे कौन इसे? वह पर का व्यवहार तो अनादि का है। अनादिरूढ़ नहीं कहा? अनादिरूढ़, व्यवहारमूढ़, निश्चय अनारूढ़। (समयसार) ४१३ गाथा में। अनादि का शुभभाव अशुभ, शुभ, अशुभ ऐसे शुभभाव तो अनन्त बार किये हैं। समझ में आया? कहो, व्यवहार तो अनन्त बार किया है। उसे व्यवहार कैसे कहना? वह तो अनादिरूढ़ है, व्यवहारमूढ़ है, उसमें तो मूढ़ हो गया है, उसमें ही एकाकार। निश्चय हो तो व्यवहार का ज्ञान कहलाये। यह तो मूढ़ हो गया है उसमें। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो मोक्ष के मार्ग के लिये बापू! यह कहीं आलसपन करने से कहीं प्रगट हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : भगवान को बारम्बार याद करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को याद करता है स्वयं अपना बचाव करने को, झूठा। ऐसा मानो भगवान को याद करूँ तो मुझे मुक्ति मिलेगी, भगवान को याद करूँ तो मुझे मुक्ति मिलेगी। भगवान कहे, मुझे याद करने का तुझे भान ही नहीं। इस प्रकार से मैं

प्रगट होऊँ, ऐसा नहीं। तू भगवान है, तू तुझे याद कर, तब प्रगट हो, ऐसा है। भगवान को भूले तो भगवान हो। पर भगवान को भूले तो यह भगवान (पर्याय में) भगवान हो। ऐसा कहते हैं यहाँ तो। गजब बात, भाई! समझ में आया ?

जिस शुक्लध्यान में द्रव्यपरमाणु की सूक्ष्मता और भावपरमाणु की सूक्ष्मता ध्यान करनेयोग्य है, ऐसे शुक्लध्यान में निजवस्तु और निजभाव का ही सहारा है, परवस्तु का (सहारा) नहीं। सिद्धान्त में शुक्लध्यान के बयालीस भेद कहे हैं,... ४२ भेद कहे हैं। वे अवांछिक वृत्ति से गौणरूप जानना,... गौणरूप अन्दर में आ जाते हैं, अवांछिक वृत्ति से, मुख्यरूप नहीं। मुख्य तो द्रव्य का ध्यान है, आत्मा का ध्यान, ऐसा कहते हैं। ४२ भेद कहे हैं, वे आ जाते हैं अन्दर राग है इसलिए। ... भेद पर्याय है। शुक्लध्यान के भेद हैं न। शुक्लध्यान में ज्ञान के भेद करते हैं न। परन्तु वह भेद विकल्प है, इसलिए आ जाते हैं। तब कहे, ऊपर विकल्प नहीं न बारहवें में। परन्तु वह ज्ञान का भेद आ जाता है। ज्ञान है न क्षयोपशम अपूर्ण, (वह) गुलाँट खाता है। ऐसे शुक्लध्यान में निज वस्तु और निज भाव का ही सहारा है, परवस्तु का नहीं। वे अवांछिक वृत्ति से गौणरूप जानना, मुख्य वृत्ति से न जानना।

उसका दृष्टान्त—जैसे उपशमसम्यक्त्व के ग्रहण के समय परमागम में प्रसिद्ध जो अधःकरणादि भेद हैं, उनको जीव करता है, वे वांछापूर्वक नहीं होते,... प्रथम सम्यग्दर्शन में अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण के परिणाम हैं, परन्तु मैं यह करता हूँ, ऐसा नहीं। सहज हो जाते हैं। उसे कहाँ खबर है कि मैं यह अधःकरण, यह अपूर्वकरण (करता हूँ)। शुद्ध की ओर के सन्मुख में ऐसे परिणाम हो जाते हैं। समझ में आया ? वांछापूर्वक नहीं होते, सहज ही होते हैं, वैसे ही शुक्लध्यान में भी ऐसे ही जानना। लो ! तात्पर्य यह है कि प्रथम अवस्था में चित्त के स्थिर करने के लिये और विषय-कषायरूप छोटे ध्यान के रोकने के लिये... देखा ? स्थिर का अर्थ यह। अशुभ से हटकर उसमें जरा सा ... विषय-कषायरूप छोटे ध्यान के रोकने के लिये परम्पराय मुक्ति के कारणरूप अरहन्त आदि पंच परमेष्ठी ध्यान करनेयोग्य है,... यह शुभ विकल्प मूल तो कहना है। स्थिर करने के लिये का अर्थ वहाँ निर्विकल्प स्थिर नहीं। अशुभ से

हटने के लिये, अशुभ में से विकल्प को (हटाने के लिये) इतने में जरा ऐसा विकल्प आता है।

साक्षात् मुक्ति कारण जो निज शुद्धात्मतत्त्व है, वही ध्यावनेयोग्य है। इस प्रकार साध्य-साधकभाव को जानकर ध्यावने योग्य वस्तु में विवाद नहीं करना,... देखो! ध्यानेयोग्य वस्तु में विवाद नहीं करना। पंच परमेष्ठी ध्यान साधक... विकल्प व्यवहार होता है। और आत्मध्यान साध्य है, यह निःसन्देह जानना। ... समझ में आया? बस इतना। ध्येय तो आत्मा ही है, परन्तु ऐसा व्यवहार ध्येय विकल्प पंच परमेष्ठी का आता है। बहुत विवाद नहीं करना। यह भी अन्त में आत्मा उसे छोड़कर लक्ष्य में—ध्यान में आवे, तब ही उसे मुक्ति होती है। तब उसका ध्यान जमता है, इसके बिना ध्यान होता नहीं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १३, बुधवार, दिनांक - ०५-०१-१९६६

गाथा - ३४-३५, प्रवचन - ९५

गाथा - ३४

(३४वीं गाथा) दूसरे भाग की । आगे सामान्य ग्राहक निर्विकल्प सत्तावलोकनरूप दर्शन को कहते हैं । विषय जरा थोड़ा सा बदलते हैं अन्दर । बात तो सम्यग्दर्शन की है, परन्तु उसमें सामान्य ग्राहक सत्तावलोकन की व्याख्या थोड़ी साथ में डालते हैं ।

१६०) सयल-पयत्थहँ जं गहणु जीवहँ अग्गिमु होइ ।

वत्थु-विसेस-विवज्जियउ तं णिय-दंसणु जोइ ॥३४॥

जो जीवों के ज्ञान के पहले... 'अग्रिमं' अर्थात् पहले—ज्ञान होने से पहले । ३४ के शब्दार्थ । सब पदार्थों का यह सफेद है, इत्यादि भेद रहित... दर्शन कहना है न ! वस्तु का दर्शन होने पर उसमें यह सफेद है, यह जीव है या यह जड़ है, ऐसा भेद किये बिना । सामान्यरूप देखना, वह दर्शन है, उसको तू जान । ऐसा योगीन्द्रदेव आचार्य ने कहा ।

भावार्थ :- यहाँ प्रभाकरभट्ट पूछता है कि आपने जो कहा कि निजात्मा का देखना, वह दर्शन है,... अभी तक तो आपने ऐसा कहा । दूसरा भाग, दूसरे भाग की ३४ गाथा । दूसरा भाग, पहला भाग नहीं । समझ में आया ? गाथा तो यह आयी । तुम्हें चलना है वह तो निजात्मा का दर्शन, उसे सम्यग्दर्शन कहते हो, उसमें और यह विषय कहाँ डाला आपने ? समझ में आया ? शिष्य का प्रश्न है कि आपने जो कहा कि निजात्मा का देखना, वह दर्शन है,... आत्मा का स्वरूप शुद्ध, उसे अन्तर में देखना, उसे दर्शन कहा जाता है । ऐसा बहुत बार तुमने कहा है, अब सामान्य अवलोकनरूप दर्शन कहते हैं । और कहते हो कि सामान्य अवलोकन, वह दर्शन । समझ में आया ? सामान्य अवलोकन अर्थात् क्या ? और आत्मा का दर्शन अर्थात् क्या ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा, ठीक। कहो, समझ में आया ?

निजात्मा का देखना वह दर्शन, यह तो अभी तक कहते आये हो। यह आत्मा शुद्ध आनन्द ज्ञायकस्वरूप है, उसे देखना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है, वह धर्म है। तो यह और सामान्य अवलोकन कहाँ डाला बीच में ? क्योंकि ऐसा दर्शन तो मिथ्यादृष्टियों के भी होता है,... यह जो सामान्य अवलोकन (अर्थात्) ज्ञान से पूर्व पहले दर्शन होता है, ऐसा दर्शन तो मिथ्यादृष्टि, अभव्य को, सबको होता है। समझ में आया ? उनको भी मोक्ष कहनी चाहिए ? तो मिथ्यादृष्टि को भी मोक्ष होगा। क्योंकि तुम तो निजात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति का दर्शन करना, उसे सम्यग्दर्शन कहा। और तुम कहो कि सामान्य अवलोकन करना भेद किये बिना, यह सफेद, काला, लाल जीव, जड़ जाने, भेद पाड़े बिना देखना, वह दर्शन। ऐसा दर्शन तो मिथ्यादृष्टि को होता है। तो मिथ्यादृष्टि को भी मोक्ष होना चाहिए। प्रश्न समझ में आया ?

इसका समाधान—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन ये दर्शन के चार भेद हैं। इन चारों में मनकर जो देखना, वह अचक्षुदर्शन है,... मन से देखना, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं। जो आँखों से देखना, वह चक्षुदर्शन है। 'इन चारों में से आत्मा का अवलोकन छद्मस्थ अवस्था में मन से होता है... देखो ! उसके साथ मिलाते हैं, सम्यग्दर्शन के साथ। चार में से आत्मा का अवलोकन छद्मस्थदशा में केवलज्ञान से पहले मन से होता है और वह आत्म-दर्शन मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय से होता है। क्या कहा, समझ में आया ?

आत्मा का सम्यग्दर्शन—निजात्मा का दर्शन हो, उसके साथ अचक्षुदर्शन से भी अवलोकन होता है। अचक्षुदर्शन के साथ अवलोकन होता है। वह अचक्षुदर्शन अवलोकन सम्यग्दर्शन के साथ होता है और इसलिए वह अचक्षुदर्शन... दर्शनमोह का मिथ्यात्व, सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय से होता है। सो सम्यग्दर्शन के तो यह दर्शन तत्त्वार्थश्रद्धानरूप होने से मोक्ष का कारण है,... सम्यग्दर्शन को तो वह अवलोकन अचक्षुदर्शन होने से अन्दर तत्त्वार्थ श्रद्धा का भान हुआ है। समझ में आया ? उसके साथ अचक्षुदर्शन का अवलोकन है। उसके साथ का। उसके साथ जो अचक्षुदर्शन अवलोकन

है, आत्मा की तत्त्वार्थ श्रद्धान-दृष्टि प्रगट होने पर सात प्रकृतियों का उपशम, क्षयोपशम, क्षय होने पर शुद्ध चैतन्य की दृष्टि हो, वहाँ जो अचक्षुदर्शन से अवलोकन कहा गया है, उसे सम्यग्दर्शन के साथ का गिनकर उसे मोक्ष का कारण कहा जाता है। समझ में आया? उस सम्यग्दृष्टि को **यह दर्शन तत्त्वार्थश्रद्धानरूप होने से मोक्ष का कारण है...** वह अचक्षु से देखने पर उस काल में तत्त्वार्थश्रद्धान साथ में होता है। समझ में नहीं आया इसमें? मन है, वह अचक्षु है। उससे देखता है, वह तत्त्वार्थ श्रद्धान के काल में उसके साथ देखता है, ऐसा। वह सम्यग्दृष्टि को ही यह होता है। समझ में आया? अकेला सम्यग्दर्शन बिना का जो अवलोकन अज्ञानी को है, उसे यहाँ गिनना नहीं।

और मिथ्यादृष्टियों के तत्त्वश्रद्धान नहीं होने से... देखा! उसमें तो तत्त्वार्थश्रद्धान होने से मोक्ष का कारण है और जिसमें **शुद्ध आत्म-तत्त्व ही उपादेय है...** शुद्ध आत्मा आदरणीय है, ऐसा सम्यग्दर्शन में अचक्षुदर्शन के काल में वह आत्मा उपादेय है, ऐसा भान है। सूक्ष्म बात आयी। कहो, कान्तिभाई! अचक्षुदर्शन अन्दर उस समय का लिया। सम्यग्दर्शन, 'तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शन' है, उस समय अचक्षु अर्थात् मन से आत्मा का जो अवलोकन सम्यग्दर्शन के काल में हो, ऐसे अचक्षुदर्शन को सम्यक् तत्त्वार्थ श्रद्धा के साथ गिनकर उसे मोक्ष का कारण कहा है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को तत्त्वार्थश्रद्धान नहीं। ज्ञायक चैतन्यस्वरूप है, शुद्ध, उसका उसे भान नहीं। **आत्मा का दर्शन नहीं होता।** उसे आत्मा का दर्शन ही नहीं, इसलिए अचक्षु से आत्मा का दर्शन उसे है नहीं। समझ में आया इसमें?

मिथ्यादृष्टियों के स्थूलरूप परद्रव्य का देखना-जानना... है। देखो! मिथ्यादृष्टि को स्थूलरूप से मन से इन्द्रियों द्वारा पर का जानना है। स्वद्रव्य का ज्ञान उसे होता नहीं। स्वद्रव्य की श्रद्धा हो, उसका जो ज्ञान हो, उसके साथ अचक्षुदर्शन देखे, उसे यहाँ अचक्षुदर्शन कहा जाता है। उसे सामान्य अवलोकन और दर्शन यहाँ कहा गया है। तत्त्वार्थश्रद्धान साथ में होता है उसे। समझ में आया? विषय बदला, इसलिए वापस उसे मिलाना चाहिए न। यह पहले आ गया है अपने १४० पृष्ठ पर। समझ में आया? वहाँ

भी पूछा था। यह और यहाँ कहाँ डाला ? १४० पृष्ठ पर आ गया था यह। इसमें १४०। कहो, समझ में आया ?

आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप पुण्य-पाप के विकल्परहित, शरीर, कर्मरहित एक स्वरूप अखण्ड ज्ञायक है, ऐसी अन्तर में श्रद्धा होना, ज्ञान होना, उसे तत्त्वार्थश्रद्धान् सम्यग्दर्शन कहते हैं। तब यहाँ कहा कि अचक्षुदर्शन के अवलोकन को तुमने मोक्षमार्ग में कहाँ डाला ? ऐसा अवलोकन तो अनादि अज्ञानी को भी है। भाई ! हमने डाला, वह तत्त्वार्थश्रद्धान् के साथ जो मन से अवलोकन आत्मा का करता है, उसकी अपेक्षा से हम बात करते हैं। समझ में आया ? चिमनभाई ! और सूक्ष्म आया, तुम आये न ! सत्तावलोकन और यह और यह।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह अवलोकन तत्त्वार्थश्रद्धान् के साथ जो मन से अवलोकन, उसे यहाँ गिना है, ऐसा। उसका अवलोकन मन से, वह आत्मा को लागू पड़ गया है। सम्यक् तत्त्वार्थश्रद्धान् हुआ है, उसे जो मन का अवलोकन आत्मा का हुआ है, उसे यहाँ गिना है। इसके अतिरिक्त के मन और इन्द्रिय से परद्रव्य को अवलोके... यहाँ स्वद्रव्य के अवलोकन की बात है न ? मिथ्यादृष्टि को परद्रव्य पाँच इन्द्रिय और मन से अवलोकन ज्ञान होने से पहले हो, वह अवलोकन तो अभव्य को, सबको होता है। उसमें आत्मदर्शन होता नहीं। समझ में आया ? यहाँ तो आत्मदर्शन और मन के चक्षु, अचक्षु दर्शन का उघाड़, वह आत्मा को अन्दर देखता है, देखता है, उसे यहाँ गिनने में आया है। कहो, फूलचन्दभाई ! समझ में आया इसमें ? सूक्ष्म पड़ता है, सूक्ष्म पड़ता है थोड़ा। परिचय नहीं और अभ्यास नहीं होता अभी। वह कमाने का अभ्यास बहुत हो, इसे एकदम।

कहते हैं कि दर्शन के दो प्रकार—एक तो आत्मतत्त्वार्थ श्रद्धान् सम्यग्दर्शन। अब उसके साथ तुम सामान्य अवलोकन दर्शन और विशेष अवलोकन ज्ञान। उसमें सामान्य अवलोकन दर्शन में चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवलदर्शन चार भेद आते हैं। उसमें तुमने यहाँ सामान्य अवलोकन दर्शन को सम्यग्दर्शन के प्रसंग में उसे कैसे डाला ?

क्योंकि ऐसा सामान्य अवलोकन दर्शन तो मिथ्यादृष्टि को होता है परद्रव्य का। शिष्य ने प्रश्न किया, उससे कहा, भाई! यह तो अन्तर आत्मदर्शन की बात है। मिथ्यादृष्टि को दूसरे द्रव्यों को जानने से पहले सामान्य अवलोकन भेद पड़े बिना हो, वह तो अभव्य, भव्य, सबको होता है। उसकी यहाँ बात परद्रव्य सम्बन्धी के सामान्य अवलोकन की बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो आत्मा का सामान्य अवलोकन, वह तत्त्वार्थश्रद्धान के साथ पहला अवलोकन करता है, उसे यहाँ गिनने में आया है। समझ में आया ?

मिथ्यादृष्टियों को स्थूलरूप परद्रव्य... वापस, स्थूलरूप परद्रव्य का देखना, जानना होता है। **मन और इन्द्रियों के द्वारा होता है, वह सम्यग्दर्शन नहीं है...** मिथ्यादृष्टि को अन्तर आत्मा की श्रद्धा नहीं। आत्मा ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द है, निर्मलानन्द है— ऐसी दृष्टि का ज्ञान सम्यग्दृष्टि को ही होता है, मिथ्यादृष्टि को होता नहीं। **इसलिए मोक्ष का कारण भी नहीं है।** मिथ्यादृष्टि को आत्मा का दर्शन नहीं, इसलिए उसे अचक्षुदर्शन जो सम्यग्दर्शन के साथ दिखना चाहिए, स्वद्रव्य का, ऐसा उसे होता नहीं। इसलिए उसे परद्रव्य का देखना मन, इन्द्रियों से होता है, वह मोक्ष का कारण नहीं कहा गया है। समझ में आया ? ऐसी जरा अटपटी बात आवे, वह फँसे। कहो, समझ में आया या नहीं ? सेठ ! समझ में आया ?

सारांश यह है—कि तत्त्वार्थश्रद्धान के अभाव से सम्यक्त्व का अभाव है... भले, कहते हैं कि चक्षु, अचक्षुदर्शन से मिथ्यादृष्टि परद्रव्य को जानने से पहले सामान्य देखे, वह यहाँ मोक्ष के कारण में होता नहीं। समझ में आया ? आत्मदर्शन तत्त्वार्थश्रद्धान हुआ, उसके साथ मन का अवलोकन मन से आत्मा को देखे, ऐसे अवलोकन को यहाँ गिनने में आया है। स्वद्रव्य, यहाँ स्वद्रव्य को लेना है न ! उस मिथ्यादृष्टि को परद्रव्य का अवलोकन है। समझ में आया इसमें ? **और सम्यक्त्व के अभाव से मोक्ष का अभाव है।** अज्ञानी को तत्त्वार्थश्रद्धा का अभाव है। अर्थात् कि उसे मन से आत्मदर्शन, तत्त्वार्थश्रद्धान के साथ आत्मदर्शन सामान्य अवलोकन चाहिए, वह सम्यग्दर्शन बिना मिथ्यादृष्टि को होता नहीं। मिथ्यादृष्टि को परद्रव्य का अवलोकन है। भले उसे अचक्षुदर्शन है। समझ में आया ? उसे अचक्षुदर्शन है, परन्तु उस अचक्षुदर्शन द्वारा परद्रव्य को जानने से पहले

अचक्षुदर्शन-परद्रव्य का दर्शन करता है, स्वद्रव्य नहीं। समझ में आया इसमें? शान्तिभाई! यहाँ चलता है तो तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन का विषय, परन्तु आचार्य ने जब यह सामान्य अवलोकन डाला।

१६०) सयल-पयत्थहँ जं गहणु जीवहँ अग्गिमु होइ।

वत्थु-विसेस-विवज्जियउ तं णिय-दंसणु जोइ ॥३४॥

पाठ तो इतना रखा है कि आत्मा में सकल पदार्थ का सामान्यरूप से देखना पहला-पहला होता है, फिर वस्तु को विशेष 'विवज्जियउ' अर्थात् विशेष पदार्थ का ज्ञान छोड़कर सामान्यरूप से देखना हो, उसे 'त णिय-दंसणु जोइ' उसे निज दर्शन देख। निज दर्शन देख, ऐसा कहा है। क्या कहा, समझ में आया? पाठ क्या लिया है? चौथे पद में अन्तर है। सब पदार्थ हैं, उन्हें सामान्यरूप से पहले देखे और वह विशेष बिना देखे, उसे 'णिय-दंसणु' देख। उसे निज दर्शन देख, ऐसा कहा है। उसे निज दर्शन देख अर्थात् उसमें सम्यग्दर्शन इकट्ठा डाल दिया, आत्मा का दर्शन डाला। समझ में आया? आचार्य ने स्वयं डाला है। समझ में आया? उसे निज दर्शन कहा है वह।

कहते हैं कि दर्शन के दो प्रकार—एक तत्त्वार्थश्रद्धान दर्शन, वह आत्मदर्शन, आत्मा की प्रतीति, भान। और दर्शन सामान्य उपयोग, ज्ञान विशेष उपयोग। वह ज्ञान और दर्शन के उघाड़ से। वह दर्शन जो उपयोग है, वह पर को जानने में मिथ्यादृष्टि को जानने से पहले सामान्य अवलोकन हो, ऐसा दर्शन तो अज्ञानी को भी होता है। यह बात यहाँ नहीं लेनी है। यहाँ सामान्य अवलोकन, उसे निज दर्शन कहा है, वह तत्त्वार्थ श्रद्धानवाले जीव को निज दर्शन अर्थात् अचक्षुदर्शन से देखना हो, उसे यहाँ दर्शन कहा जाता है। गजब बात! यह पाठ में डाला है न, इसलिए टीकाकार ने कहा है, कहीं मुफ्त में नहीं कहा।

'तं णिय-दंसणु जोइ' उसे निज दर्शन देख—ऐसा कहा है न स्पष्ट? समझ में आया? आत्मा को ज्ञान होने से पहले दर्शन का भाव हो, उसे तू निज दर्शन देख, ऐसा आचार्य ने कहा। छोटाभाई! तब टीका में विस्तार किया कि भाई! निज दर्शन जो कहा है, वह तत्त्वार्थश्रद्धान हो आत्मा शुद्ध चैतन्य की प्रतीति होने पर, उस काल में जो ज्ञानी

को अचक्षुदर्शन द्वारा मन से निज दर्शन देखना हो, उसे गिनने में आया है। मिथ्यादृष्टि को ज्ञान होने से पहले दूसरे पदार्थों को सामान्यरूप से देखने के उपयोग को यहाँ निज दर्शन नहीं कहा। वह तो परदर्शन है। उसमें आत्मा आया नहीं। समझ में आया? कहो, समझ में आता है? भाई! जुगराजजी! आता है। आहाहा! यह ३४वीं कही। क्या कहते हैं यह?

मुमुक्षु : सब समान।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं कि सब कितने ही बिना भान के हाँ करते हैं, ऐसा कहते हैं।

यहाँ विस्तार तो किया कि आचार्यदेव योगीन्द्रदेव, तत्त्वार्थ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य अभेदरत्नत्रय मोक्षमार्ग की व्याख्या चलती है। इस गाथा में अभेद रत्नत्रय की व्याख्या चलती है, वह पहले से कहा है, देखो उस ओर से। है न? ३१ गाथा। अभेदरत्नत्रय के व्याख्यान की मुख्यता से आठ दोहा-सूत्र कहते हैं,... अभी तो आठवाँ दोहा इसके अन्दर में चलता है, यह तो ३१ से। यह तो अभी तो ३४ है। समझ में आया? कहते हैं कि प्रभु! आपने तो अभेदरत्नत्रय की व्याख्या शुरू की है। अभेदरत्नत्रय अर्थात् कि यह आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव आनन्दस्वरूप की अन्तर दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी लीनता, ऐसे निश्चयमोक्षमार्ग की शुरुआत की है। अभेदरत्नत्रय कहो या निश्चयमोक्षमार्ग कहो। भगवान् आत्मा शुद्धस्वरूप के दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य, ऐसे अभेद रत्नत्रय के अन्दर तो आत्मा का दर्शन आता है, आत्मा का ज्ञान और आत्मा का चारित्र्य (आता है)। उसमें और यह गाथा सामान्य अवलोकनवाली (डाली) कि जिसमें दूसरे पदार्थ को जानने से पहले, विशेष भेद किये बिना पहले देखना होता है, उसे सामान्य अवलोकन कहते हैं। वह तो दर्शन उपयोग में जाता है, दर्शन उपयोग में जाता है। इस आत्मश्रद्धा में वह नहीं (आता)। और पाठ में वापस लिया कि उसे निज दर्शन देख। पाठ लिया कि ऐसे अवलोकन को निज दर्शन देख, ऐसा कहा। समझ में आया?

तब गुरु ने कहा, भाई! यहाँ जो सामान्य अवलोकन लिया है, वह मिथ्यादृष्टि जो परद्रव्य को देखता है, जानने के पहले का भाव, वह भाव यहाँ नहीं लिया। क्योंकि वह

मोक्ष का कारण नहीं। यहाँ तो आत्मा तत्त्वार्थश्रद्धान-सम्यक् श्रद्धा के काल में निज दर्शन मन द्वारा अवलोकन करे, ऐसे निज दर्शन को यहाँ कहा गया है कि जो मोक्ष का कारण है। कहो, हिम्मतभाई! समझ में आया या नहीं इसमें? भाई! हमारे वापस यह सेठ ऐसे हैं, थोड़े-थोड़े सब हाँ तो करते हैं। मीठा कहना बहुत अच्छा है, ऐसा कहे। स्थूल साधारण मीठा हो तो ... पकवान पकवान घर में पकवान हुआ हो न? कैसा है? कि बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। थोड़ा साधारण हो तो बहुत अच्छा कहे। यह हमारे पण्डितजी ने और स्पष्टीकरण किया।

यह बात तो कितनी स्पष्ट तो बात चलती है। अधिकार है मोक्ष के मार्ग का। अभेदरत्नत्रय अर्थात् कि आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य, उसकी बात चलती है। उसमें तुमने यह परद्रव्य को देखना... परद्रव्य को नहीं, सामान्य अवलोकन की बात कहाँ डाली तुमने? यहाँ दर्शन उपयोग ऐसा सामान्य उपयोग (कि जो) ज्ञान से पहले होता है, उसकी व्याख्या कहाँ डाली? समझ में आया? तब कहते हैं कि भाई! इसमें हमने डाली है आचार्य महाराज ने वह निज दर्शनवाला दर्शन डाला है। सामान्य अवलोकन कहा, वह निज दर्शनवाला अवलोकन कहा है। जो मिथ्यादृष्टि को परद्रव्य का अवलोकन होता है और फिर ज्ञान होता है, उस अवलोकन की बात यहाँ नहीं ली है। आहाहा! समझ में आया? कहो, अब समझ में आया या नहीं? आहाहा!

यहाँ तो 'तं णिय-दंसणु जोड़' बस! इसकी बात है लो मूल तो। उसे तू दर्शन, निज दर्शन कहे। देखो, ऐसा पाठ लिया न कि सामान्य अवलोकन ज्ञान होने से पहले होता है, उसे आत्मा का दर्शन तू देख। ऐसा जब कहा गया, तब शिष्य का प्रश्न हुआ कि सामान्य अवलोकन में यदि मोक्ष का कारण हो तो ऐसा सामान्य अवलोकन तो अभव्य मिथ्यादृष्टि को होता है। अनादि का सामान्य अवलोकन है। कभी सामान्य अवलोकन रहित जीव होता नहीं। ज्ञान से पहले सामान्य अवलोकन होता है, भेद किये बिना, पश्चात् यह। समझ में आया या नहीं? जैसे यह भगवान है, देखो! सीमन्धर भगवान है। यह जाना, वह ज्ञान है। इससे पहले यह भगवान है, ऐसा नहीं, एक आत्मा में उपयोग सामान्यरूप से हो भेद किये बिना, ऐसी एक शक्ति का उपयोग, उसे दर्शन

उपयोग कहते हैं। फिर यह भगवान है, वह ज्ञान उपयोग हो गया। समझ में आया? तो इस बात में तो मोक्षमार्ग गिना नहीं भगवान ने ऐसे सामान्य विशेष में और तुमने तो यहाँ सामान्य उपयोग को मोक्षमार्ग में डाल दिया। भाई! यह सामान्य को डाला, वह निज आत्मा की अपेक्षा से यहाँ बात ली है। समझ में आया?

यह आत्मा अपनी श्रद्धा, ज्ञान शुद्ध करने के काल में जो मन से उघाड़ है अचक्षुदर्शन का, उसका सहकारी साथ में कारण गिनकर उसे हमने मोक्ष का कारण कहा है। वह जो बाह्य पदार्थ को सामान्य जानकर फिर विशेष जाने, ऐसा अवलोकन मोक्ष का कारण नहीं। वह तो अभव्य मिथ्यादृष्टि को (भी) होता है। समझ में आया? आहाहा! यह तो भाई! ज्ञान की कला है, इसे समझना चाहिए। ज्ञान से ज्ञान करना चाहिए। ३४ हुई। ३५ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ३५

१६१) दंसणपुव्वु हवेइ फुडु जं जीवहँ विण्णाणु।

वत्थु-विसेसु मुणंतु जिय तं मुणि अविचलु णाणु ॥३५॥

आगे केवलज्ञान के पहले छद्मस्थों के पहले दर्शन होता है, उसके बाद ज्ञान होता है, और केवली भगवान के दर्शन और ज्ञान एक साथ ही होते हैं—आगे-पीछे नहीं होते, यह कहते हैं—

जो जीवों के ज्ञान है, वह निश्चय करके दर्शन के बाद में होता है,... छद्मस्थ को। परचीज का ज्ञान हो, उससे पहले एक दर्शन उपयोग होता है देखने का, देखने का। जो जीवों के ज्ञान है, वह निश्चय करके दर्शन के बाद में होता है, वह ज्ञान वस्तु की विस्तीर्णता को जाननेवाला है... अब लिया। उसमें कहा था कि 'वत्थु-विसेस-विवज्जियउ' यहाँ कहा कि वस्तु का विशेष ज्ञानसहित 'विशेषं जानन्' किसी भी चीज को जानने से पहले, भेद पाड़कर जानने से पहले कि यह भगवान है, यह मन्दिर है, यह समवसरण है, यह तीर्थकर है—ऐसा ज्ञान होने से पहले ऐसे विशेष के भेदरहित एक

सामान्य उपयोग हो, वह छद्मस्थ को दर्शन उपयोग कहा जाता है। और पश्चात् वस्तु की विस्तीर्णता को जाननेवाला है, ... देखा ? विशेष। प्रत्येक पदार्थ का विशेष भाग (जाने), कि यह भगवान है, यह चैतन्य है, यह केवली है, यह तीर्थंकर है। समझ में आया ? ऐसा विशेष जानने का भाग, उस ज्ञान को हे जीव संशय विमोह विभ्रम से रहित तू जान। उसे तू सम्यग्ज्ञान जान, संशयरहित, विमोहरहित, भ्रमणारहित।

भावार्थ :- जो सामान्य को ग्रहण करे, विशेष न जाने, वह दर्शन है, ... सामान्य का अर्थ समझ में आया ? यह जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में बहुत आती है यह बात तो। परन्तु अभ्यास नहीं होता न ! महासत्ता का सामान्य अवलोकन, उसे दर्शन कहते हैं। यह जैन सिद्धान्त प्रवेशिका लड़कों को पढ़ाने में आती है। वे लड़के हैं या नहीं ? क्या है वहाँ ? मूलचन्दभाई ! वह आता है। ... साथ में कहा। यह जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है कि किसी भी पदार्थ के विशेष पहलू को जानने से पहले एक दर्शन उपयोग महासत्ता अर्थात् कुछ है, सब 'है' वह यह है, ऐसा भी नहीं, परन्तु 'है' ऐसा एक उपयोग हो जाये, उसे दर्शन कहते हैं। पश्चात् यह है, ऐसा हो गया, यह है, वह विशेष हो गया, वह ज्ञान हो गया। यह जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है।

ऐसे सामान्य को ग्रहण करे अर्थात् ? यह पुस्तक है या अक्षर है — ऐसा नहीं, परन्तु पहले एक दर्शन उपयोग अन्दर होता है, ऐसा कि जो परवस्तु और स्व दो के भेद किये बिना का जो उपयोग हो, उसे सामान्य उपयोग कहते हैं, वह दर्शन। तथा जो वस्तु का विशेष वर्णन आकार जाने, वह ज्ञान है। प्रत्येक चीज के भेदों को, रंग को, गन्ध को, गुण को, पर्याय को भेद जानकर जाने, उसका नाम ज्ञान। यह दर्शन ज्ञान का व्याख्यान किया। यद्यपि वह व्यवहारसम्यग्ज्ञान शुद्धात्मा की भावना के व्याख्यान के समय प्रशंसा योग्य नहीं है, ... अब आया। आचार्य ने यह डाला सही न, इसलिए टीकाकार को स्पष्टीकरण करना पड़ा।

यद्यपि यह व्यवहारज्ञान। कौन सा व्यवहारज्ञान ? कि परपदार्थ आदि को सामान्यरूप से पहले देखे और फिर जाने, ऐसा यहाँ व्यवहार सम्यग्ज्ञान भावना के व्याख्यान के समय प्रशंसायोग्य नहीं। ऐसी व्याख्या अभी प्रशंसायोग्य नहीं। क्योंकि अभी तो आत्मा

के भावना की सम्यग्दर्शन-ज्ञान की बात चलती है। समझ में आया ? तो भी प्रथम अवस्था में प्रशंसा योग्य है, ऐसा भगवान ने कहा है। तो भी वह दर्शन सामान्य और विशेष ज्ञान, उसका जानना, वह पहले श्रेणी में ठीक कहा है। जानने के लिये ठीक है। क्या कहा ?

इस गाथा में तो दर्शन उपयोग और ज्ञान उपयोग की ही व्याख्या है। इस गाथा में। उसमें आत्मा की व्याख्या नहीं। दर्शन उपयोग अर्थात् किसी भी चीज़ को या सभी चीज़ों को सामान्यरूप से उपयोग में आवे, वह दर्शन और भेद पाड़कर जाने, वह ज्ञान। ऐसा वह तो व्यवहारिक ज्ञान कहलाता है, कहते हैं। सामान्य और विशेष पदार्थ का जानना, वह तो व्यवहारिक ज्ञान है। वह ऐसे शुद्धात्मा की एकाग्रता के व्याख्यान के समय प्रशंसायोग्य नहीं। तो भी प्रथम अवस्था में प्रशंसा योग्य है,... तथापि वह सामान्य दर्शन और विशेष ज्ञान, वह पहले जानना चाहिए। दर्शन और ज्ञान के लक्षण, उसका उपयोग क्या है, कार्य क्या है, वह जानना चाहिए। बस, इतनी बात। ऐसा भगवान ने कहा है। कहा है अन्दर ऐसा, हों ! समझ में आया ? 'तथापि भणितं भगवता' भगवान ने कहा है। भगवान अर्थात् यहाँ आचार्य महाराज ने कहा है जानने के लिये, इसलिए जानना। पहला दर्शन है। यह श्रद्धा, दर्शन आत्मा की बात है, परन्तु यह एक दर्शन-ज्ञान को जानना चाहिए कि जिससे इनकी गड़बड़ हो नहीं, ऐसा।

क्योंकि चक्षु-अचक्षु अवधि केवल के भेद से दर्शनोपयोग चार तरह का होता है। इन चार भेदों में दूसरा भेद अचक्षुदर्शन मनसम्बन्धी निर्विकल्प भव्यजीवों के... अब। यह क्यों जानना चाहिए ? कि इसके अन्दर का एक अचक्षुदर्शन जो भाव है चार में से, वह दूसरा भेद अचक्षुदर्शन मनसम्बन्धी निर्विकल्प भव्यजीवों के दर्शनमोह, चारित्रमोह के उपशम तथा क्षय के होने पर शुद्धात्मानुभूति रुचिरूप वीतराग सम्यक्त्व होता है,... उसके साथ वह सहकारी कहना चाहते हैं। ऐसा उपयोग दर्शन ... क्या कहा ? कि मन से अचक्षुदर्शन में निर्विकल्प भव्य जीवों को दर्शनमोह और चारित्रमोह के क्षय, उपशम और क्षयोपशम में शुद्धात्मानुभूति रुचिरूप वीतराग सम्यक्त्व। शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा निर्मल है, ऐसी श्रद्धा शुद्ध की प्रतीति का अनुभव, ऐसा जो वीतराग समकित। और शुद्धात्मानुभूति में स्थिरतारूप वीतरागचारित्र होता है,... उस

समय रागरहित स्वरूप में स्थिरता। उस समय पूर्वोक्त सत्ता के अवलोकनरूप मनसम्बन्धी निर्विकल्पदर्शन निश्चयचारित्र के बल से विकल्परहित निज शुद्धात्मानुभूति के ध्यानकर सहकारी कारण होता है। क्या कहते हैं? यह अवलोकन डाला, उसका सार्थकपना बतलाते हैं जरा। आत्मा रागरहित, पुण्य-पापरहित की आत्मदर्शन की दृष्टि-निश्चय वीतराग रुचि और रागरहित स्वरूप की चारित्रदशा, उसके काल में मन से अवलोकन, ऐसा जो अचक्षुदर्शन, उसे सहकारी कारणरूप से गिनकर यहाँ सामान्य अवलोकन कहा गया है।

फिर से। कहते हैं, यहाँ आचार्य महाराज योगीन्द्रदेव दर्शनपूर्वक ज्ञान (कैसे होता है, उसकी बात करते हैं)। किसी भी वस्तु को विशेषरूप से जानने से पहले एक दर्शन उपयोग होता है और पश्चात् विशेष जानना, उसे ज्ञान कहते हैं। कहते हैं कि यहाँ तो मोक्ष के मार्ग का अधिकार है, (इसलिए) यह बात अभी प्रशंसायोग्य नहीं, तथापि कहते हैं कि भगवान ने उस दर्शन और ज्ञान के उपयोग का ज्ञान पहले करना चाहिए, ऐसा उचित गिना है और उसमें से तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन हो और उसके साथ रागरहित चारित्रदशा हो, उस काल में उस दर्शन में से जो अचक्षुदर्शन का एक भाग है, उस अचक्षुदर्शन का उपयोग ऐसे वीतरागदृष्टि और वीतरागचारित्र के समय सहकारी कारण के साथ उपयोग गिनने में आया है। समझ में आया? वह अचक्षुदर्शन अन्दर का लिया था, भाई! यहाँ तो सहकारी निमित्तकारणरूप से गिना है। बदलकर बात की है। श्रद्धा, ज्ञान अन्तर का हुआ और अन्तर की रमणता हुई। तब उसमें ऐसा कहा कि अचक्षुदर्शन अवलोकन निज दर्शन को लिया था न? इसलिए इकट्ठा गिना। यहाँ तो आत्मा की श्रद्धा और चारित्र के काल में इन चार उपयोग में से एक अचक्षुदर्शन का उपयोग साथ में सहकारी—साथ में होता है, इसलिए उसे कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : निजदर्शन....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें निजदर्शन सिद्ध किया, यहाँ सहकारी कारण है, ऐसा सिद्ध किया। क्योंकि इसमें—पाठ में निजदर्शन शब्द नहीं है। पाठ में तो

१६१) दंसणपुव्वु हवेइ फुडु जं जीवहँ विण्णाणु।
वत्थु-विसेसु मुणंतु जिय तं मुणि अविचलु णाणु ॥३५ ॥

ऐसा। समझ में आया? पहली गाथा में तो ऐसा कहा था कि दर्शन, वह निजदर्शन। भाग किये थे सामान्य और विशेष अवलोकन के। सामान्यरूप से दूसरे पदार्थ को भेद पाड़े बिना देखना, वह सामान्य उपयोग है और भेद पाड़कर देखना, वह विशेष है। उस काल में निजदर्शन डाला था आचार्य ने। इसलिए टीकाकार ने उस दर्शन-श्रद्धा काल में अचक्षुदर्शन का उपयोग अवलोकन भी साथ में होता है। ऐसा करके निजदर्शन को अवलोकता है अचक्षुदर्शन, ऐसा कहकर मोक्ष के कारण में इकट्ठा डाला था।

इस गाथा में तो आचार्य ने निजदर्शन नहीं लिया। मात्र पदार्थ को सामान्यरूप से भेद पाड़े बिना उपयोग होना, उसे सामान्य कहते हैं छद्मस्थ को। केवली को एक साथ होते हैं, उसकी बात नहीं। और सामान्यरूप से उपयोग हो और विशेष जानने का, यह जड़ है, यह चेतन है, यह सफेद है, यह ज्ञान है—ऐसा विशेष उपयोग, उसे ज्ञान उपयोग कहते हैं। तब कहते हैं यहाँ तो मोक्षमार्ग की बात इसमें तो आयी ही नहीं, आत्मदर्शन की बात तो इसमें आयी नहीं और यह क्यों डाला? समझ में आया?

एक तो यह कि मोक्ष के मार्ग के काल में ऐसा ज्ञान अभी व्यवहार से तो प्रशंसायोग्य नहीं। परन्तु पहले जानना चाहिए, इस अपेक्षा से प्रशंसायोग्य कहा। दूसरी बात कि आत्मा के अन्तर दर्शन के और चारित्र के रमणता में यह अचक्षु चार में से एक भाग अचक्षुदर्शन उपयोग सहकारी—साथ में काम करता है, उतना लेकर यहाँ कहा गया है। कान्तिभाई! बहुत सूक्ष्म परन्तु इसमें कितना याद रखना, कहते हैं। याद तो सब कितना रखते होंगे वहाँ घर में मशीन-बशीन में कितना रखते होंगे? आहाहा! क्यों, हरकिशनदास! व्यापार-धन्धा में कितना रखते होंगे? आहाहा! यह तो स्पष्ट बात तो बहुत कही गयी है।

देखो यहाँ, उस समय पूर्वोक्त सत्ता के अवलोकनरूप मनसम्बन्धी निर्विकल्पदर्शन... पूर्वोक्त सत्ता के अवलोकनरूप, हों! उसकी बात है। भाई! वह तो

निजदर्शन की बात में वह डाला था उसमें। यह तो पूर्वोक्त सत्ता के अवलोकनरूप मनसम्बन्धी निर्विकल्पदर्शन निश्चयचारित्र के बल से विकल्प रहित निज शुद्धात्मानुभूति के ध्यानकर सहकारी कारण होता है। यह उपयोग सहकारी कारण साथ में है। वह निजदर्शन कहा था, निजदर्शन में डाला था और यहाँ तो निजदर्शन में श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के साथ सहकारी कारण है। समझ में आया? दर्शन उपयोग है या नहीं कुछ? कहते हैं। क्या कहना है? कि यह सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र है, तब दो उपयोग में से कोई उपयोग है या नहीं? या उपयोग एक भी नहीं। इसलिए उसे इस दर्शन के सामान्य अवलोकन को सहकारी गिनकर साथ में डाला है। क्या कहा? कि उस समय ज्ञान नहीं, भाई! ऐसा कहना है। उस समय ज्ञान यह जो सामान्य उपयोग के साथ का विशेष है, ऐसा यह और यह, ऐसा नहीं। यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान और चारित्र में जहाँ पड़ा है, उसके साथ ऐसा एक सामान्य अवलोकन विशेष भेद का ज्ञान ऐसा नहीं, यह है न, यह है न, यह है परपदार्थ का, परन्तु उसके साथ ऐसा सामान्य अवलोकन सहकारी कारण गिनकर यह बात इकट्ठी कही गयी है।

स्व का ज्ञान है, स्व की श्रद्धा है, स्व की स्थिरता है। उस समय कहते हैं कि ऐसा एक अचक्षुदर्शन का अवलोकन सहकारी कारण गिनकर कहा गया है। समझ में आया या नहीं? उन परपदार्थ के विशेष प्रकार और वह यहाँ काम नहीं अभी। समझ में आया? इसलिए आचार्य ने इस श्लोक में निजदर्शन नहीं डाला, तथापि चार दर्शन सामान्य की व्याख्या डाली और विशेष ज्ञान का डाला, उसका जरा सा सफलपना बताते हैं। आहाहा!

आत्मा... अपना भले ज्ञान है, अपनी श्रद्धा है और अपना चारित्र है। वह तो अभेदरत्नत्रय, वह तो उसकी व्याख्या चलती ही है। समझ में आया? तब कहे, वह सामान्य और विशेष जो उपयोग है न, उसमें का एक अचक्षुदर्शन का उपयोग साथ में सहकारी कारण है, वहाँ उस समय वह ज्ञान दूसरे पदार्थ का ऐसा और वैसा, ऐसा कुछ है नहीं। इसलिए उसे अचक्षुदर्शन को सहकारी गिनकर इसमें उपयोग को लिया है। छद्मस्थ के लिये। केवली की यह बात नहीं है। समझ में आया इसमें? भाई! बातें भारी

सूक्ष्म, भाई! यह तो ज्ञान की लीला है। बहुत प्रकार से जो-जो विधि है न, उसे जो भजती हो, उसके प्रकार समझाते हैं। उसका इसे अभ्यास न हो और कठिन लगे, इससे कहीं बात छोड़ दे?

इसलिए व्यवहारसम्यग्दर्शन और व्यवहारसम्यग्ज्ञान भव्यजीव के ही होता है,... देखो! क्या कहते हैं? सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान अच्छा और सच्चा निश्चयसम्यग्दर्शन, वह भव्य को ही होता है और अभव्य को निश्चयसम्यग्दर्शन नहीं, इसलिए व्यवहारसम्यग्दर्शन नहीं। अभव्य को और मिथ्यादृष्टि को व्यवहारसम्यग्दर्शन का ज्ञान भव्यजीव के ही होता है। क्यों यह कहा? कि जब दर्शन उपयोग सहकारी कहा, जिसे आत्मदर्शन और आत्मज्ञान जिसे वर्तता है, उसे ऐसा सहकारी कारण है। भव्य को ऐसा व्यवहारसम्यग्दर्शन आदि हो, उसे ऐसा उपयोग होता है, अभव्य को तो व्यवहारसम्यग्दर्शन और ज्ञान होता नहीं। समझ में आया?

अभव्य के सर्वथा नहीं,... व्यवहारसम्यग्दर्शन और व्यवहारज्ञान भी नहीं। क्योंकि अभव्य जीव मुक्ति का पात्र नहीं है। समझ में आया? अभव्य जीव तो मुक्ति के योग्य ही नहीं। जो मुक्ति का पात्र होता है, उसी के व्यवहाररत्नत्रय की प्राप्ति होती है। समझ में आया? जिसे निश्चयरत्नत्रय हो, उसे व्यवहाररत्नत्रय होता है। जिसे आत्मदर्शन, ज्ञान, चारित्र हो, उसे व्यवहारदर्शन आदि होता है। जिसे निश्चय न हो, उसे होता नहीं। इसलिए व्यवहारदर्शन और ज्ञान अभव्य को गिनने में आये नहीं। व्यवहाररत्नत्रय परम्पराय मोक्ष का कारण है,... व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान तो जिसे निमित्तरूप से होते हैं, उसे निश्चय उपादानरूप से शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र होते हैं। इसलिए व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी जिसे निश्चयरत्नत्रय हो, उसे व्यवहार गिनने में आया है। अभव्य को तो निश्चय नहीं, इसलिए व्यवहार भी उसे है नहीं। समझ में आया?

अचक्षुदर्शन का उपयोग अभव्य को है, परन्तु उसे यह तत्त्वश्रद्धान आदि जो है, निश्चय या व्यवहार, (वह) एक भी नहीं। इसलिए वह अचक्षुदर्शन का उपयोग उसे कुछ (नहीं)। सहकारी किसे कहा? कि जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसे ऐसे अचक्षुदर्शन को सहकारी कहा। इसे तो यह एक भी नहीं, इसलिए इसे सहकारी

कारण भी है नहीं। इसलिए सहकारी अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग नहीं तो व्यवहार भी सहकारी मोक्षमार्ग भी नहीं। भाई! क्या कहा? उस अचक्षुदर्शन को सहकारी कारण कहा न? साथ में यह व्यवहाररत्नत्रय सहकारी कारण उसे नहीं। समझ में आया? जिसे आत्मा के निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य वर्तते हैं, उसे यह अचक्षुदर्शन का उपयोग सहकारी कहा जाता है। परन्तु जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन आदि नहीं, उसे अचक्षुदर्शन सहकारी नहीं अर्थात् कि उसे व्यवहाररत्नत्रय भी सच्चा नहीं। समझ में आया? तो उसे व्यवहाररत्नत्रय भी कहने में (आता नहीं)। यह तो अचक्षुदर्शन सहकारी भी उसे है नहीं। और वहाँ से वहाँ निकाला।

कहते हैं कि भाई! देखो, सत्तावलोकन की व्याख्या तो यह की। उसमें एक अचक्षुदर्शन को भी लिया सहकारिरूप से। परन्तु सहकारिरूप से किसे? कि जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य हो उसे। ऐसे व्यवहाररत्नत्रय सहकारी भी किसे? समझ में आया? आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, आत्मचारित्र्य हो, उसे व्यवहाररत्नत्रय सहकारी होता है। जिसे वह नहीं, उसे व्यवहाररत्नत्रय सहकारी नहीं। वह है नहीं, इसलिए अभव्य को, मिथ्यादृष्टि को अचक्षुदर्शन अवलोकन, वह तो परपदार्थ सम्बन्धी है। इसलिए उसे निश्चय और व्यवहार दोनों रत्नत्रय नहीं। इसलिए उसे अचक्षुदर्शन जो वह सहकारी जो निश्चय दर्शन-चारित्र्य में कहा गया था, वह इसे नहीं। गजब, भाई! टीकाकार की रचना भी पाठ को मिलानकर करनी है न!

जो पर की श्रद्धा करे व्यवहार, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा... समझ में आया? शास्त्र का ज्ञान... समझ में आया? या पंच महाव्रत के परिणाम सहकारी हैं। किसे वह व्यवहार होता है? कि जिसे निश्चय हो, उसे व्यवहार होता है। समझ में आया? जिसे निश्चय श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र्य है, उसे उसके साथ ध्यान में, अवलोकन में उस अचक्षुदर्शन को सहकारी कहा गया है। इसी प्रकार जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य हो, उसे व्यवहार से सहकारी कहा जाता है। तो उसे वह अचक्षुदर्शन सहकारी कहा जाता है। इसे तो अचक्षु सहकारी नहीं, निश्चय नहीं, इसलिए व्यवहार भी नहीं। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं, मिथ्यादृष्टि है। परद्रव्य का अवलोकन है। व्यवहार समकित भी नहीं। यहाँ तो ऐसा डाला लगे कि वह सहकारी अचक्षुदर्शन को कहा न। सहकारी किसे लागू पड़ता है ? जिसे निश्चयसम्यक्चारित्र हो उसे। ऐसे सहकारी व्यवहार किसे लागू पड़े ? जिसे निश्चय हो उसे। समझ में आया ?

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंगी को बाह्य वेश है, नग्न मुनि है। व्यवहाराभास है। व्यवहार कहलाये सही, परन्तु वह व्यवहाराभास है। व्यवहार से ऐसा कहा जाता है। व्यवहार से ऐसा कहा जाता है। शास्त्र में है अभव्य। व्यवहारदर्शन, व्यवहारज्ञान और व्यवहार क्रियाकाण्ड, शास्त्र का ज्ञान आदि है, निश्चयसम्यग्ज्ञान नहीं, इसलिए वह व्यवहार तो अभव्य भी ऐसा करता है, परन्तु उस व्यवहार को व्यवहाराभास कहा जाता है। समझ में आया ? कमाने में ऐसा अटपटा आता होगा ? कमाने में क्या, वह तो पुण्य हो तो कमाता है, उसमें धूल में कुछ नहीं।

मुमुक्षु : है सही, लगता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लगता नहीं। उसमें रस हो तो अटपटा लगे नहीं। आहाहा !

देखो ! यहाँ परम्परा कारण जो व्यवहार है, वह अभव्य को नहीं। निश्चय बिना कैसा ? तब वे कहते हैं कि पहले व्यवहार हो, फिर निश्चय। यह तो साथ-साथ कहना चाहते हैं। समझ में आया ? मुक्ति का पात्र साथ-साथ में कहना चाहते हैं। जैसे वह सहकारी कारण साथ में कहना चाहते हैं न, भाई ! वह अचक्षुदर्शन के साथ कहना चाहा। यह हो तो उसको कहा जाता है, ऐसा। समझ में आया ? साथ में कहना चाहते हैं, हों ! ऐसा नहीं कि व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, ऐसा नहीं है। मुक्ति चारित्र के बल से, ऐसा लिया है न उसमें ? बलेन। अर्थात् वह उपयोग वहाँ लागू पड़ गया है न ! वह बल है, वह स्थिरता का, ऐसा। उसमें वह अचक्षुदर्शन का उपयोग सहकारी कहा गया है। स्थिर हो गया है न अन्दर। दर्शनसहित को स्थिर... अचक्षुदर्शन का उपयोग यहाँ कहा गया है।

ऐसा फिर कहा कि व्यवहारसम्यग्दर्शन और व्यवहारसम्यग्ज्ञान भव्य जीव के ही होता है,... सहकारी कारण निश्चय बिना होता नहीं। अभव्य के सर्वथा नहीं,... क्योंकि अभव्य जीव मुक्ति का पात्र ही नहीं। जो मुक्ति के पात्र होता है, उसी के व्यवहाररत्नत्रय की प्राप्ति होती है। यहाँ तो कहना है कि सहकारी रत्नत्रय भी निश्चय हो, उसे होता है। जिसे निश्चय नहीं, उसे सहकारी कहना किसके साथ? साथ में सहकारी कहना किसे? कोई अन्दर हो, उसे कहना या न हो उसे? व्यवहाररत्नत्रय परम्पराय मोक्ष का कारण है,... अर्थात् यह साधकपना विकल्प से निमित्त से कहा है, उसे छोड़कर सिद्ध होगा। और निश्चयरत्नत्रय साक्षात् मुक्ति का कारण है, ऐसा तात्पर्य हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु उसमें अन्दर ऐसा क्यों डाला, उसे जरा मिलाया। ३४ में निजदर्शन शब्द पड़ा था, इसलिए अवलोकन, ऐसा डाला। इसमें सामान्य बात थी, इसलिए सहकारी कारणरूप से डाला। वह अपने में डाला था। भाई! सहकारी कारण डाला, उसमें अपने में इकट्ठा डाला था। समझ में आया? आहाहा!

इसकी क्रीड़ा, इसे क्रीड़ा कैसे हो, इसकी खबर नहीं होती। इसका दर्शन उपयोग, इसका ज्ञान उपयोग, इसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र... समझ में आया? इसकी सम्पदा, इसके कार्य क्या हैं? उसका कारण क्या है? स्थिति क्या है? उसे बराबर जाननी चाहिए, भाई! जाननी चाहिए। ऐसे कहीं ऊपर-ऊपर से पूरा माल मिल जाये, ऐसा नहीं। पूरा तत्त्व ही अन्दर चिदानन्द पड़ा है। ओहोहो! उसकी शक्तियों के उपयोग के कार्यों का वर्णन है ... श्रद्धा का कार्य, ज्ञान का कार्य, उस दर्शन उपयोग का कार्य। सब कार्यों का वर्णन है न। निश्चयरत्नत्रय साक्षात् मोक्ष का कारण है, ऐसा तात्पर्य हुआ, लो!

मुमुक्षु : संशय, विभ्रम, विमोह रहित

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान। दूसरा किसे कहा जाये ज्ञान?

आगे परमध्यान में आरूढ़ ज्ञानी जीव समभाव से दुःख-सुख को सहता हुआ...

आत्मा के दर्शन, ज्ञान में, चारित्र में लीन हुआ, वह जीव सम सुख-दुःख को सहता है। संयोग अनुकूल-प्रतिकूल में धर्मी समतारूप से परिणमता है। अभेदरत्नत्रय की व्याख्या है न! आत्मा का दर्शन, श्रद्धा और ज्ञान के साथ धर्मी जीव अनुकूल-प्रतिकूल संयोग में वीतराग समभाव से परिणमता है। जिससे उसे चारित्र की दशा निर्मल होती है। **अभेदनय से निर्जरा का कारण होता है,...** उसका यह आत्मा निर्जरा का कारण है। शुद्ध श्रद्धा, शुद्ध ज्ञान और साथ में समता परिणाम। वह आत्मा ही निर्जरा का कारण है। पूर्व के बँधे हुए कर्म, उसे खिर जाते हैं, यह बात विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १४, गुरुवार, दिनांक - ०६-०१-१९६६

गाथा - ३६ से ३८, प्रवचन - ९६

परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की ३६वीं गाथा, अर्थ हो गया है न, थोड़ा सा बाकी है। फिर से (अन्वयार्थ)।

हे जीव, वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी... अर्थात् कि आत्मा में राग बिना का ज्ञान का ज्ञान होने पर वीतरागी आत्म स्वसंवेदनज्ञानी, वह आत्मध्यान में लीन... 'ध्याननिलीनः' ऐसा है न? ध्यान में लीन है। दुःख और सुख को समभावों से रहता हुआ अभेदनय से शुभ-अशुभ कर्मों की निर्जरा का कारण है,... वह शुभ और अशुभ दोनों कर्मों की निर्जरा का कारण है। आत्मा के ध्यान में स्थिर होने पर शुभाशुभ कर्म की निर्जरा होती है। ऐसा भगवान ने कहा है, और बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहरहित परद्रव्य की इच्छा के निरोधरूप बाह्य अभ्यन्तर अनशनादि बारह प्रकार के तपरूप भी वह ज्ञानी है। तपस्यासहित ज्ञानी है, ऐसा कहना है। अकेले ज्ञानी नहीं।

भावार्थ :- यहाँ प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया, कि हे प्रभो! आपने ध्यान से निर्जरा कही,... आत्मा के ध्यान से शुभाशुभ कर्म की निर्जरा होती है, शुभाशुभ कर्म जलते हैं—ऐसे आपने ध्यान की बात की। वह ध्यान एकाग्र चित्त का निरोधरूप उत्तम संहननवाले मुनि के होता है,... तुम अभी पंचम काल में यह ध्यान की बात करते हो, परन्तु शास्त्र में तो ऐसा कहते हैं कि भाई! उत्तम संहनन हो, उसे ध्यान होता है। जहाँ उत्तम संहनन ही नहीं है, वहाँ ध्यान किस तरह से हो सकता है? क्या प्रश्न उठा, समझ में आया? कि आत्मा में शुद्धस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति एकाग्र ध्यान (होने से) उससे पुण्य-पाप, शुभाशुभ कर्म जलते हैं। तो वह ध्यान तो शास्त्र में पहले संहननवाले को ऊँचा ध्यान कहा है और अभी तो वह नहीं। तो अभी ध्यान से किस प्रकार से निर्जरा होगी?

उसका समाधान श्रीगुरु कहते हैं—उत्तम संहननवाले मुनि के जो ध्यान कहा है,... शास्त्र में—तत्त्वार्थसूत्र में। वह आठवें गुणस्थान से लेकर उपशम-क्षपकश्रेणीवालों के जो शुक्लध्यान होता है,... समझ में आया? वह श्रेणी माँडे स्थिरता की आठवें गुणस्थान में, उसके लिये बात की है। उपशमश्रेणी वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच इन तीन संहननवालों के होती है,... परन्तु श्रेणी उपशम जो है... समझ में आया? आठवें में वह उपशम, क्षपकश्रेणी, दोनों को शुक्लध्यान होता। इसकी अपेक्षा से कहा। उपशम श्रेणी तो तीन संहनन भी होते हैं। वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच... क्या कहा यह? पहले संहनन में जो उत्तम ध्यान कहा जाता है, उसके लिये वहाँ कहा गया है। बाकी उपशम श्रेणीवाले को शुक्लध्यान कहा, उसकी अपेक्षा से वहाँ भी लेना। परन्तु उपशम श्रेणीवाले को तो तीन संहनन भी होते हैं। समझ में आया? क्षपणश्रेणीवाले को एक होता है, ऐसा कहना है।

उनके शुक्लध्यान का पहला पाया है, वे ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे आते हैं, और क्षपकश्रेणी एक (पहले) वज्रवृषभनाराच संहननवाले के ही होती है,... सिद्ध यहाँ करना है। आत्मा में जो उत्तम श्रेणीवाले को ध्यान जो कहा, पहले संहननवाले को, वह क्षपकश्रेणी की अपेक्षा से ध्यान। उपशम श्रेणी की अपेक्षा से भी आठवें से ध्यान तीन संहननवाले को भी कहा है। वे आठवें गुणस्थान में क्षपकश्रेणी माँडते (प्रारम्भ करते) हैं,... आठवें गुणस्थान में ध्यान में इतनी स्थिरता होती है कि जिसमें कर्म का क्षय करता जाये। उनके आठवें गुणस्थान में शुक्लध्यान का पहला पाया (भेद) होता है, वह आठवें, नववें, दसवें तथा दसवें से बारहवें गुणस्थान में स्पर्श करते हैं,... उस शुक्लध्यान में स्थिर होने से आठ, नौ, दस। ग्यारहवें में नहीं जाये, बारहवें में जाये। ग्यारहवें में नहीं, तथा बारहवें में शुक्लध्यान का दूसरा पाया होता है,... शुक्लध्यान के चार भाग में बारहवें गुणस्थान में शुक्लध्यान का उज्ज्वल ध्यान का दूसरा भाग है। उसके प्रसाद से केवलज्ञान पाता है,... लो! यहाँ तो ऐसा कहा। शुक्लध्यान के दूसरे प्रकार से केवलज्ञान पाता है। वे कहते हैं न, शुभयोग से मोहकर्म का नाश होता है, फिर शुद्ध उपयोग से तीन का नाश होता है और केवल (ज्ञान) होता है। ऐसा नहीं है। शुभकर्म से तो पुण्यबन्धन का कारण होता है और किंचित् पाप की स्थिति घटती है।

शुद्धस्वभाव के ध्यान से ही वास्तव में निर्जरा होती है। समझ में आया ?

और उसी भव में मोक्ष को जाता है। जो क्षपकश्रेणी में ध्यान में स्थिर हो जाये, उसकी क्षपकश्रेणी हो तो तुरन्त उस भव में केवलज्ञान पावे और उस भव में मोक्ष जाये। इसलिए उत्तम संहनन का कथन शुक्लध्यान की अपेक्षा से है। लो ! यह उत्तम संहनन का कथन शुक्लध्यान की अपेक्षा से है। आठवें गुणस्थान से नीचे के चौथे से लेकर सातवें तक शुक्लध्यान नहीं होता,... चौथे से सातवें तक शुक्लध्यान नहीं। धर्मध्यान छहों संहननवालों के है,... छहों प्रकार के हड्डियों की मजबूताई में धर्मध्यान हो सकता है। वह अभी है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ? धर्मध्यान, शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और ज्ञान, आनन्द, उसका ध्यान छहों प्रकार के संहनन में हो सकता है। उपशमश्रेणीवाले को तीन संहनन होते हैं, क्षपकश्रेणीवाले को एक होता है और यह धर्मध्यानवाले को नीचे छहों संहनन होते हैं, निमित्तरूप से। श्रेणी के नीचे धर्मध्यान ही है, उसका निषेध किसी संहनन में नहीं है। अभी वज्रवृषभनाराच (संहनन) नहीं, इसलिए ध्यान नहीं — ऐसा तू कहे तो ऐसा नहीं है। ऐसा यहाँ कहना है। अभी भी ध्यान है, धर्मध्यान है। ऐसा ही कथन तत्त्वानुशासन नामक ग्रंथ में कहा है... रामसेन आचार्य हो गये हैं, (उन्होंने) तत्त्वानुशासन (लिखा है)। कि जो वज्रकाय के ही ध्यान होता है, ऐसा आगम का वचन है,... उसमें कहा है, ऐसा कहते हैं। आगम का वचन ऐसा है कि पहला संहनन हो, उसमें ध्यान होता है।

वह दोनों श्रेणियों में शुक्लध्यान होने की अपेक्षा है,... वह उपशम और क्षपक दो श्रेणी की अपेक्षा से, शुक्लध्यान की अपेक्षा से बात है। और श्रेणी के नीचे जो धर्मध्यान है, उसका निषेध (न होना) किसी संहनन में नहीं कहा है,... किसी हड्डियों की मजबूताई के छह प्रकार में धर्मध्यान का निषेध नहीं किया है। समझ में आया ? ध्यान से निर्जरा होती है, ऐसा जब कहा गया, तब शिष्य ने प्रश्न उठाया कि ध्यान उत्तम संहननवाले को होता है, ऐसा शास्त्र में लेख है। तब (उत्तम संहनन) अभी नहीं तो अभी धर्मध्यान नहीं ? जो उत्तम श्रेणी को धर्मध्यान कहा ... संहननवाले को वह उपशम और क्षपकश्रेणी आठवें (गुणस्थान) की बात है। और नीचे यहाँ होता है धर्मध्यान, उसे

चाहे जो संहनन हो, तो भी धर्मध्यान हो सकता है। धर्मध्यान न हो तो अभी धर्म ही नहीं होगा। समझ में आया ?

राग-द्वेष के अभावरूप उत्कृष्ट यथाख्यातस्वरूप स्वरूपाचरण ही निश्चयचारित्र है, वह इस समय पंचम काल में भरतक्षेत्र में नहीं है,... आत्मा अत्यन्त स्वरूप में यथास्वरूप जैसा है, वैसा स्थिर हो जाये, उसे यथाख्यातचारित्र कहते हैं, वह अभी नहीं है। इसलिए साधुजन अन्य चारित्र का आचरण करो। यथाख्यात नहीं, इसलिए कहीं ध्यान नहीं और ध्यान नहीं, इसलिए कहीं चारित्र नहीं, ऐसा नहीं है। चारित्र के पाँच भेद हैं, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात। उनमें इस समय इस क्षेत्र में सामायिक, छेदोपस्थापना ये दो ही चारित्र होते हैं,... सामायिक और छेदोपस्थापना दो चारित्र अभी मुनियों को होते हैं। अन्य (चारित्र) नहीं, इसलिए इनको ही आचरो। तत्त्वानुशासन में भी कहा है,... लो ! अब यह दूसरी। रामसेन मुनि..

इसका अर्थ ऐसा है कि इस समय यथाख्यातचारित्र के आचरण करनेवाले मौजूद नहीं हैं तो क्या हुआ, अपनी शक्ति के अनुसार तपस्वीजन सामायिक, छेदोपस्थापना का आचरण करो। यह सामायिक तपस्वी अर्थात् आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित, अनुभवसहित स्वरूप की स्थिरता और छेदोपस्थापन का चारित्र करो। यथाख्यातचारित्र नहीं है, उत्तम संहनन नहीं है, इसलिए ध्यान नहीं है और चारित्र नहीं है—ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया ? फिर श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने भी मोक्षपाहुड़ में ऐसा ही कहा है कि अब भी इस पंचम काल में मन, वचन, काय की शुद्धता से आत्मा का ध्यान करके... तिरयण, ऐसा अर्थ किया है। तिरयण आता है न ... यह जीव इन्द्र पद को पाता है,... कुन्दकुन्दाचार्य के समय में स्वयं ने कहा है कि इस काल में भी धर्मध्यान करके इन्द्रपद को पाते हैं। समझ में आया ? इस समय में क्षपकश्रेणी थी नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य के समय में क्षपकश्रेणी, उपशमश्रेणी नहीं थी, तथापि उस काल में आत्मा का ध्यान करके इन्द्रपद को पाते हैं। केवलज्ञान नहीं, यथाख्यातचारित्र नहीं इसलिए। परन्तु आत्मा में शुद्धस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की रमणता करने से बहुत निर्जरा होती है। साथ में जरा राग भाग रह जाता है, उससे पुण्य बाँधे और उसमें से इन्द्रपद को पाते हैं। सच्चे भावलिंगी मुनि कोई इन्द्रपद को पाते हैं, पंचमकाल में भी

पाते हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। उत्तम संहनन नहीं, यथाख्यातचारित्र नहीं, इसलिए अभी चारित्र नहीं और उत्तम संहनन नहीं, इसलिए ध्यान नहीं—ऐसा नहीं है। समझ में आया? धर्मध्यान है और सामायिक, छेदोपस्थापना, ऐसे दो चारित्र हैं — ऐसा सिद्ध किया। चारित्र अर्थात् स्वरूप में रमणतारूप चारित्र, हों!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : समभाव स्थिरता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकाग्रता, वह धर्मध्यान है।

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि भाई! पंचम काल में उत्तम संहनन अभी नहीं—उस काल में कुन्दकुन्दाचार्य थे तब। उस समय यथाख्यातचारित्र का स्वरूप आचरण नहीं था, परन्तु सामायिक और छेदोपस्थापनाचारित्र था और धर्मध्यान था। तो वह जो मरकर इन्द्रपद को पावे। भले उस भव में केवलज्ञान पावे नहीं, परन्तु आत्मा के अनन्त स्वरूप का ध्यान करते-करते राग बाकी रह गया, पुण्यबन्ध हो जाता है, इन्द्र में चले जाते हैं अथवा लोकान्तिकदेव होते हैं। पाँचवें देवलोक में लोकान्तिकदेव हैं। समझ में आया? उनकी आठ सागरोपम की स्थिति है, ब्रह्मचारी देव हैं। उन्हें देवियाँ नहीं होतीं। लोकान्तिकदेव को देवियाँ होती नहीं, ऐसे लोकान्तिक देव हों। पंचम काल के मुनि भी, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है। आत्मा का ध्यान आनन्द ज्ञायकमूर्ति हूँ, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का ध्यान करने से इस काल में भी इन्द्रपद को, लोकान्तिकपद को पाते हैं। निर्जरा करते हैं, उसकी शक्ति है। समझ में आया?

और वहाँ से च्युत होकर मनुष्यभव धारण करके मोक्ष को पाता है। पंचम काल में भी आत्मार्थी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी वीतराग स्वसंवेदन थोड़ा प्रगट हुआ है, विशेष प्रगट नहीं हुआ, इसलिए उसके ध्यान में रहकर और वहाँ से स्वर्ग में जाये। वहाँ से मनुष्यभव धारण करके मोक्ष जाये। लो! यहाँ तो तुरन्त ही बात की। मनुष्यभाव धारण करके मोक्ष जाए। एकावतारी हो कितने ही मुनि, ऐसी स्थिति भी पाँचवें काल में है। संहनन नहीं और दूसरा ऊँचा यथाख्यातचारित्र नहीं, इसलिए यह ध्यान और यह चारित्र है, इसके फलरूप से शुद्धि है और बाकी राग रह जाये, उसमें इन्द्रपद और

लोकान्तिक होते हैं। वहाँ से देवलोक में से निकलकर मनुष्यभव पाकर, मनुष्यभव धारण करके यथाख्यातचारित्र प्रगट करके केवल (ज्ञान) पायेंगे और मोक्ष जायेंगे। कहो, समझ में आया ?

अर्थात् जो इस समय पहले के तीन संहनन तो नहीं हैं,... परन्तु तीन संहनन ऊपर के हैं। इन तीनों से सामायिक छेदोपस्थापना का आचरण करो,... तीनों संहनन के सामायिक स्वरूप की स्थिरता की शान्ति, वह सामायिक, हों! सामायिक अर्थात् शुभ विकल्प, ऐसा नहीं। शुद्ध ज्ञायकस्वरूप की दृष्टि करके उसमें स्वरूप की स्थिरतारूपी चारित्र सामायिक को करो। वह सामायिक अभी तीन संहनन भले हल्के हों, उनमें भी हो सकती है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, इन तीन में चाहे जहाँ कर सकता है। सम्यग्दर्शन कर सकता है, सम्यग्ज्ञान कर सकता है, सम्यक्चारित्र कर सकता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : संहनन चाहे जो हो, उसका कहाँ प्रश्न है यहाँ? संहनन का क्या काम है यहाँ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, न भले हो। तीन होते हैं न, कहा नहीं? तीन में से चाहे जो हो। उसमें क्या है? उसकी बात कहाँ यहाँ है? संहनन की बात नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि तीन संहनन हल्का हो तो भी सामायिक चारित्र आत्मा का ध्यान कर सकता है। और उससे कहीं राग बाकी रह जाये, इन्द्रपद में जाये, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष है। नहीं, क्या कहते हैं? ध्यान वह कहा, वह तो उत्कृष्ट बात... उत्कृष्ट की बात की। तत्त्वार्थसूत्र में उत्तम... चिन्तानिरोधो ध्यानं। ऐसा। समझ में आया ?

धर्मध्यान को आचरो। धर्मध्यान का अभाव छहों संहननों में नहीं है,... देखो! आत्मा के शुद्ध चैतन्य के आनन्द का ज्ञान का ध्यान छहों संहनन में उसका निषेध नहीं

है। अन्तिम में अन्तिम संहनन हो, तो भी आत्मा के आनन्द का ध्यान हो सकता है, सम्यग्दर्शन हो सकता है, सम्यग्ज्ञान हो सकता है और चारित्र भी हो सकता है। शुक्लध्यान पहले के तीन संहननों में ही होता है, उनमें भी पहला पाया (भेद) उपशमश्रेणीसम्बन्धी तीनों संहननों में है, और दूसरा, तीसरा, चौथा पाया प्रथम संहननवाले ही के होता है, ऐसा नियम है। कहो, समझ में आया ? इसलिए अब शुक्लध्यान के अभाव में भी हीन संहननवाले इस धर्मध्यान को आचरो। यह धर्मध्यान परम्पराय मुक्ति का मार्ग है,... यह कैसा धर्मध्यान ? आत्मा शुद्ध चैतन्य पुण्य-पाप के रागरहित, ऐसे शुद्ध आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता, उसे धर्मध्यान निश्चय कहते हैं। समझ में आया ? वह परम्परा मुक्ति का मार्ग है। देखो ! इसमें से कोई निकाले तो, वह शुभभाव है न, वह धर्मध्यान अभी है। वह शुभभाव परम्परा मुक्ति का कारण है। ऐसा नहीं। शुभभाव वास्तविक तो व्यवहार धर्मध्यान है। उस धर्मध्यान के दो प्रकार, उसमें आत्मा के शुद्धता की एकाग्रतारूप ध्यान, वह निश्चय धर्मध्यान। शुभविकल्प रहे, उसे व्यवहार धर्मध्यान कहते हैं। अकेला व्यवहार धर्मध्यान हो और उससे संसार का नाश हो, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया ?

संसार की स्थिति का छेदनेवाला है। देखो, भाषा आयी, भाई ! यह संसार की स्थिति का छेदनेवाला। अनन्त... संसार की स्थिति छेदता है। धर्मध्यान में आत्मज्ञान आदि, श्रद्धा आदि स्थिरता है और किञ्चित् शुभराग है। तो शुभाशुभ परिणाम की ... होती है और शुभभाव में कुछ कर्म की स्थिति घटती है। घटती है। शुभभाव से पाप की स्थिति घटती है। ... छिदती है, ऐसा शास्त्र में आता है। इसलिए अकेले शुभभाव में अनन्त स्थिति घट जाये... समझे न ? अनन्त स्थिति है ही नहीं परन्तु वास्तव में तो। स्थिति अनन्त है कहाँ ? असंख्यभव की ही स्थिति है। असंख्य भव क्या ? असंख्य वर्ष की। ७० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की कर्म की स्थिति होती है। अधिक कर्म की स्थिति नहीं होती। ७० क्रोड़ाक्रोड़ी। सात चौबीसी आधी। साढ़े तीन चौबीसी। २० क्रोड़ाक्रोड़ी की है न चौबीसी ? एक अवसर्पिणी, ऐसी सात अवसर्पिणी लेना, लो ! अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी इकट्ठी करो तो (ऐसी) साढ़े तीन। इतना कर्म की स्थिति का काल है, अधिक काल है नहीं।

जो कोई नास्तिक इस समय धर्मध्यान का अभाव मानते हैं,... जो कोई नास्तिक कहे कि नहीं, अभी धर्मध्यान नहीं होता। अन्दर का ध्यान एकाग्र नहीं होता, ऐसा कहता है। समझ में आया ? देखो यह कहते हैं भाई इसमें। उस शुभभाव की नहीं। धर्मध्यान नहीं अभी, कहते हैं। धर्म अर्थात् आत्मा के शुद्धता की एकाग्रता है ही नहीं अभी। अकेला शुभभाव ही है। ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं अब। समझ में आया ? अकेला शुभभाव तो पुण्यबन्ध का कारण है। पाप की स्थिति घटावे, संसार का छेद न कर सके। संसार-छेद तो आत्मा ज्ञानानन्दमूर्ति प्रभु पुण्य-पाप के विकल्परहित, उसके अन्तर का ध्यान, दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता, वह ध्यान ही संसार का छेद कर सकता है। समझ में आया ?

जो कोई नास्तिक इस समय धर्मध्यान का अभाव मानते हैं,... यह धर्मध्यान अर्थात् यह कहना चाहते हैं। शुभभाव नहीं, ऐसा कौन कहे ? समझ में आया ? परन्तु धर्मध्यान अर्थात् आत्मा की शुद्धता का ध्यान ही नहीं अभी। वह क्षपकश्रेणी शुक्लध्यान हो और पहला संहनन हो तो ही आत्मा की शुद्धता का ध्यान हो, ऐसा कोई कहता हो तो उसे नास्तिक कहा है यहाँ। समझ में आया ? आत्मा पुण्य-पापरहित, विकल्परहित निर्विकल्प चीज है। उसका निर्विकल्प ध्यान, श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता का अंश। वह धर्मध्यान अभी नहीं है ऐसा, यह कहे तो नास्तिक है। वह धर्मध्यान... समझ में आया ?

वे झूठ बोलनेवाले हैं,... शुभभाव का धर्मध्यान नहीं, ऐसा तो कौन कहे ? शुभभाव तो बहुत कहते हैं, सब है, परन्तु वह शुभभाव वास्तविक धर्मध्यान नहीं। धर्मी ऐसा आत्मा अखण्डानन्द ज्ञानमूर्ति का अन्तर ध्यान, उसे धर्मध्यान कहते हैं। शुक्लध्यान में बहुत उज्ज्वलता की एकाग्रता बहुत है। उसमें (धर्मध्यान) उज्ज्वलता थोड़ी और एकाग्रता थोड़ी है। परन्तु है तो आत्मा का ही ध्यान। धर्मध्यान, वह कहीं अकेला शुभभाव नहीं, ऐसा कहना चाहते हैं। धर्मध्यान नहीं इसलिए वे कहे शुभभाव, वह धर्मध्यान। उसके लिये कौन ना कहे ? परन्तु ऐसा कि अभी शुभभाव ही है। बस, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा शुभभाव है, धर्मध्यान नहीं। उसे धर्मध्यान कहना चाहते हैं, ऐसा नहीं। परन्तु वह शुभभाव छेदता है, ऐसा (वे) कहते हैं। शुभभाव मोहनीय कर्म को

छेदता है और शुद्ध उपयोग फिर घाति छेदता है घाति को। केवलज्ञान पाता है, ऐसा (वे) कहते हैं। भारी उल्टा।

इसलिए यहाँ आचार्य कहते हैं। धर्मध्यान अभी नहीं, ऐसा कहे, वे नास्तिक हैं, झूठ बोलनेवाले हैं। यह ध्यान कैसा ध्यान? शुभभाव का? ऐई! मास्टर! इतना जानपना रहित मनुष्य, उसमें फिर जो सामने माने दिये रखे, उसे माने। खबर नहीं होती कि क्या चीज़ है। स्वाध्याय घट गयी, जानपना घट गया। शुगनचन्दजी! डॉक्टर ने वापस डाला अन्यत्र। यहाँ तो कहते हैं कि वह समझनेवाला हो, उसे समझाया जाये तो उसे खबर पड़े न कि यह क्या सच्चा कहते हैं, खोटा कहते हैं। धर्मध्यान नहीं? तब कहते हैं, है। क्यों? – कि यह शुभभाव, वह धर्मध्यान। वह नहीं। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? अन्तर आत्मा की एकाग्रता शुद्धता की नहीं, ऐसा कहे वह धर्मध्यान नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कि शुक्लध्यान में ही आत्मा की शुद्धता का ध्यान होता है और नीचे शुद्धता का ध्यान नहीं होता। इसके लिये यह श्लोक है। समझ में आया? अटकाया है यहाँ ऐसा जरा समझने के लिये। वह लम्बा-लम्बा ले गये सब एक साथ। यहाँ समझने की बात यहाँ है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह समझानेवाला नहीं, परन्तु समझनेवाला हो समान तो उसे ख्याल में आवे न कि यह सच्ची है या यह बात खोटी है। कोई ऐसा कहे कि शुभभावरूपी धर्मध्यान अभी है, दूसरा आत्मा की शुद्धता का नहीं। तो वे कहे कि शुभभाव का धर्मध्यान है, वह तो अनादि से शुभभाव है। उसमें नया धर्मध्यान कहाँ से आया? समझ में आया? ऐसा ख्यालवाला हो तो कहे, शुभभाव वह धर्मध्यान है। शुभभाव तो अभव्य को भी होता है। शुभभाव तो नौवें ग्रैवेयक गया अनन्त बार मुनिव्रत धारण करके, उसे भी था। तो यह धर्मध्यान अभी है, वह कोई दूसरी जाति है। शुभभाव से दूसरी जाति है।

शुक्लध्यान का निषेध कहा, परन्तु शुक्लध्यान की शुद्धता की जो उग्रता, उसमें वह शुद्धता की थोड़ी दशा भी अभी है, ऐसा सिद्ध करना है। शुभभाव को यहाँ सिद्ध

नहीं करना। शुक्लध्यान में उत्तम संहनन में बहुत शुद्धता (होती है)। चिदानन्दस्वरूप की बहुत शुद्धता (होती है)। इसलिए बहुत शुद्धता नहीं, इसलिए अभी अकेला शुभभाव ही है और शुद्धता का अंश नहीं, उसे ऐसा कहते हैं कि धर्मध्यान नहीं, ऐसा कहनेवाले नास्तिक और झूठ बोलनेवाले हैं। समझ में आया? इसके लिये तो यह सब बात माँड़ी है यहाँ इतना-इतना कहने के लिये। तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा है न! उत्तम संहनन एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानं। परन्तु वह तो उत्कृष्ट ... सूत्र है और शुक्लध्यान की अपेक्षा से है। उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी। परन्तु अभी धर्मध्यान है, वह उत्कृष्ट जो शुक्ल है, उत्कृष्ट शुक्ल शुद्ध, उसमें की जाति अभी थोड़ी है। थोड़ी है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। वह शुद्धता थोड़ी नहीं, ऐसा कोई कहे और अकेला शुभभाव ही कहे, वह धर्म का नास्तिक है, उसे धर्म की खबर नहीं। झूठ बोलनेवाला है, ऐसा कहते हैं। ऐई! शुगनचन्दजी! कहाँ थी, ऐसा का ऐसा चलते जाये। यह करो धर्मध्यान, यह धर्मध्यान। क्या धर्मध्यान परन्तु?

मुमुक्षु : शुभभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव तो अनन्त बार हुआ। उस धर्मध्यान का निषेध करना है यहाँ? समझ में आया? उस धर्मध्यान को यहाँ स्थापन करना है? शुभभावरूपी धर्मध्यान को यहाँ स्थापन करना है? यह आया है न परन्तु? इसका अर्थ हुआ (कि) शुक्लध्यान में जो शुद्धता और स्वरूप आचरण स्थिरता का जो चारित्र चाहिए, वह नहीं। परन्तु वह पाँच कहा न? यथाख्यातस्वरूप चारित्र और उसमें जो शुद्धता की उग्रता चाहिए, वह नहीं। यह उसमें का अंश अभी बिल्कुल नहीं थोड़ा, ऐसा कहना चाहते हैं मूल तो। समझ में आया? इसलिए थोड़ा है, इससे उसके साथ रागभाग रह जाता है। रागभाग के कारण फिर स्वर्ग का आयुष्य बँधे, ऐसा सिद्ध करना है यहाँ। समझ में आया? जमुभाई! भारी विवाद उठते हैं।

मुमुक्षु : अर्थफेर

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थफेर पूरा उल्टा ही अर्थ। कुछ मिलान होना चाहिए या नहीं? शुभभाव... धर्मध्यान हो तो शुभभाव तो अनन्त बार हुआ है। नौवें ग्रैवेयक अनन्त

बार गया है। परन्तु सम्यग्दृष्टि अर्थात् क्या तब ? सम्यग्दृष्टि अर्थात् क्या ? शुभभाव, वह सम्यग्दर्शन है ? शुभभाव तो राग है।

मुमुक्षु : शुभभाव से हो सही न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो ? धूल हो शुभ से ? शुभ से पुण्य बँधता है। एक अंश भी अशुद्धता का नाश शुभभाव से नहीं होता। शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञायकस्वभाव ऐसा शुद्धस्वभाव, उसे विषय बनावे दर्शन, ज्ञान, उससे शुद्धि प्रगटे, वह निर्जरा का कारण है। उसे यहाँ धर्मध्यान कहा जाता है। समझ में आया ?

इस समय धर्मध्यान है,... यह धर्मध्यान कौन सा सिद्ध करना है यहाँ ? शुभभाव ? शुक्लध्यान नहीं है। शुक्लध्यान नहीं। ध्यान की उत्कृष्टता का आचरण और उत्कृष्ट ध्यान, ऐसा। आचरण अर्थात् यथाख्यातचारित्र और उत्कृष्ट ध्यान, यह दो नहीं। परन्तु नीचे का धर्मध्यान और सामायिक, छेदोपस्थापनचारित्र, यह दो सिद्ध करना है यहाँ अभी। वह चारित्र कहीं शुभभाव का चारित्र नहीं। चारित्र सामायिक शब्द, वह भी शुद्धता का आचरण है। परन्तु वह यथाख्यातचारित्र का जो आचरण-स्थिरता, शुद्धता है, इतनी अभी नहीं। यथाख्यात स्वरूप के आचरण का चारित्र है, वह नहीं, परन्तु उसमें का स्वरूप आचरण उस जाति का सामायिक और छेदोपस्थापना नाम का स्वरूप का आचरण चारित्र है, ऐसा सिद्ध करना है। कहीं शुभभाव सिद्ध करना है सामायिक शुभभाव ? भाई ! समझ में आया न ? सामायिक, छेदोपस्थापना शुभभाव सिद्ध करना है ? यथाख्यात में शुद्ध और यहाँ शुभ ? ऐसे शुक्लध्यान में...

यथाख्यातचारित्र में बहुत शुद्धता और सामायिक शब्द में थोड़ी शुद्धता, परन्तु जाति तो उसकी है न ? उसी प्रकार शुक्लध्यान में बहुत उग्रता, एकाग्रता, धर्मध्यान में थोड़ी, परन्तु एकाग्रता स्व की एकाग्रता है या पर की यहाँ ? समझ में आया ? लो ! यह बड़ा विवाद है, इसलिए यह जरा चर्चित किया जाता है, हों ! अभी तक सब ले गये एक साथ। क्योंकि वह जानने की बात थी।

यहाँ भगवान उमास्वामी कहते हैं कि उत्तम संहननवाले को ध्यान होता है। ऐसा प्रश्न शिष्य ने किया कि महाराज ! तुम पंचम काल में ध्यान कहते हो, परन्तु शास्त्र में

तो उत्तम संहननवाले को ध्यान कहा है। भाई! उत्तम संहननवाले को कहा है, वह शुक्लध्यान की अपेक्षा से कहा है। परन्तु अभी के धर्मध्यान की अपेक्षा में किसी भी संहनन में धर्मध्यान हो सकता है। वह धर्मध्यान शुद्धता के धर्मध्यान की बात है। समझ में आया? और यथाख्यात का निषेध किया। सामायिक, छेदोपस्थापना शुद्धता का आचरण, आत्मा का सम्यग्दर्शन अनुभव और स्वरूप के स्थिरता का आचरण, ऐसी सामायिक अभी हो सकती है, उसका कहीं भगवान ने निषेध नहीं किया। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : चारित्र कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र कहा न। सामायिक शब्द नहीं? चारित्र बिना मुनि किसका? और सम्यग्दर्शन न हो तो चारित्र किसका? सम्यग्दर्शन आत्मा का विषय हुए बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया? शुभभाव है, वह तो पर विषय है। आत्मा अखण्ड ज्ञानानन्दमूर्ति अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसे लक्ष्य में, विषय में—लक्ष्य में लेकर जो दर्शन होता है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यग्दर्शन शुभाशुभ परिणाम से रहित है, वीतरागी पर्याय है। उसमें एकाग्रता जो होती है, उसे धर्मध्यान कहते हैं। इसलिए कहा कि भाई! देखो, शुक्लध्यान हो, तब तो तद्भव में केवलज्ञान पाता है और शुक्लध्यान नहीं, वज्रनाराचसंहनन नहीं, परन्तु धर्मध्यान है, सामायिक, छेदोपस्थापन और आत्मध्यान की स्थिरता है तो वह मरकर मोक्ष नहीं जायेगा। क्योंकि शुद्धता की एकाग्रता थोड़ी है। समझ में आया? चारित्र भी स्वरूप आचरण का चारित्र सामायिक, छेदोपस्थापना है, इसलिए मरकर स्वर्ग में जायेगा, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा, ऐसी बात सिद्ध करते हैं यह तो। समझ में आया? छोटाभाई! आहाहा! कैसे करना? किस प्रकार करते हैं कुछ खबर पड़ती नहीं।

इस बात को सिद्ध इसलिए करते हैं। तत्त्वानुशासन के दृष्टान्त दिये दोनों। रामसेन और दोनों, हों! दोनों हैं न? एक गाथा ८४, एक गाथा ६। तत्त्वानुशासन में तत्त्व की शिक्षा जहाँ दी, उस तत्त्वानुशासन में ऐसा कहा कि भाई! संहनन अभी तीव्र नहीं, परन्तु इससे धर्मध्यान नहीं, ऐसा नहीं है। वे दो दृष्टान्त (उद्धरण) वे दिये और एक दृष्टान्त

कुन्दकुन्दाचार्य का दिया। तीन का दृष्टान्त देकर योगीन्द्रदेव का कहा हुआ यहाँ सिद्ध करते हैं। भाई! तू भ्रमित न हो। उत्कृष्ट शुक्लध्यान नहीं, उत्कृष्ट संहनन नहीं, इसलिए आत्मा की सिद्धि की श्रद्धा का ज्ञान का ध्यान नहीं, ऐसा न मान। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अकेला अभी यह अशुभभाव को छोड़कर शुभभाव हो, इतनी ... है। ऐसा नहीं। यह कहीं नया नहीं। यहाँ तो नया धर्मध्यान कहना है। शुक्लध्यान की होड़वाला इतना कहना है यहाँ तो। आहा! यथाख्यात की होड़वाला यहाँ सामायिक, छेदोपस्थापना है। वह उत्कृष्ट है, यहाँ तो वह है। इतना अन्तर करना है। आहाहा! समझ में आया? यह ३६वीं गाथा।

अन्तिम सार यह कहा, हों! धर्मध्यान और सामायिक, छेदोपस्थापनचारित्र। ध्यान की अपेक्षा से धर्मध्यान, चारित्र की अपेक्षा ... शुक्लध्यान में ध्यान की अपेक्षा से उग्रता शुद्धता और चारित्र की अपेक्षा से यथाख्यात। यह बराबर है। यह दोनों बात बराबर है। समझ में आया? आत्मा पुण्य-पाप के विकल्परहित शुद्ध, ऐसी दृष्टि और ध्यान न हो तो धर्मध्यान ही नहीं है, ऐसा कहनेवाले ऐसा कहते हैं। ऐसा धर्मध्यान नहीं, ऐसा माननेवाले नास्तिक हैं, झूठ बोलनेवाले हैं, वे तत्त्व को समझते नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों होते हैं—एक निश्चयधर्मध्यान और व्यवहारधर्मध्यान। शुद्धता है एकाग्रता, वह निश्चयधर्मध्यान और विकल्प शुभ आवे, उसे आरोप करके व्यवहार का निमित्त कहकर व्यवहार ध्यान कहा जाता है। वह पुण्यबन्ध का कारण है, निश्चयधर्मध्यान वह संवर-निर्जरा का कारण है। इसमें तो सीधी बात है न, इसमें कहाँ... भीखाभाई! कैसे है?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तिम एक आया। यह तो यह बात है, ऐसा इसे निर्णय करना ही चाहिए, ऐसा इसे निर्णय करना, ऐसा।



गाथा - ३७

आगे जो मुनिराज सुख-दुःख को सहते हुए समभाव रखते हैं, अर्थात् सुख में तो हर्ष नहीं करते, और दुःख में खेद नहीं करते, जिनके सुख-दुःख दोनों ही समान हैं,... संयोग, हों! अन्दर संकल्प-विकल्प नहीं, संयोग हो अनुकूल-प्रतिकूल (परन्तु) धर्मध्यान में धर्मात्मा समभाव से रहते हैं। उन्हें अनुकूल-प्रतिकूलता में राग-द्वेष नहीं होता। वे ही साधु पुण्यकर्म-पापकर्म के संवर (रोकने) के कारण हैं,... देखो! जिसे आत्मा की दृष्टि से सम्यग्दर्शन हुआ है, तदुपरान्त इतना समभाव हुआ है कि अनुकूल-प्रतिकूल पूर्व के किसी कर्म के कारण से संयोग हों, वह अनुकूल में हर्ष नहीं और प्रतिकूलता में शोक नहीं। ऐसा समभाव है, उसे वास्तव में पुण्य-पाप की निर्जरा होती है। कहो, समझ में आया ?

१६३) बिणिण वि जेण सहंतु मुणि मणि सम-भाउ करेइ ।

पुण्णहँ पावहँ तेण जेय संवर-हेउ हवेइ ॥३७॥

यहाँ पंचम काल में भी ऐसा हो कता है, यह बात अब सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? जिस कारण 'द्वे अपि सहमानः' सुख-दुःख दोनों को ही सहता हुआ... सुख-दुःख का अर्थ विकल्प नहीं, अनुकूल-प्रतिकूल संयोग हो। सम्यग्दृष्टि कदाचित् सहन नहीं कर सकती, उसे राग-द्वेष की वृत्ति होती है। यहाँ तो समभाव में मुनि रहे हुए की बात लेनी है। सम्यग्दृष्टि को आत्मदर्शन होने पर भी, ज्ञान होने पर भी अनुकूल-प्रतिकूलता के कारण से नहीं, परन्तु उसके प्रसंग में जरा राग और हर्ष-शोक हो आवे निर्बलता के कारण। वह यह समभावी मुनि को होता नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ? उन्होंने समभाव प्रगट किया है, वह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ज्ञानी। यह मुनि की व्याख्या। 'मुनि' है न, जानना। अपना आत्मज्ञान शुद्ध चैतन्यस्वभाव पुण्य-पाप के रागरहित उसका—आत्मा का जिसे स्व—अपना वेदन प्रत्यक्ष हुआ है। समझ में आया ? उसे मुनि कहा जाता है।

निश्चित मन में समभाव को धारण करता है,... चिन्ता ही नहीं। अनुकूल-

प्रतिकूल हो, उसके कारण से हो। अन्दर में हर्ष और शोक का विकल्प ही जिन्हें नहीं। ऐसा समभाव सम्यग्दर्शनपूर्वक, अनुभवपूर्वक ऐसा भाव जिन्होंने प्रगट किया है। अर्थात् राग, द्वेष, मोहरहित स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप परिणामन करता है,... वह राग, द्वेष और मोहरहित स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप। ज्ञानानन्द एकरूप है न, उसका स्वरूप अर्थ किया। स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप परिणामन करता है,... सहज आत्मा सहज ज्ञान एकरूप। स्वसंवेदन की व्याख्या अपने पहले आ गयी है। चौथे से लेकर स्वसंवेदन (होता है)। समझ में आया? वह स्वसंवेदन छठवें, सातवें की बात है यहाँ। मुनि की बात है। ऐसा नहीं कि ऊपर की बात है, ऐसा नहीं, ऐसा मेरा कहना है यहाँ। परन्तु प्रत्यक्ष ज्ञानी कहा न? अर्थात् कौन जाने कि प्रत्यक्ष ज्ञानी अर्थात् आठवें में हो जाये, नौवें में हो जाये। ऐसा नहीं है।

शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप परिणामन करता है,... भगवान आत्मा अकेला ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा है, ऐसी निर्विकल्प दृष्टि हुई है, तदुपरान्त जिसे अनुकूल-प्रतिकूलता में हर्ष-शोक की वृत्ति का उत्पन्न होना नहीं और आनन्द में शुद्ध में परिणामन कर रहा है। अतीन्द्रिय आनन्द की समभावी परिणति है। विभावरूप नहीं परिणमता,... वह हर्ष-शोक के विकल्परूप होता नहीं, यह मुनि। इसी कारण हे जीव, वह मुनि 'पुण्यस्य पापस्यसंवरहेतुः'... लो! यह पुण्य और पाप का संवर हेतु है। जिसे शुभ और अशुभ दोनों रुके हैं। ऐसी दशा को संवरवन्त सामायिक और छेदोपस्थापनीयवन्त चारित्र कहा जाता है। सहज में ही पुण्य और पाप दोनों के संवर का कारण होता है। लो! यह आत्मा की श्रद्धा सम्यग्दर्शन, स्वसंवेदनज्ञान, तदुपरान्त समभाव उसमें है। उसे शुभ-अशुभकर्म रुक जाते हैं। उसे संवर होता है। कहीं शुभ परिणाम से संवर होता है, ऐसा नहीं। शुभपरिणाम स्वयं आस्रव है। समझ में आया? यहाँ तो दूसरा भाग है न? समभाव की बात उठायी है। अभेदरत्नत्रय की बात चलती है न यह? अभेदरत्नत्रय अर्थात् आठवें गुणस्थान की बात चलती है यह सब? ऊपर की हो तो अभी काम क्या हो? समझ में आया? मुनि को कहा कि हे मुनि! ऐसा आचरण करो, धर्मध्यान करो, सामायिक, छेदोपस्थापन करो, ऐसा कहते हैं न? बहुत सूक्ष्म बात!

आत्मा अन्दर ध्रुव पूर्ण शुद्ध का पिण्ड प्रभु। उसका अन्तर दर्शन, ज्ञान और

लीनता का ध्यान करो (तो) पुण्य-पाप रुक जायेंगे। पुण्य-पाप के संवर का वही कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं। बात तो ऐसी महँगी पड़े, इसलिए फिर सस्ता रास्ता खोजने लगे। वह सस्ता पड़े महँगा। यह बाद में ऐसा उल्टा पड़े उल्टा। समय जाये। श्रद्धा तो कर, कहते हैं, श्रद्धा तो कर। श्रद्धा तो कर दर्शनशुद्धि की। आत्मा वह पुण्य-पाप को रोके, उतना संवर है। जितना पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, वे सब आस्रव हैं। समझ में आया ? वह पुण्यबन्धन का कारण है, वह धर्म-बर्म नहीं। निश्चयधर्म हो तो उसे यहाँ शुभपरिणाम को व्यवहार धर्म कहा जाता है। आत्मा का अन्तर निर्विकल्प दर्शन, स्वसंवेदनज्ञान, स्वरूप की स्थिरता हो तो उस शुभभाव को व्यवहार धर्म कहा जाता है, वह निश्चय हो तो। स्व-आश्रय बिना पर-आश्रय को आरोप देनेवाला ज्ञान प्रगट हुए बिना कौन उसे व्यवहार कहे ? समझ में आया ?

भावार्थ :- कर्म के उदय से सुख-दुःख उत्पन्न होने पर... लो ! मुनियों को, धर्मात्मा आत्मा की दृष्टि अनुभव की हुई है, आनन्दस्वरूप आत्मा है, ऐसा भान है और कर्म के उदय से बाह्य में अनुकूल, प्रतिकूल संयोग आवे। उत्पन्न होने पर भी जो मुनिश्वर रागादि रहित मन में शुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वरूप अपने निज शुद्धस्वरूप को नहीं छोड़ता है,... देखो ! अनुकूल-प्रतिकूल होने पर भी मन में कैसा आत्मा ? कि शुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वरूप अपने निज शुद्धस्वरूप, यह आत्मा की व्याख्या की। कैसा है भगवान आत्मा ? शुद्ध ज्ञान, शुद्ध दर्शनस्वरूप, निज शुद्धस्वरूप ऐसा वापस। भगवान का शुद्धस्वरूप नहीं। शुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वरूप अपना निज शुद्धस्वरूप। मुनिराज आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित में ऐसी शान्ति और समभाव को शुद्धस्वरूप को छोड़ते नहीं। अन्तर में शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... समझ में आया ?

वही पुरुष अभेदनयकर द्रव्य-भावरूप पुण्य-पाप के संवर का कारण है। ऐसा आत्मा, उसे पुण्य-पाप के रजकण भी नहीं और भाव भी नहीं। द्रव्य-भावरूप पुण्य-पाप के संवर का कारण है। समझ में आया ? आत्मा आस्रव पुण्य-पापरहित है, ऐसी प्रथम अनुभव की दृष्टि होने के पश्चात्, स्वरूप में पूर्व के पाप के कारण अनुकूल-प्रतिकूल संयोग होने (पर भी) उसे हर्ष, शोक नहीं होता और समभावरूप से परिणमता है। शुद्धस्वरूप को नहीं छोड़ता, उसे पुण्य-पाप रुक जाते हैं। द्रव्य रजकण भी नहीं

आते और भाव भी शुभाशुभ होते नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में होता है। उपाश्रय में क्या होता था ? आत्मा में होता है या उपाश्रय में होता है या मन्दिर में होता है ? आत्मा में होता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐसा कि वह संवर कहा न, पुण्य-पाप को रोकने का वहाँ उपाश्रय में हो न हाथ जोड़कर, ऐसा कहते हैं। यह सब किया है न इन्होंने थोथा ऐसे। किसी को दिये होंगे पैसे-बैसे, ढींकणा-फींकणा। प्रौषध किये और सामायिक की। क्या कहलाती है ? पंचरंगी। पंचरंगी न ? यह भगवान आत्मा शुद्ध का रंग लगे और उसके रंग में स्थिर हो, उसे धर्मध्यान कहते हैं। बाकी सब बातें हैं। शुभभाव हो, पुण्य बँधे, होता है। कुछ नहीं होता, ऐसा नहीं, परन्तु उसका फल पुण्य है। समझ में आया ? संवर और निर्जरा। भगवान अत्यन्त पुण्य-पाप के भावरहित, उसके अनुभव की दृष्टिपूर्वक स्थिरता, शान्ति और समभाव करे, उसे पुण्य-पाप के भाव और कर्म रुक जाते हैं। कहो, समझ में आया या नहीं ? यह ३७ (गाथा) कही।

★ ★ ★

गाथा - ३८

३८ (गाथा)। आगे जिस समय... जिस समय, ऐसा शब्द है न। 'यावन्तं कालं' ऐसा शब्द है। जितने काल तक रागादि रहित परिणामोंकर... आत्मा पुण्य-पाप के विकल्परहित जितना निज शुद्धात्मस्वरूप में तन्मय हुआ ठहरता है,... निज भगवान ज्ञानानन्दमूर्ति शुद्ध पवित्र आत्मा में तन्मय एकाकार होकर स्थिर होता है। तब तक संवर और निर्जरा को करता है,... वहाँ तक। जब तक ऐसा रहे, तब तक संवर-निर्जरा करे, ऐसा कहना है। 'यावन्तं कालं तावन्तं कालं' ऐसे दो शब्द पड़े हैं न ? क्या कहते हैं ? जितना काल आत्मा अपने शुद्ध आनन्दकन्द की दृष्टि सहित में स्थिर होता है, उतना काल उसे पुण्य-पाप के परिणाम रुकते हैं। और जहाँ विकल्प उठा और शुभभाव आया, उतना पुण्य होता है। समझ में आया ? ऐसा कहते हैं—

१६४) अच्छड़ जित्तिउ कालु मुणि अप्प-सरूवि णिलीणु ।
संवर-णिज्जर जाणि तुहुँ सयल-वियप्प-विहीणु ॥३८ ॥

मुनिराज जब तक आत्मस्वरूप में लीन हुआ रहता है,... आनन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा, उसमें लीन होकर जितने काल रहे । अर्थात् वीतराग नित्यानन्द परम समरसीभावकर परिणमता हुआ... अर्थात् क्या हो ? कहते हैं, आत्मस्वरूप की लीनता की व्याख्या क्या ? कि उतना काल वह पुण्य के विकल्परहित वीतराग चिदानन्द, नित्यानन्द । आत्मा वीतराग नित्यानन्द परम समरसीभावकर परिणमता हुआ । ओहोहो ! वह सुधारस अमृतरस आत्मा का । उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान के भानपूर्वक अमृतरस के समभावरूप से जितना काल परिणमता है, उतना काल उसे संवर-निर्जरा है । समझ में आया ?

अपने स्वभाव में तल्लीन होता है, उस समय हे प्रभाकरभट्ट ! तू समस्त विकल्प समूहों से रहित अर्थात् ख्याति (अपनी बड़ाई) पूजा (अपनी प्रतिष्ठा) लाभ को आदि देकर विकल्पों से रहित उस मुनि को संवर-निर्जरास्वरूप जान । उस समय आत्मा की ख्याति है, उसमें पूजा की आवश्यकता कहाँ है ? स्वयं ही अपने को पूज्य होकर स्थित है । अपने आत्मा के आनन्द की ही ख्याति-प्रसिद्धि अन्दर होती है, इसलिए बाहर की ख्याति और पूजा उसे है नहीं, ऐसा कहना है । समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! चैतन्य भगवान् पूर्ण परमात्मस्वरूप ही स्वयं है । उस परमात्मा में नजर करके स्थिर हुआ, कहते हैं, उसे पूजा और बड़ाई का बाहर का क्या काम है ? मैं दुनिया में प्रसिद्ध होऊँ या दुनिया की प्रतिष्ठा, लाभ मुझे मिले । दूसरे साधारण गिने जाते हैं, उनकी अपेक्षा मैं भी इकट्ठा विशेष गिना जाऊँ, ऐसी इच्छा धर्मी को नहीं होती । आहाहा ! स्वयं ही अपने से प्रतिष्ठा और पूजा को अन्दर पाता है । सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित की शान्ति में स्वयं स्थिर होता है, वह दूसरे को बतावे तो यह स्थिरता रहे, ऐसा है ? और दूसरे न जाने तो स्थिरता चली जाये, ऐसा है ? ऐसा कहते हैं । पूजाने का मुझे क्या काम है ? आहाहा ! क्या अन्तर पड़े ? लोग अधिक माने उसमें उसे क्या ? उसकी शान्ति में भाव बढ़ जाता है ? उसके कारण से विश्वास होता होगा ? कहो ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... अब यह तो गप्प मारनेवाले को... दे उसे क्या है वहाँ ? सरकार को क्या है वहाँ ?

मुमुक्षु : तो मिले न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... अधिक को मिले परन्तु उसमें इसे क्या ?

यहाँ तो एक आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु की दृष्टि-ज्ञान में रमता है, उसे दुनिया की पूजा और बड़ाई और लाभ का कुछ काम नहीं। अधिक लोग माने तो मेरी शान्ति बढ़े और बिल्कुल न माने तो शान्ति घटे, ऐसा इसमें है नहीं। आहाहा ! तुम्हारे तो वे पैसेवाले हो न जरा, बाहर ढोल पीटे तो उसे जरा इज्जत हो। इसके पास पचास लाख हुए हैं। देखो ! एक साथ एक लाख खर्च किये लड़के के विवाह में। तो भी महिमा तो करे। भले एक लाख गये तो ओहो ! उदार बहुत, भाई ! और लड़के को भी ... बहुत मेरे। अब वापस बहुत हेतु हो न ! दूसरे छोटे लड़के भले प्रकार से विवाह करना हो, वह करना, इसके लिये वह लाख खर्च कर डाले। यह तो सब मूढ़, परन्तु कुछ काम आवे नहीं। यह भी खोटी बात है, कहते हैं। वह भी वापस पूर्व का पुण्य हो, तत्प्रमाण होता है। लाख खर्च किये, इसलिए वहाँ लड़के का विवाह हो जाये और इज्जत बढ़ जाये, ऐसी भ्रमणा अज्ञानियों की है। आहाहा ! वह तो पूर्व का पुण्य हो तो होता है। यह बाहर लोग इज्जत करे, उसमें तुझे क्या, परन्तु इज्जत करे उसमें ? आत्मा को क्या आया ? आहाहा ! अन्दर कषाय में खदबदता हो अन्दर आकुलता, आकुलता। आहा ! अरे ! ऐसा हुआ, अरे ! ऐसा हुआ। अन्दर में दाह हो, कीड़े पड़े हों कषाय के और बाहर में वे महिमा करे, परन्तु उसमें तुझे क्या ? मलूकचन्दभाई ! कहो, समझ में आया ? यह समझ जाये न। कहो, समझ में आया इसमें ?

यहाँ तो भगवान योगीन्द्रदेव आचार्य महासन्त दिगम्बर मुनि जंगल में बसनेवाले, एक वस्त्र का धागा नहीं, महासन्त आनन्द में (रमनेवाले), वे कहते हैं कि अरे ! मुनि ! तेरी दशा ऐसी चाहिए, ऐसा कहते हैं। यहाँ स्वयं भी कहते हैं कि हमारे समभाव में दुनिया की लाभ और पूजा की हमारे कुछ आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

अरे ! हमको कोई पहिचानता नहीं, हों ! तू तुझे पहिचान न ! तुझे क्या काम है दूसरे का ? हमको कोई गिनती में गिनते नहीं और यह साधारण गिनती में गिना जाता है । परन्तु गिनती किसकी करनी है ? तुझे तेरी करनी है या किसी के पास करानी है ? भीखाभाई ! आहाहा ! यहाँ तो समभाव का वर्णन है न ।

अपनी... समझ में आया ? क्या कहा ? बड़ाई 'सकलविकल्पविहिनम्' में डाला । बड़ाई, ख्याति और पूजा, प्रतिष्ठा, लाभ आदि विकल्प से रहित मुनि संवर, निर्जरास्वरूप, उसे आत्मा के ध्यान में शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... सुधारस निर्विकल्प आनन्द का प्याला पीता है अन्दर । बस, उसे शान्ति है । उसे दुनिया की इज्जत की कुछ आवश्यकता नहीं । उसे यहाँ मुनि और संवर-निर्जरा का करनेवाला कहा जाता है । पुण्य-पाप के परिणाम, वे कहीं संवर-निर्जरा नहीं है ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

पौष कृष्ण ७, गुरुवार, दिनांक - १३-०१-१९६६

गाथा - ३९-४०, प्रवचन - ९७

गाथा - ३९

आगे चौदह दोहों में परम उपशमभाव की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं—
साम्यभाव कहो या उपशमभाव कहो या वीतरागभाव कहो।

१६५) कम्मु पुरक्किउ सो खवइ अहिणव पेसु ण देइ।

संगु मुएविणु जो सयलु उवसम-भाउ करेइ ॥९७॥

मुनि की प्रधानता से बात है। वही वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी... अर्थात् आत्मा ज्ञानानन्द आनन्दस्वरूप है, उसका स्वसंवेदनज्ञान का ज्ञान करके, वीतरागी स्वभाव का वेदन करके जो ज्ञानी हुआ है, वह पूर्व उपार्जित कर्मों को क्षय करता है,... निमित्त से बात है। कर्म को खिपाता है। पूर्व में जो बँधे हुए कर्म हैं, उन्हें वह खिपाता है। खिपते हैं, स्वरूप के वीतरागभाव की दृष्टि से वे पूर्व के कर्म खिर जाते हैं, उन्हें यहाँ खिराता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

‘अभिनवं’ और नये कर्मों को प्रवेश नहीं होने देता,... नये कर्मों को प्रवेश नहीं करने देता। अर्थात् होते ही नहीं। आत्मा ज्ञान शुद्ध वीतराग समभावी स्वरूप है आत्मा का। आत्मा का स्वरूप ही अकषाय वीतरागी समभावी स्वरूप है। ऐसी दृष्टि, ज्ञान और परिणमन हुआ, उसे पुराने कर्म टलते हैं और नये कर्म आते नहीं, उसे प्रवेश होने नहीं देता, ऐसी भाषा करते हैं। व्यवहार से भाषा क्या करे? कर्म आते हैं तो आने नहीं देता, ऐसा है? पाठ तो ऐसा लिया है, देखो! प्रवेश नहीं होने देता,... अटकाकर रखता है। इसका अर्थ कि उसे नये कर्म आते नहीं। वस्तु स्वभाव ही अत्यन्त वीतराग पिण्ड आत्मा है। वीतराग कहो या अकषायस्वभाव कहो; अकषायस्वभाव कहो या समभाव से भरपूर तत्त्व कहो। अथवा उपशमरस से भरपूर तत्त्व पूरा आत्मा है। ऐसी अन्तर की दृष्टि, ज्ञान

और परिणति पर्याय हुई, उसे पुराने कर्म रहते नहीं और नये कर्म आते नहीं।

जो कि सब बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह को छोड़कर... मुनि की प्रधानता से बात है न? 'संग' छोड़कर, लो! संग को छोड़कर, भाषा यह आयी। स्त्री, पुत्र आदि को छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। अभ्यन्तर विकार छूट गया, इसलिए बाहर के वे संयोग छूटे, ऐसा कहा जाता है। वह कथन सब व्यवहारनय का कथन है। **बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह को छोड़कर...** आत्मा के शुद्धस्वभाव की रमत रमने में, समता में अभ्यन्तर रागादि उत्पन्न नहीं होते, इसलिए उन्हें छोड़ा, ऐसा कहते हैं। उसके निमित्तों का लक्ष्य गया, इसलिए उसने पर को छोड़ा, ऐसा कहा जाता है।

परम शान्तभाव को करता है,... मुनिपना है यहाँ। अत्यन्त बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहरहित अपना शान्त वीतरागी परम शान्तरस, उसमें स्थिर हुआ है, उसे परम शान्त समताभाव प्रगट होता है। जीवन हो या मरण हो, दोनों सम हैं। आयुष्य हो देह का या न हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। अपने शान्तस्वभाव में शान्त दृष्टि, शान्त ज्ञान और शान्त स्थिरता द्वारा जीवन और मरण दोनों एक हैं। जीवन हो देह का या देह छूटे। निर्विकल्प शान्तरस में दोनों में किसी की अधिकता या न्यूनता नहीं। जीना, वह ठीक और मरण वह अठीक, ऐसा शान्तरस में अकषाय परिणमन में संयत मुनि (उन्हें विषमभाव होता नहीं)। मुनि की व्याख्या है न यहाँ?

जीवन, मरण,... जिन्हें समान हैं। **लाभ, अलाभ,...** जिन्हें समान हैं। संयोग अनुकूल हो या न हो, उसके साथ धर्मी को अपने वीतरागस्वभाव की दृष्टि है, वीतराग-स्वभाव का ज्ञान है, वीतरागस्वभाव में लीनतारूप समताभाव है। समझ में आया? अपने अमृतरस के ढाला में ढले हुए हैं सन्त, ऐसा कहते हैं। ओहोहो! ज्ञानामृत आत्मा का भोजन करते हैं। मुनि स्वरूप चिदानन्द प्रभु आत्मा का अमृतस्वरूप अतीन्द्रिय शान्त समभावी स्वरूप है। उसका जिन्हें भोजन सुधारस अन्तर में आनन्द को पीते हैं, उन्हें लाभ हो या अलाभ हो, बाहर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! उन्हें **सुख, दुःख...** का संयोग। चाहे जो अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। वे तो सब ज्ञेयमात्र हैं। ज्ञानस्वरूप की दृष्टि, ज्ञानस्वरूप का ज्ञान, ज्ञानस्वरूप में समता की

परिणति। आहाहा! पूरी दुनिया जिसमें समभाव वर्तता है। ऐसा हो या ऐसा हो, कुछ सम्बन्ध नहीं।

शत्रु, मित्र,... सिर का काटनेवाला हो, जहर देनेवाला या मित्र अनुकूल करनेवाला दोनों, अन्तर शान्त दृष्टि में दोनों समान हैं। समझ में आया? उपशमभाव। स्वरूप ही उपशमभाव है, उपशम अर्थात् अकषायस्वरूप। ऐसी दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता हुई, शत्रु हो या मित्र हो। विकल्प शत्रु के प्रति प्रतिकूलता का नहीं, मित्र के प्रति यह ठीक है, ऐसा अनुकूल विकल्प भी नहीं। ऐसी शान्तरस की दशा, उसे मुनिपना कहते हैं। समझ में आया? यह ऊपर के गुणस्थान की बात नहीं, हों! यह निचले सामायिक चारित्र की आयेगी अभी उस श्लोक में। सामायिक चारित्र ऐसा होता है। समझ में आया? सामायिक ऐसी होती है। उस सामायिक की यह व्याख्या है। बाद में आयेगा ४० में। देखो! सामायिक भाव की भावना को अनुकूल। संस्कृत है। सामायिक। यह सामायिक वह है। समझ में आया?

तृण, कांचन,... हीरा का ढेर ऐसा नजर में पड़े या तृण, दोनों उन्हें समान हैं। अज्ञानी को तो मान्यता में अन्तर है कि यह तृण काम नहीं आते और सोना काम आता है। उसे काम-बाम आता नहीं कुछ। धूल भी काम आता नहीं। वह तो उसकी चीज़ उसमें रही, उसे क्या काम आवे? मात्र विकल्प जो उठाता था कि यह मुझे काम आवे, ऐसी दृष्टि थी, तब तक मिथ्यात्वभाव था और मिथ्यात्वभाव टलने के बाद भी जरा अस्थिरता का भाग था, तब तक चारित्रदोष था। यहाँ तो मिथ्यात्व और चारित्र दोनों दोष के त्याग की बात है। समझ में आया? **शत्रु, मित्र, तृण, कांचन इत्यादि वस्तुओं में एक-सा परिणाम रखता है।** एक सा-समभाव। जैसा उसके ज्ञातापने का स्वभाव है, वैसा ज्ञातापने परिणमन हुआ है, ऐसा कहते हैं। वीतराग पर्याय जो पूरे शास्त्र का... कहेंगे, पूरे शास्त्र के दोहन का सार है। समझ में आया?

भावार्थ :- जो मुनिराज सकल परिग्रह को छोड़कर अभ्यन्तर में आनन्द की दृष्टि और आनन्द की लीनता में आकुलता और आकुलता के निमित्त छूटकर। सब शास्त्रों का रहस्य जान के... पाठ में तो इतना है 'सर्वशास्त्रं पठित्वा' इसका अर्थ वह

सर्व शास्त्र में कहना क्या है ? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर के सभी शास्त्रों में क्या कहना है ? वीतराग तात्पर्य कहना है । समझ में आया ? दृष्टि से वीतराग, ज्ञान से वीतराग और स्थिरता से वीतराग । सर्व शास्त्र को यह (कहना है) । सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि के सर्व शास्त्र का यह सार है । दृष्टि भी ज्ञायक की दृष्टि कर, ज्ञान भी ज्ञायक का कर और स्थिरता भी ज्ञायक में कर । ये तीनों वीतरागभाव वह सम्पूर्ण शास्त्रों का सार है । समझ में आया ?

शास्त्र में, राग रखना और राग से लाभ होगा—ऐसा शास्त्र में कथन नहीं होता । उसे देखो, व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान और व्यवहारचारित्र, यह लाभ हो, यह शास्त्र में नहीं । समझ में आया ? सत् शास्त्र का ज्ञान जानकर अर्थात् क्या कहा ? कि शास्त्र में क्या कहना है ? जाना अर्थात् शास्त्र ने कहा उसे जाना । क्या जाना ? कि शास्त्र कहते हैं कि वीतरागभाव । निमित्त और संयोग और राग की उपेक्षा करके आत्मा की दृष्टि कर । निमित्त और संयोगीभाव को छोड़कर स्थिरता कर । समझ में आया ? निमित्त और संयोग का ज्ञान छोड़कर स्व का ज्ञान कर । यह पूरे शास्त्र को कहने का तात्पर्य है । समझ में आया ?

इसलिए फिर यहाँ रहस्य लिया । ‘सर्वशास्त्रं पठित्वा च शास्त्रफलभूतं’ वीतराग परमानन्द एक सुख । वह एकड़ा रह गया है ऐसा का ऐसा । वीतराग परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी हुआ... देखो ! यह कहना है शास्त्र को, ऐसा कहते हैं । आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द अमृतरस है, उसकी दृष्टि करके, उसका ज्ञान करके और अमृत के स्वाद की स्थिरता की, वह सब शास्त्र को जानना कहा है । यह उसका फल शास्त्र में यह कहा है ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, इसके नीचे कहेंगे । इसकी सब टीकायें हैं, इसकी सब टीकायें हैं । साम्यभाव को समझाने की यह सब टीकायें हैं । कहना है साम्यभाव । दूसरी अपेक्षा से कहें तो कहना है निमित्त और संयोग से उपेक्षा करना । स्वभाव वीतरागस्वरूप आत्मा का, उसकी अपेक्षा करना । उस अपेक्षा में दृष्टि, ज्ञान और चारित्र तीनों आ जाते हैं । समझ में आया ?

भगवान पूरा आनन्दकन्द चैतन्यमूर्ति ज्ञायकस्वभाव की अपेक्षा की दृष्टि, उसकी अपेक्षा का ज्ञान और उसकी अपेक्षा की स्थिरता। बस! यह कहना है। समझ में आया? वीतराग परमानन्द एक सुख। दुःख में तो अनेक प्रकार हैं न विकल्प सब? परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी हुआ। आत्मा आनन्द के अमृत का भोजन करता हुआ, स्थिर होता हुआ, आनन्द के अमृत के भाव को सेवन करता हुआ समभाव करता है। अतीन्द्रिय आनन्द का आस्वादी वीतरागभाव से परिणमता है, ऐसा कहते हैं। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। आत्मा के सम्यग्दर्शन में भी अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उतना समभाव हुआ। ज्ञान में भी शास्त्र आदि का ज्ञान नहीं और अतीन्द्रिय ज्ञान का स्वाद आया, वह ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की विशेष स्थिरता हुई, वह परमानन्द सुख का स्वाद। समझ में आया? ऐसा कहते हैं, आनन्द में रहा समभाव करता है, ऐसा। ऐसे दुःख होता है, ऐसा होता है—ऐसा नहीं।

सुखरस का आस्वादी हुआ समभाव करता है,... ऐसा है न? अतीन्द्रिय आनन्द में आता है, उसे समभाव हो जाता है। दुःख में यह... यह... अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा की अन्तर दृष्टि, अन्तर ज्ञान और अन्तर समताभाव अतीन्द्रिय स्वाद में आ जाता है, ऐसा कहते हैं। उस अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद ही ऐसा है कि समभाव हो जाता है। उस स्वाद के समक्ष दूसरी विकल्पदशा या कुछ लेना या छोड़ना, वह कुछ रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह तो अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा है। आत्मा अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द की मूर्ति, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का अन्तर दृष्टि, ज्ञान और स्वाद में पड़ा, समभाव हो जाता है। तृप्त-तृप्त। अपनी दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता तृप्त है... तृप्त है... उसे कुछ आवश्यकता नहीं। मनुष्य खाकर बैठा हो और कुछ चिन्ता न हो और तृप्त बैठा हो उसे, कहते हैं कि कुछ विषम ऐसे जाना है,... ऐसा कुछ नहीं। उसी प्रकार आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रभु उसकी अतीन्द्रिय दृष्टि आनन्द की, अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द की लीनता समभाव, इसका नाम साधुपद है। आहाहा! इसका नाम चारित्रपद है, इसका नाम संयमी साधु कहा जाता है। समझ में आया?

वही साधु... ऐसे आत्मा का अनाकुल स्वभाव, ऐसा आत्मा का आनन्द, उसकी सम्यग्दृष्टि अर्थात् सच्ची दृष्टि। आनन्द है तो आनन्द को ही माना सच्ची रीति से, अन्यत्र आनन्द नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प में या देह में संयोग में आनन्द नहीं। आनन्द मेरे स्वरूप में दृष्टि हुई, उसका नाम सम्यग्दर्शन। आत्मा में आनन्द है और आकुलता, वह पर है, यह दोनों लेंगे। आत्मा वह आनन्दरस है, आकुलता वह विकार दुःख है। इन दो का भेदज्ञान, इसका नाम सम्यग्ज्ञान है।

यह तो परमात्मप्रकाश है न! परमात्मा स्वयं ही आनन्दमूर्ति है, जिसमें नजर डालने से निधान का विकास होता है। वह विकास समभावी होता है, ऐसा कहते हैं। वहाँ विकल्प नहीं होता। ऐसे समभावी शान्त से परिणमित सन्त, उन्हें मुनि कहते हैं, चारित्रवन्त कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा समभाव करते हैं। 'करोति' है, समझे न? करता है, पुरुषार्थ से करता है, ऐसा है न? संस्कृत में है। 'दुःखादिसमता-भावलक्षणं समभावं करोति' बाद में भी अन्तिम में 'आस्वादरूपं समभावं करोतीति भावार्थः' करता है। भगवान् आत्मा अपना अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप जो आनन्द आनन्द से तृप्त-तृप्त स्वरूप है, ऐसी दृष्टि की है। मुझमें ही आनन्द है। पुण्य-पाप के विकल्प में भी आनन्द नहीं, निमित्त शरीर, वाणी, धूल, दाल, भात, सब्जी, स्त्री, पुत्र में तो कहीं आनन्द है ही कहाँ? ऐसी प्रथम तो सम्यग्दृष्टि प्रगट हुई वीतरागी। उसके साथ समभावी ज्ञान हुआ कि यह आत्मा आनन्द है। आकुलता, वह यह दुःख, विकल्प आदि दुःख है। ऐसा ज्ञान है, वह समभावी शान्त ज्ञान है। उसका नाम ज्ञान। और उस आनन्द में स्थिर होना, लीनता आस्वाद से सहज समभाव हो जाता है। आनन्द के स्वाद में तृप्त होने से विकल्प होने का वहाँ अवसर नहीं। विषमता रहती नहीं और समता हो जाती है। आहाहा! गजब भाई! देखो, यह चारित्र। यह मुनिजन, यह संयमी जीवन जीना उन्होंने जाना।

वही साधु पूर्व के कर्मों का क्षय करता है,... ऐसा समताभाव, वह सब शास्त्रों का सार, चार अनुयोग का सार, बारह अंग का सार, वीतराग की सब दिव्यध्वनि का सार समभाव। ऐसा समभाव इस प्रकार से करता है, उसे पूर्व के कर्म क्षय हो जाते हैं।

और नवीन कर्मों को रोकता है। प्रवेश नहीं होने देता। इसका अर्थ आते नहीं, नये कर्म उसे आते नहीं। ऐसा ही कथन पद्मनन्दिपच्चीसी में भी है। श्लोक है।

साम्यमेवादराद्भाव्यं किमन्यैर्ग्रन्थविस्तरैः।

प्रक्रियामात्रमेवेदं वाङ्मय विश्वमस्य हि॥११॥

सब वाणीमात्र कथन। यह एक वस्तु और यह कहना है। आदर से समभाव को ही धारण करना चाहिए,... परन्तु समभाव अर्थात् यह, हों! जैसा आत्मा है, वैसी अन्तर दृष्टि, ज्ञान और लीनता, उसका नाम समभाव। उस समभाव का आदर करना चाहिए, विकल्प का आदर नहीं, ऐसा कहते हैं। उसका नाम चारित्र है। आहाहा! छह खण्ड के धनी चक्रवर्ती छियानवें हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ छोड़कर निकलते होंगे। उस आनन्द का स्वाद लेने के लिये समभाव में तृप्ति के लिये स्थित हैं। पूरी दुनिया ... ज्ञेय है। यह मेरा और तेरा कुछ रहा नहीं। ऐसी अन्तर में स्वभाव की दृष्टि पहले हुई है, उसके साथ सम्यग्ज्ञान स्वसंवेदन हुआ है, उसमें परिणमकर आनन्द के स्वाद के समक्ष समभाव वीतरागदशा हुई है। ऐसे भाव को आदर से समभाव को धारण करो।

कि आदर से समभाव को ही धारण करना चाहिए, अन्य ग्रन्थ के विस्तारों से क्या,... दूसरी बातें लाख, करोड़ हो, उससे क्या? समझ में आया? छहढाला में आया न! 'लाख बात की बात एक निश्चय उर लाओ।' भगवान् शुद्धस्वरूप की दृष्टि, शुद्धस्वरूप का ज्ञान, शुद्धस्वरूप में लीनता, वह एक ही बात है, बाकी सब बातें हैं। व्यवहार के विकल्प हो और भक्ति हो और पूजा हो और व्रत हो, वह सब बीच में आवे, उनका ज्ञान कराया है। वस्तु तो यह एक है। आहाहा!

बड़े मानधाता चले जाये, देखो न! एक मिनिट-दो मिनिट। पर की स्थिति हो तो उसमें रखे कौन और छोड़े कौन? आहाहा! लोगों को ऐसा हो जाता है कि हम ऐसा कर देंगे, ऐसा कर देंगे। मेरी बात, मेरे काम यह दो सौ व्यक्तियों को पसन्द आते हैं या नहीं? अथवा किसे-किसे अपसन्द आते हैं? यह देखे। वहाँ से आगे चला तो गाँव-जाति में देखे। जाति में मेरी बात को अथवा मुझे कौन पसन्द करता है और कौन अपसन्द करता है? वहाँ से चला तो गाँव में। आगे लम्बा चला तो फिर देश में। यह लम्बा चला तो पूरे

विश्व में। कौन मुझे मान्य रखता है ? कौन मुझे अमान्य रखता है ? परन्तु मान्य-अमान्य तुझे पर के साथ क्या है परन्तु ? समझ में आया ? कौन मुझे पसन्द करता है ? कौन मुझे अपसन्द करता है ? कितनी मेरी प्रसिद्धि बाहर में आयी। मैं बाहर कितना प्रसिद्ध हुआ इतने समय में ? प्रसिद्ध हुआ न तू ? कितने मुझे अभी बाहर प्रसिद्धि में कमी रह गयी है ? वह खोजे। कहाँ पड़ना है तुझे उछलकर बाहर में ? यह तो कहते हैं कि स्थित हैं अन्दर में स्थिर हैं। आहाहा ! बाहर की कुछ आवश्यकता कल्पना में भी नहीं। ज्ञानस्वरूप आत्मा है। वीतरागरस से भरपूर निधान भण्डार आत्मा है। उसकी दृष्टि, ज्ञान और लीनता में दूसरे की कोई विकल्प की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसा जहाँ समभाव, कहते हैं कि उसका आदर कर। यह एक ही आदर करनेयोग्य है। दुनिया माने-न माने उसका आदर रहने दे, छोड़ दे। दुनिया की प्रसन्नता, अप्रसन्नता के ऊपर तेरा सुख-दुःख अवलम्बता नहीं। समझ में आया ?

आदर से समभाव को ही धारण करना चाहिए... आहाहा ! यह ऐसा नहीं कि अरे ! मुझे यह करना पड़ता है, मुझे यह बाहर से हटना पड़ता है। समझ में आया ? उसे अन्दर में आना, वह उसका ही आदर कर। बस ! समभाव का ही आदर कर, दूसरा छोड़ दे। धूल में भी नहीं कुछ। आहाहा ! समझ में आया ? डॉक्टर साथ थे, वहाँ गये खाँसी खाकर। हो गया। क्या करे डॉक्टर ?

मुमुक्षु : डॉक्टर इंजेक्शन लगावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : लगाया इंजेक्शन तो क्या हुआ ? फीका पड़ा। लेख में था। मुख फीका लगा उसको—डॉक्टर को कि मुख फीका है। नाड़ी बराबर नहीं। नहीं न, परन्तु ? यह तो नहीं न, उसमें तुझसे कहाँ नहीं नहीं हुआ ? उसके परमाणु की पर्याय, आहाहा ! एक मिनिट पहले क्या आशा होगी और मिनिट के बाद ? यह जगत की पर्याय जड़ की पर की ऐसी ही परिणमने के योग्य होती है। समझ में आया ? एक क्षण में ऐसे निरोगता हो और दूसरे क्षण में मृत्यु। तो भी मुनि को समभाव-समभाव है। जीवन हो तो समभाव, मृत्यु हो तो समभाव। वीतरागी दृष्टि, ज्ञान और शान्ति एक ही आदरणीय है, दूसरा कोई आदरणीय नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? करके यह करने का यह ही

है, कहते हैं। धर्म के नाम से या धर्म के भाव से करने का तो यह है।

आदर से समभाव कर। आहाहा! यह अन्तर समाने में सुख है, इसलिए आदर कर, ऐसा कहते हैं। बाहर में गर्दन करने में दुःख है, इसलिए छोड़ उसे। आहाहा! समझ में आया? 'जगत को मरण का भय है, ज्ञानी को आनन्द की लहर है।' क्या है? ... अर्थात् क्या परन्तु? देह छूटने का हो तो छूटा हुआ ही पड़ा है। तू ऐसे जरा यहाँ है तो आगे जाये। उसमें छूटा क्या और गया क्या? मैं ... में हूँ। मेरा निर्विकल्प आनन्द, उसमें समभाव, वही मेरा स्वरूप और वही हमको आदरणीय है। आहाहा! यह श्वास कैसे चले, उसके सामने भी देखना नहीं। विकल्प कैसे हो, उसके सामने देखना नहीं। देखना है समभाव के सामने। उसे आदर कर, कहते हैं। देखो! वह विकल्प-फिकल्प, व्यवहार-प्यवहार छोड़ दे। भगवान का स्मरण और यह वे सुनावे कुछ कि याद करना, भगवान को याद करना। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि यह भगवान आत्मा को याद करके स्थिर हो। कहो, दूसरे भगवान को याद करना भूल जा। दूसरे भगवान को याद करने जायेगा तो विकल्प उठेगा। समभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। विकल्प छूट जायेगा तो अविनय हो जायेगा—ऐसा नहीं। विकल्प छूट जायेगा तो विनय होगा। स्वभाव का समभाव होगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आदर कर उसका, ऐसा कहते हैं। वह आदर छोड़ देगा अरे! मेरा ऐसा हो जायेगा। भगवान का स्मरण णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... छूट जायेगा? वह छूट जायेगा, तब समभाव होगा। तब उसका—सत् का आदर होगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! कायर तो काँप उठे, ऐसा है। मार्ग, वह मार्ग है। आहाहा!

बारह अंग का सार यह है, कहते हैं। त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतराग तीर्थकरदेव ने यह फरमाया है। हमारे प्रति विकल्प है, उसका आदर न कर। आहाहा! हमारा ऐसा कथन है। हम शास्त्र में ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आदर से समभाव को ही धारण करना चाहिए,... ऐसा है न? 'साम्यमेवादराद्भाव्यं' ऐसा है न? श्लोक मिला नहीं। ऐई! खोजा नहीं कहीं से। हाथ नहीं आया। साम्यअेव है न शब्द भाई! 'साम्यमेवादराद्भाव्यं' ऐसा कहते हैं। एक ही टुकड़े में सब लिया है।

‘साम्यमेवादराद्भाव्यं’ इसका आदर, भावना कर। दूसरा तो अनादर होगा, अर्थात् अविनय होगा पर का, ऐसा नहीं। उसमें स्वस्वभाव का आदर, उसमें ही स्वभाव का विनय है। मरते समय कोई सुनावे, उसमें ध्यान रखना। कहते हैं कि समभाव का आदर कर। भाषा देखो न कैसी है! यह विकल्प को भूल जा, श्रवण को भूल जा और स्वभाव में स्थिर हो। उस साम्यभाव का आदर कर, वही पूरे शास्त्र का सार है। अन्य ग्रन्थ के विस्तारों से क्या,... यह लाख, करोड़ शास्त्र का विस्तार हो, उससे क्या? समझ में आया? आत्मा अपने अमृत के स्वाद में स्थिर हो, वही कहने का पूरा शास्त्र को है। अन्य ग्रन्थ के विस्तारों से क्या,... लाख बात हो दूसरी। उसका ऐसा किया और उसने ऐसा किया और उसने ऐसा किया। समझ में आया?

समस्त पंथ तथा सकल द्वादशांग... समझ में आया? उसके ग्रन्थ का विस्तार... न्याय निकाला। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर का सब पंथ और बारह अंग, वह समभावरूप सूत्र की टीका है। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो शास्त्र का तात्पर्य वीतराग है। उसका अर्थ यह कि निमित्त और निमित्त की ओर से उत्पन्न हुए भाव की उपेक्षा करना और आत्मा के शुद्धस्वभाव की अपेक्षा करना, वह एक ही बात है। फिर उसका सब विस्तार करके टीका की हो चाहे जो। पंचास्तिकाय में आया न १७२ गाथा में? वीतरागभाव। १७२ (गाथा) अन्तिम। यह सब करनेयोग्य है। फिर उसकी टीका में निमित्त लिया। मूल तो वीतरागभाव पूरे शास्त्र का तात्पर्य। दृष्टि वीतराग अर्थात् पूर्ण आनन्द की निर्विकल्प प्रतीति, ज्ञान वीतराग कि जो स्वआश्रय हुआ, स्थिरता समभाव कि जिसमें विकल्परहित शान्ति का परिणमन उत्पन्न हो। बस! यह चारित्र, यह मुनि है। आहाहा! यह मुनि ही मोक्ष के तात्कालिक अधिकारी हैं। आहाहा! परमात्मप्रकाश है न, वापस दूसरा भाग है न यह तो? पहला भाग तो पूरा हुआ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें तो है वह आती है न बात। आहाहा! ऐसे देखो वे कहे। शास्त्रीजी की माँ वृद्धा बेचारी ८५ वर्ष। मेरा पुत्र मरे नहीं। उसे ऐसा कि गया है वहाँ और मरे? ऐसा बड़ा ... सौ सेर वजन, ढाई मण। ऐसा मरे? ऐसा अर्थात् क्या परन्तु?

शरीर और आत्मा संयोग में हो, वह संयोग से छूटे... समझ में आया ? वह कहीं नयी बात नहीं। यह संयोगीभाव से छूटे, उसका पण्डितमरण कहलाता है। संयोगीभाव से समभाव में रहकर छूटे, उसका नाम पण्डितमरण कहलाता है। यह आत्मा पण्डित हुआ, यह पण्डित हुआ, यह केवलज्ञान पानेवाला है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : वास्तविक शास्त्री यह।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वास्तविक शास्त्री। बात यह है। आहाहा! बाहर से फिर मान दिया... एक समय में जात्यान्तर ज्ञान। ऐसे जो लगा है विकल्प को एकाकार होकर, ऐसा जहाँ किया जात्यान्तर ज्ञान हो गया। पूरा हो गया। यह जीवन बदलाव हो गया दूसरा। जीते-जी जीवन पलटा। आहाहा! समझ में आया ? और समभाव में परिणमन, वह तो अलौकिक जीवन जीना जाना, सन्तों ने जीना जाना। ओहोहो! जन्मकर जीना जाना और जीना जाना और आत्मा को माना जाना। आहाहा! अकेला समभाव... समभाव। दुनिया चाहे जो बोलती हो, चाहे जो हो, मुझमें उसका कुछ नहीं, उसमें मेरा कुछ नहीं। मेरा मुझमें सब भरा हुआ है। ऐसी पूर्ण स्वभाव की दृष्टि, पूर्ण स्वभाव का ज्ञान, पूर्ण वीतरागी स्वभाव है, वैसा उसमें स्थिर होना। वे सब समभाव सूत्र की वापस टीकायें लम्बी-लम्बी की हैं। आहाहा! गजब भाई! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर का पंथ दर्शन, ज्ञान और चारित्र तथा दस प्रकार के धर्म और यह अहिंसा धर्म और इत्यादि अनेक व्याख्या, सब यह (कहने के लिये है)।

समस्त पंथ तथा सकल द्वादशांग इस समभावरूप सूत्र की... जो कथन की शैली और मार्ग सब यह समभावरूपी, समभाव ऐसी दृष्टि, ज्ञान और लीनता एक ही उसकी सब व्याख्यायें हैं। शब्द एक समभाव—साम्य। आहाहा! प्रवचनसार में कहा है पहले कि हम साम्य अंगीकार करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, हम साम्य अंगीकार करते हैं। साम्य कहो, शुद्ध उपयोग कहो, चारित्र कहो, वीतराग परिणति कहो। इससे मार्ग में पड़े हैं, वह तुमको बतलाते हैं कि यह मार्ग है, भाई! आहाहा! गजब काम किया है न! कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचम काल में परमेश्वर का विरह भुलावे, ऐसा काम किया है। चारित्र कैसे हो और चारित्र कैसा होता है, यह हम जानकर अनुभवते हैं, वह

तुमको बतलाते हैं। तुम्हारा ऐसा भाव अंगीकार करना। यह विधि और पद्धति कही है वह। यह ३९ गाथा हुई, लो!

अन्दर है न? 'किमन्यै ग्रन्थविस्तैः' दूसरे ग्रन्थ के विस्तार से क्या कहना है और 'प्रक्रियामात्रमेवेदं' यह तो सब विशेष क्रियाओं के कथन हैं भेदों के। 'वाङ्मयं' बाकी वाणीमय 'विश्वमस्य' भगवान् आत्मा अकेला चिदानन्द प्रभु, वह विकल्प और निमित्त से समेटकर अन्दर में दृष्टि करके स्थिर हो, यह सब कहने का आशय यह है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! परमात्मप्रकाश है न! परमात्मस्वरूप स्वयं है। उसमें वीतरागभाव से परिणमना, वह परमात्म प्रगट करने का उपाय है। यह समभाव, वह परमात्म प्रगट करने का पंथ है, बस। यह समभाव को निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं, उसे निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं। लो! यहाँ तो निश्चयमोक्षमार्ग की इतनी व्याख्या आयी।

★ ★ ★

गाथा - ४०

आगे जो जीव समभाव को करता है,... देखो! अब यह। उसी के निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र होता है, अन्य के नहीं,... दूसरे को चारित्र होता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

१६३) दंसणु णाणु चरित्तु तसु जो सम-भाउ करेइ।

इयरहँ एक्कु वि अत्थि णवि जिणवरु एउ भणेइ ॥४०॥

है? 'इयरहँ एक्कु वि अत्थि णवि' वापस ऐसा। ... सम्यग्दर्शन भी नहीं दूसरे को तो, ऐसा कहे देखो न, भाषा कैसी की! सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र एक भी नहीं। आहाहा! लो! क्या कहते हैं? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसी के निश्चय से होते हैं,... उसे होते हैं निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय-सच्चा दर्शन, सच्चा ज्ञान, सच्चा चारित्र। जो यति समभाव करता है,... आहाहा! समभाव, यह क्रिया क्या है, उसका इसे माहात्म्य आता नहीं। समझ में आया? कुछ यह करे, ऐसी प्रवृत्ति दिखाई दे, ऐसा कुछ चले,

कुछ बोले, कुछ वाणी का विस्तार करता हो, देह की क्रिया ऐसे धमाल चलती हो तो उसे कुछ करता है, ऐसा दिखता है और वह करता है, ऐसा कुछ दुनिया को ख्याल में आता है। वह सब बन्ध का भाव है, विकल्प आदि और बाहर की प्रवृत्ति जड़ है। उसमें क्या ख्याल में आवे इसे धर्म ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बन्ध। यही कहते हैं यहाँ देखो न! अन्तर दृष्टि के सम्यग्दर्शन समभावी, उसे दर्शन होता है। विषमभाव में मानता है, उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं। इसके ऊपर से यह विचार (आया)। विकल्प में मानता है और पर में मानता, उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया ? क्या कहते हैं ? देखो न !

उसी के निश्चय से होते हैं, जो यति समभाव करता है, दूसरे समभाव रहित जीव के तीन रत्नों में से एक भी नहीं है, ... देखो ! अर्थात् क्या ? जो कुछ विषमभाव विकल्प आदि में मानता है, निमित्त की प्रवृत्ति में मानता है, उसे तो सम्यग्दर्शन भी नहीं, उसे सम्यग्ज्ञान नहीं, उसे सम्यक्चारित्र नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समभाव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। समभाव से विरुद्ध जितना विकल्प आदि भाव, निमित्त तो बाहर रह गया, वह विषमभाव विकल्प आदि है, उसे मानता है और उससे बाहर की प्रवृत्ति विशेष ऐसी अधिक दिखाई दे कि यह दया पालता है और यह बोलता है, यह लिखता है और यह वाँचता है और यह-यह करता है, ऐसी चेष्टा में और ऐसे राग में जिसकी दृष्टि है उसे तो, कहते हैं कि, सम्यग्दर्शन भी नहीं। आहाहा ! यह अलग प्रकार की कथन पद्धति है।

भगवान् आत्मा समभावी को सम्यग्दर्शन होता है, समभावी को सम्यग्ज्ञान होता है, समभावी को सम्यक्चारित्र होता है। अर्थात् दूसरे को नहीं। अर्थात् कि जितना वह पुण्य आदि के विकल्प उठाकर बाह्य चेष्टा की क्रिया में जुड़ान होकर प्रवृत्ति ऐसी दिखाई दे और यह दिखाई दे, उसे जो मानता है, यह कुछ ठीक है, उसे मिथ्यादर्शन है, सम्यग्दर्शन नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? और शास्त्र के पृष्ठ पुस्तकें बहुत फिरायी हों (पढ़ी हों), बहुत बोले, विकल्प करे, उसमें ज्ञान है—ऐसा नहीं।

उसमें ज्ञान नहीं, अर्थात् कि उसे ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! क्या कहा? देखो न! दूसरे समभाव रहित जीव के तीन रत्नों में से एक भी नहीं है,... एक भी नहीं, ऐसा। एक भी नहीं अर्थात् क्या? कि भगवान आत्मा स्वयं विकल्परहित चीज़ की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, उसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। उसे विरुद्ध जो विकल्प हैं, शुभराग आदि के या बाहर की चेष्टा देह, वाणी आदि की है, उसमें मेरा कुछ लाभ है और उसमें हित है, ऐसे विषमभाव में सम्यग्दर्शन नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, उस समभाव में तीन है। समभाव से विरुद्ध में एक भी नहीं, ऐसा कहना है न यहाँ तो? समभाव से विरुद्ध में चारित्र नहीं, ऐसा नहीं, यहाँ तो तीन में से एक भी नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कि भाई! चैतन्य वस्तु ही, निर्विकल्प वस्तु ही समभावी वस्तु है, उसकी दृष्टि का भाव, उसे समभावरूपी सम्यग्दर्शन है, उसके समभावी का ज्ञान, उसे सम्यग्ज्ञानरूपी समभाव है, उसमें स्थिरता, उसे समभावरूपी चारित्र है। उससे विरुद्ध को नहीं सम्यग्दर्शन, नहीं सम्यग्ज्ञान, नहीं सम्यक्चारित्र। तीनों बातें हैं। आहाहा! अर्थात् कि अपना जो परमात्म शुद्ध ध्रुव स्वभाव परम शान्त वीतराग स्वभाव है, उसे छोड़कर कोई विकल्प और संयोग में मानता है कि यह कुछ ठीक है, उसे विषमभाव है, उसमें समभाव नहीं, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि विषम अर्थात् रागभाग है न शुभविकल्प? उसमें जो मानता है कि यह ठीक है, उसे सम्यग्दर्शन नहीं है, उसे सम्यग्ज्ञान नहीं है, उसे सम्यक्चारित्र नहीं है। आहाहा! कथन की पद्धति क्या कही? भगवान आत्मा का ज्ञान अर्थात् रागरहित समभावी ज्ञान, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। उसके बिना का शास्त्र का ज्ञान आदि विकल्प आदि और पर आलम्बी राग में कुछ भी ठीक है, वह ज्ञान भी ठीक है, ऐसी जो विषमता उसमें समभाव नहीं है, इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान नहीं है। समझ में आया?

देखो, गाथायें दोनों ऐसी आयेंगी, हों! ४१वीं आयेंगी। कषायवन्त को असंयम है

और अकषायवन्त को संयम है, ऐसा कहेंगे। यहाँ तो इन तीनों का निषेध करते हैं। आहाहा! क्योंकि परमात्मस्वरूप अपना शक्ति से तत्त्व तो अकेला वीतराग समरसी वस्तु ही है। उसके अन्दर में उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान समभावी और उसकी स्थिरता, वही समभाव है। उसे दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। उससे विरुद्ध भाव जो विकल्प शुभ हो भले या निमित्त की अनुकूलता के समवसरण में बैठा हो। समझ में आया? या जिन मन्दिर में बैठा हो भगवान के ऐसे समीप में महाप्रतिमा भगवान की, उसके स्वभाव से विमुख ऐसा विकल्प और वह संयोग है, वह ठीक है, वह ठीक है—ऐसा जो समभाव से विरुद्ध भाव, ऐसे विषमभाव को माननेवाले को मिथ्यात्व है, सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह वीतराग दरबार की बातें हैं, भाई!

‘इतररस्य’ ऐसा है न? ‘एक्कु वि अत्थि णवि’ ऐसा है न? ‘एक्कु वि अत्थि णवि’ अर्थात् (एक भी) नहीं, दो होकर (ऐसा) हुआ। ‘णवि अत्थि’ ऐसा। जिसे विषमभाव है अर्थात् कि भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी शुद्ध वीतराग समभाव की अन्तर दृष्टि नहीं और राग और विकल्प और शुभभाव और निमित्त में दृष्टि पड़ी है, वह समभाव नहीं, उसे सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा का ज्ञान, वह समभावी वीतरागी सम्यग्ज्ञान, उसे ज्ञान है। बाहर के अवलम्बनवाले शास्त्र आदि का ज्ञान या पर का ज्ञान, उसमें उठता विकल्प, वह समभाव नहीं। समभाव नहीं तो समभाव बिना का सम्यग्ज्ञान नहीं। इसलिए सम्यग्ज्ञान नहीं, इसलिए मिथ्याज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? और स्वरूप की स्थिरतारूपी सम वीतराग-अकषाय परिणति है, उसे चारित्र है। जिसे राग का पंच महाव्रत आदि का विकल्प वर्तता है और वह चारित्र है, वह ठीक है, उसे दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अकेला कहा न, साम्यभाव ही अकेला सार आया है। आहाहा!

यहाँ तो इस शैली से बात करते हैं कि आत्मा में से उठना विकल्प और कुछ ऐसे बाहर में चेष्टा जाये, उसे कुछ ठीक माने, उसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों नहीं हैं।

आहाहा! ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया? भगवान आत्मा अविकारीस्वभाव से भरपूर पदार्थ है न, प्रभु, उसे यहाँ परमात्म वस्तु कहते हैं। इसकी अन्तर की दृष्टि में यह प्रसिद्ध होना, ऐसा विकल्प और निमित्त चेष्टा कुछ है ही नहीं उसमें तो। ऐसे स्वभाव की शान्ति दर्शन, ज्ञान और स्थिरता उसमें तीनों—सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र आ गये। अर्थात् उसे ही मोक्षमार्ग है, ऐसा। उससे विरुद्ध, आहाहा! विकल्प, राग-शुभराग। अशुभ की बात तो (क्या करना) ... और बाहर की चेष्टायें सब देह की अनुकूल हो, ऐसे भगवान के पास जाये, बैठे, सुने—इन सब बाह्य चेष्टाओं में कुछ है, (ऐसा) मानता है, उसे ज्ञान नहीं। आहाहा! वीतरागी बात। उसमें राग में मानता है कुछ, उसे चारित्र ही नहीं। समझ में आया?

नहीं है, इस प्रकार जिनेन्द्रदेव कहते हैं। भाषा देखो! तीन लोक के नाथ वीतरागीस्वभाव से परिणमित, वीतरागस्वभाव से परिणमित, उस समभावी में दृष्टि, ज्ञान और चारित्र कहते हैं। विषमभाव आदि उठे विकल्प में माननेवाले को मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र है, ऐसा जिनेन्द्रदेव पुकार करते हैं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? लो! 'एकमपि नैव अस्ति' ऐसा है न? 'एक्कु वि अत्थि णवि' आहाहा! भाईसाहेब! समभाव चारित्र नहीं, ऐसा कहो। परन्तु दर्शन-ज्ञान भी नहीं? भाई! आत्मा के स्वभाव की शान्ति का स्वरूप है, उसमें से निकला हुआ विकल्प जो स्वभाव में नहीं, उसमें माननेवाला, वह विषमभाव में माननेवाला है, उसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र एक भी नहीं। आहाहा! ऐसा जिनेन्द्रदेव 'भणति' ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तीन की व्याख्या करेंगे भावार्थ में।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण ९, शनिवार, दिनांक - १५-०१-१९६६

गाथा - ४० से ४२, प्रवचन - ९८

परमात्मप्रकाश, (दूसरे भाग की) ४०वीं गाथा का भावार्थ है। निश्चयनय से निज शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचिरूप सम्यग्दर्शन उस समभाव के धारक के होता है,... क्या कहते हैं? वास्तव में सत्य दृष्टि से देखें तो यह आत्मा निज आत्मा, भगवान का आत्मा उनका उनके पास रहा, अपना आत्मा शुद्धात्मा शुद्धस्वरूप जिसमें पुण्य-पाप के विकल्प भी नहीं। कर्म तो नहीं, शरीर तो नहीं, परन्तु पुण्य-पाप की वृत्तियाँ भी जिसमें नहीं, ऐसा शुद्धात्मा ही उपादेय है, अन्तर में वही आदरणीय है, दृष्टि में वही अंगीकार करनेयोग्य है। ऐसी रुचि... ऐसी अन्तर में दृष्टि, रुचि, श्रद्धा परिणति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, वह समभाव के धारक को होता है,... जिसे शुभभाव ठीक और अशुभभाव अठीक, (ऐसा जिसे है), ऐसे जीव को सम्यग्दर्शन नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा शुभाशुभ विकल्प से रहित अकेला निज शुद्धात्मा। शुद्धात्मा अर्थात् वीतरागी समभावीस्वरूप शुद्ध जो है, उसका सम्यग्दर्शन वह समभाववाले को होता है। विषम में, विकल्प में, राग में, शुभभाव में लाभ माननेवाले को वह सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया? सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन, सत्य प्रतीति, प्रशंसनीय प्रतीति। वह वस्तु शुद्ध चैतन्यमूर्ति अत्यन्त अविकारी स्वभाव का स्वरूप जिसका है, उसे उपादेयरूप से माना, उसे पुण्य में ठीक और पाप में अठीक, ऐसी विषम मान्यता नहीं होती। (वह) समभाव धारण करे, उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? ओहोहो!

समभाव के धारक को होता है,... मूल पाठ है न यह? 'सम-भाउ करेइ' सम्यग्दर्शन भी समभाव, इतना पुण्य-पाप से रहित शुद्ध श्रद्धा, वह समभाव की श्रद्धा है अथवा त्रिकाली शुद्धस्वभाव, वह समभावस्वरूप है। उसकी श्रद्धा भी समभाव करे,

उसे होती है। समझ में आया ? और निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ... अपना शुद्ध आत्मा निज शुद्ध पवित्र स्वरूप ध्रुव की भावना—उसकी अन्तर एकाग्रता, पुण्य-पाप के राग, शास्त्र ज्ञान आदि से रहित अपना निज शुद्धात्मा, उसकी एकाग्रता। वह भावना, यह पर्याय है। शुद्धात्मा, वह ध्रुव त्रिकाल है। त्रिकाल शुद्ध ध्रुव को भावनारूप से एकाग्र करके उत्पन्न हुआ वीतराग परमानन्द मधुर रस का आस्वाद... वीतराग—रागरहित परम शान्त आनन्द मधुररस का आस्वाद उस स्वरूप आत्मा है,... भेदज्ञान करता है। ऐसा आत्मा है।

तथा हमेशा आकुलता के उपजानेवाले... पुण्य-पाप, काम-इच्छा, क्रोध-द्वेष, राग और द्वेष। काम-क्रोधादि अर्थात् राग और द्वेष। उसमें सब आ गया पुण्य और पाप आदि। वह राग और द्वेष जो आकुलता के उपजानेवाले हैं। वे महा कटुक रसरूप अत्यन्त विरस हैं,... वह राग का विकल्प है, वह कड़वा रस है, कटु रस है। भगवान् आत्मा शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ, अन्तर आत्मा की अन्तर एकाग्रता से उत्पन्न हुआ मधुर आनन्द शान्तरस और यह कटुक रागादि जो रस, वह कड़वा है। ऐसा जानना, वह सम्यग्ज्ञान... देखो! सम्यग्ज्ञान। समझ में आया ? आत्मा वस्तु अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा है, वीतरागी आनन्दस्वरूप आत्मा है। ऐसे वीतरागी आनन्दस्वरूप की एकाग्रता से उत्पन्न हुआ वीतरागी मीठा आनन्द सुख स्वाद, सुख स्वाद और राग से उत्पन्न हुआ कड़वा स्वाद, कटुक स्वाद, इन दो स्वाद का भेदज्ञान होना, दो का ज्ञान यथार्थ होना, उसे ज्ञान कहते हैं। उस समभावी को सम्यग्ज्ञान होता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : राग स्वयं कड़वा है, जहर है। कटुक है, कहा न ? महा कटुक रसरूप अत्यन्त विरस हैं,... विरस है। आत्मा शुद्ध आनन्द अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है। उससे उत्पन्न हुआ अन्दर आनन्द, वह तो मीठा शान्त आनन्द समभाव से आनन्द है। वह समभावी आनन्द और राग का विरस-कटुक स्वाद, दोनों का वास्तविक अन्तर ज्ञान होना, वह सम्यग्ज्ञान है, वह सम्यग्ज्ञान समभाव में होता है। समझ में आया ?

आत्मा शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द वस्तु है। अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर तत्त्व है।

अतीन्द्रिय आनन्द, शान्त आनन्द, वीतरागी आनन्द से भरपूर आत्मा है। उसकी एकाग्रता होने से उसमें श्रद्धा-ज्ञान की एकाग्रता होने से जो अतीन्द्रिय वीतरागी आनन्द का स्वाद और राग का स्वाद विकल्प जो उठे दया, दान, व्रत आदि, उसका स्वाद, वह कटुक स्वाद है और यह मीठा स्वाद है। ऐसा जो दो के बीच का भेदज्ञान, वह समभावी को सम्यग्ज्ञान होता है। राग भला और आत्मा भी भला, ऐसे दो भाव (भला मानना), वह विषमभाव है। समझ में आया ? (राग) और आत्मा के ओर की आनन्द की निर्विकल्प दशा, दोनों भिन्न हैं, दोनों एक नहीं। समझ में आया ? ऐसा भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति आत्मा, उसमें अन्तर एकाग्र होने से जो अतीन्द्रिय आनन्द होता है और यह रागादिभाव, वह कटुक स्वाद है, कड़वा स्वाद है, राग का कड़वा स्वाद है। इन दो के स्वाद का भेदज्ञान हो, वह समभावी को वह सम्यग्ज्ञान होता है। क्योंकि वहाँ राग के स्वाद का आदर नहीं, त्रिकाली शुद्ध आत्मा के आनन्द के आदर से उत्पन्न हुआ आनन्द का जहाँ आदर है। वह समभावी को ऐसा सम्यग्ज्ञान होता है। समझ में आया ? समझ में आया या नहीं इसमें ?

यह आत्मा... यह देह तो मिट्टी-जड़ है, कर्म अन्दर मिट्टी-जड़ अजीव है, वाणी वह अजीव जड़ है। पुण्य-पाप के भाव हों, वे विकारी दुःखरूप कड़वा स्वाद है। दया, दान, व्रत के विकल्प उठे या हिंसा, झूठ के—दोनों राग कड़वा स्वाद है। और भगवान आत्मा उस कड़वे स्वाद से भिन्न चिदानन्दस्वरूप है, उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हुआ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, यहाँ तो पर्याय के बीच में दो का भेद किया है, आनन्द के स्वाद का ज्ञान और इस राग के कटुक स्वाद का ज्ञान, दो का भिन्न करके जो ज्ञान हुआ, उसे सम्यग्ज्ञान, मोक्ष के कारणरूप से उस ज्ञान को मोक्ष का कारण कहा जाता है कि जो सम्यग्ज्ञान समभावी को होता है। समभाव है वहाँ। अकेला ज्ञायक चैतन्यमूर्ति, वही आनन्द और वही मैं, उसका ज्ञान, वह ज्ञान। रागादि और पर का ज्ञान, वह कहीं मेरा स्वरूप नहीं। ऐसा जो आत्मा में समभावी ज्ञान होना आत्मा और राग का भेद करके, ऐसे सम्यग्ज्ञान में जो आनन्द का ज्ञान, वह ज्ञान समभावी को होता है। आहाहा ! समझ में आया ? यह शास्त्र का पठन और इसकी यहाँ बात नहीं। लौकिक पठन, वह कहीं

ज्ञान नहीं। ऐसा कहने में आता है सुनो कि जो सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं, सम्यग्ज्ञान किसको कहते हैं, सम्यक्चारित्र किसको कहते हैं, यह बात चलती है।

परमात्मप्रकाश चलता है। योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि लगभग ९०० वर्ष पहले हुए हैं। उन्होंने परमात्मप्रकाश बनाया। महामुनि दिगम्बर सन्त थे। वे ४०वीं गाथा में कहते हैं कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र जो मोक्ष का उपाय-मार्ग है, वह मार्ग समभावी को होता है। समभावी को सम्यग्दर्शन, समभावी को सम्यग्ज्ञान, समभावी को सम्यक्चारित्र होता है। उसकी व्याख्या करते हैं। भगवान् आत्मा शरीर, कर्म, पुण्य-पाप के राग से रहित अकेला वीतरागी समभावी आनन्दमूर्ति जो आत्मा निज शुद्धात्मा, उसकी अन्तर में रुचि... पुण्य-पाप में पुण्यभाव ठीक है और पाप अठीक है, यह विषमभाव मिथ्यात्वभाव है। शुभभाव मुझे होता है, वह ठीक है और अशुभभाव अठीक है—ऐसे दो भाव में भेद करना, वह विषमभाव, मिथ्यात्वभाव है। उससे हटकर अपना ज्ञान निज शुद्धात्मा परमानन्दस्वरूप की दृष्टि करना और निर्विकल्प रागरहित प्रतीति होना, उस समभावी को राग से हटकर, राग में ठीक है — ऐसी दृष्टि छोड़कर, वीतरागी स्वभाव ठीक है, हितकर है—ऐसी अन्तर में रुचि-दृष्टि होना, उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन कहने में आता है कि जो निश्चय सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण है। कहो, समझ में आया ?

और सम्यग्ज्ञान इसको कहते हैं कि भगवान् आत्मा — यह निज आत्मा जो अतीन्द्रिय आनन्द और शान्तरस का पिण्ड तत्त्व है, उसमें एकाग्र होकर, उसमें एकाग्र होकर; राग में एकाग्र होकर नहीं, शुद्धस्वरूप भगवान् अतीन्द्रिय आनन्दमय समता का पिण्ड प्रभु यह निज आत्मा है, उसमें एकाग्र होकर, उसमें लीन होकर अन्तर में से निजानन्द का स्वाद आना और रागादि के स्वाद को कटुकस्वरूप जानना और आत्मा के आनन्द को मीठा यथार्थ जानना—ऐसा दो के बीच में आनन्द का—स्व का आनन्द का ज्ञान, उसका नाम सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। वह सम्यग्ज्ञान समभावी को होता है अर्थात् राग में राग ठीक है, ऐसा ज्ञान हट गया है। हमारा आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, वही मुझे उपादेय—अंगीकार करनेयोग्य है, ऐसा आनन्द का ज्ञान करके जो रागरहित समभाव

हुआ, उस ज्ञान को यहाँ सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। मक्खनलालजी ! वहाँ कहीं सुना नहीं होगा मशीन में तो। समझ में आया ? आहाहा !

भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान, आनन्द, शान्ति का भण्डार आत्मा है। वह शरीर, वाणी, मन से तो पृथक् है; कर्म से, आठ कर्म है ज्ञानावरणीय जड़ मिट्टी, उससे भी पृथक् है परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत का शुभराग और अशुभराग, उससे भी आत्मा पृथक् है। उससे पृथक् है और अपने स्वभाव से अपृथक् अर्थात् अभेद है। अपना स्वभाव बेहद ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त शान्ति — ऐसा अपने निज स्वभाव से एकरूप अभेद है। ऐसा आत्मा का आनन्द का ज्ञान होना, राग में दुःख है, ऐसा भेदज्ञान होना, उसका नाम सम्यग्ज्ञान, मोक्ष का कारणरूप सम्यग्ज्ञान, ऐसा समभावी को होता है। समझ में आया ? कहो, रतिभाई ! गजब बात, भाई ! आहाहा ! ऐसा जिनेन्द्र कहते हैं। देखो अन्तिम। योगीन्द्रदेव मुनि स्वयं कहते हैं। परन्तु कहते हैं कि नहीं, 'जिणवरु एउ भणेइ' है न ? ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर दिव्यध्वनि द्वारा सौ इन्द्रों की उपस्थिति में समवसरण के अन्दर परमेश्वर ऐसा फरमाते थे। ऐसा आचार्य महाराज कहते हैं कि हम ऐसा कहते हैं। ऐसा हम कहते हैं। ओहोहो ! समझ में आया ? ऐसा जानना, वह सम्यग्ज्ञान है। दो बोल हुए। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान। अब सम्यक्चारित्र।

और स्वरूप के आचरणरूप वीतरागचारित्र भी उसी समभाव के धारण करनेवाले के ही होता है... क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा—निज आत्मा शुद्ध विकाररहित निर्विकल्प आत्मा में रागरहित स्वरूप में स्थिरता—स्वरूप का आचरण, स्वरूप जो आत्मा का वीतरागी ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसका आचरण, समभावी वीतरागी आत्मस्वरूप है, उसका आचरण। वीतरागचारित्र-रागरहित स्वरूप की शान्ति-स्थिरता अतीन्द्रिय आनन्दसहित शान्ति की स्थिरता उसी समभाव के धारण करनेवाले को होती है। महाव्रतादि विकल्प से हटकर अपने शुद्ध अखण्ड ज्ञायकस्वभाव में वीतरागी स्थिरता द्वारा रमना, उस समभावी को भगवान चारित्रवन्त कहते हैं। दूसरे को चारित्र होता नहीं। राग में पुण्य में धर्म माननेवाला, राग में हित माननेवाला, शुभभाव में ठीक माननेवाला, उसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों नहीं होते। समझ में आया ?

वीतरागमार्ग है न! वीतरागमार्ग कहो या समभाव कहो। वीतराग अर्थात् रागरहित, पुण्य-पाप के रागरहित, वह समभाव हुआ। समभावी स्वरूप आत्मा का समभाव ऐसा, वीतरागीभाव अन्दर होना। शुभ-अशुभ विकल्प जो पुण्य-पाप का, उससे हटकर स्वरूप के आचरण की स्थिरता समभाव के धारण करनेवाले को होता है। वीतरागी परिणति करे, उसको चारित्र होता है। ओहोहो! दुनिया को सत्य मार्ग क्या है, यह सुनने को मिलता नहीं। मक्खनलालजी! क्या करे? बाहर में जिन्दगी ऐसे ही निकाल दी।

अनन्त गुण की निधान खान भगवान आत्मा है। पुण्य-पाप का भाव है, वह तो राग, लोहे की खान है, विकार है। उस विकार से हटकर भगवान आत्मा निज वीतरागी समभावी स्वरूप में स्थिरता—रागरहित चारित्र करता है, उसको समभाव कहते हैं, उस समभावी को चारित्र होता है।

जो मुनिश्वर वीतराग निर्विकल्प परम सामायिकभाव की... देखो! यह सामायिक। यह सामायिक की व्याख्या है। है अन्दर? सामायिक शब्द है सामायिक। उसका नाम सामायिक है, उसका नाम सामायिक चारित्र है। यह यथाख्यातचारित्र और उसके चारित्र की बात नहीं चलती। समझ में आया? मुनि को आत्मदृष्टि अन्तर निर्मल समभाव में होती है, आत्मज्ञान समभाव में होता है और वीतरागीचारित्र भी समभाव में होता है, उसका नाम सामायिक चारित्र है। जिसमें दया, दान के विकल्प का भी अभाव (है और) अकेली शान्त वीतरागी परिणति का सद्भाव है। ऐसे सामायिकभाव की **भावना के अनुकूल (सन्मुख) निर्दोष परमात्मा के...** ऐसा निर्दोष भगवान आत्मा का **यथार्थ श्रद्धान...** ऐसा भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध अनन्त-अनन्त आनन्द से भरा भण्डार, उसकी अन्तर में निर्विकल्प रागरहित श्रद्धा, उसका यथार्थ आनन्द का ज्ञान और उसके स्वरूप में यथार्थ आचरण। अन्तर स्वरूप में आचरणरूप रमना, वह अखण्ड भाव धारण करता है, उसी को समभाव होता है और समभाव को तीनों—दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। बात बहुत कठिन! मनुष्य को आधार चाहिए न, कुछ सहायता बाहर की। किसको सहायता? वीतरागभाव को राग की सहायता होती ही नहीं। आहाहा! समझ में

आया ? उसी के परमसमाधि की सिद्धि होती है। परमसमाधि कहो, समभाव कहो, सामायिकभाव कहो या चारित्र-वीतरागी परिणति कहो। इस ४०वीं गाथा में ये तीन बोल कहे। समझ में आया ?

★ ★ ★

गाथा - ४१

आगे ऐसा कहते हैं कि जिस समय ज्ञानी जीव शान्तभाव को धारण करता है, उसी समय संयमी होता है,... भगवान आत्मा निजात्मा, निजात्मा, हों! अपना भगवान आत्मा वीतराग समभावी से भरा हुआ, उसमें शान्त अकषायभाव से स्थिर होता है, उसे संयम अथवा चारित्र होता है। जब क्रोधादि कषाय के वश होता है, तब असंयमी होता है... परन्तु जब क्रोध, पुण्य-पाप के भाव के वश होता है, वह असंयमी अचारित्र है। समझ में आया कुछ ? यह कहते हैं। ४१ में यह कहते हैं।

१६७) जाँवड़ णाणिउ उवसमड़ तामड़ संजदु होइ।

होइ कसायहँ वसि गयउ जीउ असंजदु सो ॥४१॥

भगवान योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि सन्त, भगवान जिनेन्द्रदेव ने कही हुई संयम की दशा का वर्णन करते हैं। जिनेन्द्र ने कहा हुआ संयम किसको कहना ? चारित्र किसको कहना ? संयमी अथवा चारित्रवन्त किसको कहना, वह जिनेन्द्रदेव ने कहा हुआ योगीन्द्रदेव कहते हैं।

‘यदा’ शब्द है न ? ‘जिस काल में’ ऐसा शब्द है। जिस काल में जिस समय में ज्ञानी जीव... अर्थात् आत्मा। ज्ञानी जीव, ऐसा। शुद्धस्वरूप का अन्तर का स्वसंवेदन ज्ञान है। भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति का स्वसंवेदन ज्ञान का वेदन करके ज्ञान हुआ है, उसका नाम ज्ञानी कहा जाता है। ज्ञानी जीव शान्तभाव को प्राप्त होता है। आत्मा का ज्ञान हुआ है, उसमें वह शान्त (होता है)। पुण्य-पाप का रागभाव, वह अशान्तभाव है। समझ में आया ? शुभ-अशुभभाव है, दोनों अशान्तभाव हैं। उनसे हटकर भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु का ज्ञान करके ज्ञानी जीव उसमें शान्तभाव से,

अकषायभाव से, वीतरागभाव से स्थिर होता है। उस समय संयमी होता है,... उस काल में संयमी होता है।

मुमुक्षु : शान्तभाव अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शान्तभाव में आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति का वेदन होता है। शान्तभाव में अतीन्द्रिय समभाव का वेदन होता है, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होता है, अनुभव होता है, उसका नाम शान्तभाव। पुण्य-पाप के भाव में दुःख का वेदन होता है, दुःख का अनुभव होता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अतीन्द्रिय आनन्द अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इन्द्रिय आनन्द में राग में मानता है, उससे विरुद्ध, वह अतीन्द्रिय आनन्द। इन इन्द्रियों का लक्ष्य करके राग में आनन्द मानता है, उससे विरुद्ध जो भाव अन्तर में आत्मा में उत्पन्न, उसका नाम अतीन्द्रिय आनन्द। समझ में आया ? अरे ! कभी मार्ग लिया नहीं। ऐसे ही हैरान होकर मर गया। यहाँ तो कहते हैं कि, भाई !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्यभाव है, वह अशान्तभाव है, दुःखभाव है, आकुलताभाव है, जहरभाव है। कहो, शुक्लचन्दजी ! ऐसा कहते हैं भगवान।

सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव समवसरण में इन्द्र की उपस्थिति में, गणधर की उपस्थिति में—मौजूदगी में भगवान फरमाते थे, वही योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि फरमाते हैं। 'जिणवरु एउ भणेइ' ऐसा लिया है। समझ में आया ? आहाहा ! वह भगवान आत्मा कैसा है, खबर नहीं। जहाँ शोधना है, वह क्या चीज़ है खबर नहीं। बाहर में ढूँढा करे, फिरा करे, यह किया... यह किया... यह किया... मर गया इसमें कुछ नहीं मिले। समझ में आया कुछ ? पैसा, स्त्री, पुत्र, परिवार को खोजने लगा कि वहाँ सुख होगा। धूल में भी नहीं है। उसकी कल्पना में तो दुःख है।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान ! एक बार सुन तो सही। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भक्ति का विकल्प उठे, वह राग है, वह अशान्तभाव है, वह दुःखभाव है। वहाँ खोजने

जाये तो शान्ति नहीं मिलेगी। आहाहा! ऐसा यहाँ भगवान जिनवर अर्थात् वीतराग (कहते हैं)। वीतराग का मार्ग वीतराग से उत्पन्न होता है। कहो, समझ में आया? धर्म का एक थोड़ा अंश भी वीतरागभाव से उत्पन्न होता है। राग से नहीं, राग तो विकार है, आकुलता है, दुःख है। ओहोहो! धर्म तो अन्तर में आनन्द है। बाहर में भगवान... भगवान... भगवान... करे तो भी वह विकल्प-राग है। राग को तो यहाँ अशान्तभाव कहा है। उसमें शान्ति कहाँ से आये? शान्ति तो भगवान आत्मा में पड़ी है।

आत्मा स्वयं पूर्ण शान्तरस का कन्द है। उसका शान्तभाव में जो ज्ञानी जिस काल स्थिर होते हैं, उस काल में उसको संयमी कहा जाता है। उस काल में उसको चारित्र कहा जाता है। ओहोहो! चारित्र कैसा होता है, उसने सुना नहीं। चारित्र क्या है? देह की क्रिया तो जड़ है, यह तो मिट्टी है। नग्नपना, वह चारित्र नहीं। पंच महाव्रत का विकल्प उठे, वह भी चारित्र नहीं, वह तो राग है।

यहाँ तो भगवान कहते हैं, 'ज्ञानी जीवः उपशाम्यति' स्वरूप में शान्त... शान्त... शान्त... विकल्प अर्थात् शुभरागरहित शुद्ध अरागी परिणति में शान्त में स्थिर होते हैं, उस काल में उसको चारित्र होता है। समझ में आया? वह चारित्र साक्षात् मुक्ति का कारण है। परमात्म प्राप्ति का कारण है। परमात्मप्रकाश है न! समझ में आया? ओहोहो! बड़े मानधाता एक क्षण में चले जायें, देखो! है कहीं शरण? डॉक्टर क्या रखे अन्दर धूल में। पुलिस लाखों ऐसे मरने के बाद ऐसा रखते हैं। (बन्दूक) उल्टी करे। जीवित ऐसे रखे और मरने पर ऐसे रखे। उसमें आत्मा को क्या परन्तु? समझ में आया? बन्दूक-बन्दूक। सलामी करे तब। उसमें है क्या? धूल में। जीते जी उसमें राग होता है तो पाप है। क्या पाप में शरण है? और पुण्यभाव करता है, वह भी राग है। पुण्यबन्ध का कारण है। वह कोई अबन्ध परिणाम—मोक्ष का कारण नहीं। यहाँ तो मोक्ष का मार्ग वीतराग वर्णन करते हैं।

कहते हैं, जिस समय ज्ञानी जीव... जिस काल में। जिस समय 'यदा' जिस समय 'तदा काले' ऐसा लिखा है। समझ में आया कुछ? 'तामइ' है न? 'तावत्' 'तदा काले' है न संस्कृत में? संस्कृत में है यह। 'यदा काले णाणिउ जानी जीवः उवसमयइ

उपशाम्यति तामइ तदा काले संजदु होइ' संस्कृत है। भगवान् आत्मा अपने निज स्वरूप में, अपने निज स्वरूप में, पुण्य-पाप के रागरहित सम्यग्ज्ञान करके स्वरूप में स्थिर होते हैं शान्त... शान्त... शान्त... शीतल जैसे बर्फ की शिला है, शीतल बर्फ की पाट/शिला-शिला, बर्फ की शिला। शीतल... शीतल... शीतल... उसी प्रकार भगवान् आत्मा अकषाय शीतल ठण्डी शिला / पाट आत्मा है। शरीर नहीं, वाणी नहीं, कर्म नहीं, पुण्य-पाप का राग नहीं। चैतन्य शरीरप्रमाण शीतल अकषाय शान्तरस की शिला आत्मा है। साढ़े तीन हाथ की लम्बी। ऐसी शिला में अन्दर में स्थिर होना। जैसा अन्दर स्वभाव है, वैसा शीतल प्रगट करना। वह कोई विकार उसका स्वभाव नहीं है। समझ में आया ?

भगवान् आत्मा पूरे शरीरप्रमाण शरीर से भिन्न, कर्म से भिन्न, सारे शरीर प्रमाण विकल्प जो उठते हैं, वह भी सारे आत्मा प्रमाण व्यापक विकल्प है, उस विकल्प से भी भिन्न। सारा आत्मा असंख्य प्रदेशी अविकारी शान्तरस की शीतल शिला आत्मा है। उस शिला पर जैसे सोवे तो शीतलता लगे, उसी प्रकार भगवान् आत्मा उपशमरस का कन्द आत्मा पड़ा है। उसमें स्थिरता करना, उसका ज्ञान करके ज्ञानी उसमें स्थिर हो जाये, वह अकषायभाव उत्पन्न हो, उसका नाम संयम और चारित्र कहा जाता है। गजब बात ! ऐसा योगीन्द्रदेव, वीतरागदेव ने कहा हुआ कहते हैं। आत्मा शान्तरस का पिण्ड—शिला है परन्तु अरूपी। वीतरागभावी आत्मा कहो या शान्तरस स्वभावी आत्मा कहो, या अकषायस्वभावस्वरूप आत्मा कहो। उसमें कषाय पुण्य-पाप के विकल्प का कण जिसकी चीज़ में नहीं। ऐसी भगवान् आत्मा चिदानन्द शीतल शिला में एकाकार होकर शान्त... शान्त... पुण्य-पाप के विकल्परहित उपशमरस में (स्थिर)। 'उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में।' आता है या नहीं स्तुति में ? 'उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में।' इसी प्रकार आत्मा उपशमरस-शान्तरस। यह कषायरस आत्मा है ? कषाय, पुण्य-पाप का भाव जो उत्पन्न होता है, वह तो कषाय है। वह तो उत्पन्न होता है, वह कहीं वस्तु में नहीं। नया उत्पन्न करता है। उसका लक्ष्य छोड़कर भगवान् आत्मा ज्ञानमूर्ति शीतल शान्तस्वभावी प्रभु के अन्दर में जिस काल में शीतल होकर, शान्त होकर उपशमरस में पड़े, तब उसे संयम और चारित्र कहा जाता है। आहाहा ! मुनि शान्तरस के ढाला में ढल गये हैं। ओहोहो ! मुनिपद, परमेश्वर पद ! समझ में आया ? णमो लोए सव्व साहूणं।

पाँच पद में परमेश्वर पद, वह तो परमेश्वर पद है। परन्तु कैसा ? ऐसा होवे उसको कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने तो आत्मा की बात चलती है यहाँ। समझ में आया ?

भगवान आत्मा... दुनिया दुनिया की जाने। यहाँ तो यह आत्मा शान्तरस से भरपूर चैतन्य प्रभु, उसकी दृष्टि—सम्यग्ज्ञान, शान्तरस की दृष्टि, शान्तरस का ज्ञान और शान्तरस में स्थिर हो जाना, हिम-हिम। जैसे हिम होता है न! हरी फसल को जला डाले। छोड़ समझते हो ? फसल होती है न हरी फसल ? हिम गिरे तो जला दे। उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर में शीतल शान्तरस में परिणमन करके वीतरागी दशा में रहना, उसको चारित्र (कहते हैं), विकार का नाश कर देता है।

ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा, उस आनन्द में शीतलता की शान्ति की छाया में रहना। उपशमभाव स्थिर हो गया... स्थिर हो गया... स्थिर हो गया... कोई शरीर को काटे (तो) द्वेष नहीं, चन्दन चोपड़े (तो) राग नहीं। निन्दा करो तो जड़ की पर्याय, मुझे क्या ? प्रशंसा हो तो जड़ की अवस्था, मुझे क्या ? मैं तो उपशमरस के शान्तरस में पड़ता हूँ। उसको संयम और संयमी चारित्र और चारित्रवन्त कहते हैं। समझ में आया ? ओहोहो !

और क्रोधादि कषायों के आधीन हुआ... देखो ! पुण्य-पाप विकारभाव के आधीन होना, वही जीव असंयमी होता है। यह एक ही बात है। शुभ-अशुभराग विकल्प के आधीन होना, वह असंयमी है। स्वभाव के आधीन होकर शुद्धता की शान्ति में स्थिर हो जाना, वह संयमी है। ओहोहो ! गजब व्याख्या परन्तु ! यह पंचम काल के मुनि हैं। पंचम काल का संयम कैसा है, उसकी बात करते हैं। यह संयम चौथे काल की बात है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? क्रोधादि अर्थात् क्या ? पाठ में कषाय है। तो शुभभाव भी कषाय है। समझ में आया ? समझ में आया ? तो शुभभाव के वश होना, वह भी असंयम है। आहाहा !

भगवान का मार्ग 'वचनमृत वीतराग के परम शान्तरसमूल, औषध जो भवरोग

के परन्तु कायर को प्रतिकूल' कायर का तो यह कलेजा काँपे। अररर! ऐसा यह! क्या है यह मार्ग? 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरसमूल' श्रीमद् कहते हैं, देखो! वीतराग के वचन अमृत समान शान्तरस की उत्पत्ति के मूल हैं। आहाहा! शान्तरस कहो, समभाव कहो, वीतरागी भाव कहो। आहाहा! 'घोर परीषह और उपसर्ग में भय करी...' शान्तरस में परिणमते हैं ऐसे। अरे! हम ऐसे ध्यान में पड़ते हैं कि जहाँ पत्थर (समझकर) हिरण खुजलाने आते हैं। पत्थर हो, वहाँ शरीर घिसने आते हैं या नहीं हिरण? उसी प्रकार इस शरीर से घिसने को हिरण आवे और हम शान्तरस में परिणमे, ऐसी दशा कब हो? ऐसी भावना भाते हैं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आता है। छहढाला में आता है। छहढाला में बहुत डाला है। छहढाला में, दौलतरामजी की छहढाला में बहुत डाला है। परन्तु उसका अर्थ समझे बिना (अर्थ करे)। उसमें बहुत बार ऐसी ही बात चली है, उसमें।

कहते हैं कि 'कषायाणां वशे गतः स एव असंयतः भवति' जितना पुण्य-पाप के भाव में आदर होकर मिथ्यादृष्टि होता है और सम्यग्दर्शन में आदर नहीं, परन्तु अस्थिरता होती है, उतना असंयम है। शुभभाव का आदर करके मानना, वह मिथ्यादृष्टि है; आदर नहीं करके (अस्थिरता से) उत्पन्न होना, वह असंयम है। समझ में आया? शुद्धस्वभाव का आदर करके शुभ का आदर नहीं करना, वह सम्यग्दर्शन है। और स्वभाव का आदर करके शुभभाव आदि उत्पन्न होना, वह असंयम है। और शुभभाव उत्पन्न नहीं होना और शान्तभाव उत्पन्न होना, वह संयम है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? शब्दार्थ हुआ।

भावार्थ :- आकुलतारहित निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुए निर्विकल्प (असली) सुख का कारण जो परम शान्तभाव उसमें जिस समय ज्ञानी ठहरता है, उसी समय संयमी कहलाता है,... देखो, व्याख्या टीका। भगवान् आत्मा... पुण्य-पाप से, आकुलता से रहित निज शुद्धात्मा भगवान् स्वयं अपना निज परमात्मा, उसकी भावना। अन्तर की शान्त आनन्दरस की एकाग्रता, उससे उत्पन्न हुए निर्विकल्प सुख...

आत्मा में निर्विकल्प शान्ति का, आनन्द का सुख उत्पन्न हुआ आत्मा में, उस कारण जो परम शान्तभाव... इस कारण से परमशान्तभाव हुआ है। विशेषण भी समझना कठिन लोगों को। भगवान आत्मा... पुण्य-पाप का राग आकुलता है, उस आकुलता से रहित निजशुद्धात्मा अपना निज शुद्ध चैतन्यप्रभु की भावना, उसमें शुद्ध में एकाग्रता, उसमें उत्पन्न हुआ असली आनन्द का सुख, आत्मा का असली आनन्द-सुख, उसका कारण जो परम शान्तभाव... देखो! परम शान्तभाव में आनन्द उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। अशान्तभाव में तो दुःख है, ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं, समझ में आया? उस सुख का कारण परमशान्तभाव, ऐसा कहा, भाई! वह पुण्य-पाप का भाव वह दुःख का कारण अशान्तभाव है। आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प अशान्तभाव दुःख का कारण है और भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कारण शान्तभाव अकषायभाव, वह आनन्द का कारण है। अहो! इसके निजघर का माहात्म्य इसको आया नहीं। परघर में बाहर चला चलकर माना कि हम कुछ करते हैं।

कहते हैं, भगवान आत्मा में अन्तर शुद्धस्वरूप आनन्द, उसका आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द जो उत्पन्न हुआ, उसका कारण परमशान्तभाव है। ऐसा कहकर क्या कहते हैं? कि शुभ-अशुभभाव है, वह अशान्तभाव है, वह दुःख का कारण है, भाई! वह दुःख का कारण है अथवा दुःखरूप है। आहाहा! उसे दृष्टि में—श्रद्धा में बात बैठाना, पसीना उतरता है। बाहरचला हो गया है बहुत। पुण्य-पाप में बाहर चलना, वह बाहरचला है। भगवान आत्मा जिसमें नजर डालने से शान्तरस झरे, ऐसे आत्मा के शान्तरस की परिणति, वह आनन्द का कारण है। समझ में आया? जिस समय ज्ञानी उसमें ठहरता है, उस समय संयमी कहलाता है। उस काल में उसको संयमी-संयम धारण करनेवाला कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : किस गुणस्थान की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : छठवें गुणस्थान की बात। छठवें-सातवें। समझ में आया? मुनि-मुनि। णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। अरिहन्त-सिद्ध तो पूरे हो गये, उनकी कहाँ बात है? ऐसे संयमी को आचार्य

कहते हैं, ऐसे संयमी को उपाध्याय कहते हैं, ऐसे संयमी को साधु कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्प दृष्टि की शान्ति के समय संयमी कहलाये। निर्विकल्प अर्थात् भले विकल्प हो, परन्तु निर्विकल्प जो परिणति, वह संयम है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

और आत्मभावना में परम आकुलता के उपजानेवाले... देखो ! भगवान् आत्मा शुद्ध आनन्द की एकाग्रता की भावना, उसमें आकुलता के उपजानेवाले। अन्तर की भावना न रहकर परम आकुलता के उपजानेवाले **काम क्रोधादिक...** राग-द्वेष। काम अर्थात् राग और क्रोध अर्थात् द्वेष। राग और द्वेष का विकल्प उत्पन्न होना, पुण्य या पाप का। **अशुद्धभावों में परिणमता हुआ...** वह अशुद्धभाव है। पुण्य और पाप दोनों अशुद्धभाव हैं, मलिन है, दुःखरूप है, दुःख का कारण है। समझ में आया ?

यह तो परमात्मप्रकाश है न ! परमात्मस्वरूप शक्ति आत्मा है। उसकी दृष्टि, ज्ञान, शान्ति अविकारी परिणाम वीतराग, वही कारणपरमात्मा की पर्याय है और पूर्ण कार्यपरमात्मा, वह सिद्धदशा है। आत्मा जब राग-द्वेषादि के वश हो, पुण्य-पाप के वश हो तो असंयमी होता है। **इसमें कुछ सन्देह नहीं है।** देखो ! समझ में आया ? इसमें सन्देह करना नहीं। ऐसा है, ऐसा कहा न, इसलिए संयम नहीं, ऐसा। भगवान् आत्मा अपने निज शान्तरस में सम्यग्ज्ञानपूर्वक शान्तरस में कषाय पुण्य-पाप के रहित में स्थिर होना, वही संयम है और जिस समय क्रोध—राग-द्वेष, पुण्य-पाप के वश हो जाये—आधीन हो जाये, (तब वह) असंयमी है। निःसन्देह ऐसा जानना। इसमें जरा भी अन्तर नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसा दूसरी जगह भी कहा है। लो, किसी जगह है। आधार नहीं दिया। ‘अकसायं तु चरित्तं कषायवसगदो असंजदो होदि। इवसममइ जमि काले तक्काले संजदो होदि ॥’ देखो, वह का वह है। पाठ है न ? ऐसा ही एक श्लोक का आधार रखा है। अर्थात् कषाय का जो अभाव है, वही चारित्र है, ... चारित्र की व्याख्या—आनन्दस्वरूप भगवान् में चरना, जमना, लीन होना, वह तो अकषायभाव है। आत्मा अकषायस्वभाव तो

त्रिकाल है। उसमें ठहरना, वह अकषायभाव है। यह अकषायभाव है, वह चारित्र है। इसलिए कषाय के आधीन हुआ जीव असंयमी होता है,... लो, जब पुण्य-पाप के भाव में, पुण्य के भाव में आधीन हो गया, तो भी असंयमी है। ओहोहो! ऐसी वाणी! दिगम्बर सन्तों-मुनियों के अतिरिक्त यह वाणी ऐसी कहीं भी नहीं है। समझ में आया? दिगम्बर मुनियों ने तो जितना सत्य है वीतरागमार्ग, ऐसा प्रसिद्ध किया है कि मार्ग ऐसा है। मानो, न मानो, तुम्हारे अधिकार की बात है। वस्तु ऐसी है। आहाहा! और जब कषायों को शान्त करना... कषायों को शान्त करता है। पुण्य-पाप के विकल्प का नाश होता है। और जितना स्वरूप में शान्ति अविकारी परिणति दशा आनन्द की होती है, वही संयमी कहलाता है। तब संयमी कहलाता है। है? 'तवकाले संजदो होदि' इसका अर्थ किया।

★ ★ ★

गाथा - ४२

आगे जिस मोह से मन में कषाय होती हैं, उस मोह को तू छोड़,... ... जिससे तुझे राग उत्पन्न होता है, उस पदार्थ का लक्ष्य छोड़ और राग को छोड़। दोनों को छोड़, ऐसा कहेंगे। जिस पदार्थ के लक्ष्य से तुझे राग होता है, उस पदार्थ का लक्ष्य छोड़ दे, राग छोड़ दे, तो आत्मा में शान्तभाव होगा। ऐसा वर्णन करते हैं—

१६७) जेण कसाय हवंति मणि सो जिय मिल्लहि मोहु।

मोह-कसाय-विवज्जयउ पर पावहि सम-बोहु ॥४२॥

हे जीव! जिस मोह से अथवा मोह के उत्पन्न करनेवाली वस्तु से मन में कषाय होवें,... जिसका लक्ष्य करने से तुझे राग होता है, उस पदार्थ का लक्ष्य छोड़ दे और राग को छोड़ दे। राग को छोड़ दे। आहाहा! जो मोह अर्थात् पर की ओर की सावधानी। स्वरूप की सावधानी, स्वरूप की सावधानी का नाम मोक्षमार्ग और पर में सावधानी का रागादि उत्पन्न होना और उस राग में जो निमित्त है... मन में कषाय होवें, उस मोह को अथवा मोह निमित्तक पदार्थ को छोड़,... ऐसा कहकर परपदार्थ के लक्ष्य में राग ही होता है, ऐसा कहते हैं। स्वपदार्थ के आश्रय से अरागी दृष्टि और ज्ञान और शान्ति होती

है। अपने आत्मा की दृष्टि से अरागी दृष्टि, अरागी ज्ञान, अरागी शान्ति होती है। परपदार्थ के लक्ष्य से तो मोह ही उत्पन्न होता है, तो लक्ष्य छोड़ और मोह भी छोड़। इसमें बहुत कड़क बात है जरा। भगवती आराधना का दृष्टान्त (उद्धरण) देंगे, हों! भगवती आराधना का श्लोक है यह, है यह।

फिर मोह को छोड़ने से मोह कषायरहित हुआ तू नियम से राग-द्वेषरहित ज्ञान को पावेगा। भगवान आत्मा पर की ओर के पदार्थ के लक्ष्य में राग होता है, कषाय होती है। उसका लक्ष्य छोड़ तो वह पदार्थ छोड़ा कहलाये और उसका राग छोड़ तो अशान्ति टलकर शान्ति होगी। अशान्ति टलकर शान्ति होगी। वही शान्ति आत्मा में निर्विकल्प शान्ति, वही मोक्ष का मार्ग है। दूसरा कोई मार्ग है नहीं। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण १०, रविवार, दिनांक - १६-०१-१९६६

गाथा - ४२-४३, प्रवचन - ९९

भावार्थ :- निर्मोह निज शुद्धात्मा के ध्यान से... देखो! पहली व्याख्या। यह आत्मा कैसा है? निर्मोह है। आत्मा में मोह के विकल्प पुण्य-पाप का और मिथ्याभ्रमणा, वह वस्तु में नहीं है। वस्तु तो शुद्ध चैतन्य है। 'निर्मोह निज शुद्धात्मा' ऐसा लिया है। ज्ञाता-दृष्टा ज्ञान और दर्शन का पिण्ड आत्मा, जिसमें मोह, भ्रमणा या विकल्प राग-द्वेष वस्तु में नहीं। ऐसा जो आत्मा, उसके ध्यान से। उसके ध्यान से अर्थात् उस शुद्धात्मा में अन्तर एकाग्रता से निर्मोह निज शुद्धात्मतत्त्व से विपरीत... यह आत्मा मोहरहित शुद्ध तत्त्वस्वरूप है, उससे विपरीत मोह को, हे जीव! छोड़। अन्तर ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप जो चैतन्य निर्मोहस्वरूप ऐसे निर्मोह शुद्धात्मा के ध्यान से निर्मोह शुद्धात्मा के तत्त्व से विपरीत ऐसा जो मोह, उसे छोड़ सकेगा। आत्मा के अन्तर ज्ञानानन्दस्वरूप को ध्यान में लेने से निर्मोह आत्मस्वभाव से विपरीत मोह छूटेगा। समझ में आया? तीन बातों की न तीन पट्टी।

भगवान आत्मा अकेला शुद्ध ज्ञानमूर्ति प्रभु का ध्यान, वह पर्याय है, एकाग्रता। उससे निर्मोह ऐसा जो आत्मस्वरूप, उससे विपरीत ऐसा मोह, वह निर्मोह आत्मा के ध्यान से छूटेगा। स्वरूप निर्मोह, उस स्वरूप की सावधानी से, स्वरूप से विपरीत मोह पर की सावधानी, वह निज स्वरूप की सावधानी से छूटेगा। पर की सावधानी। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त। भगवान आत्मा निर्मोहस्वरूप है अर्थात् कि पर में सावधानपना जिसमें नहीं। अपने स्वरूप में सावधान हो, ऐसा ही उसका स्वभाव है। ऐसा भगवान आत्मा, उसकी एकाग्रतारूपी ध्यान से, उसे ही एकाग्र पकड़कर उसके ध्यान द्वारा। ध्यान, वह निर्मल पर्याय हुई; शुद्धात्मा, वह द्रव्य हुआ। उसके ध्यान से निर्मोह ऐसा शुद्धात्मा, उससे विपरीत मोह, वह विकारी पर्याय हुई। उस विकारी पर्याय का निर्मोह आत्मा के ध्यान से विकारी पर्याय व्यय होगी। निर्मोही आत्मा का ध्यान अर्थात् उत्पाद

से विकारी पर्याय का व्यय होगा। उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीन कहे इकट्ठे। समझ में आया ?

भगवान शान्त सागर आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा। आनन्द कहीं अन्यत्र नहीं। उसका आनन्द अन्तर में परिपूर्ण भरा है। वह आनन्दस्वरूप कहो या निर्मोहस्वरूप आत्मा कहो। उसकी अन्तर एकाग्रता से। अर्थात् एकाग्रतारूपी नयी पर्याय उत्पन्न होने से, उस शुद्धात्मतत्त्व से विरुद्ध जो मोह, अज्ञान राग-द्वेष का व्यय होगा, द्रव्य ऐसा (का ऐसा) रहेगा, उसमें एकाग्र होने से निर्मोहदशा का उत्पाद होगा। समझ में आया ?

‘हे जीव! छोड़।’ हे आत्मा ! तेरे स्वभाव का सावधानपना करके, पर की सावधानी विकार का व्यय कर, छोड़। यह तो उपदेश में ऐसा ही आवे न ! स्वरूप में शुद्ध आनन्द में लीन होने से जो आनन्द की पर्याय उत्पन्न होने पर विकारी पर्याय छूट जाती है। उसे कहते हैं कि भाई ! तू छोड़। इसके बिना तुझे शान्ति का कोई उपाय नहीं है, स्वतन्त्रता के सुख का कोई दूसरा उपाय नहीं है। यही उसका उपाय है। समझ में आया ? कौन-सी क्रिया आयी इसमें ? शुद्धस्वरूप परमानन्द की अन्तर एकाग्रता से उसकी पर्याय आयी। वह पर्याय, यह ध्यान आया। यह ध्यान, वह मोक्ष का मार्ग आया। मोक्ष के मार्ग से विपरीत मार्ग की जो पर्याय, वह उत्पन्न नहीं होगी। उसे छोड़, ऐसा कहा जाता है। कहो, मोहनभाई ! बहुत संक्षिप्त, बहुत ऊँचा।

जिस मोह से अथवा मोह करनेवाले पदार्थ से कषायरहित परमात्मतत्त्वस्वरूप ज्ञानानन्दस्वभाव के विनाशक... जो मोह से (अर्थात्) परसन्मुख की सावधानी की दृष्टि और राग-द्वेष से अथवा मोह करनेवाले निमित्त पदार्थ पर। उनसे कषायरहित परमात्मतत्त्वस्वरूप आत्मा। परम आत्मस्वरूप ज्ञानानन्द ऐसे स्वभाव के नाश करनेवाले कषाय क्रोधादि कषाय होते हैं, इन्हीं से संसार है,... क्या कहा ? भगवान आत्मा की सावधानी छोड़कर, परपदार्थ के ओर की सावधानी के मोह से अथवा उसके निमित्त के पदार्थ से, सब एक ही है यह तो। भगवान आत्मा जिसका परमात्म ज्ञानानन्दस्वभाव है, उससे विपरीत जो क्रोधादि भाव है... समझ में आया ? वह कषाय, उसके विपरीत भाव से होती है। अपने स्वभाव-सन्मुख न जाकर, परपदार्थ के सन्मुख जाने से भाव, उससे

कषाय, मिथ्यात्व और राग-द्वेष होते हैं। यह संसार है, देखो! यह संसार है।

इन्हीं से संसार है,... यह संसार है, वह भटकने का बीज है। समझ में आया इसमें? इसलिए मोह कषाय के अभाव होने पर ही रागादि रहित निर्मल ज्ञान को तू पा सकेगा। भगवान आत्मा ज्ञान-शान्तरस प्रभु, वह परसन्मुख के पदार्थ और परसन्मुख का मोह, उसे छोड़ने से, तेरे स्वभाव-सन्मुख जाने से तुझे शान्ति मिलेगी। ऐसा शान्ति का ज्ञान तुझे प्राप्त होगा। समझ में आया? परसन्मुख जाते हुए ज्ञान उघाड़ दिखाई दे, परन्तु वह अशान्ति का ज्ञान है। समझ में आया?

ऐसा दूसरी जगह भी कहा है। भगवती आराधना में। 'तं वत्थुं मुत्तव्वं जं पडि उपज्जे कसायग्गी। तं वत्थुमल्लिएज्जो (तद् वस्तु अंगीकरोति, इति टिप्पणि) जत्थुवसम्मो कसायाणं ॥' उसे अंगीकार करो। क्या कहते हैं? अर्थात् वह वस्तु मन-वचन-काय से छोड़नी चाहिए,... मन, वचन और काया के लक्ष्य से परवस्तु को छोड़ना चाहिए। उसका लक्ष्य ही छोड़ना चाहिए, ऐसा। कि जिससे कषायरूप अग्नि उत्पन्न हो,... विकार उत्पन्न हो, ऐसी वस्तु को छोड़ना चाहिए और उस वस्तु को अंगीकार करना अर्थात् लक्ष्य करना कि जिससे कषायरूपी अग्नि उत्पन्न न हो। सच्चे सत् समागम से कषाय की उत्पत्ति नहीं होती। राग की मन्द उत्पत्ति हो, वह बात अलग है। समझ में आया? परन्तु उसमें तीव्र कषाय की अग्नि उत्पन्न नहीं होती।

तथा उस वस्तु का अंगीकार करना चाहिए, जिससे कषायें शान्त हों। कषाय जिसमें परवस्तु के लक्ष्य से वह अकषायभाव बतलानेवाले देव-गुरु के लक्ष्य से अकषायभाव की ही उत्पत्ति होती है। क्योंकि लक्ष्य है विकल्प, परन्तु उन्हें कहना है अकषाय; इसलिए उसमें से अकषायभाव की ही उत्पत्ति होती है विकल्प छोड़कर। समझ में आया? तात्पर्य यह है कि विषयादिक सब सामग्री... शब्द, रूप, रस, गन्ध जो परपदार्थ सब सामग्री जड़ और मिथ्यादृष्टि पापियों का संग... जिनकी दृष्टि विपरीत है, जिनका ज्ञान उल्टा है, जिनके अकेला राग-द्वेष के कुआचरण हैं अन्दर—उनका संग सब तरह से मोहकषाय को उपजाते हैं,... उनका संग करता है, वह मानते हैं, वैसा मनाते हैं। समझ में आया? जिसकी दृष्टि में विपर्यास, ज्ञान विपर्यास, राग विपर्यास है,

वे उसे मनाते हैं कि ऐसा होता है। इसलिए उनके संग से तो विपरीत श्रद्धा, ज्ञान उत्पन्न होते हैं। बहुत संक्षिप्त बात है न। यहाँ तो एकदम स्व और पर दो की बात है। इससे ही मन में कषायरूपी अग्नि दहकती रहती है। कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र आदि हो तो मिथ्याश्रद्धा में मिथ्याश्रद्धा उत्पन्न होती है, उसमें कषाय अग्नि जलती है। शान्त ज्ञानरस से विपरीत बात करनेवाले, उनकी मान्यता और उनके लक्ष्य से और उनके श्रवण से तो कषाय अर्थात् खोटी श्रद्धा उत्पन्न होती है और खोटी श्रद्धा, वही कषाय है। समझ में आया ?

वह सब प्रकार से छोड़ना चाहिए, और सत्संगति तथा शुभ सामग्री (कारण) कषायों को उपशमाती है,... सामग्री अर्थात् वे सत् देव-गुरु-शास्त्र, वे वीतरागी भाव करने का कहते हैं। इसलिए उनसे समझण में वीतरागभाव आवे, ऐसी सामग्री का लक्ष्य करके स्वभाव-सन्मुख ढलना। समझ में आया ? ओहोहो ! मरते हुए चारों ओर घेरा डाला हो और फिर जिसके ऊपर ऐसे प्रेम हो, लड़का छोटा एक वर्ष का हो। हाय... हाय ! अभी हुआ है न। और बापू... बापू ऐसा करता हो और वह मरते हुए उसे बतावे। उसे ऐसा लगे कि इसका क्या होगा ? स्त्री नयी विवाह करके बैठा दो वर्ष से। ३५ वर्ष की उम्र हो, ४० वर्ष की नयी से विवाह किया हो, वह हो १७ वर्ष की, १८ वर्ष की। यह हो ४० वर्ष का। आँसू आये। डॉक्टर कहे कि यह अटैक कठोर है भाई, हों ! ऐई ! डॉक्टर !

मुमुक्षु : गुप्तरूप से कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुप्त कहे गुप्त। अटैक कठोर है। उसके सामने देखे (तो) कषाय अग्नि उत्पन्न हो। स्त्री, यह घर और नये बनाये हैं अभी, हों ! रंगरोगन करके एक लाख रुपये खर्च किये। पाँच हजार का रंगरोगन किया और वस्त्र पहनाकर श्रृंगार करके रखा। अब कहते हैं कि चलो। ऐई ! मोहनभाई ! डॉक्टर गुप्तरूप से कहे कि बापू ! चेत लेना, हों ! अटैक कठोर है। कान में कह दे उसको। मित्र-बित्र हो न कोई। छोड़ न उसके सामने देखना, यहाँ देखना अन्दर में। परन्तु वह टेव पड़ी हो। हाय...हाय ! इस लड़के का क्या होगा ? इस स्त्री का क्या होगा ? लिखा (बसीयत) नहीं, हों ! पुरानी का पुत्र, यह नयी, पुत्र नहीं होता, उसका लिखा (बसीयत) नहीं। यह कषाय अग्नि अन्दर

सुलगती है। धीरुभाई! अब छोड़ न होली, कहते हैं कि उसका लक्ष्य छोड़ न! वहाँ उसके संग को (छोड़कर) गुरु, देव और शास्त्र कहते हों (उनके संग में जा)। छोड़ यह। भगवान के सन्मुख देख अन्दर। भगवान आत्मा निर्मोह पड़ा है, प्रभु आत्मा पड़ा है, शान्तरस का सागर। देख वहाँ, तेरा मोह टल जायेगा। समझ में आया? ऐसा वह कहे सत्संग। वह डॉक्टर ऐसा कहे तो यह ऐसा कहे। हाय... हाय... यह तो डॉक्टर ऐसा कहते हैं, ... वह कहे, परन्तु बचने का है अन्दर। जीवित ज्योति चैतन्य है, वहाँ जा न, नजर कर न, भाई! वहाँ नजर कर। समझ में आया? उसमें मोह घटकर शान्ति होगी। उसमें ऐसे देखता है और ऐसे दिखायेंगे और होली होगी तुझे। छोड़ न उनका संग। देह छूटेगा अभी तो किसके सामने तुझे देखा करना है? समझ में आया? पैर ऐसे-ऐसे होंगे, मुख ऐसे-ऐसे होगा, वहाँ किसके सामने देखना है तुझे? सत् समागम उस समय सुना हो और सुनावे तो वह सुनावे आत्मस्वभाव को। उसके ऊपर जा और शान्ति होगी, बाकी कहीं शान्ति-मोह छूटने का दूसरा उपाय नहीं है। कहो, समझ में आया? नेमिदासभाई!

मुमुक्षु : परिणाम बदल जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम बदले, ऐसे जीव की बात है यहाँ। न बदले, उसकी बात ही कहाँ है यहाँ? क्या कहा? यहाँ उसे बदलना, उसकी बात है यहाँ। ऐसा क्या करता है? कहाँ जाना है तुझे? कहाँ जाना है तुझे अब? यह सब पैर तड़फड़िया टूटे, ऐसे-ऐसे होने लगा हो, क्या करना है तुझे अब? वहाँ नजर करनी है? मोह को उत्पन्न करने का देह का रोग है। समझ में आया? सगे-सम्बन्धी सब इकट्ठे होकर हाय... हाय... सामने देखे तो वह रोती होगी स्त्री। आँख में से टपक-टपक करती, क्या करना परन्तु अब तुझे? भीखाभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहे, वहाँ सत्समागम में। छोड़ न। यह क्या करता है? ऐई!

एक बार नहीं कहा था? वे प्रेमचन्दभाई थे न! प्रेमचन्दभाई न? क्या कहलाते

हैं ? वे थे म्युनिसीपलटी में। बड़ा शरीर, सोने की अँगूठी लठ्ठ जैसी, हों ! मन्दिरमार्गी थे सदर में। गये होंगे विवाह में कहीं। तीन दिन खाया होगा ठीक सा जलेबी और बर्फी और सब ठीक सा। तीन दिन खाया होगा, वह उसमें निमोनिया डबल। ऐसे सोने की अँगूठी जैसा हो गया। ... बुलाओ महाराज को। वह तो मन्दिरमार्गी, परन्तु हम नजदीक थे न वहाँ। महाराज को बुलाओ। ... स्त्री ऊपर बैठी थी। अरे ! परन्तु क्या करते हो यह तुम, कहा ? यह चला, यह तो जाता है। परन्तु कुछ पूछ लेना कि इसका क्या ? अरे ! मर जाने दे न इसे। यह क्या करते हो तुम सिर पर बैठकर यह ? सुनो, कहा। आँख में से आँसू बहते जायें। हाय... हाय... ! वहाँ एक पुलिस आयी। वह क्या कहलाये ? रावसाहेब का खिताब आया है। यहाँ मरने का खिताब आया है। बराबर मैं वहाँ बैठा और वहाँ वह साईकिल लेकर आया। ... रावसाहेब का खिताब सरकार की ओर से मिला है। यहाँ खिताब होता है, कहा। अब यह सुनने दे न। वह रहने दे न। तेरा आत्मा अब यह चला। कुछ शरीर में ऐसा-ऐसा उसे तुम्हारे पूछ लेना है न, कल नहीं पूछा जाये इसलिए ? उसे क्या करना परन्तु अब ? स्वार्थी लुटेरे सब इकट्ठे हुए हों। मणीभाई ! सब लुटेरे अकेले, मात्र लुटेरे। ऐसा कहते कि मैं स्त्री हूँ। ... यह क्या लूटते हो तुम ? तुम तुम्हारा ध्यान रखो, हमारा छोड़ दो। ऐसा कहना चाहिए न। तुम्हारा ध्यान रखो। कहाँ जाना है तुम्हारे अब ? छोड़ मोह। यह सब मोह के उत्पन्न करनेवाले हैं, इसलिए लक्ष्य छोड़, ऐसा। भगवान आत्मा... सत् समागम राग और मोह का भाव घटानेवाले हैं, उनका संग कर, ऐसा कहते हैं। ४२ (गाथा) हुई। आहाहा !

कषाय अग्नि धगधगती हो और ऐसे वापस उसे निमित्त दे उसे सामने। एक यह पचास हजार का कहा था, उसमें तुम्हारे हस्ताक्षर रह गये हैं, हों ! परन्तु मरने दे न, यह तू हस्ताक्षर किसका माँगता है ? वह हो ऐसा। लाओ कर दूँ। परन्तु करके कहाँ जाना है नरक में ? समझ में आया ? आये हों आमदनी के। दो लाख पैदा हुए हों और पचास हजार की एक हस्ताक्षर तुम्हारे रह गये हैं, हों ! एक तुम्हारा नाम लिखो न। परन्तु यह नाम लिखकर जाना है इसे नरक में। यह मोह में मरेगा अभी। हाय... हाय... ! लो ! मारेंगे वे परमाधामी उपजते ही। मरने दे न व्यवस्थित इसे। मगनलालजी ! यह मेरी स्त्री और यह पुत्र। क्या फूलचन्दजी ? आहाहा ! यह शान्तरस के झूले में झूलने दे न इसे—

भगवान आत्मा को। यह कषाय अग्नि कहाँ उपजाता है तू? जाना कहाँ है? परक्षेत्र में, अनजाने क्षेत्र में, यह अनजाने शरीर में, अनजाने काल में, अनजाने में चला जायेगा, बापू! समझ में आया? ध्यान (कर) भगवान का अन्दर। शुद्ध चिदानन्दस्वभाव तेरा शान्तरस से पड़ा प्रभु! उसका ध्यान कर, वहाँ शान्ति है, बाकी कहीं शान्ति नहीं है।

★ ★ ★

गाथा - ४३

४३ (गाथा) आगे हेयोपादेय तत्त्व को जानकर परम शान्तभाव में स्थित होकर जिनके निःकषायभाव हुआ और निजशुद्धात्मा में जिनकी लीनता हुई, वे ही ज्ञानी परम सुखी हैं,... वे सुखी, बाकी सब दुःखी हैं, ऐसा कहते हैं।

१६९) तत्तातत्तु मुणेवि मणि जे थक्का सम-भावि।

ते पर सुहिया इत्थु जगि जहँ रइ अप्प-सहावि ॥४३॥

ओहोहो! यह 'तत्त्वातत्त्वं', जो कोई वीतराग स्वसंवेदन प्रत्यक्षज्ञानी जीव... यह यहाँ से उठाया सीधे। भगवान आत्मा राग-विकल्परहित, वह चैतन्य के पुंज से आनन्द से भरपूर भगवान, ऐसे आत्मा का स्वसंवेदन। आत्मा के ज्ञान का ज्ञान, उस ज्ञान का ज्ञान, आनन्द का ज्ञान, शान्ति का ज्ञान। ऐसा स्व अर्थात् अपने प्रत्यक्ष ज्ञान से आत्मा को जानता हुआ ऐसा वीतरागी प्रत्यक्ष ज्ञानी। आराधने योग्य निज पदार्थ... समझ में आया? 'तत्तातत्तु' है न? आराधने योग्य निज पदार्थ... सेवनयोग्य तो भगवान आत्मा है। जिसमें एकाग्र होने से शान्ति और आनन्द मिले, ऐसा आत्मतत्त्व। और अतत्त्व। अतत्त्व है न?

और त्यागनेयोग्य रागादि सकल विभावों का... यह अतत्त्व कहा जाता है। अपने तत्त्व की अपेक्षा से अतत्त्व। समझ में आया? 'तत्त्वातत्त्वं' समझ में आया? स्वयं ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वभाव वह आत्मा, वह स्वतत्त्व। उसका ज्ञान, उसका ज्ञान, उसका लक्ष्य, प्रतीति, उसकी शान्ति अनुभव। ऐसा स्वसंवेदन धर्मात्मा, वह स्वतत्त्व है। उसे और दूसरे रागादि इस तत्त्व की अपेक्षा से अतत्त्व है। भाई! यह है तत्त्व, इसकी

अपेक्षा से अतत्त्व है। क्योंकि इसके स्वरूप में वे नहीं, इस अपेक्षा से अतत्त्व कहा है। समझ में आया? तत्त्व अर्थात् जिसमें अपना निज स्वभाव आनन्द आदि है, वह अपना निज तत्त्व और पुण्य-पाप के विकल्प रागादि, वे सब इस तत्त्व की अपेक्षा से पर, इसलिए अतत्त्व। समझ में आया?

त्यागनेयोग्य रागादि सकल विभावों... दूसरी भाषा से किया है टीका में। अन्तःतत्त्व और बहिर्तत्त्व ऐसा किया है, भाई! संस्कृत में ऐसा किया है। देखो! यह तो अकेली तत्त्व की—मक्खन की बात है। अन्तःतत्त्व भगवान् ज्ञान-आनन्दस्वरूप आत्मा, वह अन्तःतत्त्व है। मोह और विकल्प, राग-द्वेष की वृत्तियोंरहित ज्ञायक शुद्धस्वभाव स्वतत्त्व, वह निजतत्त्व, वह अन्तःतत्त्व है। अतत्त्व पुण्य-पाप के विकल्प आदि से लेकर वह तत्त्व नहीं, इसलिए अतत्त्व अर्थात् बहिर्तत्त्व है। समझ में आया? **सकल विभावों को मन में जानकर...** अर्थात् ज्ञान में उसे जानकर। **शान्तभाव में तिष्ठते हैं,...** भगवान् आत्मा तत्त्व अर्थात् अकेला आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु, ऐसा जो अन्तःतत्त्व, ऐसा जो निज स्वभाव, ऐसा जो निज तत्त्व, उसका ज्ञान और उसमें नहीं, ऐसे पुण्य-पाप के विकल्प, कर्म, शरीर आदि जो बहिर्तत्त्व है, उनका ज्ञान। उनका ज्ञान होने पर यह तत्त्व मुझमें नहीं, ऐसा हुआ ज्ञान, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान् शुद्धस्वरूप परमानन्दमूर्ति, वह आत्मा, वह अन्तःतत्त्व, उसका हुआ ज्ञान, अर्थात् बहिर्तत्त्व ऐसे जो तत्त्व में नहीं, वे इसमें नहीं, ऐसा हुआ नास्ति का ज्ञान। समझ में आया?

इस प्रकार अन्तर में ज्ञान में विवेक करके अन्तर के ज्ञान में यह स्वभाव निज तत्त्व और बहिर्तत्त्व विकल्प आदि, कोई भी भेद आदि उठे, वह बहिर्तत्त्व है, अतत्त्व है, वह स्वरूप तत्त्व नहीं। इस प्रकार दो का ज्ञान करके समभाव में स्थिर हो, अपने निज ज्ञान में स्थिर हो तो अतत्त्व का उसमें अभाव रह जाये, अभाव हो जाये। ऐसा जो **‘येषां रति’ जिनकी लगन...** भगवान् आत्मा में लगन, निज स्वरूप शुद्धस्वभावभाव निजघर में लगन। **निज शुद्धात्म स्वभाव में हुई है,...** ऐसा जो आत्मा शान्त वीतराग स्वभाव में लगन लगी है। **वे ही जीव...** वे ही जीव। **‘सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया।’** लो, यह सुख की व्याख्या। अन्तःतत्त्व ऐसा भगवान् आत्मा, उसका ज्ञान करके बहिर्तत्त्व ऐसे विकल्प आदि मुझमें नहीं, ऐसा ज्ञान करके अन्तर में स्थिर होता

है, वह एक इस जगत में सुखी है। कहो, पैसा, स्त्री, पुत्र में स्थिर है वह तो, कहते हैं कि विकल्प है, वह दुःखी है। पुण्य-पाप के विकल्प में स्थित है, वह दुःखी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक अन्तर ज्ञानानन्द शुद्ध भगवान् आत्मा में पर तत्त्व से भिन्न अतत्त्व अपना जो स्वरूप, उसमें वे सब अतत्त्व हैं, उनका अभाव करके तत्त्व के ज्ञान में स्थिर हो, वह एक सुखी है। पुण्य-पाप के विकल्प, शरीर आदि, वे सब बहिर्तत्त्व है, बहिर्तत्त्व की दृष्टि में दुःखी है। दृष्टि में दृष्टि के कारण दुःखी है। समझ में आया? गजब बात, भाई! कहो, मोहनभाई! यह क्या सब पैसेवालों को सुखी कहते हैं?

मुमुक्षु : मान्यता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मान्यता में है परन्तु यह कहे, हमारे थोड़े और उसको बहुत। कहो, यह माननेवाले कैसे होंगे? धीरुभाई! क्या कहते हैं, कहो। हमारे पास दो लाख और उसके पास पाँच लाख। मेरे पास पाँच लाख, उसके पास दस लाख, ऐसी गिनती करके कल्पना में दुःखी होता है। वह भी दुःखी है। जितना लक्ष्य बाहर में परतत्त्व में, बहिर्तत्त्व में करता है, वह दुःखी है। वह इसे छोड़ना हो तो उसके ऊपर लक्ष्य करे, वह दुःखी है। दुःखी है, उसमें किसकी ईर्ष्या करना? कि, यह ऐसा मुझे हो तो ठीक। ऐसा दुःख हमारे हो तो ठीक, ऐसा? बाहर में कषाय होने के निमित्त बहुत होते हैं और इससे कषाय बहुत होती है, वह सुखी है। मूढ़ है, कहते हैं। बहिर्तत्त्व की लक्ष्यवाली वृत्तियाँ स्वयं ही दुःख है। आहाहा! वह अतत्त्व है। ओहोहो! भगवान्! तेरा निज तत्त्व ज्ञानानन्द से भरपूर अनाकुल स्वतत्त्व, वह अतत्त्व और तत्त्व का ज्ञान करके इसमें (तत्त्व में) स्थिर हो। वह एक जीव सुखी, बाकी सब दुःखी है। बराबर होगा? मणिभाई! सुखी कहते हैं न तुमको सब पैसेवालों को?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अब वे पागल तो सब ऐसे ही हों न। पागल के अस्पताल में कौन चतुर हो अन्दर? आहाहा! व्याख्या देखो संक्षिप्त।

अब इसका विस्तार करते हैं जरा, ज्ञान दोनों का भिन्न करने के लिये। **भावार्थ :-** यद्यपि यह आत्मा व्यवहारनयकर अनादिकाल से कर्मबन्धनकर बँधा है,... कर्म का

सम्बन्ध है, ऐसा कहते हैं व्यवहार से। व्यवहार अर्थात् पर और पर का सम्बन्ध है। परन्तु तीसरा क्या है? ऐसे पर का निमित्त है, निमित्त अर्थात् व्यवहार। व्यवहार से निमित्त के लक्ष्य से बँधा हुआ, ऐसा कहा जाता है। तथापि, देखो न! तो भी शुद्धनिश्चयनयकर प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश—इन चार तरह के बन्धनों से रहित है,... यह स्वतत्त्व। समझ में आया? आत्मा के तत्त्व से विरुद्ध जो कर्म तत्त्व, उससे बँधा हुआ, ऐसा मानना वह व्यवहार है। व्यवहार, वह भाव अतत्त्व है, ऐसा कहते हैं। वह मान्यता अतत्त्व है। आहाहा! क्या कहा? समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा... ऐसे कर्म जो जड़ अजीव हैं, उनसे बँधा हुआ व्यवहार से जानना, उस अतत्त्व से सम्बन्ध है, ऐसा वह व्यवहारनय से जानना चाहिए। निश्चय से वह तत्त्व मुझमें नहीं है। बँधा हुआ भाव और बँधी हुई प्रकृति मेरे स्वरूप में है ही नहीं, उसे यहाँ शुद्ध निश्चयनयकर कहते हैं। समझ में आया या नहीं इसमें? ऐसे दो तत्त्व एकसाथ हैं। ऐसे भगवान आत्मा वस्तु और कर्म, दो। अब वह कर्म से बँधा हुआ, यह तो निमित्त से, व्यवहार से बँधा हुआ ऐसा भाव व्यवहार के लक्ष्यवाला वह भाव ही अतत्त्व है और वह कर्म भी अतत्त्व है। उससे विरुद्ध निश्चय से भगवान आत्मा प्रकृति, स्थिति, प्रदेश से रहित है। ऐसी जो श्रद्धा, ज्ञान जो स्वभाव-सन्मुख ढला हुआ, उसे यहाँ तत्त्व कहा जाता है। आहाहा! शुद्ध निश्चय से बन्धनरहित है, ऐसा भावसहित का जो आत्मा, उसे स्वतत्त्व कहते हैं। समझ में आया? वस्तु निश्चय अर्थात् सत्य स्वभाव के, सत् स्वभाव के अस्तित्व की दृष्टि से देखो तो वह स्वयं बन्धन के तत्त्व से रहित है। स्वतत्त्व बन्धन से रहित है। ऐसा उसका सत् रूप तत्त्व है। ऐसे बन्धनरहित देखने से, उसका ज्ञान तत्त्व की ओर का होने से उसे वहाँ शान्ति होती है। समझ में आया? यह मार्ग तो अन्तर का है। एक बात।

दूसरी, यद्यपि अशुद्धनिश्चयनय से अपने उपार्जन किये शुभ-अशुभ कर्मों के फल का भोक्ता है,... कर्म का भोक्ता लेना नहीं, परन्तु उसकी ओर के हर्ष-शोक का भोक्ता अशुद्ध निश्चय से लेना। समझ में आया? कर्म का भोक्ता तो असद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है। परन्तु उस कर्म की ओर लक्ष्य करके जितना शुभ-अशुभराग आदि हो या हर्ष-शोक हो, उसे भोगना, वह अशुद्ध निश्चय से है। यह भोगना, वह स्वतत्त्व नहीं

और कर्म भी स्वतत्त्व नहीं। पाठ में ऐसा है। समझ में आया? आहाहा! है न? 'यद्यप्यशुद्धनिश्चयेन' ऐसा है, संस्कृत में ऐसा है, इसका अर्थ यह कि जो कर्म की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग वह अतत्त्व है तत्त्व की अपेक्षा से। और उसका भोगना उस ओर का विकल्प भी वह स्वतत्त्व की अपेक्षा से अतत्त्व है। उसे—अतत्त्व को तत्त्व में नहीं, ऐसा बराबर ज्ञान करके वह तत्त्व कैसा है, देखो! तथापि, ऐसा होने पर भी कर्म की ओर के विकल्प के भोगने का तत्त्व जो जीवतत्त्व में नहीं, ऐसा जीव की अपेक्षा से ऐसा अतत्त्व का सम्बन्ध होने पर भी, शुद्धद्रव्यार्थिकनय से निज शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न हुए... देखो, अब बहुत सरस नय उतारते हैं। भगवान् शुद्ध वस्तु है। ध्रुव अनाकुल आनन्द का अकेला समुद्र अथवा अकेला पर्वत है। ऐसी दृष्टि से देखने पर निज शुद्धात्मतत्त्व की भावना। वस्तु शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से देखना, वह निज शुद्धात्मतत्त्व की एकाग्रता। उसकी एकाग्रता से उत्पन्न, वीतराग परमानन्द सुखरूप अमृत का ही भोगनेवाला है,... आहाहा! अशुद्ध निश्चय से मानो राग-द्वेष और हर्ष-शोक को भोगता है, परन्तु वह तो अतत्त्व है। उसका ज्ञान करके तत्त्व ऐसा है कि शुद्ध निश्चयनय से अपने आनन्दस्वभाव की एकाग्रता से उत्पन्न हुआ अरागी शान्तरस के आनन्द का आत्मा भोक्ता है। उस तत्त्व का भोक्ता है, वह अतत्त्व का भोक्ता नहीं। आहाहा! गजब भाई!

यह तो परमात्मप्रकाश है। परमात्मा स्वयं अकेला आनन्दस्वरूप भगवान् नित्यानन्द की दृष्टि करने से नित्यानन्द का ही अन्तर पर्याय में आनन्द भोगा जाता है, उसका वह भोक्ता है, ऐसा कहते हैं। वह तत्त्व का भोक्ता कहलाता है। समझ में आया? वह संवर, निर्जरा की शुद्धदशा स्वभाव-सन्मुख ढली हुई का भोक्ता, वह तत्त्व का भोक्ता है। विकल्प आदि जो आस्रव-बन्ध भाव, अटकता भाव, वह कर्म का भोक्ता कहना, वह अतत्त्व है। गजब बात! आहाहा! उसे ज्ञान और दर्शन से गूँथना चाहिए। वह क्रिया छोड़कर अन्यत्र चल निकले, उसे कहीं रह गया तत्त्व। समझ में आया? जिसकी सीख में अन्तर के ज्ञान और श्रद्धा काम आवे, उसे बदले अन्दर राग और द्वेष और पुण्य की क्रिया तथा देह में फँस गया। अतत्त्व में तत्त्व माना। आहाहा!

अतत्त्व का तत्त्व में अभाव है। भगवान् आत्मा कर्म के फल को भोगता है, ऐसा

कहना, वह अशुद्ध निश्चयवाला तत्त्व है, अर्थात् कि स्वभाव की अपेक्षा से वह अतत्त्व है। समझ में आया ? बहिर्तत्त्व है। अन्तर्तत्त्व की दृष्टि से जो ज्ञान-आनन्द भाव उत्पन्न हो, उसे भोगे, वह स्वतत्त्व का भोक्ता शुद्धद्रव्यार्थिक से कहा जाता है। ओहोहो ! इसमें समझ में आया या नहीं ? या यह नय का सूक्ष्म पड़ता है ? इसमें नय की व्याख्या बहुत नहीं कहते। उसका भाव, भाव की बात आती है। यह तो तत्त्व, अतत्त्व की नय से व्याख्या करते हैं।

‘तत्तातत्तु मुणेवि’ ऐसा है न ? ‘मणि जे थक्का सम-भावि’ ‘थक्का’ अर्थात् स्थिर होता है। ‘ते पर सुहिया इत्थु जगि जहँ रइ अप्प-सहावि।’ आहाहा ! शब्द भी पूरे भगवान को बतलानेवाले सब वाचक हैं। कहते हैं, प्रभु ! तेरा तत्त्व तो अनाकुल आनन्द को उत्पन्न करनेवाला तत्त्व है। विकार को उत्पन्न करे, वह तेरा तत्त्व नहीं। वह सब अतत्त्व है। कर्म के निमित्त से लक्ष्य होकर यह हर्ष-शोक के विकल्पों का हर्ष करना या शोक करना, वह अतत्त्व है। उस अतत्त्व से भिन्न भगवान आत्मा आनन्द का तत्त्व है, उसकी अन्तरदृष्टि करने से जो अनाकुल आनन्द उत्पन्न हो, उसका वह आत्मा भोक्ता है। तत्त्व का भोक्ता उसे तत्त्व कहते हैं। अतत्त्व का भोक्ता उसे तत्त्व कहते हैं ? समझ में आया ?

वीतराग परमानन्द सुखरूप अमृत का ही भोगनेवाला है,... आहाहा ! भावना कही न, एकाग्रता। भगवान आत्मा अकेला ज्ञानरस है, उसे पकड़ने से जो पर्याय उत्पन्न हो, वह तो वीतरागी परमानन्द सुख का अमृत उत्पन्न होता है। ऐसे अमृत का भोगनेवाला तत्त्ववाला तत्त्व है। राग को भोगनेवाला तत्त्व है ? वह तो अतत्त्व है। अतत्त्व को भोगे, वह तत्त्व ही नहीं रहता। समझ में आया ?

यद्यपि व्यवहारनय से कर्मों के क्षय होने के बाद मोक्ष का पात्र है,... क्या कहते हैं ? व्यवहार से देखें तो कर्मसम्बन्ध है, उसका अभाव हो तो मोक्ष का पात्र निमित्त की अपेक्षा से कहा जाता है। कर्म अतत्त्व है, उसका सम्बन्ध छूटे, तब मोक्ष का पात्र व्यवहार से कहा जाता है। तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभावग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से सदा मुक्त ही है,... वह तत्त्व। आहाहा ! समझ में आया ? भगवान आत्मा शुद्ध

परमस्वभाव, परमभाव, परमभाव, परमतत्त्व ऐसे शुद्ध परमसत्त्व ध्रुव तत्त्व जो अनादि-अनन्त एकरूप भाव, उसकी दृष्टि से देखें तो वह भगवान आत्मा मुक्त ही है। कर्म के सम्बन्ध का अभाव हो, तब मुक्त होगा, यह तो व्यवहारनय से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा परमानन्दस्वरूप परमस्वभाव, परमस्वभाव अर्थात् कि अकेला तत्त्व रसकन्द ध्रुवस्वभाव, परमस्वभाव। जिसे कोई कर्म के निमित्त की—उसके सद्भाव की या अभाव की, कर्म के निमित्त की या उसके अभाव की, जिसे कुछ सम्बन्ध नहीं। ऐसा भगवान शुद्ध द्रव्य अखण्ड आनन्द का पिण्ड प्रभु परमपारिणामिकभाव, वह तो मुक्त ही है। आहाहा! पर्याय में द्रव्यकर्म का सम्बन्ध और उसका अभाव, वह तो पर्याय में मुक्ति की बात है। समझ में आया? पर्याय अर्थात् अवस्था, हालत उसमें कर्म का सम्बन्ध और कर्म के सम्बन्ध का अभाव, वह तो पर्याय में मुक्ति की व्याख्या है। व्यवहार मुक्ति की। देखो! समझ में आया? परन्तु वस्तु, वस्तु है महा भगवान आत्मा वस्तु है, उसका जो स्वभाव अकेला ज्ञायकभाव, अकेला आनन्दभाव, अकेला शान्तरसभाव, अकेला ज्ञानभाव, अकेला दर्शनभाव, अकेला प्रभुत्वभाव, ऐसा अकेला अनन्त गुण का प्रभुत्व भाव... भाव... परमभाव, उस परमभाव की दृष्टि से तो त्रिकाल मुक्तस्वरूप ही है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हुए बिना रहे नहीं, यह तो बाद में कहते हैं। यह तो व्यवहार मुक्ति हुई। आहाहा! समझ में आया?

भगवान वस्तु है या नहीं? वह पदार्थ है या नहीं? और तत्त्व है तो उसका कोई भाव है या नहीं? वह त्रिकाली एकरूप भाव, ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, शान्तभाव, प्रभुत्वभाव, विभुत्वभाव, अस्तित्वभाव, स्वच्छत्वभाव ऐसे भाव से भरपूर एकरूप वस्तु। एक समय की अवस्था में कर्म का सम्बन्ध और उसके अभाव की अवस्था में मुक्तपर्याय, उसे लक्ष्य में न लो, कहते हैं। वस्तु है, वह पूरा एकरूप अखण्डानन्द प्रभु परमभाव, स्वभावभाव, परम स्वभावभाव एकरूप त्रिकाल स्वभावभाव वह मुक्तस्वरूप है। उस मुक्तस्वरूप की दृष्टि से पर्याय में मुक्ति होती है। समझ में आया?

यह तो निहाल होने का रास्ता है। देखो! ओहो! अलौकिक बात है! अलौकिक-लोक में न हो, ऐसी बात है यह तो। लोक में अर्थात् अतत्त्व में यह बात कहाँ से होगी? आहाहा! भगवान आत्मा, वह रजकण से तो पृथक् है। कर्म से सम्बन्ध में है और उसका छूटना कहो। वस्तु भगवान आत्मा अनन्त शान्तरस का पिण्ड अनादि-अनन्त एकरूप है, वह तो मुक्त ही है। उसकी पर्याय में—हालत में—दशा में निमित्त का सम्बन्ध और उसका अभाव, वह तो पर्याय में मुक्ति, व्यवहारनय से मुक्ति हुई। वस्तुरूप से तो मुक्त त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया?

देखो न, यह श्लोक ही कैसे उतारे! वह तत्-अतत् है न? उसमें से नय निकाले हैं। टीकाकार ने भी, भैंस के आउ (स्तन) में दूध हो न, वह बछुकी (महिला) ऐसे अँगूठा लगाकर अन्दर से दूध निकाले। अन्दर भरा हो न अन्दर? भरा हो, वह निकाले या न हो वह? कोई कहता था कि वह आँचल को ऐसे-ऐसे करे न तो आँचल में गड़्ढा पड़ जाये। दो अँगुली बीच में दबाव करके। कोई कहता था कि ऐसे-ऐसे आँचल को करे तो उसमें गड़्ढा पड़ जाये। ऐसा करे तो वह लगे ऐसा लगे और अन्दर आँचल के बीच ऐसे गड़्ढा हो और वह उसे ऐसे लगे। वह गड़्ढा है न यहाँ देखो न! और इस अँगूठे का यह उसके बीच में वह आवे। इसी प्रकार इस पाठ में भरा हुआ कस टीकाकार ने खींचकर निकाला है अन्दर से। समझ में आया? क्या कहते हैं, देखो न!

यहाँ तो 'तत्तातत्तु मुणेवि' इतना शब्द है। तत्त्व को, अतत्त्व को जानना। अर्थात् जानने का ज्ञान दो का कराते हैं। समझ में आया? कर्म के सम्बन्ध का अभाव वह व्यवहार से मुक्ति का ज्ञान कराते हैं। लो! और आत्मा अकेला परमस्वभावभाव वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु गुण के बसे बिना की वस्तु होती नहीं। वह वस्तु अनन्त गुण से बसा हुआ पदार्थ एकरूप, एक समय की अवस्था के सम्बन्ध के अभाव को लक्ष्य में न लेकर वस्तु मुक्तस्वरूप है। ऐसा ज्ञान करना और उस निमित्त का अभाव होकर मुक्ति की पर्याय पात्र हो, वह व्यवहार का ज्ञान करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कहो, यह समझ में आता है या नहीं? ऐ... मगनलालजी!

मुमुक्षु : इसके लिये आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आये इतने तो भाग्यशाली न यहाँ। सुनेंगे न। पैसा तो ठीक अब वहाँ। कहो, समझ में आया यह ? आहाहा !

अरे ! तेरी लीला तो देख, कहते हैं। वह तेरी दृष्टि से मुक्त दिखता है और तेरी दृष्टि से बन्धन दिखता है। वह तेरी दृष्टि है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। कर्म के सम्बन्ध का लक्ष्य करके देख, तो मानो बँधे हुए भाव से, ऐसा तुझे दिखता है और त्रिकाल ज्ञायकभाव की दृष्टि से देख तो तू मुक्त है, ऐसा तेरी दृष्टि में दिखेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? यह पर की अपेक्षा नहीं, तेरी ही अपेक्षा है सब इसमें, कहते हैं। आहाहा ! परन्तु उसे इतना आत्मा ऐसा मानो बैठता नहीं। बड़े बौर इतने हों और आम इतना हो तो ऐसे प्रसन्न हो जाये। इतना आम हो न... तरबूज इतना हो न मण का-दो मण का एकदम लाल जैसा, अन्दर ऐसे छुरी लगाकर इतनी डगली निकाले उसमें से। इतनी बड़ी। बड़ा तरबूज हो न मण-मण के। मण-मण के तजबूज, हों ! ऐसे एकदम लाल जैसे। राजा के हो न, अच्छे हों वे राजा को दे। तो राजा दो, पाँच, दस रुपये, पच्चीस, सौ अरे ! सौ-दो सौ रुपये दे देवे। वह चौड़ा लेकर वहाँ जाता है। अच्छे में अच्छा तरबूज राजा को दे। साहेब ! यह आपके योग्य है। समझ में आया ? हमारे हो, परन्तु हम खाने के योग्य नहीं यह। अन्नदाता ! ... कुण्डल दिये थे एक जगह। उस बनिया को कुण्डल मिले, वह राजा को देने गया। हमारे नहीं रखा जाता साहेब ! यह तो आपके योग्य है। ... कुण्डल की कड़ी टूटी, कोई सांधनेवाला नहीं मिलता। बड़ी बात में आता है, मल्लिनाथ में।

उत्तम वस्तु कहाँ हो ? ऐसा कहते हैं कि उत्तम वस्तु तो भगवान में बसी हुई है। आहाहा ! यह मार छुरी दृष्टि की, कहते हैं। अनन्त एकदम लाल आनन्द का कन्द निकलेगा। ऐसा मुक्तस्वरूप भगवान... तेरी दृष्टि से तेरी दिक्कत है, स्पष्ट कहते हैं। ऐसे देखते हो तो बँधा हुआ दिखता है, ऐसे देखे तो मुक्त है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? शुद्ध पारिणामिक परमभावग्राहक, देखा ! अकेला शुद्ध वस्तु स्वभाव जिसे कोई निमित्त या निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं, ऐसा जो पूरा तत्त्व। निमित्त की अपेक्षा, निमित्त का अभाव, वह तो एक समय की पर्याय में लागू पड़ता है। वस्तु जो है अकेला परमभाव नित्यानन्द अखण्डानन्द एकरूप भाव, वह तो परमभाव दृष्टि से देखने पर सदा

मुक्त ही है। सदा मुक्त ही है... है ? देखना किसे है ? कहते हैं। आहाहा ! ऐसा देखने पर वह मुक्त है, ऐसा देखने पर व्यवहार से बँधा हुआ दिखता है। समझ में आया ?

यद्यपि व्यवहारनयकर इन्द्रियजनित मति आदि क्षयोपशमिकज्ञान तथा चक्षु आदि दर्शन सहित है... है न ? मति, श्रुत, अवधि आदि पर्याय में और चक्षु आदि। तो भी निश्चयनय से सकल विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वभाववाला है,... अब तो त्रिकाली लेना है, हों ! आहाहा ! निश्चयनय से सकल विमल केवलज्ञान स्वभाव। वह तो अकेला ज्ञान और दर्शन का स्वभाव का पिण्ड ही है। पर्याय का क्षयोपशमपना, वह अभी पर्याय है, वह तो एक समय की दशा है। केवलज्ञान एक समय की दशा है, प्रगट पर्याय की। समझ में आया ? पाठ में तो इतना है। इन्द्रियजनित ज्ञान-दर्शनसहित। चैतन्य लेना है न।

निश्चयनय से सकल विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वभाववाला है,... ओहो ! भगवान आत्मा अल्प अवस्था की पर्याय से देखो तो मानो इन्द्रिय के लक्ष्यवाला ज्ञान इतना ही हो। ऐसे देखने पर वह तो अकेला ज्ञान सकल, केवल पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन। जिसमें ज्ञान और दर्शन ही है। इसलिए उसमें फिर अपूर्ण और अधूरा भी क्या ? वह तो सकल, पूरा एक ज्ञान, एक दर्शनस्वरूप, ऐसा भगवान आत्मा एकरूप सकल-विमल केवलज्ञान, केवलदर्शनस्वरूप ही है। वह तेरी देखने की दृष्टि से देखने में ऐसा आवे तो वह दृष्टि तेरी। पर्याय से देखने पर पर्यायनय का विषय इतना लगता है। वस्तु से देखने पर अकेला ज्ञान और दर्शन का वस्तु पूरी चैतन्य पिण्ड है पूरा। शीतलकन्द, वह आनन्द की शिला पूरी देह में भिन्न पड़ी है। अतीन्द्रिय आनन्द की शिला, उसके साथ ज्ञान-दर्शन की शिला पूरी पड़ी है। अरूपी भी वस्तु है न। केवल सकल दर्शन, ज्ञान और दर्शन ऐसा स्वभाव है उसका। ऐसा ही उसका स्वभाव है। इस दृष्टि से देखना वह तत्त्व दृष्टि से देखना है। उस व्यवहार से देखना, वह वास्तव में उसका पूरा तत्त्व नहीं है। कहो, समझ में आया ? इतने तत्त्व-अतत्त्व की विशेष में इतने बोल कहे, अभी विशेष बोल कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

पौष कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक - १७-०१-१९६६

गाथा - ४३ से ४६, प्रवचन - १००

४३वीं गाथा चलती है। परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग। चार बोल चले चार। सात बोल हैं, उनमें चार बोल चले हैं। जीव को जानने में व्यवहार और निश्चय से जानने में चार बोल चले हैं। चौथा बोल है, देखो! आया न!

यद्यपि व्यवहारनयकर इन्द्रियजनित मति आदि क्षयोपशमिकज्ञान तथा चक्षु आदि दर्शनसहित है... क्या कहते हैं? यह आत्मा वर्तमान पर्याय में मतिज्ञान आदि क्षयोपशम दशावाला और दर्शन से चक्षुदर्शन के क्षयोपशम अवस्थावाला दिखता है, ऐसा व्यवहार से है। परन्तु निश्चय से अन्दर सकल केवलज्ञान, केवलदर्शन स्वभाव है, वह आदरणीय है। समझ में आया? तो भी निश्चयनय से सकल विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वभाववाला है,... यहाँ तक आया था। वस्तु तो अकेला ज्ञान और दर्शन का पिण्ड है। उसमें भेद नहीं। वह पर्याय में व्यवहारनय से भेद है, उसे जानना चाहिए। आदरने में तो ज्ञान और दर्शनरूप स्वभाव एकरूप आत्मा, उसकी अन्तरदृष्टि करके आनन्द का अनुभव करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। यह क्या कहा था कल? यह आया था न? चार बोल चले थे।

पाँचवाँ। यद्यपि व्यवहारनयकर यह जीव नामकर्म से प्राप्त देहप्रमाण है,... इतना व्यवहार से पर्याय में देह प्रमाण है, ऐसा जानना चाहिए। पूरे लोकालोक प्रमाण है, कि ऐसा है नहीं। इसलिए व्यवहारनय का विषय जाननेयोग्य जैसा है, वैसे उसे जानना चाहिए। तो भी निश्चयनय से लोकाकाशप्रमाण असंख्यातप्रदेशी है,... समझ में आया? वह तो असंख्य प्रदेश हैं अपने, तत्प्रमाण है। देह प्रमाण कहना, वह तो पर्यायनय का विषय है। असंख्य प्रदेश लोक के जितने प्रदेश हैं, उतने ही एक जीव के प्रदेश हैं। आकाश (लोकाकाश) के जितने। ऐसा एकरूप भगवान आत्मा अभेद क्षेत्र है, उसका ध्यान और दृष्टि करनी चाहिए। समझ में आया?

यद्यपि व्यवहारनय से प्रदेशों के संकोच-विस्तार सहित है,... व्यवहार से आत्मा के प्रदेश चींटी में ऐसे संकुचित होते हैं, हाथी में विकास हो, वैसे प्रदेश संकोच-विकास होते हैं व्यवहार से। पर्याय है न वह। तो भी सिद्ध-अवस्था में संकोच-विस्तार से रहित... सिद्ध अवस्था में संकोच-विस्तार नहीं। रहित शब्द पड़ा रहा है वहाँ। चरम शरीर प्रमाण प्रदेशवाला है। सिद्ध तो अन्तिम शरीर प्रमाण असंख्य प्रदेश स्थित, अन्तिम शरीर के आकार प्रमाण स्थित हैं, ऐसा उसका मूल स्वरूप है।

अन्तिम बोल सातवाँ। और यद्यपि पर्यायार्थिकनय से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकर सहित है,... आत्मा नयी अवस्था से उपजता है, पुरानी अवस्था—जुनी अवस्था से बदलता है और ध्रुव अंश से टिकता है। ऐसे तीन भेद की अपेक्षा से देखें तो पर्याय से तीन भेद है। पर्यायार्थिक से कहो या द्रव्य व्यवहार से कहो, सब एक ही बात है। अपने में अपनी बात है, इसमें कर्म और शरीर की बात नहीं। भगवान आत्मा अनन्त गुण का ध्रुवरूप और अवस्था का उपजना और विनशना रूप। इन तीन प्रकार से पर्याय के भेददृष्टि से देखें तो वे हैं, ऐसा जानना। तो भी द्रव्यार्थिकनयकर टंकोत्कीर्ण ज्ञान के अखण्ड स्वभाव से ध्रुव ही है। ये तीन भेद नहीं लेना। एकरूप ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप। सोना का पाट अकेला हो, जैसे अकेला। सोना का पाट। पाँच मण का पाट सोना का। उसी प्रकार आत्मा अकेला अखण्ड ध्रुव अनन्त आनन्द-ज्ञान का पिण्ड अकेला ध्रुव है। वह दृष्टि करने जैसी है। समझ में आया? उत्पाद व्यय के ऊपर भी नहीं, ऐसा कहते हैं। विकल्प के ऊपर नहीं और निमित्त के ऊपर नहीं। हिम्मतभाई ने पूछा नहीं था उसको कि, फलाने ने देखेगी? फलाने को देखेगी? गीता को देखेगी? गीता को देखा? इनकार कर दिया। भगवान आत्मा द्रव्यस्वरूप से देखो, वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... वे तीन भेद लक्ष्य में न लो, ऐसा कहते हैं। चिद्घन आनन्दपिण्ड ध्रुवपाट, अकेला पासला अकेला पाट, चैतन्यमूर्ति पासला ध्रुव, उस दृष्टि से देखो तो अखण्ड स्वभाव से ध्रुव ही है। टंकोत्कीर्ण ज्ञानस्वरूप एकरूप चिदानन्द प्रभु स्वद्रव्य है, वही आदरणीय है। यह सात बोल कहे। देखो!

इस तरह... ऐसा। यह सात बोल कहे न? पहले निज शुद्धात्मद्रव्य को अच्छी

तरह जानकर... देखो! यह सात बोल से आत्मा को पहले बराबर जानना चाहिए। समझ में आया? पहले में ऐसा कहा था कि व्यवहारनय से बँधा हुआ दिखता है, (ऐसा) जानना। शुद्ध से बँधा हुआ नहीं। अशुद्ध से कर्म के फल और राग-द्वेष को भोगता है, ऐसा जानना। निश्चय से शुद्धात्मा के आनन्द को भोगता है, ऐसा जानना। व्यवहार से कर्म के क्षय काल में मोक्ष का पात्र पर्याय में होगा, ऐसा जानना। शुद्ध पारिणामिकनय से त्रिकाल मुक्तस्वरूप है, ऐसा जानना। त्रिकाल मुक्तस्वरूप है। कर्म के निमित्त का अभाव होगा, तब पर्याय में मुक्ति होगी। यह तो व्यवहार हुआ। वस्तु है त्रिकाल आनन्दकन्द का पाट ध्रुव। वह मुक्तस्वरूप ही है, ऐसे इसे दृष्टि वहाँ करना। समझ में आया? व्यवहार नहीं इन्द्रिय। वह तो आ गयी। समझ में आया? इन्द्रिय चौथा बोल तो लिया था आज और पाँचवाँ यह लिया, देहप्रमाण और छठवाँ प्रदेशप्रमाण, सातवाँ उत्पाद-व्यय-ध्रुव, लो! सात बोल हुए। इस प्रकार पहले निज शुद्धात्मद्रव्य को—अपने शुद्धस्वरूप आत्मा को अच्छी तरह जानकर... अच्छी (तरह) अर्थात् जैसा है वैसा। भले प्रकार बराबर जानकर।

और आत्मस्वरूप से विपरीत... अतत्त्व है न अब? 'तत्तातत्तु' शब्द है न मूल पाठ में। पुद्गलादि परद्रव्यों को भी अच्छी तरह निश्चय करके... उसका निर्णय करना चाहिए। पुद्गल है, राग है, राग का भोग है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। अर्थात् आप-पर का निश्चय करके, बाद में समस्त मिथ्यात्व रागादि विकल्पों को छोड़कर... पश्चात् ऐसा हूँ या वैसा हूँ, वह सब भ्रमणा और विकल्प को छोड़कर, वीतराग चिदानन्दस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व में जो लीन हुए हैं, वे ही धन्य हैं। स्वरूप ऐसा है, ऐसा पर्याय से, व्यवहार से, निश्चय से बराबर जानना। इसके अतिरिक्त विपरीत कोई कहे तो तत्प्रमाण है नहीं, ऐसा जानना चाहिए। ऐसा का ऐसा आत्मा... आत्मा... आत्मा... करे, ऐसा नहीं चलता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? व्यवहार से वर्तमान में क्या है, त्रिकाल में क्या है, सम्बन्ध क्या है, सम्बन्धरहित चीज़ क्या है, भोगता क्या है, पर्याय में स्वभाव के भोगने में क्या हो? उसे बराबर पर्याय और द्रव्य को जानना चाहिए। जानकर फिर... देखो!

'पश्चात् समस्तमिथ्यात्व' है न? पहले और बाद में, ऐसे दो शब्द पड़े हैं

संस्कृत में भी हैं 'पूर्व' और 'पश्चात्' दो का वास्तविक ज्ञान करके फिर अन्तर स्वरूप में रागादि विकल्प छोड़कर अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, उपशमरस का अनुभव करना। समझ में आया ? इस प्रकार ज्ञान जब व्यवहार से सम्यक् हो, तब इसे अन्तर में से उन विकल्पों को छोड़कर एकरूप चिदानन्दस्वभाव का ध्यान करके, आत्मा के अतीन्द्रिय शान्तरस को अनुभव करना। यह इसका करना है, यह इसका कर्तव्य है। कहो, समझ में आया इसमें ? वे ही धन्य हैं। ऐसा कहा। 'एव धन्या इति भावार्थः' व्यवहार जानना चाहिए। आदरनेयोग्य तो एक निश्चय तत्त्व है। निर्जरा का कारण, शुद्धस्वभाव निर्विकल्प अभेद एकरूप अन्तर में दृष्टि करना, वही निर्जरा और संवर का कारण है। व्यवहार बीच में (आवे, वह) कहीं संवर, निर्जरा का कारण नहीं है। जाननेयोग्य है। संवर, निर्जरा का यही एक कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं। समझ में आया ?

ऐसा ही कथन परमात्मतत्त्व के लक्षण में श्री पूज्यपादस्वामी ने कहा है, अर्थात् यह आत्मा व्यवहारनयकर अनादि का बँधा हुआ है, और अपने किये हुए कर्मों के फल का भोक्ता है,... व्यवहार से। उन कर्मों के क्षय से मोक्षपद का भोक्ता है, ज्ञाता है, देखनेवाला है, अपनी देह के प्रमाण हैं,... लगभग इसके साथ... संसार-अवस्था में प्रदेशों के संकोच विस्तार को धारण करता है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित है,... है न शब्द यह है। और अपने गुण-पर्यायसहित है। वह अपने गुण और पर्यायसहित है, कर्मसहित या परसहित, यह है नहीं। इस प्रकार आत्मा के जानने से ही साध्य की सिद्धि है, दूसरी तरह नहीं है। इस प्रकार से आत्मा को जानने से आत्मा के विकल्प को छोड़कर, दो प्रकार का यह आत्मा, ऐसा आत्मा ऐसा विकल्प है, उसे छोड़कर अन्तर्मुख में आनन्द का अनुभव करना, निर्विकल्प शान्ति को वेदना, वही कर्तव्य और वही आत्मा धन्य है। कहो, समझ में आया ? करके यह करने का है अन्दर। एकाकार चित् पिण्ड, आनन्द पिण्ड का अनुभव करना, वह संवर, निर्जरा है, वही मोक्ष का मार्ग है। बाकी सब बातें। यह गाथा पूरी हुई।

गाथा - ४४

आगे जो संयमी परम शान्तभाव का ही कर्ता है, उसकी निन्दा द्वारा स्तुति तीन गाथाओं में करते हैं— निन्दा द्वारा स्तुति।

१७०) बिणिण वि दोस हवंति तसु जो सम-भाउ करेइ।

बन्धु जि णिहवइ अप्पणउ अणु जगु गहिलु करेइ ॥४४॥

जो साधु राग-द्वेष के त्यागरूप समभाव को करता है,... भगवान् आत्मा में पुण्य-पाप, शुभाशुभभाव छोड़कर स्वरूप शान्तरस में समभाव से परिणमते हैं, वीतरागभाव से होते हैं, वे साधु, वह मोक्ष का साधक। उस तपोधन के दो दोष होते हैं। एक तो अपने बंध को नष्ट करता है,... अनादि काल का साथ में रहा हुआ बन्धुरूप से कर्म, उसे नाश करते हैं। मोहनभाई! दोनों इकट्ठे थे, उन्हें भिन्न किया, कहते हैं, लो! उनका यह दोष है, कहते हैं, एक कि अनादि के कर्म का सम्बन्ध बन्धुरूप से, बन्धुरूप से था न? बन्ध और बन्धु, ऐसा। अनादि का कर्म का सम्बन्ध था, उसे नाश करते हैं। अरे! बाँधव को मारते हैं।

दूसरे जगत के प्राणियों को बावला-पागल बना देता है। क्या कहते हैं? देखो, इसकी व्याख्या। दो दोष कहे दोष।

भावार्थ :- यह निन्दा द्वारा स्तुति है। निन्दा द्वारा स्तुति है। प्राकृत भाषा में बन्धु शब्द से ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध भी लिया जाता है,... लो! प्राकृत में आठ कर्म को बन्ध की अपेक्षा में बन्धु भी गिनने में आता है। तथा भाई को भी (बन्धु) कहते हैं। यहाँ पर बन्धु-हत्या निन्द्य है,... भाई को मारना, वह निन्दा करनेयोग्य गिना जाता है। इससे एक तो बन्धु-हत्या का दोष आया तथा दूसरा दोष यह है कि जो कोई इनका उपदेश सुनता है, वह वस्त्र-आभूषण का त्यागकर नग्न दिगम्बर हो जाता है। जो इनका उपदेश सुनता है मुनि का, वीतरागी सन्तों का सुनता है तो वीतरागी सन्त वीतरागी बतलाते हैं, ऐसा कहते हैं। एक तो स्वयं समभाव में परिणमित हुए हैं, इसलिए वीतराग से विरुद्ध कर्म का बन्धु है अनादि के, उसका नाश करते हैं और वे वीतरागी उपदेश देनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

बड़ा राजा हो, बीस-बीस वर्ष के जवान राजकुमार हों। नग्न होकर (चल निकलते हैं)। (लोग) बावला-पागल हो जाते हैं। कहो, समझ में आया? यह विद्यमान ऋद्धि छोड़कर और यह सब खाना। पागल है। घर में साधन छोड़कर, मकान छोड़कर जंगल में सोना। घर में खाने-पीने के गर्म ऐसे फूले हुए फुलके थाली में सीधे गिरें और यह माँगने जाना। कहो, मोहनभाई! कहते हैं कि बावला कर डाला, पागल कर डाला जीव को। भाई! वह पागल नहीं, वही होशियार हुए हैं। वे भगवान होनेवाले हैं। समझ में आया? महा नग्न की दशा, आहाहा! वीतरागी पिण्ड शान्तरस से झूलते हों ऐसे। लो, बाहुबलीजी। देखो न बाहुबलीजी, ऐसे। नग्न दिगम्बर ऐसे शान्त...उन्हें देखकर दूसरे को भी उसका उपदेश देने पर बहुत मुनि राजा, राजकुमार त्यागी हो गये। राजकुमार जिनके घर में हजारों रानियाँ,... आहाहा! नग्न वे पागल जैसे हो गये हैं। यह पागल बनाया और स्वयं समभाव में रहते हुए कर्म का नाश (करते हैं)। दो दोष इन्होंने खड़े किये। समझ में आया?

कपड़े उतारकर नंगा हो जाना, उसे लोग गहन-पागल कहते हैं। लो! कपड़े छोड़ दे, (उसे) पागल कहे न! वीरजीभाई को ऐसा जरा हुआ था। आया था न मण्डल? मेरे गुरु कपड़े नहीं पहनते। मैं किसका पहनूँ? कपड़ा निकाल डालो। हमारे मुनि दिगम्बर मुनि (के) तो कपड़े होते नहीं। मुझे भी नहीं होते। यह जरा आ गये थे। भाई कहते थे। कहो, पागल कहे या नहीं? वह स्त्री सब खड़ी हो और यह वस्त्र निकाल दे, लो! उसमें जगत की महिलायें आदि (कहे), यह नग्न है राजकुमार पच्चीस वर्ष का जवान। नग्न होकर चला जाये कमण्डल, मोरपिच्छी लेकर। पागल है। सुन तो सही। 'जगतडा कहे छे भगतडा काला छे, पण काला न जाणशो, अे तो प्रभुने व्हाला छे...' यह निन्दा द्वारा स्तुति की है। भाई! तुमने तो बन्धु को मारा, हों! और दुनिया को पागल कर डाला, बावला बनाया तुमने तो। ये दोनों लोकव्यवहार में दोष हैं, इन शब्दों के ऐसे अर्थ ऊपर से निकाले हैं। परन्तु दूसरे अर्थ में कोई दोष नहीं है, स्तुति ही है। समझ में आया? आहाहा! जगत से भगे। डरे, भगे, भगे। लो! भाग गये। स्त्री, पुत्र से भागे, डरे। अपने आत्मा के आनन्दस्वभाव को साधने के लिये अन्तर्मुख की दृष्टि से

स्थिरता होने के लिये, सब छोड़ा, कहते हैं, छूट गया। पागल... पागल... पागल... किया। पागल नहीं, परन्तु चतुर किया, केवलज्ञान करने की तैयारी की। ऐसे निन्दा द्वारा स्तुति (की है)।

क्योंकि कर्मबन्ध नाश करने ही योग्य है, तथा जो समभाव का धारक है, वह आप नग्न दिगम्बर जो जाता है,... अन्तर में वीतराग परिणति हो तो नग्नदशा सहज हो जाती है। आहाहा! मुनिपना अकेला शान्तरस का हिमालय। समझ में आया? मुनि अर्थात् क्या? आहाहा! 'उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में।' अकेला सूक्ष्म शान्तरस का हिमालय अन्दर में स्थिर हो गया है। बड़ा हिम... हिम... जैसे शीतल हो न, वैसा शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... बाहर की प्रतिकूलता की उकसाहट में भी जो हिले नहीं, विकल्प उठे नहीं जिन्हें। ऐसी समभाव की दशा, वह मुनिपना है। वह मुनिपना नग्न दिगम्बर ही होता है। अन्दर में वीतरागता और बाह्य में भी वस्त्ररहित ही दशा अन्दर हो जाती है। मुनि हो और वस्त्र रहे, ऐसा होता नहीं। कहो, समझ में आया? परन्तु यह किस प्रकार से सिद्ध करते हैं? वह समभाव प्रगट हुआ, इसलिए नग्न होते हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं भाई! यहाँ नग्न हो, इसलिए मुनि है, ऐसा नहीं। ऐसी शैली से बात करते हैं। क्या कहा, समझ में आया? आहाहा!

स्थिर हुआ और डुबा अन्दर में। हिम-हिम शीतल हिम शीतल भगवान् आत्मा। जैसे ... शीतल शीतल योनि के जीव हो न। शीतल योनि का जीव शीतल में रहे। शीतल में रहे। उष्ण योनि का जीव उष्णता में रहे। अग्नि में चूहा पके, वह चूहा अग्नि में ही रहे। अग्नि के चूहे पकें, वे अग्नि में ही रहे, इसी प्रकार शीत शीत में पके जीव, वे शीत में रहे। ऐसे चैतन्यमूर्ति अकषायस्वभाव अकेला शान्तरस का कन्द सत्त्व तत्त्व, उसमें जमा, हिमालय हो गया। आहाहा! उपशमरस के झरने झरे, वह नग्न हुए बिना रहता नहीं।

यह आठ-आठ वर्ष के राजकुँवर। समझ में आया? आठ-आठ वर्ष के राजकुमार। आहाहा! वे लाईनें निकलती होंगी तीर्थकर के नम्बर में और भगवान् विराजते हैं, वहाँ देखो न! राजकुमार की लाईन निकलती होगी ऐसे। जैसे वह सिंह का झुण्ड होता है न

दो सौ एकसाथ ? उसी प्रकार यह मुनि... आहाहा ! चलते सिद्ध, हों ! ऐसे शान्तरस में स्थिर हो गये हैं । इन्द्रियाँ होने पर भी इन्द्रियातीत है, शरीर होने पर भी शरीररहित है । जरा विकल्प होने पर भी विकल्पातीत वीतरागी परिणति हो गयी है । कर्म के रजकण की आड़ जरा अन्दर में पड़ी है थोड़ी, तो भी अन्दर से पृथक्... पृथक्... पृथक्... अकेला निराला, राग को नहीं स्पर्शते तत्त्व को अनुभवते हैं । आहाहा ! उन्हें नग्नदशा की लज्जा नहीं और कहीं नग्न हूँ, इसकी ... नहीं । ऐसा दिगम्बर मुनि स्वयं पागल हो जाये और दूसरे को पागल करते हैं । समझ में आया ? परन्तु लिया है इस शैली से, हों ! समभाव हो तो दिगम्बर हो जाये, पागल हो जाये, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! उसे फिर वस्त्र से शरीर को ढाँकने की वृत्ति नहीं रहती । अकेला समभाव ।

और अन्य को दिगम्बर कर देता है, सो मूढ़ लोग निन्दा करते हैं । यह दोष नहीं है, गुण ही है । मूढ़ लोगों के जानने में ज्ञानीजन बावले हैं,... दो अर्थ करते हैं, देखो ! 'लोकव्यवहारे ज्ञानिनां लोकः पिशाचो भवति लोकस्याज्ञानिजनस्य ज्ञानि पिशाच इति ।' पारस्परिक है । मूढ़ लोगों के जानने में धर्मात्मा बावला जैसा, पागल जैसा लगे । समझ में आया ? आहाहा ! है कहीं ? बोलना आता नहीं, बैठना आता नहीं । पागल जैसे लगते हैं, कहते हैं । बात तो सच्ची है, अज्ञानी को तो पागल जैसे लगते हैं । ऐई ! भीखाभाई ! आहाहा ! क्या बका करते हैं यह ? वीतरागता... वीतरागता... वीतरागता... निर्विकल्प शान्ति, निर्विकल्प शान्ति क्या कहते हैं यह ? समझ में आया ?

मूढ़ लोगों के जानने में ज्ञानीजन बावले हैं,... मूर्ख लगते हैं । और ज्ञानियों के जानने में जगत के जन बावले हैं । अरे ! उन्माद है भाई ! तुझे परवस्तु की अधिकता का अभिमान और राग की मिठास, यह सब बावलापन है, भाई ! यह उन्माद है । आहाहा ! अपनी शरीर, वाणी, मन कुछ भी चेष्टा से अपने को आत्मा से दूसरी वस्तु से अधिकपने स्वयं मानना या मनवाना, यह महा पागलपन है, ऐसा कहते हैं । मिथ्यात्वभाव हुआ न विषमभाव ? वह पागल है, उसके बदले उसे ज्ञानी (पागल लगे) । ज्ञानी उसे पागल मानते हैं, वह ज्ञानी को पागल मानता है । क्योंकि ज्ञानी जगत से विमुख हैं, तथा जगत ज्ञानियों से विमुख है । आहाहा ! दुनिया से धर्मी की विमुखता है, धर्मी से जगत की

विमुखता है। जगत को जगत के भाव से सन्मुखता है, धर्मी को स्वभाव की सन्मुखता है। दोनों की दशा में अन्तर है। समझ में आया ? एक गाथा यह ली, दो दोष बतलाने के लिये। दूसरी गाथा कहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ४५

आगे समभाव के धारक मुनि की फिर भी निन्दा-स्तुति करते हैं—देखा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहले में पहली। परम शान्तभाव का ही कर्ता है, उसकी निन्दा। वहाँ ऐसा कहा था। शान्त भाव का कर्ता, ऐसा कहा न ? 'योऽसावेवोपशमभावं करोति' ऐसा है। समझ में आया ? उसी और उसी की बात ली है, उसे वह शब्द जो ऊपर पड़ा है। 'योऽसावेवोपशमभावं करोति तस्य निन्दाद्वारेण स्तुतिं' ऐसे उपशमभाव के धारक... यह समभाव शब्द प्रयोग किया है वहाँ। ओहोहो ! यह ४४ गाथा है न ऊपर ? उसका वह भाव यहाँ लेना। इसके ऊपर कुछ उपोद्घात नहीं है। 'अथ' शब्द है सही न ? इसलिए जो ऊपर कहा था, वह ले लेना। भगवान् आत्मा अत्यन्त वीतरागमूर्ति आत्मा है, अर्थात् कि अकषाय का बिम्ब पूरा ऐसा ही अन्तर में अकषाय परिणति खड़ी करके स्थिर हुआ है। ऐसे मुनि के... निन्दा स्तुति द्वारा, निन्दा द्वारा स्तुति करते हैं।

१७१) अण्णु वि दोसु हवेइ तसु जो सम-भाउ करेइ।

सत्तु वि मिल्लिवि अप्पणउ परहँ णिलीणु हवेइ ॥४५॥

देखो ! उसमें 'बिण्णि वि दोस हवन्ति' ऐसा था। दो दोष होते हैं। अरे ! आत्मा अन्तर शान्त निर्विकल्प रस के प्रेम में पड़े, वे आत्मा के निर्विकल्प मधुर रस के मीठे स्वाद के अनुभव में स्थित धर्मी समभाव को करते हैं। जिन्हें कुछ अनुकूल-प्रतिकूल लक्ष्य में भी नहीं। अकेला आनन्द ही लक्ष्य में अनुभवते हैं। ऐसे समभाव के करनेवाले सन्त वीतरागी मुनि। कहते हैं, उस तपोधन के दूसरा भी दोष है। क्योंकि पर के

आधीन होता है, और अपने आधीन भी शत्रु को छोड़ देता है। यह दो दोष हैं। क्या कहते हैं ?

भावार्थ :- जो तपोधन धन धान्यादि का राग त्यागकर परम शान्तभाव को आदरता है, राजा-रंक को समान जानता है,... महा मुनि धन-धान्य, राज-पाट बड़े चक्रवर्ती के राज हों। छोड़कर, राग छोड़कर, उनके प्रति का प्रेम छोड़कर, वह प्राप्त हुए का प्रेम छोड़कर, प्राप्त हुए का राग छोड़कर परम शान्तभाव आदि आदरते हैं, परम शान्त अकषाय स्वभाव, वही वस्तु का आदर करते हैं। राजा-रंक को समान जानते हैं। राजा हो या रंक हो, दोनों को ज्ञेयरूप से जानते हैं। यह राजा है, यह अधिक है और यह रंक है, वह हीन है, (ऐसा जिन्हें रहा नहीं)। समझ में आया ? अरबों रुपये के रत्न पहनकर सिर पर मुकुट में राजा आया, उनके ज्ञान में, आहाहा! कुछ अधिक है और रंक ख्याल में आया हो (तो) यह रंक है, ऐसा ख्याल में नहीं। दोनों ज्ञेयरूप से जाने। समभाव अकेला समभाव। यह कहीं अधिक है दूसरे की अपेक्षा, ऐसा जिनके ज्ञान में आता नहीं। वीतरागस्वभाव में रमता साधु, समभाव में उपशम से परिणमता साधु राजा और रंक को समान जानता है। कहो, अब इतनी मूर्खाई होगी ? राजा को राजारूप से न जाने ? ऐसे पचास-पचास करोड़ की उपज हो, लाख, अरब-अरब की। राजा हो और खम्मा खम्मा करता हो ऐसे उसके साथ कितने पूँछड़े लोग आगे घूमते हों। क्या है ? रंक प्राणी है। जीव है, वह परमात्मा है। पर्याय में पर का लोभी, वह भिखारी है। रंक हो तो भी आत्मा परमात्मा है और पर्याय में पर का भिखारी है, दोनों समान हैं। समझ में आया ?

उसके दोष कभी नहीं हो सकता। सदा स्तुति के योग्य है, तो भी शब्द की योजना से निन्दा द्वारा स्तुति की गई है,... शब्द के अलंकार से ... कहते हैं। वह इस तरह से है कि शत्रु शब्द से कहे गये जो ज्ञानावरणादि कर्म-शत्रु उनको छोड़कर पर शब्द से कहे गये परमात्मा का आश्रय करता है। अरे ! हाथ में आये शत्रु को छोड़ देते हैं। कर्म हाथ में आये हैं, उसे और छोड़ देते हैं और स्व ऐसा परमात्मा, उसका आश्रय करते हैं। अब हाथ में आये उसे छोड़ते हैं और नहीं हाथ में उसे पकड़ते हैं। ऐसा कहते

हैं। 'मांही पड्या ते महासुख माणे, दुनिया देखी दाझे जोने।' दुनिया को ऐसा कि यह क्या परन्तु यह सब? सुन, सुन, बापू! तू बावला-पागल है, कहते हैं। यह धर्मात्मा अन्तर अमृतरस के पथ में पड़े, कहते हैं, वे परमात्मा का आश्रय करते हैं। परम पर वस्तु। देखो! पर अर्थात् पर ऐसा कहा। पर अर्थात् परमात्मा, पर अर्थात् प्रधान वस्तु का आश्रय करते हैं और शत्रु शब्द से जो ज्ञानावरणीय शत्रु हाथ में आये, उन्हें छोड़ते हैं। मार डालना चाहिए या उन्हें छोड़ना चाहिए? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

शान्तरस का पर्वत हाथ में आया है न, वीतरागी झरना, वह वीतरागी झरना दृष्टि में आया है। आहाहा! जिसमें से अकेला वीतरागभाव ही झरता है। ऐसा उपशमरस में परिणमता राजा और रंक को समान माने, शत्रु कर्म है, उसे अपना मानकर उसको छोड़ देता है और परवस्तु ऐसा परमात्मा अपना निजानन्दस्वरूप, उसका आश्रय करता है। शब्द के स्थल से दो दोष कहे, वे दोष नहीं परन्तु स्तुति है। समझ में आया? यह समभाव की स्थिति का वर्णन है, हों! यह। आहाहा! समभाव-समभाव।

इसमें निन्दा क्या हुई, बल्कि स्तुति ही हुई। परन्तु लोकव्यवहार में अपने आधीन शत्रु को छोड़कर किसी कारण से पर शब्द से कहे गये शत्रु के आधीन आप होता है,... समझे न? आप होता है, इसलिए लौकिक-निन्दा हुई; यह शब्द के स्थल से निन्दा-स्तुति की गयी। देखो! शब्द के स्थल से। वह शब्द से श्लेष होने से रूप अलंकार कहा गया है। अलंकार है। ओहो! परमात्मा! हे आत्मा! तेरे शत्रु को छोड़ दिया और परवस्तु तुझे हाथ में नहीं थी, उसे पकड़ी, ऐसा कहते हैं। ऐई! वह पर तुझे वर्तता था, पररूप से वर्तता था, ऐसे परमात्मा को तूने पकड़ा और स्वपने बेचारे वर्तते थे, उन्हें छोड़ दिया। समझ में आया? आहाहा! समभाव का नशा चढ़ा है न! वीतराग समभाव में सन्त डोलते हैं अन्दर। उन्हें पूरी दुनिया ज्ञेयरूप से है। वह भी स्वज्ञेयपने से भिन्न परज्ञेयपने। ऐसी समभाव दृष्टि जहाँ हुई, चारित्र की रमणता है, वह यहाँ महिमा-प्रशंसा करते हैं। समझ में आया?



गाथा - ४६

आगे समदृष्टि की फिर भी निन्दा-स्तुति करते हैं— यहाँ भाषा समदृष्टि प्रयोग की, समभाव है न मूल तो। 'सम-भाउ करेइ।'

१७२) अण्णु वि दोसु हवेइ तसु जो समभाउ करेइ।

वियलु हवेविणु इक्कलउ उप्परि जगहँ चडेइ ॥४६ ॥

जो तपस्वी महामुनि... धर्मात्मा, आहाहा! समभाव को करता है,... आनन्दमूर्ति भगवान् आत्मा की दृष्टि करके अन्दर रमता है, उस आनन्दकन्द में जिसकी अन्तर रमणता जम गयी है। भगवान् अतीन्द्रिय आनन्द का महा स्तम्भ है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्तम्भ, उसमें जम गये हैं, जम गये अन्दर ध्यान में। वीतराग... वीतरागस्वभाव की परिणति से परणिमित हुए हैं। उसके दूसरा भी दोष होता है, जो कि शरीर रहित होके अथवा बुद्धि धन वगैरह से भ्रष्ट होकर... विकल हो गया विकल। विकल अर्थात् कल अर्थात् शरीररहित। विकल विकलेन्द्रिय। विकलेन्द्रिय कहते हैं न? आहाहा! अरे! शरीर भी नहीं, विकल हो गया, बुद्धि नहीं, यह बाहर के उघाड़ की। धन नहीं, कुछ नहीं, तेरे पास कुछ नहीं होता। कहो, समझ में आया?

'विकलः कलरहितः शरीररहितो भूत्वा' लो! भ्रष्ट होकर अकेला लोक के शिखर पर अथवा सबके ऊपर चढ़ता है। एक तो बावला होता है और शिखर के ऊपर जाता है। कहो! पागल चढ़े न मकान के ऊपर। तुम्हारे नहीं था? स्वामी नारायण हो गये थे न, नहीं? वे ऊपर चढ़ते झोपड़े के ऊपर। बहुत वर्ष की बात करते थे। देखो! धर्म छोड़े तो ऐसा होगा। आहाहा! कहते हैं, शरीररहित होकर और बुद्धि, धन इत्यादि में भ्रष्ट होकर। यह क्षयोपशमज्ञान आदि से भ्रष्ट हो गये, संसार के ज्ञान से भ्रष्ट हो गये, संसार की जानकारी से भ्रष्ट हो गये। धर्मात्मा आत्मा के आनन्द के ज्ञान में स्थिर होने से लौकिक आदि जानपने से भ्रष्ट हो गये। कहो, मोहनभाई! लोक की चतुराई से भ्रष्ट हो गये। पाँच में (पंचों में) पूछे जाते थे, ऐसी जानकारी थी, तो भी भ्रष्ट हो गये। चढ़े ऊपर सबसे लोक के ऊपर जाये। आहाहा! लौकिकबुद्धि से भ्रष्ट हो और लोक के ऊपर जाये। आहाहा!

जगत ऊपरी। लोक के शिखर पर अथवा सबके ऊपर चढ़ता है। बुद्धि बिना का सिर पर चढ़ावे, लड़के को सिर पर चढ़ाते हैं या नहीं? एक तो बुद्धि बिना का और धन नहीं, लक्ष्मी नहीं और कुछ नहीं और सिर पर चढ़े। ... आहाहा! यह मुनिपने की दशा, रमणता मोक्ष के साधक की साक्षात् (दशा)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान की न हो परन्तु उसके उपरान्त समभाव की स्थिति का वर्णन करते हैं आचार्य। दूसरा भाग है सही न? वे तपस्वी कहलाते हैं, हों! तपस्या अर्थात् अपवास करे, वह नहीं। जिसे इच्छा ही उत्पन्न नहीं (होती)। अमृत के आनन्द के अनुभव में स्थित है, वह तपस्या है। देखो न! तपस्वी कहा न? रागादि रहित परम उपशमभावरूप। ऐसा तो कहे, तुम्हारे क्रिया नहीं होती। भाई! राग की क्रिया हो, परन्तु वह कहीं वस्तु है? भगवान पूरा आत्मा जहाँ विकल्परहित निर्विकल्पदृष्टि में स्थिर हुआ, उसे तपस्या कहते हैं, उसे तपस्वी कहा जाता है। कहो, समझ में आया? उसे ज्ञानी कहा जाता है। भगवान कहते हैं कि हमारे शास्त्र के पठन को भूलकर अन्दर में जा। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- जो तपस्वी रागादि रहित परम उपशमभावरूप निज शुद्धात्मा की भावना करता है,... निज परमात्मा अखण्ड आनन्द का कन्द। यहाँ तो परमात्मा है न, तो भावना परमात्मा की हो न! देह-देवल में रजकण से भिन्न अकेली आनन्द की कातली, कातली दल पड़ा है, कहते हैं। ऐसा परम परमात्मा में स्थित समभाव जो होता है, वह निज शुद्धात्मा की भावना उसका नाम कहा जाता है। भावना कहो, वीतरागभाव कहो, समभाव कहो, उपशमभाव कहो। उसकी शब्द के छल से तो निन्दा है, कि विकल अर्थात् बुद्धि वगैरह से भ्रष्ट होकर... विकल शब्द पड़ा है सही न? 'वियलु हवेविणु' विकल ही है, हों! विकल यह तो। बुद्धि वगैरह से भ्रष्ट होकर लोक अर्थात् लोकों के ऊपर चढ़ता है। बाहर का ज्ञान नाश होकर, लौकिक बुद्धि का नाश होकर, केवलज्ञान बुद्धि प्रगट हुई, वह लोक के शिखर पर जाता है। यह बुद्धि बिना के लोक के शिखर पर! लौकिक बुद्धिरहित और लोकोत्तर केवलज्ञान बुद्धिसहित। केवलज्ञान बुद्धिसहित। अपने आत्मा का ज्ञान, पूर्णानन्द प्रभु एक समय में तीन काल, तीन लोक जहाँ ज्ञात हुए। ओहोहो! सर्वज्ञ का आया है थोड़ा इसमें। तुम सर्वज्ञ त्रिकाल ज्ञानी प्रभु... इसमें। निर्णय

करो न भाई ! निर्णय करो । केवलज्ञानी अनियत देखते हैं, इसका निर्णय करो । अकाल में मरण करे, इसका निर्णय करो । निर्णय करो न ! देखो ! कानजीस्वामी ने ऐसा कहा होता तो लोग टूट पड़ते उनके ऊपर । परन्तु तुम अन्दर करते हो, वह कोई तुम्हारे पण्डितों में भी पूछते नहीं और कोई पूछता नहीं, गजब करते हैं यह तो ! सर्वज्ञ का ऐसा भाव ! आहाहा !

भगवान केवलज्ञान में तो ऐसा पूरा चोसला पड़ा है न भाई ! ऐसे पूरा एक समय में ऐसा का ऐसा ज्ञात होता है । फिर अनियत कैसा ? ऐसा का ऐसा सब है नियत, व्यवस्थित । त्रिकाल एक ज्ञान व्यवस्थित हो गया, व्यवस्थित सब ज्ञात होता है । समझ में आया ? उसके ज्ञान में आगे-पीछे क्या ? वहाँ उन्हें ज्ञात हो, ऐसे ज्ञेय में आगे-पीछे क्या ? वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतराग विज्ञानता 'तीन भुवन का सार एक वीतराग विज्ञान' । कहा न ? ऐसा आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप में रमते, वीतरागदशा से रमते हुए विकल अर्थात् लौकिक बुद्धि और शरीररहित (हो जाता है) । दो लिये । विकल अर्थात् बुद्धिरहित और विकल अर्थात् कल अर्थात् शरीररहित । और फिर चढ़े लोक के ऊपर । लोक की बुद्धि और शरीर नहीं और चढ़े लोक के ऊपर लोकाग्र में ।

यह लोक-निन्दा हुई । लेकिन असल में ऐसा अर्थ है, कि विकल अर्थात् शरीर से रहित होकर तीन लोक के शिखर (मोक्ष) पर विराजमान हो जाता है । मुक्तस्वरूप भगवान का अवलम्बन किया, वह मुक्तदशा में होकर मोक्ष ... विराजता है । लोक के शिखर पर, यह व्यवहार कहा । अपने स्वरूप में विराजता है तो उसका क्षेत्र बतलाया है । पूर्ण जहाँ अशरीर दशा हो, उसका क्षेत्र, व्यवहार से क्षेत्र वहाँ ऊपर है । अन्य की भाँति सर्वत्र व्यापक हो जाये, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं । लोक है, उसके ऊपर रहते हैं, यह बात सब सिद्ध की वापस । समझ में आया ? समभावी हो जाये, अन्तर दृष्टि—अनुभव में स्थिर होने पर शरीररहित हो गये, लौकिक बुद्धि से रहित हो गये । लोक के ऊपर जाकर स्थित होते हैं । अन्यमति कहते हैं, तत्प्रमाण उन्हें सिद्धपद का रहना, अन्यत्र व्यापना अनन्त में, ऐसा है नहीं । एक बात में बहुत बात करते हैं । लोग तो ऐसा कहे, पागल हो गये, बुद्धि बिना के ऊपर चढ़े । बुद्धिवाला हो, वह बड़े पद में आवे । ऐसा

कहा जाता है या नहीं? बड़ा पद किसे होता है? बुद्धिवाला हो, पैसेवाला हो, कहीं हाम, दाम और ठाम हो, वह कहीं सामने आवे। नगरसेठरूप से कौन आवे? ऐई! नेमिदासभाई! काका-काकी कैसे कहलाते होंगे गाँव में? वह कहीं पैसा हो, घर में बँगला हो, दो-दो लाख के बँगले बड़े, और कुछ देते हों थोड़ा-थोड़ा। ऐसा कहीं एकदम ऐसे हों तो कोई काका कहे भी नहीं। अच्छे-बुरे ठिकाने कोई गौशाला क्या कहलाता है वह सब? कहीं-कहीं खड़े रहे हो, तब कहते हो न! इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, कुछ बुद्धि बुद्धि होती है लौकिक की... यहाँ तो कहते हैं कि बुद्धि और शरीररहित लोकोत्तर हो गये, जाओ। आहाहा! समझ में आया?

तीन गाथाओं में निन्दा द्वारा स्तुति (की)। क्या किया अब तूने? अनादि के साथ में (थे), उन्हें मार डाला तूने। यह भाई तो कोई रहे। पच्चीस पचास वर्ष साथ में रहे। वे तो अनादि के साथ में हैं। कर्म तो अनादि के साथ में हैं। मोहनभाई! यह तो पाँच, पच्चीस वर्ष रहे और भगे। भगे हुए ही थे—भिन्न ही थे। कब इकट्ठे थे? मुफ्त का वह अन्दर में मानता था। जेचन्दभाई! भगे। अवसर आया, लड़के कहे अपने को ठीक पड़ता नहीं, हमारे पृथक् होना है। परन्तु अब हमको दो भाईयों को तो इकट्ठा रहने दे। भाई किसके रहें परन्तु फिर साथ में? लड़के अलग पड़ें तो वे भी साथ में अलग पड़ जायें। वैसे भी भिन्न ही थे। कब इकट्ठे थे तीन काल में? ऐसा कहते हैं यहाँ तो। इकट्ठे थे और मार डाले? पृथक् कर दिये? देखो न, वह कहता है कि भाई! यहाँ आओ, फिर हमको छोड़ेंगे। कहा था न उसमें? बलवन्तराय का नहीं वह क्या कहलाता है? उसको कहा था, तुम यहाँ आओ। तुम निकले, वह हमको खबर है। तुम यहाँ आओ, फिर हम छोड़ देंगे। अब भी तेरे पास जाये और तू छोड़े दे फिर। नाक काटकर क्या करे? ऐसा कहते हैं, कर्म भी हाथ में तेरे और अब तू छोड़ दे, मूर्खाई करता है। कहते हैं, सुन न! अरे! सुन न! कर्म छूटे उसमें ही पण्डिताई है, वह मूर्खाई नहीं परन्तु पण्डिताई है। आहाहा! केवलज्ञान झबक उठता है उसमें, तीन काल, तीन लोक सहित। जिसे कुछ नया जानना नहीं, आकांक्षा नहीं, सुख में पूर्ण तृप्त है। वह तो लोक के ऊपर ही हो प्रमुख, वही हो प्रमुख। लोक में प्रमुख वह होता है, ऐसा कहते हैं। यह प्रमुख वही है।

यह देखो न... आहाहा! पूर्ण समभाव को प्राप्त केवलज्ञान परमात्मा ही प्रमुख हुए। दुनिया के चतुर या दुनिया के पैसेवाले वे प्रमुख नहीं होते, ऐसा कहते हैं। लो!

विकल अर्थात् शरीर से रहित होकर तीन लोक के शिखर (मोक्ष) पर विराजमान हो जाता है। यह स्तुति ही है। क्योंकि जो अनन्त सिद्ध हुए, तथा होंगे, वे शरीररहित निराकार होके जगत के शिखर पर विराजे हैं। आहाहा! अब उन्हें सिद्ध को भी अभी परतन्त्र सिद्ध करना है। उन्हें मजा नहीं आता परतन्त्र हुए बिना। आहाहा! पूर्णानन्द की पूर्ण स्वतन्त्रता, प्रभुता की पर्याय की शक्ति पूर्ण प्रगट हुई। वे लोक के अग्र में विराजमान, भगवान अनन्त-अनन्त स्वभाव के आनन्द के भोक्ता विराजमान शिखर पर विराजते हैं। वह दोष नहीं है, परन्तु भाषा के अलंकार से उसे गुण कहा गया है। लो!

★ ★ ★

गाथा - ४६ *१

आगे स्थलसंख्या के सिवाय क्षेपक दोहा कहते हैं—

१७३) जा णिसि सयलहँ दिहियहँ जोगिउ तहिँ जग्गेइ।

जहिँ पुणु जग्गइ सयलु जगु सा णिसि मणिवि सुवेइ ॥४६ *१ ॥

वह आता है न गीता में? जो सब संसारी जीवों की रात है, उस रात में परम तपस्वी जागता है,... कहो, यह जगत के जीव की रात, वह धर्मी का दिन है। और जिसमें सकल संसारी जीव जाग रहे हैं, उस दशा को योगी रात मानकर योग निद्रा में सोता है। क्या कहते हैं, देखो! ऊपर से श्लोक डाला है।

भावार्थ :- जो जीव वीतराग परमानन्दरूप सहज शुद्धात्मा की अवस्था से रहित हैं,... जो जीव वीतराग—रागरहित परमानन्दस्वरूप सहज आत्मा की दशा से रहित है। मिथ्यात्व, रागादि अन्धकार से मण्डित हैं,... आत्मा के आनन्दस्वभाव से विपरीत राग, शरीर आदि मेरे, उसमें पड़े हैं, वे अन्धेरे में पड़े हैं, अन्धेरे में पड़े हैं। इसलिए इन सबों को वह परमानन्द अवस्था रात्रि के समान मालूम होती है। ऐसे अन्धेरे में पड़े हुए को परमानन्द अवस्था तो रात्रि समान मालूम होती है। यह और

क्या ? परमानन्द वस्तु भिन्न ! मिथ्या, राग, द्वेष, पुण्य, पाप, विकल्प, शरीर मेरे (इसमें) मर गये पड़े हैं, उन्हें परमानन्द की मूर्ति आत्मा, वह तो रात्रि समान लगती है। समझ में आया ? अर्थात् कि उन्हें नजर में आता नहीं। आहाहा ! देखो ! यह अन्धकार। भगवान् आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, वह विकल्प की रात्रि में एकाकार होकर अन्धेरे में पड़े हैं, उन्हें परमानन्दस्वभाव चिदानन्द प्रभु उन्हें अन्धा लगता है अर्थात् उन्हें अच्छा नहीं लगता। उन्हें रात्रि समान लगता है। आहाहा !

कैसे ये जगत के जीव हैं, कि आत्म-ज्ञान से रहित हैं,... जागते हैं अज्ञान में, ऐसा कहते हैं। चैतन्य जागृत ज्योति चैतन्यभाव को छोड़कर और वे पुण्य-पाप के विकल्प तथा शरीरादि का सब जो संग, उसमें पड़े हैं, उन्हें वह रात्रि है, उसे वे मानते हैं कि यह दिवस है और उससे रहित आत्मा आनन्दमूर्ति है, वह दिवस है। उसे वे रात्रि मानते हैं। समझ में आया ? और अपने स्वरूप से विमुख हैं, जिनके जागृत-दशा नहीं हैं,... भगवान् आत्मा ज्ञानस्वरूपी आनन्द है, ऐसी जहाँ जागृतदशा नहीं, वह तो इस विकल्प के जाल के वर्तमान अन्धेरे में तल्लीन हो गये हैं। वह रात्रि समान है, उसे दिवस मानते हैं। जो दिवस समान जागृत दशा है, उसे अन्धकार जैसे उसको रात्रि समझते हैं।

अचेत सो रहे हैं,... अचेत सो रहे हैं। चैतन्य के ज्ञानानन्द स्वरूप के अन्तर के भान बिना, शान्ति के आनन्द के ख्याल बिना, यह पुण्य-पाप के विकल्प में अचेत अर्थात् जड़ जैसे होकर सो गये हैं, कहते हैं। आहाहा ! यह चेतनेवाला चैतन्य भगवान् ज्ञान और आनन्द से जागती ज्योति उसे छोड़कर विकार की वृत्ति में जो सो गया है, वह अचेत हो गया है, मुर्दा हो गया है, मुर्दा। समझ में आया ?

ऐसी रात्रि में वह परमयोगी वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूपी रत्नदीप के प्रकाश से मिथ्यात्व रागादि विकल्प-जालरूप अन्धकार को दूर कर अपने स्वरूप में सावधान होने से सदा जागता है। आहाहा ! वे अचेत सो रहे अज्ञानी राग के द्वेष, विकल्प की जाल में पड़े, चैतन्यसूर्य की नजर करता नहीं। यह राग-द्वेष वह अन्धकार है, ऐसा कहते हैं। वह शुभाशुभ विकल्प, वह अन्धकार। वह चैतन्य नहीं। आहाहा ! दूसरे प्रकार से कहा यह। ज्ञानस्वरूपी प्रभु वीतरागी आनन्दवाला चैतन्य, उस चैतन्य को

न जानकर मात्र शुभ-अशुभभाव में पड़े हैं और एकाकार हो गये हैं, कहते हैं कि वह तो अचेत चीज़ है। अचेत में सो रहे हैं, वे रात्रि में अन्धकार में सो गये हैं। समझ में आया ? घोर निद्रा लेते हैं। आहाहा !

जागता चैतन्य भगवान् ज्ञान की ज्योति अन्दर केवलज्ञान... केवलज्ञान... केवलज्ञान... और केवलदर्शन भरा है। ऐसे भगवान् को नहीं जगाया (और) उससे विरुद्ध विकल्प के जाल में अचेत होकर सो गया है। आहाहा ! दूसरा प्रकार कहा। समझ में आया ? अन्धकार में मौज मनाता है। भगवान् जागती ज्योति की नजर करता नहीं। वह स्वसंवेदन ज्ञानरूपी रत्न, उसके प्रकाश से विकल्प-जालरूप अन्धकार को दूर कर। भगवान् आत्मा चैतन्य दीपक जलहल ज्योति वीतरागी स्वसंवेदनस्वरूप है। उसका धर्मात्मा भान द्वारा—उस वीतरागी स्वसंवेदनरूपी रत्न द्वारा। उस रत्नदीप के प्रकाश द्वारा। लो, यह प्रकाश। जिसने मिथ्यात्व और रागादि अन्धकार को दूर किया। देखो, यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष दूर भी कैसे होते हैं, यह विधि भी साथ में बतायी। भगवान् आत्मा अनाकुल आनन्द, ज्ञान की मूर्ति प्रभु, उसकी अन्तर में एकाकार दशा वीतरागी विज्ञान हुआ, ऐसे रत्नदीप के प्रकाश द्वारा जिसने मिथ्यात्व और राग को दूर किया है। समझ में आया ? सावधान होने से सदा जागता है। यह जागता है और वह सोता है। समझ में आया ? विशेष बात करेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

पौष कृष्ण १२, मंगलवार, दिनांक - १८-०१-१९६६

गाथा - ४६ - ४७, प्रवचन - १०१

फिर से लो! भावार्थ :- जो जीव वीतराग परमानन्दरूप सहज शुद्धात्मा की अवस्था से रहित हैं,... जो जीव-आत्मा रागरहित, विकाररहित ऐसा परमानन्द आत्मा का स्वभाव उसका सहज शुद्धात्म, उसकी अवस्था से रहित है, ऐसी दशा का जिसे भान नहीं। वह मिथ्यात्व रागादि अन्धकार से मण्डित हैं,... वह पुण्य-पाप के भाव के अन्धकार में पड़े हैं। अन्धकार में पड़े हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा शुभाशुभ रागरहित परमानन्द की मूर्ति, उसमें जो जागते नहीं, वे मिथ्यात्व, रागादि में अन्धकार में सो रहे हैं। उसमें मण्डित है अर्थात् उसमें जागते हैं, ऐसा। इसलिए इन सबों को वह परमानन्द अवस्था रात्रि के समान मालूम होती है। है न? यह राग-द्वेष और विकार ही उसे उजाला लगता है, अर्थात् वह ठीक लगता है, ऐसा। ओहोहो! शुभ-अशुभभाव जो अन्धकार है। कहो, समझ में आया? जागृत तो ज्ञानमूर्ति चैतन्य, वह पुण्य-पाप के रागरहित जागती ज्योति चैतन्यस्वरूप है। उसके भानरहित है, वह तो पुण्य-पाप और भ्रमणा में स्वयं जागते हैं। उन्हें उस रात्रिसमान अवस्था में आत्मस्वभाव रात्रिसमान दिखता है अन्धकार। और विकार को जागती ज्योति देखते हैं अर्थात् उसमें ही वे पड़े हैं। बहुत संक्षिप्त बात और दो बात।

कैसे ये जगत के जीव हैं, कि आत्म-ज्ञान से रहित हैं,... आत्मा पुण्य-पाप के विकल्परहित, अकेला चैतन्यब्रह्म आनन्दकन्द, उसका जिसे ज्ञान नहीं, वे अज्ञानी हैं, और अपने स्वरूप से विमुख हैं,... पुण्य-पाप के विकल्प और भ्रान्ति में पड़े, चैतन्य और आनन्द का उन्हें उजाला नहीं लगकर, उन्हें अन्धकार लगता है और विकारभाव में ही उन्हें सर्वस्व लगता है। कहो, समझ में आया इसमें? एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। जिनके जागृत-दशा नहीं हैं,... भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा और आनन्दस्वरूप है,

ऐसा जिन्हें जागृतपना नहीं, वे पुण्य-पाप के भाव में अचेत सो रहे हैं,... अपना सचेतपना छोड़कर (विभाव में सो रहे हैं)। समझ में आया? ज्ञान और आनन्दस्वरूप सचेत स्वरूप को छोड़कर शुभ, अशुभराग और भ्रान्ति जो अचेत है, उसमें सो रहा है। कहो, समझ में आया नहीं इसमें? अचेत में सोते हैं, सचेत का भान नहीं और वहाँ अन्धेरा लगता है।

ऐसी रात्रि में वह परमयोगी वीतराग... ऐसे अन्धकार के काल में अज्ञानी जो पड़े हैं, उसमें से ज्ञानी हट गये हैं। परमयोगी वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूपी रत्नदीप के प्रकाश से... मैं एक रागरहित चैतन्य ज्ञानानन्द, ज्ञान, चैतन्यस्वभाव का, स्वसंवेदन ज्ञानरूपी रत्नदीप के प्रकाश से मिथ्यात्व रागादि विकल्प-जालरूप अन्धकार को दूरकर अपने स्वरूप में सावधान होने से सदा जागता है। कहो, समझ में आया? उसका स्पष्टीकरण विशेष करते हैं। वहाँ सामान्य बात है न, इसलिए फिर वह शुभ-अशुभ क्या होगा? इसलिए विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। तथा शुद्धात्मा के ज्ञान से रहित... ओहो! आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्य ज्योति परमानन्द की मूर्ति का जहाँ ज्ञान और भान नहीं, उसे शुभ, अशुभ, मन, वचन, काय के परिणामनरूप व्यापारवाले जीव... पूरा जगत। चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग की वासना हो, चाहे तो दया, दान, भक्ति, व्रत, तप के विकल्प हों।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहा न पहले में समुच्चय रखा था, यहाँ खुल्ला किया अब। वह समुच्चय कहा था, उसका खुल्ला कर दिया। पाठ में ही है न, 'शुभाशुभमनो-वाक्कायपरिणामव्यापारे' पहले सामान्य बात की थी कि जिस जीव (को) वीतरागी शान्तरस आत्मा का जागृतपना नहीं उसे अन्धकार लगता है, रात्रि समान लगता है और विकार है, उसे वह जागती ज्योति उसमें उसे वह ठीक लगता है। समझ में आया? सामान्य बात की थी। इसलिए यहाँ विशेष स्पष्ट किया। एक ओर ज्ञान चैतन्यमूर्ति की जागृत श्रद्धा और जागृत ज्ञान और जागृत रागरहित स्थिरता, उसके भान बिना शुभ, अशुभ के राग में... है न? परिणामनरूप व्यापारवाला एकेन्द्रिय से लेकर, स्थावर से

लेकर। पाठ में जगत है सामान्य। फिर स्पष्टीकरण किया है 'पराङ्मुखः सन् जगज्जागर्ति' पूरा ऐसा। फिर जगत की व्याख्या की। जगत में स्थावर-जंगम सकल अज्ञानी। एकेन्द्रिय से लेकर जितने पंचेन्द्रिय नौवें ग्रैवेयक मिथ्यादृष्टि आदि जाये या मिथ्यादृष्टि हों, उन्हें यह आत्मा ज्ञानानन्द भगवान् आत्मा परमानन्द की मूर्ति वीतरागी स्वरूप है, उसका उन्हें भान नहीं, इसलिए पुण्य और पाप में ही स्वयं अन्दर एकाकार परिणमकर अज्ञानी, परमात्मतत्त्व की भावना से पराङ्मुख हुए... देखो! शुभ और अशुभभाव की लीनता में एकाकार हुए अनादि के स्थावर और जंगम जीव वे, आत्मा ज्ञानानन्द है, उसकी भावना से रहित हुए हैं। कहो, बराबर है? क्या कहा?

एक ओर चिदानन्द आत्मा पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड पवित्र और एक ओर पुण्य-पाप के विकल्प से लेकर सब। जो पुण्य-पाप के राग में एकाकार परिणम रहे हैं, उन्हें आत्मतत्त्व के ज्ञान की भान दशा नहीं। वे आत्मतत्त्व से पराङ्मुख हुए विषय-कषायरूप अविद्या में सदा सावधान हैं,... और अविद्या। भगवान् चिदानन्दमूर्ति ज्ञानकन्द, आनन्दकन्द सदा विद्यमान वस्तु, विद्यावाली वस्तु है। उससे विरुद्ध पुण्य-पाप के विकल्प में लीन हुए, वे सदा अविद्या में सो रहे हैं। समझ में आया? वे अविद्या में सावधान हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अविद्या भी विद्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अविद्या भी एक भाव है, भाव है, ऐसा कहा। भगवान् ज्ञानमूर्ति वस्तु का ज्ञान, दर्शन और स्थिरता, वह यथार्थ विद्या है, वह उसकी वस्तुस्थिति है। उससे विपरीत पुण्य और पाप के विषय-कषाय के भाव में सावधान है, वह अज्ञान में सावधान कहो, अविद्या में सावधान कहो, अचेत में सावधान कहो, अन्धकार में सावधान कहो। आहाहा!

एक ओर प्रभु है अनन्त गुण का पिण्ड पवित्र शुद्ध चैतन्यमूर्ति, एक ओर शुभ विकल्प से लेकर शरीर, वाणी, कर्म सब यह। जो अपना शुद्धस्वभाव, उसकी दृष्टि और ज्ञान की भावना नहीं, उससे रहित है, वह पुण्य-पाप शुभाशुभ अविद्या में सहित और उसमें पड़े हैं, उसमें जागृत हैं, उसमें सावधान हैं। ओहोहो! समझ में आया? उस

अवस्था में विभावपर्याय के स्मरण करनेवाले... जो अज्ञानी हैं, (वहाँ) महामुनि सावधान (जगते) नहीं रहते। ऐसा लेना है। उसमें महामुनि सावधान नहीं होते। यह पुण्य-पाप के विकल्प में महामुनि सावधान नहीं होते, सावधान स्वरूप में हैं। ओहोहो! जितने अंश में आत्मा शुद्ध चैतन्य की दृष्टि, ज्ञान और लीनता हुई, उतना आत्मा का साधन है। जहाँ उसे छोड़कर पुण्य और पाप के विकल्प में, राग में एकाकार हुआ, वह अचेत में, अन्धकार में, अविद्या में जागता है। चैतन्य में सोता है और अविद्या में जागता है। समझ में आया ? ज्ञानी अज्ञान में सोता है, सो गया है वहाँ से; शुद्ध स्वभाव में जागता है। यह आता है, कहा न, गीता में ऐसा आता है न ? परन्तु वह सब समझने जैसा है। यह तो वह बात है, ऐसी पर्याय की बात करते हैं। वहाँ पर्याय-पर्याय की कहाँ व्याख्या है ?

यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु है परमात्मतत्त्व, उसकी भावना। देखो ! ऐसा रखा है न ? वह वस्तु है, अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी जो एकाग्रता, वह पर्याय है। उससे जो परान्मुख है। उससे परान्मुख है अर्थात् विषय-कषाय और परलक्ष्यी भाव में तत्पर है। पर्याय विकारी में तत्पर है, वह अविकारी में एकाकार स्वभाव में है। समझ में आया ? यह सर्वत्र बिना भान के भाषा है, तत्त्व की बात है नहीं। बहुत ऐसा लगा देते हैं कि अपने जो इसमें यह है और उसमें यह है, उसमें यह है और इसमें यह है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी बात में ही विवाद एक-एक में।

एक वस्तु अखण्ड ज्ञायकमूर्ति एक ही द्रव्य पदार्थ स्वयं पूरा स्वतन्त्र है। उसकी एकाग्रता, वह आत्मा की जागृति, वह पर्याय है और राग-द्वेष में एकाग्रता, वह अन्धकार रात्रि अचेत और अविद्या है। परन्तु वह पर्याय है। अविद्या, वह मुफ्त की कहीं कोई चीज़ नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? माया-बाया कुछ वस्तु नहीं, ऐसा नहीं है। है अचेतन अन्दर अविद्या में रुक गया है वह। समझ में आया ?

इसलिए संसार की दशा से सोते हुए मालूम पड़ते हैं। लो ! इसलिए धर्मी जीव संसार की दशा से सो गये हैं। आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान में, शान्ति में जागते हैं। जिनको

आत्मस्वभाव के सिवाय विषय-कषायरूप प्रपंच मालूम भी नहीं है। ध्यान में है न? विषय-कषाय के प्रपंच मालूम भी नहीं कि विषय-कषाय कैसे हैं और क्या हैं? पर विषय नहीं, इसलिए कुछ नहीं ऐसा। उस प्रपंच को रात्रि के समान जानकर उसमें याद नहीं रखते,... वे अन्धकार समान जानकर धर्मात्मा उसे स्मरण नहीं करता, याद नहीं रखता पुण्य-पाप के विकल्प को, वे सब अन्धकार समान हैं। मन, वचन, काय की तीन गुप्ति में अचल हुए वीतराग निर्विकल्प परम समाधिरूप योग-निद्रा में मगन हो रहे हैं। योगनिद्रा में। भगवान् आत्मा वीतरागस्वभाव का समतारस का तत्त्व, उसके अन्दर जुड़ान करके एकाकार होकर, वीतरागी निर्विकल्प परम शान्तिरूप योगनिद्रा में मगन रहता है। वे परम शान्त... यह समभाव की व्याख्या चलती है न यह सब, उपशमरस की व्याख्या चलती है। समझ में आया? साम्यभाव कहो, उपशमभाव कहो, शुद्ध उपयोग कहो, समभाव कहो, स्वच्छता कहो, स्वस्थ कहो—सब एक है। अपने शुद्ध चैतन्यतत्त्व में जो स्व-स्थ, उसमें जो टिका है, वह आत्मा में जागता है और विकार में जो जागता है, वह आत्मा में सोता है। कहो, यह जागता काम करे न सब, काम संसार के और पुण्य-पाप के। तो कहते हैं कि उसमें जागता है, यहाँ आत्मा में सोता है, सो गया है।

सारांश यह है कि ध्यानी मुनियों को आत्मस्वरूप ही गम्य है,... देखो! अन्दर आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप की ही ज्ञानी को गम्य है, विकल्प की गम्य नहीं। और जगत के प्रपंची मिथ्यादृष्टि जीव, उनको आत्मस्वरूप की गम्य (खबर) नहीं है,... उसे आत्मस्वभाव का गम्य नहीं कि आत्मा कौन है, अन्दर शुद्ध चैतन्यमूर्ति कौन है, उसकी गम्य नहीं। ज्ञानी को प्रपंच की गम्य नहीं, उसे (अज्ञानी को) आत्मा की गम्य नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? अनेक प्रपंचों में (झगड़ों में) लगे हुए हैं। अज्ञानी। झगड़ा, विकल्प के जाल के झगड़े। वे, हों! झगड़े भी, पर में कुछ लगा नहीं। कहो, यह संसार के होशियार किसमें लागू पड़े हैं? मोहनभाई! आत्मा से ऊँघते हैं और यहाँ जागते हैं इसमें। आहाहा! होशियारी की न ऐसे सब विकल्पों की जाल करके, वे मजा मानते हैं अन्दर।

मुमुक्षु : दौड़ादौड़ करते हैं न....

पूज्य गुरुदेवश्री : दौड़ादौड़ करते हैं नहीं। वे तो क्रिया करते हैं। अन्दर भाव में है दौड़ादौड़। शरीर चले दौड़ादौड़, वह तो जड़ की क्रिया है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वे जागते हैं। किसमें? विकार में। यहाँ सोते हैं उसमें से। आहाहा!

अनेक प्रपंचों में लगे हुए हैं। आहाहा! यह करो और यह करो और दया पालन करो, भक्ति करो, पूजा करो, व्रत करो और अकेले विकल्प, हों! हिंसा करूँ और झूठ करूँ और कमा दूँ, ला दूँ और रख दूँ, सम्हाल दूँ और याद कर दूँ और पुत्र का विवाह कर दूँ। कहो, अकेले विकल्प के जाल में गुँथ गया है, कहते हैं। यह झगड़े में लागू पड़े हैं। विकार की वृत्ति शुभ-अशुभ दोनों झगड़ा है, दोनों, हों! कहो, मगनलालजी!

मुमुक्षु : किसके साथ? झगड़ा किसके साथ किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा के साथ झगड़ा किया। विरोध करके विरोध भाव (किया)। किसका झगड़ा क्या? आहाहा!

प्रपंच की सावधानी रखने को भूल जाना, वही परमार्थ है,... यह शुभाशुभराग की विकल्प की जाल को भूल जाना, उसका नाम परमार्थ है। आहाहा! तथा बाह्य विषयों में जागृत होना ही भूल है। लो! ठीक! बाह्य ऐसे लक्ष्य करके विकल्प में जागृत रहना, वही बड़ी भूल है। आहाहा! कैसी शैली की है, देखो न! बहिर्मुख के विकल्पों में जागृत रहना, वह महान भूल है। अन्तर्मुख के विषय में जागृत रहना, वह परमार्थ है। आहाहा! दो ही बात।

मुमुक्षु : पहले क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले यह करना—शुद्धस्वरूप ज्ञानानन्दस्वरूप की दृष्टि करके, उसमें स्थिर होना, यह (करना)। यह तो बाद में कथन आया, पहले आया था न? कल नहीं आया था? पहले आया था। पहले यह करके फिर यह (करना)। नहीं आया था? 'पूर्व ज्ञात्वा तद्विलक्षणं परद्रव्यं च निश्चित्य पश्चात्' 'समस्त मिथ्यात्वागादिविकल्प-

त्यागेन' यह आया था, ४३ में आया था, ४३ गाथा में आया था। यह तो क्रम समझाने की पद्धति है। पहले स्व-पर की चिन्ता जानकर स्व में स्थिर होना और पर को छोड़ना। यह तो स्व में स्थिर हुआ, पर छूट गया। उपदेश की पद्धति कैसी हो उसे? ४३ में आया था पाठ।

★ ★ ★

गाथा - ४७

आगे जो ज्ञानी पुरुष हैं,... ४७। वे परमवीतरागरूप समभाव को छोड़कर शरीरादि परद्रव्य में राग नहीं करते, ऐसा दिखलाते हैं—

१७४) णाणि मुएप्पिणु भाउ समु कित्थु वि जाइ ण राउ।

जेण लहेसइ णाणमउ तेण जि अप्प-सहाउ ॥४७॥

निज-पर के भेद का जाननेवाला ज्ञानी मुनि (धर्मी जीव)... ज्ञानस्वरूप आत्मा पूरी वस्तु है। निर्विकल्प वस्तु परमात्मस्वरूप पूरा मेरा है और रागादि विकल्प उठते हैं, वे पर हैं। शरीर, वाणी तो कहीं बाह्य रह गये। निज-पर के भेद का जाननेवाला ज्ञानी मुनि समभाव को छोड़कर... अकेली उत्कृष्ट बात है न यहाँ तो वीतरागचारित्रसहित की। शान्तरस को छोड़कर किसी पदार्थ में राग नहीं करता,... देव-गुरु-शास्त्र में राग करना या द्वेष करना परपदार्थ में वह कुछ रहता नहीं। अकेला ज्ञायक चैतन्यमूर्ति, उसकी दृष्टि करके स्थिर होता है। अकेला समभाव ज्ञाता-दृष्टा का वर्तता है। कोई यह द्रव्य ठीक-अठीक जिसके ज्ञान में नहीं। ज्ञान-श्रद्धा में तो नहीं, परन्तु अस्थिरता भी नहीं उसकी अब। ऐसे समभाव को छोड़कर किसी पदार्थ में राग नहीं करता, प्रेम नहीं करता, पर के साथ सम्बन्ध नहीं करता।

इसी कारण ज्ञानमयी निर्वाणपद पावेगा,... प्राप्ति, ज्ञानमयी स्वरूप की प्राप्ति होती है। और उसी समभाव से केवलज्ञान पूर्ण हो जाता है... उसी ज्ञान से केवलज्ञान पूर्ण आत्मस्वभाव को आगे पावेगा। पूर्ण होगा। वर्तमान भी समभाव से ज्ञानस्वरूप को पाता है और उस समभाव से पूर्ण केवलज्ञान को पायेगा। क्या कहा? वर्तमान भी आत्मा

के अन्तर्मुख के सम्यग्ज्ञान, दर्शन और शान्ति द्वारा, समभाव द्वारा; विषम विकल्प द्वारा नहीं। वर्तमान भी वह राग पुण्य-पाप से रहित अपनी दृष्टि, ज्ञान और शान्ति द्वारा आत्मा को पाता है, भविष्य में भी उस समभाव द्वारा केवलज्ञान की पूर्णता को पाता है।

यह वीतरागमार्ग। वीतरागभाव से खड़ा होता है आत्मा, वीतरागभाव से प्राप्त करता है केवलज्ञान, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? रागादि शुभ से आत्मा प्राप्त नहीं होता और शुभराग से नहीं प्राप्त होता केवलज्ञान, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें? बहुत कहते हैं बड़ी बात आत्मा की... व्यवहार हो, उसे निश्चय का उद्यम करने की आवश्यकता नहीं। और ऐसा कितने ही लिखते हैं। व्यवहार प्राप्त हो गया, उसे फिर निश्चय का पृथक् उद्यम करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु व्यवहार अकेला निश्चय बिना होता नहीं। ऐसा लिखते हैं कितने ही। समझ में आया?

पूर्ण चैतन्य वस्तु है, परम आनन्द का कन्द वस्तु दल, चैतन्यदल, शान्तदल, आनन्ददल, अकेला दल। एक समयमात्र का उसमें विकार है। इसके अतिरिक्त पूरा वीतरागी कन्द पिण्ड प्रभु है। ऐसी आत्मा की दृष्टि में, अन्तर ज्ञान में समभाव करके और आत्मा को प्राप्त करते हैं और उस समभाव द्वारा ही केवलज्ञान प्राप्त होता है। कहो, समझ में आया इसमें? सुनने से और सुनने के लक्ष्य के विकल्प से आत्मा प्राप्त नहीं होता और केवलज्ञान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

कहते हैं कि भगवान आत्मा पर का विकल्प और लक्ष्य छोड़कर स्व के लक्ष्य की श्रद्धा, ज्ञान और समभाव द्वारा अपने को प्राप्त करता है। उसी भाव से उसकी परिपूर्णता की प्राप्ति उसे होती है। कहो, इसमें दूसरा कोई अपवास है ही नहीं। आहाहा! यह व्यवहारवाले को बहुत दिक्कत आवे, हों! वह कहे व्यवहार अनावश्यक जैसा होता है। बेचारे बहुत लिखते हैं, हों! पहले लिखा है... तुम्हारे कहाँ समय नहीं न वाँचने का! समझ में आया? लिखा है कैलाशचन्दजी ने कि एक तो उनके उपदेश में वह हीन उपमा दे दी पुण्य को। भाई! हमारे यहाँ कहीं कुछ गुप्त नहीं। इसमें उतरता है न, (ऐसा) प्रेमचन्दभाई कहे। बहुत हीन उपमा दी है पुण्य को और दूसरे व्यवहार के

उपदेश की अनावश्यकता हो, ऐसी बात आती है और मानो कि व्यवहार बिना अकेले निश्चय से निर्जरा होती हो, ऐसी बात आती है। बात बराबर उनकी ... हों!

विकल्प व्यवहार बीच में आवे, यह बात तो (संवत्) २०१३ के वर्ष में बहुत विस्तार से हुई इन्दौर में। तब सेठ ने कहा था। राजकुमारसिंह। व्यवहार बीच में आता है, उसकी बात महाराज (कहाँ नहीं करते) ? ऐसा करके उन्होंने भी कहा था। वे सब भी घड़ीक क्षणभंगुर में... आत्मा अन्तर में निश्चय के आश्रय में पड़ा है, जहाँ उसे स्थिरता न हो तो व्यवहार होता है, परन्तु वह करना है और करनेयोग्य है और उससे लाभ, यह वस्तु में कहाँ है ? समझ में आया ? वह तो आ जाता है। आहाहा! चैतन्य महासागर भगवान ज्ञान और आनन्द से भरपूर प्रभु जिसमें विकल्प की गन्ध का अंश नहीं, संसार का अंश जिसमें नहीं। उदयभाव, वह संसार है, वह तो राग है। ऐसे स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और एकाग्रता एक ही आत्मा की प्राप्ति का और मुक्ति की प्राप्ति का उपाय है। बीच में व्यवहार आवे। यह तो बहुत बार तो यह भी नहीं कहा जाता ? कि भाई! यह होता है... यह होता है... यह होता है, ऐसा नहीं। आवश्यक है, करनेयोग्य है। परन्तु यह करते हैं देखो न यह कितना ! यह ३० वर्ष में तो करोड़ों रुपये खर्च किये होंगे लोगों ने बेचारों ने। मन्दिर, पुस्तकें, कल्याणक, फलाने सब कितना नहीं ! मोहनभाई ! मोहनभाई ने वहाँ गाँव में किया नहीं ? मन्दिर बनाया, पंचकल्याणक किया था। पंचककल्याणक नहीं था वहाँ। वेदी प्रतिष्ठा। पंचकल्याणक था। हाँ, वांकानेर, मोरबी और पोरबन्दर। तीनों में, सच्ची बात है। २०१० के वर्ष। समझ में आया ? शुभभाव होता है या नहीं ? नहीं था वह शुभभाव बिना हुआ है ?

मुमुक्षु : आप कहते हो शुभभाव बिना ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शुभभाव बिना हुआ, परन्तु यहाँ भाव था या नहीं उसे ? यहाँ भाव था या नहीं उसका शुभभाव ? वह शुभभाव नहीं था और हुआ है भाव ? शुभभाव नहीं था और भाव हुआ है ? बाहर क्रिया की कहाँ बात है ? समझ में आया ? अरे ! परन्तु लोगों को कठिन पड़ता है। ऐई ! फूलचन्दभाई ! चिल्लाहट मचा जाते हैं। एक ओर कहे, इनकी शैली देखकर तो अपने को ऐसा हो जाये। फिर एक ओर ऐसा हो जाता है।

यहाँ तो आचार्य महाराज कहते हैं, भाई! तेरा भगवान ऐसा है अन्दर अकेला वीतरागी पिण्ड चिदानन्दस्वरूप है। उसकी सम्हाल लेने से, उसकी सम्हाल में दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति होने से उससे ही आत्मा की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त तीन काल में किसी प्रकार से आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। यह विकल्प जितना व्यवहार, उससे आत्मा की प्राप्ति नहीं। वह तो बन्ध का कारण है। अबन्धस्वभावी बन्ध के कारण से प्राप्त होगा? देखो न यहाँ तो दोनों लिये।

१७४) णाणि मुएप्पिणु भाउ समु कित्थु वि जाइ ण राउ।

जेण लहेसइ णाणमउ तेण जि अप्प-सहाउ ॥४७॥

भगवान आत्मा का अभी श्रद्धा में भी जोर आवे नहीं, वह स्वभाव में ढले कैसे? फिर जोर दे राग में। पुण्य का राग आवे, उससे लाभ होगा, उससे लाभ होगा। जोर दे वहाँ, वीर्य तो वहाँ पड़ा है श्रद्धा का। समझ में आया? 'यह नहीं' ऐसा जहाँ वीर्य काम न करे, तब तक स्वभावदृष्टि करेगा कैसे? समझ में आया? तब क्या आवे? ऐसे चैतन्यस्वभाव, ओहोहो! अकेला ज्ञानस्वरूपी प्रभु आत्मा विराजता है, सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा, सर्वदर्शी आत्मा, पूर्णानन्दी आत्मा, पूर्ण वीर्य का पिण्ड आत्मा। उसमें पुण्य-पाप, दया-दान, वह जिसके भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव उसके स्वरूप में है ही कहाँ? आहाहा! ऐसे स्वरूप की अन्तर दृष्टि, ज्ञान और समभाव से ही उसकी प्राप्ति होती है। क्योंकि 'णाणमउ लहे' ऐसा कहा न? 'जेण लहेसइ णाणमउ' ज्ञानमय प्राप्त होना है तो समभाव से प्राप्त हो या विकल्प से प्राप्त हो? समझ में आया? समझ में आया? उससे आत्मस्वभाव की प्राप्ति होती है। उपलब्ध कहते हैं न, मोक्ष अर्थात् आत्मा उपलब्ध।

भगवान आत्मा, अरे! उसका बहुमान ही न करे और राग का बहुमान करे, तब तक उसे आत्मा की प्राप्ति कैसे होगी? यह तो भाई! जिसे जन्म-मरण टालना हो, उसकी बात है। मजामस्ती करके जिसे ऐसे भी प्रसन्न होना हो और ऐसे भी प्रसन्न होना हो, ऐसी यह चीज़ नहीं है। समझ में आया? या दुनिया को प्रसन्न करना है और या दुनिया से प्रसन्न होना है। यह मार्ग दूसरा है, भाई! आहाहा! पूरा अन्धेर पछेड़ा बाहर से

करके अन्दर में जाये, तब वह आत्मा प्राप्त हो, ऐसा है। क्योंकि वह तो ज्ञानमय है। वह तो अकेला चैतन्य का पिण्ड है। बाहर का कोई भी एक विकल्पमात्र, गुण-गुणी के भेद का विकल्पमात्र भी जिसके ऊपर यदि जोर दिया, वह प्राप्त नहीं होगा। समझ में आया? तू तुझे नहीं मिल सकेगा, ऐसा कहते हैं।

केवलज्ञान, आहाहा! केवलज्ञान व्यवस्थित ज्ञान हो गया। केवलज्ञान में सब व्यवस्थित ज्ञात हो गया। अन्त में स्वभाव कहा न, समभाव की प्राप्ति होगी स्वभाव। स्वभाव अकेला केवलज्ञान है। यहाँ ज्ञानमय है, इसलिए उसमें एकाग्र होने से समभाव से केवलज्ञान व्यवस्थित पूर्ण हो गया। सभी पर्यायें व्यवस्थित होती हैं, वे ज्ञान में हैं। अब नहीं बदलना, नहीं करना, नहीं राग बदलना कि यह करना या यह करना कुछ है नहीं। ऐसा ही स्वरूप चैतन्य द्रव्य का है।

दो शब्द प्रयोग किये हैं न, 'जेण लहेसइ णाणमउ तेण जि अप्प-सहाउ' 'तेन एव आत्मस्वभावम्' ऐसा है न? भगवान! वह स्वभाव ही ऐसा है, भाई! परन्तु इसे अभी कुछ करना है, बदलना है, यह करना है और यह करना है। चैतन्यसूर्य प्रभु अकेला चैतन्य का बिम्ब भगवान आत्मा, वह तो उसकी जाति के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के समभावी कण से वह प्राप्त होता है। रागादि का विकल्प तो विषम कण है। हो, बीच में तो होता है, परन्तु तू प्रसन्न किसका होता है? ऐसा कहते हैं। वे कहे कि यह कहो तो प्रसन्न हो। लो, ठीक भाई! तो झगड़ा निकल जाये (मिट जाये), ऐसा लिखा न? इतना यदि कहे तो झगड़ा निकल जाये। और हीन उपमा जरा बदल डाले तो झगड़ा मिट जाये। ऐई! पण्डितजी! ... यह सब ऐसा माँगते हैं बेचारे। बहुत खलबलाहट हुई है। आहाहा! क्या कहा?

आहाहा! अरे! प्रभु! भाई! यह तो मार्ग की बात है, बापू! यह कहीं कोई यह कोई किसी बनिया की पद्धति नहीं कि भाई! पाँच हजार माँगते हैं, पाँच हजार रुपये। वह बनिया माँगता हो न किसी किसान से? तो बनिया कहे कि पाँच हजार में से एक पाई कम लेना नहीं। बनिया समझता अवश्य है कि यह दो हजार से (अधिक) यह दे, ऐसा नहीं है। क्योंकि इसके पास कुछ नहीं है। वह जाने कि परन्तु यह दो हजार के

अतिरिक्त छोड़े ऐसा नहीं है। वह कहे परन्तु एक पाँच सौ के ऊपर पाई भी मेरे पास नहीं। यह गढ़े बेचूँ और भैंसों बेचूँ तो मुश्किल से पाँच सौ हो, ऐसा है। वह पाँच सौ से माँडे, वह पाँच हजार से माँडे, फिर वह कहे, छह सौ लो, छह सौ लो। वह कहे कि भाई, चार हजार दो, चार हजार दो। ऐसे करते हुए दो हजार में इकट्ठे हो, ऐसा होगा यह ? ऐई ! मोहनभाई ! आहाहा ! भाई ! समाधान करो, यह झगड़े बहुत उठते हैं। अरे, भगवान ! प्रभु ! तेरा स्वरूप बापू ! समाधान स्वरूप है, भाई ! समाधान अर्थात् वीतरागी तेरा स्वरूप है, बापू ! आहाहा ! अरे ! किसके साथ विषमता और किसके साथ समता ? प्रभु ! तू तो चैतन्य है न, भगवान ! तेरे स्वरूप में तो राग की गन्ध भी, आस्रवतत्त्व की गन्ध भी नहीं न ! जिसमें गन्ध नहीं, उस द्वारा आत्मा की प्राप्ति होती होगी ?

यहाँ तो ऐसा शब्द वह समभाव करके वापस रखा है। बापू ! वह तो ज्ञानमय है न, तो ज्ञानमय प्राप्त होगा। ज्ञानमय की श्रद्धा-ज्ञान यह कहा न ? ज्ञान का समकित, ज्ञान का दर्शन, ज्ञान का चारित्र, ऐसा कहा है न, भाई ! यह सब शैली, यह तो बात दूसरे प्रकार से। समयसार अर्थात् कि अभी चौदह ब्रह्माण्ड, पूरे चौदह पूर्व और बारह अंग का पूरा एक बड़ा सार, बड़ा समुद्र है। समयसार कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ अमर कृति आयी। आहाहा ! वह तो साक्षात् भगवान के केवलज्ञान के पेट (अभिप्राय) खोलकर समयसार में रखे हैं। एक समयसार से बस है, हो गया, लो ! ऐसी चीज़ है परन्तु अब भाई ! शान्त होकर देखो धीरे-धीरे, भाई ! तेरे स्वरूप में तो प्रभु ! यह राग उठता है, वह कहीं तेरी चीज़ में नहीं। (राग) उत्पन्न करके उससे और आत्मा की उत्पत्ति करना और आत्मा की शान्ति मिले। उसकी अपेक्षा 'है', उसमें से उत्पन्न कर न ! ज्ञानमय भगवान, आनन्दमय परमात्मा समभावी प्रभु आत्मा है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, वह समभावी और ज्ञान के ... सब हैं वे। उससे आत्मा प्राप्त होगा और उससे पूर्ण होगा, भाई ! दो बातें ले ली हैं। उसने निर्मान डाला परन्तु वह वास्तव में ज्ञानस्वरूप पूर्ण।

भावार्थ :- जो अनन्त सिद्ध हुए। देखो ! अब कहेंगे। अभी तक जितने सिद्ध भगवान परमात्मा हुए, वे समभाव के प्रसाद से हुए हैं, ... अर्थात् कि आत्मा की दृष्टि,

ज्ञान और शान्ति ऐसा समभाव, पुण्य-पाप के विकल्परहित समभाव से अनन्त सिद्ध हुए हैं। किसी पुण्यपरिणाम के विकल्प से कोई सिद्ध हुए, यह तीन काल में है नहीं। आहाहा! यह व्यवहार बीच में आवे न दया, दान, व्रत, भक्ति, उससे कुछ होगा। उससे होगा बन्धन, सुन न अब! आहाहा! गजब परन्तु चोट लगती है लोगों को, हों! प्रभु! परन्तु तेरी पद्धति ही यह है न, भाई! तेरे स्वभाव से विमुखता से तेरी सन्मुखता होगी? तेरे स्वभाव से... यहाँ आत्मस्वभाव लिया है न? तेरे स्वभाव से विमुखता से तेरी सन्मुखता होगी? पुण्य-पाप के विकल्प तो प्रभु, आत्मा के स्वभाव से विमुख हैं। आहाहा! कहते हैं, जितने अनन्त सिद्ध हुए, वे समभाव (से हुए हैं)। समभाव शब्द में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य तीनों वीतरागी पर्याय ली है। समझ में आया?

और जो होवेंगे,... अनन्त परमात्मा सिद्ध अभी भविष्य में अनन्त होंगे। **इसी भाव से होंगे।** एक ही सिद्धान्त कहा। समझ में आया? 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ' ऐसा कहा। शुभराग और अशुभराग तो स्वभाव से विषमभाव है। समझ में आया? अरे! यह बात अभी इसे रुचे नहीं और यह कुछ हो तो मुझे लाभ होगा, ऐसा जहाँ जाता है, तो विषमभाव के प्रेम की रुचि से उसे समभाव के प्रेम की रुचि होगी कैसे? आहाहा! गजब बात परन्तु! जगत को मानो शुभराग की क्रिया में से मानो कुछ आत्मा का उद्धार हो जाये न। परन्तु आत्मा में राग है नहीं और किस प्रकार होगा? ऐ... नेमिदासभाई! अब क्या यह सब तुम सब इकट्ठे होकर कुछ करो व्यवस्थित। यह ठीक कहा, हों! तुम्हारी ओर से यह कहते हैं। बड़े पण्डित हैं। बहुत ऐसा कहते हैं कि भाई! अब इतना यदि माने तो फिर अपने सब ऐसा कर डालेंगे ऐसा। अरे, भगवान! प्रभु! सुन तो सही भाई! अरे, परमात्मा! तेरी नात की जाति में इस राग की गन्ध नहीं, भाई! आहाहा!

इसे कुछ करना है न, कर्तृत्वबुद्धि रखनी है, इसीलिए वह व्यवस्थित पर्याय मानते नहीं। कर्तृत्वबुद्धि है, इसलिए उस राग से कुछ लाभ होगा, इसलिए इसे कर्तृत्व से वहाँ अकर्ता का लाभ होगा, बात अन्दर यह पड़ी है। आहाहा! न्यालभाई! भाई! यह तुम बड़े वृद्ध हो, बुजुर्ग। बहुत बेचारे ऐसा कहते हैं, यदि इतना कानजीस्वामी रखे न, अब क्या रखना? भाई! बापू! सुन न भाई! एक व्यवहार करने का कहे और... समझ

में आया ? इससे निर्जरा होती है, ऐसा कहे और यह पुण्य को जरा हीन उपमा देते हैं, वह थोड़ी... भाई ! उपमा तुमको ठीक लगे, ऐसा रख । शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि कर्म के फल, वे जहर हैं, ले । आठों ही कर्म के फल, वीतराग केवली, कुन्दकुन्दाचार्य महाराज (कहते हैं कि) आठों कर्म पुण्य और पाप के रजकण सब जहर के वृक्ष हैं, ऐसा समयसार (में) कहते हैं । अब तुझे क्या करना है, कह ? इस पुण्य भाव को भी कुन्दकुन्दाचार्य तो जहर कहते हैं । चिल्लाहट मचाये । हाय... हाय.. ! अर र र ! तो यह सब भगवान की भक्ति, पूजा और यात्रा ... परन्तु सुन न, वह भाव होता है, परन्तु भाव है पुण्य । उसकी हद कितनी ? धर्म-बर्म है और उससे धर्म होता है (ऐसा), तीन काल-तीन लोक में नहीं है । यह बात न बैठे, तब तक इसका रास्ता इसे निकले, ऐसा नहीं है । आहाहा ! ऐ सकुनचन्दजी ! क्या करना ? यह सब तुम पुराने क्रियाकाण्डी हो तो करूँ ठीक-सा इसमें । यह तो पुराने की अपेक्षा बात है न, अब बदल गये सब । आहाहा !

वाह रे... प्रभु वाह ! प्रभु तू कौन है ? बापू ! भाई ! कहते हैं, जितने सिद्ध अनन्त हुए... यह परमात्मप्रकाश वर्णन करते हैं योगीन्द्रदेव । तो योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं दिगम्बर मुनि सन्त थे, जंगलवासी, वनवासी (वे) कहते हैं कि प्रभु ! तू परमात्मा है न बापू ! नौ तत्त्व में तो तेरा तत्त्व ज्ञायकतत्त्व है । वह पुण्य-पाप के तत्त्वरहित है और जड़ के तत्त्व और शरीर, क्रियारहित है । ऐसे तत्त्व की प्राप्ति कैसे हो ? कि उसकी ओर का समभाव प्रगट करके दृष्टि, ज्ञान, शान्त उससे प्राप्त हो और उससे पूर्ण की केवलज्ञान मोक्ष की प्राप्ति होती है । आहाहा !

ऐसा कहते हैं कि ऐसा भगवान ज्ञानानन्दस्वभाव की संवर, निर्जरा की प्राप्ति भी समभाव से होती है, ऐसा कहते हैं और उसका केवलज्ञान भी समभाव से होता है । दो तत्त्व हो गये, जाओ । आत्मा से संवर, निर्जरा और आत्मा से मोक्ष । आस्रव और बन्ध का अभाव करके इस प्रकार से तत्त्व प्राप्त होता है । आहाहा ! भाई ! तुझे रचना पड़ेगा प्रभु, हों ! परन्तु क्या हो ? चोर कोतवाल को दण्डे ऐसा है अभी । परन्तु वह कुछ बदले, ऐसा नहीं दूसरा कुछ इसमें । इसमें कुछ तीन काल में कुछ बदले, ऐसा नहीं । आहाहा !

जितने सिद्ध हुए और जितने सिद्ध होंगे, वे आत्मा के शुद्धस्वभाव की अन्तर

दृष्टि, ज्ञान और शान्ति अर्थात् समभाव अर्थात् वीतरागी पर्याय द्वारा ही सिद्ध होंगे, ऐसा कहते हैं। बीच में व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आवे सही, परन्तु वह तो बन्ध का कारण, वह अबन्ध परिणाम को सहायता करे, ऐसा है नहीं। आहाहा! परन्तु उसके अपने स्वभाव का माहात्म्य नहीं आता इसे। इसलिए वह माहात्म्य वहाँ से हटता नहीं। सुना नहीं, इसका अर्थ ही वह अन्दर बैठता नहीं। ऐसा एक भगवान पूर्ण ज्ञान की शिला, आनन्द की शिला, वीतरागस्वभाव का कन्द रसकन्द आत्मा है। ऐसा वीतरागी चैतन्य प्रभु वीतरागी दृष्टि, ज्ञान और शान्ति की प्रगट पर्याय द्वारा उसे प्राप्ति हो। ऐसी पर्याय द्वारा केवलज्ञान होता है। एक बात तीन काल-तीन लोक में। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' समझ में आया?

इसलिए ज्ञानी समभाव के सिवाय अन्य भावों में राग नहीं करते। देखो! आहाहा! यह काल आया इसे बापू, भाई! आहाहा! देह चला जाये, लो! इतनी-इतनी सम्हाल की हो न। इतनी-इतनी सम्हाल की हो पूरे शरीर की। सम्हाल में तो विकल्प किया हो धूल, दूसरा वहाँ क्या? खिलाया और पिलाया, नहलाया और पिलाया और सुलाया, उसे बराबर नींद लेने दो, इसे छह घण्टे की। परन्तु एक समय... कर अब वहाँ। बापू! यह तो जड़ है, यह मिट्टी है, तुझसे रहे नहीं और तुझसे जाये नहीं। तुझसे रहे नहीं, तुझसे रक्षित नहीं और तुझसे नाश हो नहीं। आहाहा! तदुपरान्त अन्दर राग हो, यह बापू! तेरे स्वभाव का रक्षण उसमें नहीं और वह तेरे स्वभाव से रहे, ऐसी चीज़ नहीं, ले। कहा न, नहीं? नहीं कहा? कर्ताकर्म में नहीं कहा? (आस्रव) क्षणिक, वह अशरण कहा न? विकल्प वह अशरण है न, भाई! ऐसे भगवान पूरा है, उसमें विकल्प उठे, वह अशरण है। क्योंकि जितना लक्ष्य कर्म के ऊपर जायेगा, उतना विकल्प उठा। कर्म हटा और वह भी हट गया। अब तुझे हटे उसमें शरण कहाँ लेने जायेगा तू?

यह मरने के समय में, लो! आहाहा! देखो न, शास्त्री का दृष्टान्त वैराग्य का बहुत कारण है। ओहोहो! हमने तो वहाँ सुना। हमने शास्त्री को इस नजर से देखा है न मुम्बई में। अभिनन्दन ग्रन्थ देने, सामने खड़े देखो न! सामने खड़े रहे, देखो! ऐसे अभिनन्दन ग्रन्थ देते हैं। वैशाख शुक्ल तीन, २०२० के वर्ष, आजाद मैदान, धोबीतलाब

में आये थे न! आहाहा! गये। रखो। बापू! शरीर कहाँ तेरा, राग कहाँ तेरा, देश कहाँ तेरा, देह कहाँ तेरी, यह पुण्य-पाप का विकल्प, वह कहाँ तेरा? आहाहा! अधूरी-अपूर्ण पर्याय, वह तो व्यवहारनय का आत्मा है। निश्चय आत्मा वह कहाँ है? वह तेरा देश, उसकी सम्हाल कर, ऐसा कहते हैं। किसी के देश की सम्हाल करने जाये, मुफ्त का मर जायेगा। किसी का कुछ कर नहीं सकेगा। हाय... हाय..! गजब बात भाई इसमें। मोहनभाई! क्या करना इसमें? कर सकता है क्या दूसरा वह? विकल्प उठावे राग और द्वेष, पुण्य और पाप के राग करे, दूसरा करे क्या धूल? रजकण बदल सकता है? वह तो मिट्टी जड़ है।

वास्तव में तो भिन्न है, उसका करना भिन्न चीज़ में नहीं हो सकता। कहते हैं कि रागादि भिन्न तत्त्व है, भाई! वह तो आस्रवतत्त्व है। उसे क्या करना तुझे? और छोड़ना क्या और करना क्या? आहाहा! आत्मा में राग के त्याग का कर्तापना भी नाममात्र है। त्याग का कर्तापना। राग के करने भाव का अब इसे क्या कहना? यह कहते हैं। विशेष अवकाश दो, कहते हैं। व्यवहार का अवकाश दो, कहते हैं। ऐ... न्यालभाई! यह बुजुर्ग सब वृद्ध होकर अवकाश देना। भगवान! यह विकल्प हो, परन्तु यह विकल्प करना, वह तो भिन्न चीज़ है। उसका त्याग करना, वह भी भगवान आत्मा में त्याग के कर्तापने का नाममात्र है। परमार्थ से आत्मा राग का कर्ता, यह वस्तु है ही नहीं। राग के त्याग का कर्ता का नाम आत्मा में नहीं है। आहाहा! देखो तो समभाव इसकी चीज़!

भगवान आत्मा जिसे कहते हैं, वह भगवानस्वरूप आत्मा, वह राग को करे, ऐसा तो उसके स्वरूप में नहीं, परन्तु राग के त्याग का कर्तापन भी जिसके स्वरूप में नहीं। यह तो समयसार गाथा बोलती है। परन्तु कैसे हो? जिसमें नहीं, उसे छोड़ूँ — ऐसा कैसे हो? जिसमें नहीं, उसे करूँ और जिसमें नहीं, उसे छोड़ूँ, (—यह कैसे हो)? आहाहा! समझ में आया? बापू! बातें तो ऐसी है। तू आत्मा मानता है या नहीं? प्रभु! तू आत्मा है या नहीं? तो आत्मा है अर्थात् क्या? वह तो अकषायस्वभाव का पिण्ड, वह आत्मा। ज्ञानमय कहो या अकषायस्वभावमय कहो। वह अकषायस्वभाव कहो या आनन्दमय कहो। अब उसकी दुःख की पर्याय राग की उत्पन्न करना, उसका

स्वभाव है ? और वह दुःख की पर्याय छोड़ूँ, ऐसा उसके ऊपर लक्ष्य करे, ऐसा उसका स्वभाव है ? एल.एल.बी. वकील ललकारते हैं आत्मा को यहाँ। दो 'एल' है न ? एल, एल, आहाहा !

भगवान ! यह तेरे स्वरूप में विकल्प की गन्ध नहीं, प्रभु ! उस विकल्प का करना तो नहीं, परन्तु विकल्प का छोड़ना, वह तेरी चीज़ में नहीं। भगवान ! अब क्या कहना इसे ? आहाहा !

इस समभाव के बिना अन्य उपाय से शुद्धात्मा का लाभ नहीं है। लो ! आहाहा ! एक समभाव ही भवसागर से पार होने का उपाय है। समझ में आया ? इसे भरोसा न आवे तो भरोसा बिना यह तिरगा कैसे ? आहाहा ! समझ में आया ? देह चली जाये, देह छूट जाये, स्त्री-पुत्र छूट जाये, पैसा-बैसा धूल, वाणी और यह सब... आहाहा ! बापू ! इसमें कहाँ था, वह यह यहाँ रहे इसके साथ ? यहाँ विकार के परिणाम भी कहाँ इसके थे कि उस प्रकार के ही रहा करें ? उस जाति का रहे तो ज्ञान, आनन्द, शान्ति और स्वभाव तो उस जाति की है तो वह रहा करे।

कहते हैं, एक समभाव ही भवसागर से पार होने का उपाय है। समभाव उसे कहते हैं,... देखो ! अब जो पंचेन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा से रहित... अर्थात् पर की ओर के शुभाशुभ विकल्प और विषय लक्ष्य छोड़कर। वीतराग परमानन्दसहित निर्विकल्प निजभाव हो। (उसे) समभाव कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? वीतराग परमानन्दसहित, पर के लक्ष्यरहित और वीतराग परमानन्दसहित। निर्विकल्प शान्ति, दृष्टि, ज्ञान, शान्ति ऐसा जो निज भाव, उसे समभाव कहते हैं। वह समभाव पूर्ण शास्त्र का सार है। समझ में आया ?

आगे कहते हैं, कि ज्ञानीजन समभाव का स्वरूप जानता हुआ न किसी से पढ़ता है, न किसी को पढ़ाता है,... आहाहा ! न किसी को प्रेरणा करता है, न किसी की स्तुति करता है, न किसी की निन्दा करता है—आहाहा ! भाई ! तेरा स्वभाव तो ज्ञाता-दृष्टा प्रभु है न ! भगवान ! तू ज्ञाता-दृष्टा में स्थिर होने से, दूसरे से पढ़ना, यह विकल्प कहाँ है उसमें ? आहाहा ! दूसरे को पढ़ाऊँ, ऐसा विकल्प स्वरूप में कहाँ है ?

समाधिशतक तो कहता है कि ऐसा विकल्प उठता है न, वह उन्माद है। आहाहा! गजब बात सन्तों की—दिगम्बर मुनियों की बात! पूज्यपादस्वामी दिगम्बर मुनि सन्त जंगलवासी कहते हैं कि एक विकल्प उठे पढ़ना, पढ़ाने का, वह उन्माद है, कहते हैं उन्माद। भगवान! तेरे स्वरूप में नहीं और ऐसा उठाव कहाँ से किया तूने? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इनकार करते हैं। कुछ नहीं। वह विकल्प-फिकल्प का निषेध है, स्वभाव में कुछ नहीं, कहते हैं। यह बात करेंगे, लो!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक - १९-०१-१९६६

गाथा - ४८, प्रवचन - १०२

गाथा - ४८

परमात्मप्रकाश दूसरे भाग की ४८वीं गाथा। देखो!

१७५) भणइ भणावह णवि थुणइ णिदह णाणि ण कोइ।

सिद्धिहिं कारणु भाउ समु जाणंतउ पर सोइ ॥४८॥

यह समभाव की व्याख्या करते हैं और समभाव को जाननेवाले की व्याख्या है। समझ में आया? आत्मा का भान हुआ है कि मैं शुद्ध चैतन्य हूँ। सम्यक् प्रतीति में, सम्यग्ज्ञान में स्वसंवेदन ज्ञान हुआ है, प्रतीति आत्मा शुद्ध है, ऐसी हुई है। तदुपरान्त यहाँ विकल्पों का अभाव विषमभाव का (अभाव) होकर और समभाव को जानता है और वेदता है, उसकी स्थिति का यह वर्णन है। समझ में आया?

तब उसमें तो ऐसा आया कि निर्विकल्प ध्यानी पुरुष न किसी का शिष्य होकर पढ़ता है, न गुरु होकर किसी को पढ़ाता है,... समझ में आया? निचली दशा लें तो वह विकल्प होता है। दूसरे को पढ़ाने का ऐसा विकल्प अथवा पर से पढ़ने का विकल्प, उस भूमिका (में) अभी इतना राग है, इतनी विषमता है। समझ में आया? तथापि ज्ञानी को सम्यग्दर्शन में, ज्ञान में वह राग विषमभाव उत्पन्न होने पर भी उस विषमभाव का जाननेवाला है। यहाँ समभाव का जाननेवाला कहेंगे, भाई! ध्यान रखना। तीनों बोल जरा उतारते हैं। रात का, अभी का और केवली का। रात का। रात का क्या? यहाँ शब्द पड़ा है न? 'समु जाणंतउ पर सोइ' केवलज्ञानी पूर्ण जानते हैं। सम्यग्दृष्टि अभी समभाव विशेष यह कहलाता है इतना भले न हो, परन्तु सम्यग्दर्शन में, जैसे सर्वज्ञ परमात्मा एक समय में पूर्ण वीतराग समभाव से परिणमकर ज्ञान में लोकालोक एक समय में जानते हैं। वह लोकालोक केवलज्ञान में निमित्त कहलाता है। समझ में आया?

तथापि उस लोकालोक के कर्ता केवलज्ञानी नहीं और वह लोकालोक है, इसलिए केवलज्ञान है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? इसी प्रकार आत्मा शुद्ध चैतन्य है, ऐसा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, भान हुआ, वह भी रागादि जो है, केवलज्ञानी को जैसे लोकालोक निमित्त है, उसी प्रकार ज्ञानी को रागादि व्यवहार विकल्प होता है, देहादि की क्रिया आदि संग में उत्पन्न होती है, उसका ज्ञानी जाननेवाला है। जैसे सर्वज्ञ लोकालोक के जाननेवाले हैं, तथापि लोकालोक के कर्ता नहीं; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि व्यवहार विकल्प उठता है, उसका वह जाननेवाला है। वह राग का करनेवाला नहीं, तथा वह राग है तो यहाँ ज्ञानस्वरूप की दृष्टि और स्थिरता है, ऐसा नहीं है।

जैसे यहाँ लोकालोक है तो केवलज्ञान है, ऐसा नहीं है। उसी प्रकार यहाँ रागादि व्यवहार विकल्प है, इसलिए यहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन और ज्ञान है, ऐसा नहीं है और जैसे लोकालोक पहले और केवलज्ञान बाद में, ऐसा नहीं है; उसी प्रकार नीचे व्यवहार के विकल्प पहले और निश्चय बाद में, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? जो ज्ञानस्वरूप आत्मा भान में, ज्ञान में आया, उस समय के जो रागादि हैं, उनका वह जाननेवाला है। अन्तर कितना ? कि केवलज्ञान पूरा एकसाथ ऐसे सब जाने, उसमें वह निमित्त कहलाता है। निचली दशा में ज्ञानस्वरूप की दृष्टि में रागादि भिन्न-भिन्न प्रकार के हों, उनका कर्ता नहीं, परन्तु उन-उन भिन्न-भिन्न प्रकार के राग को स्व के ज्ञानसहित भिन्न-भिन्न ज्ञान अवस्था में भिन्न-भिन्न अवस्था से उसे जानता है। उस ज्ञान की अवस्था में उसे विशेष-विशेष क्रम पड़ता है। जानने में अन्तर नहीं। समझ में आया ?

ज्ञानस्वरूपी आत्मा वस्तु का भान होने पर सर्वज्ञ समान ही उसकी सब बात है एक न्याय से। इसलिए वह व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, वह वस्तु हो सकती ही नहीं अन्दर और व्यवहार है तो निश्चय है, ऐसा भी नहीं हो सकता, केवली की भाँति। समझ में आया ? सर्वज्ञ प्रभु है तो लोकालोक है, ऐसा नहीं। लोकालोक है, इसलिए सर्वज्ञ है, ऐसा नहीं। तथा सर्वज्ञ वे लोकालोक के कर्ता-रचनेवाले नहीं। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि आत्मा का ज्ञान है, वह राग का रचनेवाला नहीं और राग है तो वहाँ ज्ञान है, ऐसा नहीं। इसलिए एक न्याय से राग से निरपेक्ष ज्ञान वर्तता है। केवलज्ञानी को

लोकालोक की अपेक्षा बिना का केवलज्ञान वर्तता है। समझ में आया ? इसी प्रकार नीचे सम्यग्ज्ञान में व्यवहार की अपेक्षा बिना का ज्ञान वर्तता है। व्यवहार है तो निश्चय ज्ञान है, ऐसा नहीं। और व्यवहार पहले और ज्ञान बाद में, ऐसा नहीं है। जैसे सर्वज्ञ को है, वैसा ही इसमें है। अन्तर कितना ? कि विषमभाव यहाँ खड़ा होता है, उसका वह जाननेवाला है। वहाँ विषमभाव बिल्कुल नहीं, इसलिए वीतरागभाव से ज्ञान को अपने को जानता है। समझ में आया ? इसमें सब निश्चित हो गया, पाँच बोल के जो विवाद उठते हैं वे। निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार और क्रमबद्ध।

शुद्धस्वरूप जैसे सर्वज्ञ व्यवस्थित जैसा है, वैसा जानते हैं, तथापि व्यवस्थित है; इसलिए यहाँ ज्ञान है—ऐसा नहीं और और ज्ञान ऐसा व्यवस्थित जानता है, इसलिए वहाँ व्यवस्थित है—ऐसा नहीं। सबके कारण से सब हैं। इसी प्रकार यहाँ ज्ञान व्यवस्थित रीति से देह की अवस्था जहाँ हो जिस प्रकार से और राग जिस प्रकार का हो, उसे यहाँ ज्ञान जाने अवश्य, परन्तु वह ज्ञान भी व्यवस्थित है। जिस प्रकार के रागादि हैं, उन्हें ही जानती हुई और स्व को जानती हुई ज्ञान की पर्याय परिणमती जाती है। इसलिए उसे, केवली को जैसे लोकालोक का कुछ रचना नहीं, बदलना नहीं, उसी प्रकार ज्ञान के स्वभाव में राग का या क्रिया का बदलना नहीं, रचना नहीं, भोगना नहीं, निश्चय से तो। समझ में आया इसमें ? मात्र अन्तर यह समभाव और विषमभाव में इतना अन्तर है, वह यहाँ जरा कहते हैं। समझ में आया या नहीं ? भाई ! रात्रि (रात्रिचर्चा) में बात हुई थी। अब इस प्रकार से कहीं आवे ? सब शब्द तो उस समय तो.... कहो, समझ में आया इसमें ?

इसके अतिरिक्त किसी प्रकार से वस्तु सिद्ध होती ही नहीं। समझ में आया ? लाख वाद-विवाद और शास्त्र उठाओ, यही वस्तुस्वरूप है। भगवान् सर्वज्ञरूप से जैसे एक समय में सब जानते हैं वीतराग भावभूमिका में। सम्यग्दृष्टि को विषमभाव की भूमिका में, विषमभाव है, परन्तु उसके ज्ञान में विषमभाव का रचनेवाला नहीं, विषमभाव है तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान है, ऐसा नहीं। तथा विषम पहला है और निश्चय बाद में है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? तथा वह विषम और निमित्त दूसरी चीज़। वह निमित्त है तो

विषम है और विषम है तो वहाँ ज्ञान है, ऐसा नहीं। समझ में आया इसमें? कल रात्रि में निकला था, फिर तुम याद आये थे अन्दर। यहाँ आया वापस थोड़ा अभी। आवे ही न। आहाहा! अरे! वस्तु, वह भी वस्तु! मात्र अन्तर उसे यहाँ ज्ञेय में विषमता है, वीतराग को विषमता जरा भी नहीं। यह मुनियों को समभाव में जरा अबुद्धिपूर्वक विषमता है, उसे न गिनकर समभाव को जानते हैं, ऐसा कहा गया है। देखो! पाठ क्या है? 'समु जाणंतउ पर सोइ' है? ४८। समझ में आया?

चैतन्यस्वभाव ज्ञानस्वरूपी प्रभु जिस ज्ञान का ज्ञान होने पर राग का कर्ता सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है ही नहीं। जैसे सर्वज्ञ लोकालोक का कर्ता नहीं, उसी प्रकार यह ज्ञानी राग का कर्ता नहीं। जैसे सर्वज्ञ को लोकालोक निमित्त है, उसी प्रकार इस ज्ञान में निमित्त है। निमित्त है, इसका अर्थ कि वह इसका कर्ता है, ऐसा नहीं। उसी प्रकार ज्ञान इसका कर्ता है, ऐसा नहीं। लोकालोक केवलज्ञान का कर्ता है, ऐसा नहीं। ज्ञान लोकालोक का कर्ता है, ऐसा नहीं। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान में राग का कर्ता ज्ञान है, ऐसा नहीं। राग ज्ञान का कर्ता है, ऐसा नहीं। पहले राग और बाद में ज्ञान है, ऐसा नहीं। समझ में आया या नहीं इसमें?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : रचनेवाला नहीं। बात यह है न। रचना नहीं, करना है उसका ज्ञान। ऐसा ही उसका स्वभाव है। रचे किसे और पहले-बाद में किसे? वरना किसी प्रकार से वस्तु सिद्ध नहीं होगी। यह सब झगड़े हैं या नहीं? पहले व्यवहार, निश्चय (बाद में)। बापू! तुम निश्चय-व्यवहार किसे कहते हो? पहले लोकालोक और फिर सर्वज्ञ, ऐसा है?

भगवान आत्मा जहाँ अन्तर ज्ञानस्वरूप से चिदानन्द शुद्ध है, ऐसी अन्दर जहाँ दृष्टि, अनुभव हुआ, बस! उस काल में उसे रागादि वर्तते हैं, वह विषमभाव है तो उसे जाननेवाला है, करनेवाला नहीं, रचनेवाला नहीं, वास्तव में उसका भोगनेवाला भी नहीं। लो! जैसे सर्वज्ञ लोकालोक के कर्ता नहीं और लोकालोक के दुःख के या सुख के भोक्ता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अभाव है इसलिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभावभाव नहीं, वस्तु ऐसी है। अभावभाव और बाद में। ऐसा नहीं हो तो किस प्रकार से वस्तु की साबिती ज्ञान के न्याय में सिद्ध होती नहीं। समझ में आया ? सर्वज्ञ के साथ मिलान करना पड़ेगा इसे। दोनों एक ही जाति है। वह पूर्ण ज्ञान है, यहाँ अपूर्ण ज्ञान है। यहाँ विषमता थोड़ी है, वहाँ बिल्कुल विषमता नहीं। समझ में आया इसमें ? आहाहा ! अरे ! इसकी पद्धति ! 'रचना जिन उपदेश की सर्वोत्कृष्ट तीन काल' उनकी कथनी, उनकी पद्धति और उनका वस्तु का स्वरूप 'न भूतो न भविष्यति' ऐसी वीतराग की वाणी और वीतराग का भाव। समझ में आया ?

भाई ! आत्मा ज्ञानज्योतिस्वरूप है, वह ज्ञान को जाने और राग बाकी है, उसे जाने। यहाँ समभाव को जाने कहकर विषमता टली, वैसी समभाव की स्थिति का वर्णन यहाँ करना है। समझ में आया ? इसलिए कहा न, '**समु जाणंतउ**' भाई ! ऐसा कहा। समभाव को जानता है, देखो ! यहाँ प्रश्न क्यों उठा अब ? रात्रि का दूसरा प्रश्न अन्दर था। अब यहाँ तुलना में क्या आया ? कि वहाँ ऐसा आया कि निर्विकल्प ध्यानी पुरुष जब ज्ञानस्वरूप में भान होकर स्थिर हुआ है, स्थिर हुआ है, तब **न किसी का शिष्य होकर पढ़ता है,...** शिष्य होकर पढ़ता नहीं, तब कहे पहले था ? कि हाँ। समझ में आया ? सम्यक् भान में विकल्प ऐसा उठता था कि दूसरे से सुनता, दूसरे को कहता था, परन्तु इतना विकल्प, वह विषमभाव है। इसलिए यहाँ समभाव लेकर चारित्र की स्थिति बतलाकर मुक्ति का एकदम कारण है, ऐसा यहाँ बतलाना है। समझ में आया ?

समभाव। यहाँ समभाव लिया है, उपशमभाव लिया है, अकेला शान्त-शान्त। तब नीचे वह विकल्प है न ! विकल्प है अर्थात् ? वह तो चारित्र विषमभाव का दोष है, श्रद्धा-ज्ञान का दोष नहीं। समझ में आया ? वह चारित्र का दोष है, परन्तु उस दोष को ज्ञानी जानता है, रचता नहीं, रचने का कामी नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? इसलिए जिस क्रम में ज्ञान और राग हो, उसे जानता है। यहाँ तो कहते हैं कि समभाव को ज्ञानी जानता है, ऐसा कहना है। तदुपरान्त जब राग को, पर को पढ़ाने का विकल्प है, वह विषम है, ऐसा बतलाकर जो विषम का ज्ञान सम्यग्दृष्टि करता है, वहाँ वह अस्थिरता

का दोष था। वह विषमता टलकर जहाँ स्वरूप में स्थिर होता है, तब दूसरे को पढ़ाने का विकल्प नहीं होता। तथा पर से पढ़ना, ऐसा उसे होता नहीं। समझ में आया ?

न किसी की स्तुति करता है,... पहले स्तुति का विकल्प था। सम्यग्दर्शन ज्ञान में शान्ति की स्थिरता जब इतनी नहीं थी, तब उसे स्तुति का विकल्प था, परन्तु वह विकल्प सम नहीं, विषमभाव है। विषम है, तब तक समभाव का चारित्र नहीं और समभाव हुए बिना मुक्ति का कारण नहीं। ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया ? **न किसी की स्तुति करता है,...** विकल्प पहले स्तुति का आता था तो भी कर्ता नहीं, स्वामी नहीं। पहले स्तुति का विकल्प और बाद में निश्चयभक्ति, ऐसा नहीं है। विकल्प की स्तुति भगवान की, (उसका) विकल्प उठे, परन्तु वह स्तुति पहले हो तो फिर भगवान आत्मा की स्तुति होती है—ऐसा नहीं। स्तुति सम्यग्दर्शन, ज्ञान की स्तुति अन्दर स्वभाव की चलती है। उस काल में जो विकल्प उठता हो, वह विषमभाव था, वह स्तुति का भाग एक पर की स्तुति का था। समझ में आया ? वह यहाँ समभाव में रहा नहीं। इतना अन्तर। इसलिए समभाव को जानता है। नीचे ज्ञानी सम्यग्दर्शन-ज्ञान में अपना भाव है, उसे जानता है और उस राग को जानता है। उस राग का अभाव हुआ है, इसलिए समभाव को जानता है, ऐसा कहा, भाई! आहाहा! सर्वज्ञ पूर्ण को जानते हैं अपने को। इन तीन में समभाव का अन्तर है। जानने-देखने का अन्तर तीनों में एक में भी नहीं है। समझ में आया ? आहाहा!

न किसी की निन्दा करता है,... अर्थात् निचली दशा में जरा सत्य ऐसा हो, असत्य ऐसा न हो, ऐसा विकल्प उठता था। वह द्वेष का अंश उठता था नीचे। समझ में आया ? वह भाव नहीं यहाँ, तथापि उस भाव का ज्ञाता-दृष्टा था, परन्तु विषमभाव था। समझ में आया ? ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता—ऐसा भी विकल्प (भी) एक द्वेष का अंश है। समझ में आया ? यह मार्ग झूठा कहते हैं, यह मार्ग ऐसा नहीं, ऐसा भी एक विकल्प है, राग का अंश है। उसे ज्ञानी नीचे हो, उसको जानता है परन्तु समभाव में पूर्ति नहीं थी, समभाव अधूरा था। समझ में आया ? यह विशेष स्थिरता होने पर वह विकल्प ही रहा नहीं निन्दा-स्तुति का। अकेला समभाव। उस समभाव को जानता है, ऐसा

कहना है यहाँ पाठ में तो। समभाव 'समं जाननं परं तमेव' आहाहा! सम्यग्दृष्टि ज्ञानी, वह राग था उसे जानता था। यह तो समभाव हो, उसे अब जानता है। आहाहा! समझ में आया? और केवलज्ञानी वीतरागीपना होकर केवलज्ञान हो, उसे वे जानते हैं। पर को जानना, वह भी व्यवहार हुआ। इसी प्रकार यहाँ राग को जानना, वह व्यवहार हुआ। समझ में आया? तथापि पहले-बाद में नहीं। समझ में आया इसमें? भारी सूक्ष्म बात ऐसी।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा! वाह! यह चैतन्य की कसौटी में चढ़ा हुआ प्रभु ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। उसके जानने में भले विषमभाव थोड़ा हो, परन्तु जानने में जानने की अपेक्षा से और श्रद्धा की अपेक्षा में अन्तर नहीं। विषमभाव है, उसे जानता है। आगे बढ़ने पर उसे विषमभाव का अभाव होकर, स्वभाव की एकाग्रता होकर समभाव हुआ, ज्ञानी उसे जानता है। समझ में आया? वह समभाव को जानता है। पूर्ण वीतराग हुआ, तब वीतराग केवलज्ञान को (जानता है), यथाख्यातचारित्रसहित के केवलज्ञान को जानता है। समझ में आया? न्याय समझ में आता है या नहीं इसमें?

मोक्ष का कारण एक समभाव को... देखो! क्या कहते हैं? यहाँ तो एकदम सिद्धि का कारण लेना है न! मोक्ष का कारण ऐसा समभाव। सम्यग्दर्शन, ज्ञान मोक्ष का कारण है, परन्तु वह तो चारित्र का एक कारण है कि जो कारण प्रगट हुआ। फिर चारित्र प्रगट हुआ नहीं। वह चारित्र मोक्ष का कारण है, भाई! आहाहा! गजब शैली! शास्त्र की रचना दिगम्बर सन्तों ने जो रचना खड़ी की है, ऐसा ही है, वस्तुस्थिति ऐसी है। कहते हैं कि भगवान आत्मा जाननेवाले स्वभाव से भरपूर प्रभु चैतन्यरस का सागर आत्मा, उसके भान में आया तो रागादि बाकी तो है, हो, उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसी शास्त्र भाषा करते हैं। केवलज्ञान एक साथ लोकालोक को जाने, उसे उस काल में ऐसा अन्तर... क्या कहा? उस काल में अन्तर नहीं। उसे केवलज्ञानी एक समय में लोकालोक को, अपने को वीतरागी ज्ञान और लोकालोक को जानते हैं। निश्चय यह और व्यवहार यह। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी धर्मी जीव एक क्षण में अपने ज्ञान को जानता है और उस काल में भी रागादि जिस प्रकार से हों, उस-उस काल में उसे जानता है,

इतना उसे अन्तर पड़ता है। क्योंकि साधकभाव बढ़ता जाता है, राग घटता जाता है। इतना अन्तर पड़े उस-उस प्रकार के राग को जानता हुआ ज्ञान जाना हुआ प्रयोजनवान कहा गया है। समझ में आया ?

अब इसमें आवश्यक के ऊपर से प्रश्न उठा कि व्यवहार अनावश्यक लगते हैं, इन लोगों के कथन में। अनावश्यक अर्थात् क्या ? केवलज्ञान है, वहाँ लोकालोक है। इसी प्रकार ज्ञान सम्यक् है, वहाँ राग बाकी है, वह है। बस, इतनी बात। आवश्यक अर्थात् क्या ? वह राग की आवश्यकता साधक स्वभाव है, इसलिए है, ऐसा है नहीं और राग है, इसलिए यहाँ निश्चय की स्थिरता और दृष्टि है, ऐसा है नहीं। आवश्यक की आवश्यकता अर्थात् क्या ? होते हैं। वे तो होते हैं। समझ में आया ? केवलज्ञान में लोकालोक की आवश्यकता है, इसका अर्थ क्या ? ऐई! छोटाभाई! आवश्यक है, इसका अर्थ क्या ? वह तो है। ऐसे सम्यग्ज्ञान में, दर्शन में जितना राग भाग उसे आता है, वह है। आवश्यक है अर्थात् क्या ? वह है तो यहाँ ज्ञान, दर्शन है, ऐसा है नहीं। और ज्ञान, दर्शन और यह श्रद्धा, ज्ञान है; इसलिए राग है—ऐसा है नहीं। केवलज्ञान है, इसलिए लोकालोक है—ऐसा है नहीं। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान और एकाग्रता है, इसलिए राग है—ऐसा है नहीं और राग है, इसलिए एकाग्रता है—ऐसा है नहीं। दो वस्तुएँ (भिन्न) हैं। समझ में आया ? यह तो भगवान आत्मा के स्वभाव के घर की बात है, भाई! इसमें कुछ फेरफार करने जाये तो उसका घर नहीं रहे। आहाहा! वह राग के भाग को पहले मानकर और उसे जोर देगा तो आत्मा नहीं रहेगा। राग को रचनेवाला ज्ञान को बनायेगा तो आत्मा नहीं रहेगा और राग है तो यहाँ ज्ञान का निश्चय हुआ है, तो वह निश्चय नहीं रहेगा। नहीं रहेगा अर्थात् इसका अर्थ होता है कि होता ही नहीं। आहाहा! छोटाभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : रात्रि में कही गयी थी थोड़ी। अब यह तो उस समय जो मस्तिष्क में चलता हो वे शब्द और वह शैली कहीं तुरन्त आवे ? वह तो हिम्मतभाई थे, बदल गयी सब लाईन। शब्द बदल जाये और अन्दर लाईन अमुक ख्याल रहे कि यह

भी (था) । वह तो अन्दर से ऐसा चलता था न, इसलिए एकदम बाहर रखा गया पहले वहाँ । वह वस्तु ऐसी है ।

यह चैतन्य की जाति भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु जाना, उसके प्रवाह में तो ज्ञान और दर्शन और शान्ति और आनन्द का प्रवाह आता है । समझ में आया ? राग का प्रवाह उठता अवश्य है, वह स्व तत्त्व का स्वरूप है ही नहीं । राग, वह स्वतत्त्व है ही नहीं, वह आस्रवतत्त्व है । लो ! और यह याद आये जमुभाई । ऐसा कहे यह तत्त्व था न ? नहीं । अंश का तत्त्व वह द्रव्य का तत्त्व नहीं । अंश के विकल्प से खड़ा हुआ अंकुर नया-नया जिसकी जाति में नहीं, खड़ा किया हुआ है, इसलिए आत्मतत्त्व नहीं । समझ में आया ? अर्थात् कि लोकालोक, वह सर्वज्ञतत्त्व नहीं । सर्वज्ञतत्त्व, वह लोकालोक तत्त्व नहीं । इसी प्रकार भगवान ज्ञानस्वरूपी तत्त्व है, वह आस्रवतत्त्व नहीं । आहाहा ! अरे ! इसके माहात्म्य की इसे खबर नहीं पड़ती और फिर वाद-विवाद में चढ़े । अरे, बापू ! उस वाद-विवाद की यह वस्तु ही नहीं है । समझ में आया ? भाई ! कहते हैं न बनारसीदास, नहीं ? 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वादविवाद करे सो अन्धा ।' भाई ! तेरे चैतन्यप्रभु का मार्ग आहाहा ! उसके ज्ञान के तेज के माहात्म्य का प्रभुत्व प्रगट हुआ, कहते हैं कि वह जाननेवाला जगा, उसे सब जानने के लिये ही रहा अब, करने के लिये कुछ (नहीं रहा) । वह ज्ञान की एकाग्रता होती है, वह एक करने का, ऐसा कहा जाता है । समझ में आया ? परन्तु वह कर्ता आत्मा और यह क्रिया और यह करूँ, ऐसे भेद उसमें है ही नहीं । ओहोहो !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अत्यन्त भिन्न है, एक-दूसरे में अभाव है । आस्रवतत्त्व में चैतन्य का अभाव, चैतन्यतत्त्व में आस्रव का अभाव । वरना दो तत्त्व कैसे सिद्ध होंगे ?

मुमुक्षु : पर्याय है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है न, वह किसकी ? विकृत की है, चैतन्य की नहीं । अचेतन है । चैतन्य की पर्याय चैतन्य होती है । जमुभाई ! यह तो ऐसी बात है, बापू ! अचेतन कहा है उसे । दया, दान, विकल्प उठता है, वह अचेतन है, चैतन्य नहीं । चैतन्य

की जागृत में से उत्पन्न हुए नहीं, अजागृत में से उत्पन्न हुए, वे अचेतन हैं। आहाहा! समझ में आया? उस अचेतन का चैतन्य कर्ता नहीं होता।

मुमुक्षु : पुद्गल की पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल की पर्याय है। भले कहो न! क्या बाधा है? ऐसा कि वहाँ डाल दें। ऐसा ही है एक न्याय से। आहाहा! भगवान् चैतन्य के तेज जिसके हैं, जिसके आनन्द और ज्ञान के तेज जिसमें अनन्त पड़े हैं, उससे ज्ञान के तेज प्रगट हो या उसमें से अन्धेरा प्रगट हो राग का? राग तो अन्धेरा-अचेत है। नहीं आ गया? अपने उसमें आ गया नहीं? इसमें भी आ गया परमात्मप्रकाश में। अचेत हुआ... नहीं आ गया था? समझ में आया? बहुत आया है इसमें। आया था या नहीं पहले? अचेत आया था। 'अचेत सो रहा है।' आता है न। परन्तु कहाँ सो रहा है। चेतन में सोता है या अचेतन में, चेतन में कब था वह? समझ में आया? अन्धा राग, वह कहीं जागते चैतन्य का होगा?

भगवान् चैतन्य की ज्योति प्रभु, ज्ञान का समुद्र प्रभु अकेला डोले, उसमें ऐसे राग का अन्धकार कहाँ से कहाँ उत्पन्न हो? इसे खबर नहीं, मैं वह कौन और कितना आत्मा! आत्मा अर्थात् क्या? आत्मा अर्थात् सर्वज्ञस्वभावी पूर्णानन्द प्रभु वह आत्मा। समझ में आया? अकेली शान्त शिला, समभावी आत्मशिला, शरीरप्रमाण वीतरागी समभावी शिला। उसमें विकल्प विषमभाव है। उसका वह ज्ञानी जाननेवाला है, परन्तु आगे बढ़कर जब (विषमभाव) टला है, तब समभाव प्रगटरूप विशेष हुआ, उसका वह जाननेवाला है। समझ में आया?

एक समभाव को निश्चय से जानता हुआ... देखो! निचली दशा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान में भान होने पर भी, वे विकल्प दूसरे को पढ़ाने के, दूसरे को समझाने के ऐसे विकल्प उठते हैं। स्तुति के, भगवान् की स्तुति के विकल्प उठते हैं, परन्तु उन विकल्पों का वह जाननेवाला था, राग का-विषम का। यहाँ तो राग का अभाव हुआ, इसलिए समभाव का जाननेवाला हो गया अब विशेष। समझ में आया? अपने ध्यान में ज्ञानानन्द में मस्त है, कहते हैं कि उसे समभाव का ही ज्ञान है। **केवल आत्मस्वरूप में अचल हो रहा है...** अकेला भगवान् आत्मा ज्ञान की चैतन्यज्योति समस्वभावी वस्तु में अचल

होकर स्थिर हुए हैं। आहाहा! वह यह पद! अभी लोग मर जाते हैं परपद लेने के लिये। निजपद को भूलकर परपद के गोता खाने। राजा होऊँ और फलाना होऊँ और अमलदार होऊँ और अधिकारी होऊँ और सेठिया होऊँ, राजा होऊँ। मर गया परन्तु उसमें। मौत को ओढ़ता है। निजपद ज्ञानानन्द का जीवित तत्त्व है, महान स्वभाव भगवान।

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव कहते हैं, भाई! ऐसे निजपद की शान्ति और दृष्टि तूने की है न, तो अब तू उस राग का विषमभाव छोड़कर समभाव में स्थिर हो। समझ में आया? दुनिया का क्या होगा और कौन मुझसे पढ़ेगा? मैं पढ़ाऊँ तो उसे ज्ञान होगा। यह विकल्प भी (छोड़)। ज्ञान तो उससे होगा, ऐसा मानता था, (परन्तु) विकल्प उठता था। वह क्या काम है तुझे? तुझे यहाँ समभाव उससे होता नहीं, उससे पर को ज्ञान होता नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसकी देशनालब्धि? किसे कहना? उसे ज्ञान की योग्यता हो, तब उसके शब्दों की ऐसी शैली होती है निमित्तरूप से। उसमें उसके कारण से उसे लाभ हुआ, ऐसा कहाँ आया? आहाहा!

अरे! उसकी भूमिका में वज्र की दीवार में, चक्रवर्ती के राज में खड़ा रहे नहीं? किसी के घर में भिखारी के घर में किसलिए जाये? यहाँ तो समभाव वर्णन करते हैं न! आहाहा! सन्तों का समभाव, कहते हैं कि दूसरे को पढ़ाऊँ, यह विकल्प है, यह उन्माद है, अस्थिरता का उन्माद है। इससे मुझे लाभ होगा, यह मिथ्यात्व का उन्माद है और उस विकल्प से जगत का कल्याण होगा, मेरे विकल्प से पर को लाभ होगा, यह तो मिथ्यात्व का उन्माद है। समझ में आया? परन्तु यह विकल्प अस्थिरता का आया वह, कहते हैं कि चारित्र का उन्माद है। आहाहा!

केवल आत्मस्वरूप में अचल हो रहा है, अन्य कुछ भी शुभ-अशुभ कार्य नहीं करता। देखो! है न? शुभ-अशुभकार्य नहीं करता। कार्य करता तो नहीं था पहले भी, परन्तु यह कार्य खड़ा होता था, वह कार्य अब रहा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! लोगों को यह समझण के घर हैं न, वे उन्हें ऐसे महँगे पड़े न, इसलिए

लोगों को फिर वाद-विवाद खड़े हों। भगवान! यह वाद-विवाद की वस्तु ही नहीं। आहाहा! जहाँ अन्तर घर की बातें हैं, उसमें परघर का काम क्या? शरण क्या तुझे आयेगी उसमें? समझ में आया?

भावार्थ : परमोपेक्षा संयम... देखो! समता ली है न? सम्यक् आत्मा के भान और ज्ञानसहित परम उपेक्षा अर्थात् पर की कुछ अपेक्षा ही नहीं। अन्दर स्थिर हो जाते हैं। शान्त... शान्त... शान्त... अरे! कुछ विकल्प करूँ तो शासन निभे। धरसेनाचार्य को विकल्प नहीं आया? कि भाई! यह शास्त्र कैसे टिकेंगे? तथापि कहते हुए कहते हैं कि यह तुझे विकल्प और विषमभाव है। गजब बात है न! समझ में आया? उस भूमिका के योग्य ऐसा (भाव) आ भले ही गया, परन्तु वह समभाव नहीं। उससे कहीं आत्मा को लाभ हो और उससे पर को लाभ हो, (ऐसा है नहीं)। आहाहा! अजब-गजब की बात है! ऐई! न्यालभाई! आहाहा!

भगवान आत्मा... कहा था एक, नहीं? बहुत बात आयी थी कल, हों! भाई! वह शुभरागादि व्यवहार है, उसका कर्ता तो ज्ञानस्वरूप नहीं, परन्तु उसका त्यागकर्ता भी आत्मा नहीं। त्यागकर्ता यदि माने तो ग्रहण किया है राग को स्वभाव से, ऐसा हो जाता है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यज्योतिस्वरूप प्रभु, वह राग को रचे, वह तो नहीं, परन्तु राग को छोड़ूँ, ऐसे राग के त्याग का कर्तापने का नाममात्र है। परमार्थ से वह राग के त्याग का कर्ता ही आत्मा नहीं। राग के त्याग का कर्ता। आहाहा! समझ में आया?

भाई! आत्मा अर्थात् जानना अर्थात् आत्मा अर्थात् परमात्मा। समझ में आया? पर्याय में परमात्मा हो, यह तो और बाद में बात। परन्तु स्वयं ही परमात्मा, वर्तमान परमात्मा सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ जैसे पर्याय में सब जानते हैं, 'ऐसा' और 'यह' दोनों, इसी प्रकार यहाँ सम्यग्दर्शन की पर्याय में भी यह सर्वज्ञ आत्मा है, ऐसा जानते हैं। पर्याय में सर्वज्ञ हूँ—ऐसा नहीं, परन्तु वस्तु से सर्वज्ञ हूँ, ऐसा जानते हैं। केवली की पर्याय तो द्रव्य से सर्वज्ञ और पर्याय से सर्वज्ञ, ऐसे दोनों को जानते हैं। समझ में आया? इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि ज्ञानी अपने स्वभाव को वीतरागस्वभावरूप से देखता है अन्तर द्रव्य को, पर्याय में तो जितनी समता प्रगट हुई, उसे और राग बाकी रहा, उसे जानता है। यह आगे बढ़े हुए तो

राग का अभाव करके स्थिर हुए हैं, उसे समभाव को जानते हैं इतना। समझ में आया ?

परमोपेक्षा संयम अर्थात् तीन गुप्ति में स्थिर परम समाधि उसमें आरूढ़... शान्ति में आरूढ़। 'समाहिवर मुत्तम दिंतु' आता है परन्तु अर्थ की खबर कहाँ हैं भान (कहाँ है) ? किसे कहना समाधि और किसे कहना शब्द ? आता है न लोग्गस्स में ? सब हाँक रखे पहाड़े। यहाँ तो परम समाधि अर्थात् शुद्ध ज्ञानानन्द प्रभु, वह पुण्य-पाप के विकल्परहित भान करके और उस स्वरूप में राग का अभाव करके स्थिर हो, उसे यहाँ परम समाधि, शान्ति कहा जाता है। ऐई! भगवानभाई! समाहिवर मुत्तम दिंतु। ऐई! भीखाभाई! सब रटे थे पहाड़े बहुत वर्ष। क्या कहा ? आहाहा!

समाधिशतक में पूज्यपादस्वामी ऐसा कहते हैं, अरे, आत्मा! तू तेरा गुरु और तू तेरा चेला। समाधिशतक में है। यहाँ यह कहते हैं, यहाँ भी यह कहते हैं। तुझे किसका चेला होना है ? और तुझे किसका गुरु होना है ? कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा! भगवान आत्मा स्वयं अपने को समझाता है, इसलिए स्वयं गुरु। ऐई! हीराभाई! आहाहा! भगवान आत्मा... कहते हैं कि जैसा समभावी वीतरागीस्वभाव श्रद्धा, ज्ञान में लिया था सम्यग्दर्शन-ज्ञान में, ऐसा पर्याय में स्थिर हुआ, इसलिए उसे गुप्ति हो गयी। मन, वचन, काया से हटकर स्वरूप में स्थिर हुआ, स्वरूप में स्थिर हुआ। कुछ करना ही नहीं। विकल्प ... ऐसी शान्ति उसे समाधि कहते हैं। वे बाबा समाधि में चढ़े वह नहीं, हों! अन्यमति के बाबा ऐसे चढ़ावे। धूल में धूल नहीं मुफ्त की हठ। यह तो सर्वज्ञ तीर्थंकर परमेश्वर ने कहा कि तेरा स्वरूप अन्दर आनन्द और ज्ञान चैतन्यज्योति है, भाई! उसका भान करके विकल्प की वृत्तियाँ उठे—पढ़ने, पढ़ाने की, (उन्हें) छोड़कर स्थिर हो, इसका नाम समभाव और समाधि है। आहाहा!

परम समाधि उसमें आरूढ़... देखा! पुरुषार्थ से बात करते हैं न! आरूढ़ है न ? **परमसंयम उसकी भावनारूप...** उसकी एकाग्रता। अपने शुद्धस्वरूप की एकाग्रता। निर्मल यथार्थ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ऐसी भावनारूप। **परमसंयम उसकी भावनारूप निर्मल यथार्थ सम्यग्दर्शन,...** भावनारूप। ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा की एकाग्रतारूप जो संयम, ऐसा जो उसके साथ, निर्मल यथार्थ सम्यग्दर्शन, (निर्मल)

सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र वही जिसका लक्षण है, ऐसा मोक्ष का कारण जो समयसार... वह जिसका लक्षण ऐसा मोक्ष का कारण समयसार। कहो, समझ में आया ? यहाँ चारित्र का वर्णन करना है न ! साक्षात् मोक्ष का कारण बतलाना है। उसे जानता हुआ,... देखो ! 'समु भाउ' कहा है न। 'समु जाणंतउ' उसे जानता हुआ। निचली दशा में आत्मा के ज्ञान-दर्शन को जानता था, राग को जानता था, परन्तु यह तो राग के अभावरूप समभाव भाव को जानता हुआ। आहाहा ! भगवान की स्तुति में कहते हैं, हे भगवान ! स्वयंभूस्तोत्र (में कहते हैं)। आपने मार्ग था, वह कह दिया, फिर उसमें शासन का फल आया या नहीं, आप यह देखने के लिये खड़े नहीं रहे।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वाणी आ गयी, विकल्प (आ गया)। वह तो वाणी निकल गयी। फिर कैसे हुआ, यह (देखने के लिये खड़े नहीं रहे)। तुम तो तुम्हारे केवलज्ञान को देखते और अनुभव करते हो, बस। समझ में आया ? पूरा हो गया यह। यह कहाँ उन्हें देखना है ? ऐसा कहते हैं। वाणी निकली, तब वाणी को जानते थे। फिर उसे यह होगा, यह तो पहले से जानते थे। जानना नया कहाँ रहा ? ऐसा कहते हैं।

मोक्ष का कारण जो समयसार उसे जानता हुआ,... यह समभाव। समझ में आया ? आत्मा का सम्यग्दर्शन—समभावी वस्तु त्रिकाली का दर्शन, त्रिकाली सम्यक् समभावी का ज्ञान और त्रिकाली समभावी में स्थिरता—ऐसा जो समयसार, उसे अनुभवता हुआ... शान्ति को अनुभवता हुआ, अनुभवी पुरुष.... उस शान्ति को, समभाव को वेदता हुआ, वीतरागी भाव को वेदता हुआ, जानता। है न ? जानता और वेदता दो। न किसी प्राणी को सिखाता है... कहो, यह ऊँची भूमि होगी कि सिखाने का विकल्प वह ऊँची भूमि होगी ? ऐसा सिद्ध करते हैं यहाँ। छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत आदि के विकल्प होते हैं, वह भूमिका ऊँची या विकल्प छूटकर अप्रमत्त में गया, तब विकल्प नहीं थे, वह भूमिका ऊँची ? कहो। यह व्रत के परिणाम हैं, इसलिए ऊँचा, ऐसा नहीं। यह तो विकल्प-राग है। स्वभाव में स्थिर हुआ (वह ऊँची भूमिका)। किसी को दया पालने का, शिक्षा देने का चला गया सब ? गया, चला गया, वह विकल्प गया और

समभाव आया, ऐसा कहते हैं। गया, उसमें अब कमी हो गयी ऐसा नहीं। कमी हो गयी और लाभ आया, ऐसा कहते हैं। अरे... अरे..! गजब बात, भाई! क्या कहा? दूसरे को सिखलाने का विकल्प था और सीखने का विकल्प था, वह नुकसान था। गजब बात, भाई!

कहते हैं, ऐसा अनुभव जानता हुआ, अनुभवता हुआ, अनुभवी पुरुष न किसी प्राणी को सिखाता है,... नुकसान हुआ या नहीं किसी को नहीं सिखलाता वह? यह तो बातें, भाई! वीतराग के घर की हैं। वीतराग की बातें तो जगत से अलग प्रकार की। आहाहा! समझ में आया? छपरा के पानी ऊँचे चढ़ावे, लोग बातें नहीं करते? दोनों ओर छपरा हो न दोनों ओर क्या हो? वह और सवेरे विचार आया। वह तुम्हारा पंखा देखकर। दो ओर क्या कहलाता होगा? यह मकान तुम्हारा होता है न। मैंने कहा, यह दो ओर का पंख कहलाती होगी? क्या कहलाता होगा? ऐसे खुल्ला रखा है न, यह मकान होता है। एक ओर ऐसे निकाला और ऐसे निकाला, वह क्या कहलाता होगा? वह ऐसा ... है न करने में? ... ऊपर ऐसे करने के हैं। ... वह पंख। यहाँ तो पंख अच्छी और छपरा सब ही कहते हैं दूसरे प्रकार के, ऊँची प्रकार के। छपरा तो ऐसे पड़े न ऐसे। दोनों ओर ऐसे हों। ... यहाँ तो कहते हैं, ओहो! विकल्प का पंख ही तोड़ डाला। जिससे दूसरे को बेचारे को लाभ होता और उससे अपने को भी कुछ लाभ होता होगा न? गजब मार्ग!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभावना किसकी? कहाँ होती होगी? प्रभावना कहाँ होती होगी? आत्म प्र-भावना। वस्तु के स्वभाव में प्र-विशेष की भावना में एकाग्रता, वह प्रभावना। आहाहा!

यहाँ दृष्टि का विषय और समभाव क्या, दोनों साथ में समझाते हैं। ऐसा नहीं कि यह सिखलाना, वह विकल्प लाभदायक था और गया अब, इसलिए लाभ कम हो गया। कहते हैं कि लाभ बड़ा। वह नुकसान था थोड़ा विकल्प उठता था सिखलाने का। आहाहा! वीतराग की पद्धति, आहा! कहो, दूसरे को सिखलाता था, वह विकल्प,

कहते हैं कि इसे नुकसान था। न किसी को सिखाता है... उसे ऊँचा कहा न ? सिखलाने का भाव, उसे ऊँचा नहीं कहा, वह तो राग है। न किसी से सीखता है,... किसी से सीखे, वह दोष है, विकल्प है। आहाहा! कहते हैं कि नहीं सीखता, वह स्थिर हुआ, इसका नाम समभाव और लाभ में आया है। आहाहा! समझ में आया ? यह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा की अन्तर दृष्टि-ज्ञान में आया और स्थिर हुआ, वह लाभ की बात में आया है, कहते हैं। नहीं सीखता, उसमें लाभ में आया, सीखने में विकल्प था, सिखलाने में विकल्प था। आहाहा! वीतरागमार्ग में यह बात होती है, अज्ञानी को इसका पता नहीं लगता। कहे न कि भले हमारा थोड़ा हो, परन्तु अभी दुनिया को तिरा देंगे। दुनिया को लाभ हो तो भले हमारे एकाध-दो भव बढे। अरे, भगवान! तू समझा ही नहीं, बापू! समझ में आया ? आता है न एक अमुक जगह बात आती है। लोक के लिये इन्होंने अर्पण किया, अपने आत्मा को एकओर रखा। इसका अर्थ क्या ? ऐई! यह इसे खबर न्यालभाई को। तब दाँत निकाले न (हँसे न)।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भाजी मूलो नहीं। भाजी मूला तो सड़ जाये और पैसा भी उपजे नहीं। वापस शाम को खपा तो खपा, वरना सब जाये। यह तो हीरा-माणिक्य हो तो न खपे तो पड़े भी रहें। आम-बाम पाँच, दस मण लावे और यदि खपे तो खपे, वरना हो गया, सवेरे समाप्त हो जाये, सड़ जाये, सब जाये। दाने-बाने तो रहे सही दो-तीन महीने कदाचित। परन्तु भाजी मूला का धन्धा, उसमें लाभ लेने जाये, कहाँ से मिले ? धूल में। आहाहा! जमुभाई! कहते हैं कि....

मुमुक्षु : किसकी व्याख्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समभाव की। दर्शन-ज्ञानपूर्वक समभाव। संयम कहो, समभाव कहो, चारित्र्य कहो, निर्विकल्पता कहो, समाधि कहो। वह विकल्प छोड़ा, तब समभाव का लाभ हुआ, ऐसा कहते हैं। सीखने का और सिखलाने का, यह स्तुति करने का (विकल्प) छोड़ा, तब लाभ हुआ सम्पूर्णतः, कहते हैं, लो। आहाहा! यह भगवान की भक्ति और विकल्प था, वह छोड़ा, तब स्थिर हुआ, तब उसे सम्पूर्णतः लाभ हुआ।

मुमुक्षु : प्राथमिक जीव को यह करने का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्राथमिक जीव को ही यह करने का है, श्रद्धा में यह लेने का है। इससे लाभ माने तो हटेगा किस प्रकार वहाँ से ? समझ में आया ? आहाहा !

न निन्दा करता है। प्रतिकूलता नहीं। ऐसा नहीं होता, ऐसा मार्ग, ऐसा भी विकल्प जिसे नहीं। मार्ग खोटा हो, उसका निषेध करना, ऐसा भी जहाँ विकल्प नहीं। आहाहा ! सत्य का ऐसा है, ऐसा विकल्प का स्थापन और ऐसा है, उस विकल्प का निषेध करना, खोटे का, ऐसा भी जहाँ विकल्प नहीं, वहाँ लाभ है। भाई ! करो विकल्प, खोटे मार्ग के लिये करो ऐसा। तब आया था न उस सत्ता स्वरूप में (कि) तलाक न करे, उसका समकित न रहे। ऐई ! यह तो दूसरी बात है। कोई झूठी श्रद्धा, ज्ञान कहता हो तो उसे विकल्प ऐसा आता है कि यह खोटा है, झूठा है इतना, परन्तु वह विकल्प आता है, वह अच्छा है, ऐसा नहीं है। आहाहा !

जिसके शत्रु, मित्र, सुख, दुःख, सब एक समान हैं। शत्रु और मित्र सब एक ही समभाव-समभाव। वह दशा श्रद्धा-ज्ञान में ही पहले इसे बैठनी चाहिए कि ऐसी दशा को चारित्र और समभाव कहते हैं और वह साक्षात् आत्मा को लाभ का और मुक्ति का कारण है, ऐसा इसे बैठना चाहिए। इसलिए यह शान्ति के समभाव की साक्षात् मुक्ति के उपाय की बात करते हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

पौष कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक - २०-०१-१९६६

गाथा - ४९ से ५१, प्रवचन - १०३

गाथा - ४९

(परमात्मप्रकाश) दूसरा भाग चलता है। देखो, क्या कहते हैं? ४९ (गाथा)। थोड़ा सूक्ष्म विषय है। आगे बाह्य अन्तरंग परिग्रह की इच्छा... यह उपशमभाव की व्याख्या चलती है। समभाव-समभाव। समभाव किसे कहते हैं? और समभाव किससे उत्पन्न होता है? और समभाव, वही मोक्ष का कारण है, वह यहाँ बताते हैं। बाह्य-अन्तरंग परिग्रह... इसका टीका में अर्थ में लेंगे। इच्छा से... एक बात। पाँच इन्द्रियों के विषय-भोगों की वांछा से... दो बात। और देह में ममता नहीं करता,... तीन बात। तथा मिथ्यात्व अव्रत आदि समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित जो निज शुद्धात्मा उसे जानता है, वह परिग्रह में तथा विषय देह सम्बन्धी व्रत-अव्रत में राग-द्वेष नहीं करता,... चार बोल हैं। चार गाथा है चार। एक परिग्रह में राग-द्वेष में नहीं करता, विषय-कषाय में नहीं करता, देह में नहीं और व्रत-अव्रत में राग-द्वेष नहीं करता। ऐसा चार-सूत्रों से प्रगट करते हैं— समझ में आया? अभ्यन्तर चौदह परिग्रह और बाह्य दस परिग्रह में मिथ्यात्व पहला परिग्रह गिनने में आया है। पहले जिसको पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वह मेरे हैं, ऐसी मान्यता है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसको मिथ्यात्व के परिग्रह का त्याग नहीं। वह आयेगा भावार्थ में परिग्रह की व्याख्या (में)। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। बाह्य त्याग और ऐसा त्याग यह बात है नहीं अन्दर में। अन्तर में आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप की दृष्टि करके पुण्य-पाप, मिथ्यात्व, राग-द्वेष, शुभाशुभभाव, वह मेरा है—ऐसी मान्यता वह मिथ्यात्व का परिग्रह है, (उसका त्याग)। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परिग्रह है। मिथ्यात्व, वह महान परिग्रह है। महान परिग्रह ही वह है। देह की क्रिया में कर सकता हूँ, पर की दया में पाल सकता हूँ, मुझमें शुभभाव होता है, वह मुझे धर्म है—ऐसी मान्यता ही मिथ्यात्व का महान परिग्रह है। वह यहाँ बताते हैं। सूक्ष्म बात है। वरना तो स्थूल बात चले, बाह्य में यह त्याग किया, ऐसा किया, ऐसा किया। यह बात है नहीं। ऐसा तो अनन्त बार किया है। चार गाथायें हैं, भाई! परिग्रह की, विषय की... यह चारों चार गाथा है और देह की तथा व्रत-अव्रत, व्रत-अव्रत। व्रत का भाव, वह भी विषमभाव है। यहाँ समभाव की व्याख्या है। अव्रतभाव तो विषमभाव है ही, सम्यग्दर्शनपूर्वक। परन्तु व्रतभाव पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह भी विषमभाव है, समभाव नहीं। वह राग है, पुण्य है। बड़ी-बड़ी झंझट चलती है न? लिखावट में? पढ़ा न थोड़ा, नहीं? आहाहा! यह तो भाई! वीतरागमार्ग है। जिसे वीतरागमार्ग की पहली श्रद्धा की खबर नहीं, उसको संयम और त्याग-चारित्र-फारित्र होता ही नहीं। खबर नहीं कि सम्यग्दर्शन क्या है और मिथ्यात्व क्या है। समझ में आया?

कहते हैं, देखो! सब परिग्रह में—एक, विषय में—दो, देहसम्बन्धी—तीन, व्रत-अव्रत में—चार। राग-द्वेष नहीं करता, ऐसी चार गाथायें कही जाती हैं। समझ में आया? उसमें पहली परिग्रह की व्याख्या है। ४९ (गाथा)।

१७६) गंथहँ उप्परि परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।

गंथहँ जेण वियाणियउ भिण्णउ अप्प-सहाउ ॥४९॥

क्या कहते हैं? 'ग्रंथस्य उपरी' है शब्दार्थ? अंतरंग-बाह्य परिग्रह के ऊपर अथवा शास्त्र के ऊपर... शास्त्र है, वह भी परपदार्थ है, यह पुस्तक। (उस) पर ममता है, वह ममता छोड़े तो उसको समभाव होता है। परम तपस्वी... महामुनि दिगम्बर सन्त के अन्तर में... बाह्य में नग्न हुआ, वह कोई मुनिपना नहीं, अन्तर में अभ्यन्तर परिग्रह को छोड़कर, बाह्य परिग्रह का निमित्त छूट गया है और परम तपस्वी राग और द्वेष नहीं करता है... समझ में आया? जिस मुनि ने आत्मा का स्वभाव ग्रंथ से जुदा जान लिया है। पुण्य-पाप के राग से और शरीर, कर्म से और शास्त्र से अपना आत्मा अन्दर भिन्न है, ज्ञानानन्दस्वरूप है। वह ग्रन्थ अर्थात् शास्त्र और ग्रन्थ अर्थात् परिग्रह। दो बातें ली

हैं। समझ में आया ? ग्रन्थ अर्थात् शास्त्र से विकल्प हटा लिया है और ग्रन्थ अर्थात् अभ्यन्तर-बाह्य परिग्रह जो राग-द्वेष, पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, उसमें भी भाव को हटा लिया है। अपना स्वरूप शुद्ध आनन्दकन्द में जिसकी दृष्टि झुक गयी है। उसका नाम परिग्रहरहित सन्त और मुनि उपशमभाव करनेवाला कहा जाता है। आहाहा ! भारी शर्त बहुत शर्तें। न्यालभाई ! अकेले नग्न की बात नहीं, नग्न की बाद में करेंगे, बाह्य परिग्रह की। अभ्यन्तर परिग्रह पहला कहते हैं। देखो !

उसे जुदा जान लिया है। अपना स्वरूप शुद्ध आनन्द ज्ञायकमूर्ति है। व्रत-अव्रत, भक्ति-पूजा, दान अथवा उपदेश का विकल्प जो उठता है, उस राग से भिन्न मेरा स्वरूप है। ऐसी अन्तर में दृष्टि की हो तो उसको मिथ्यात्व का और राग-द्वेष का परिग्रह छूट गया और ऐसी दृष्टि न हो तो उसको मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परिग्रह है। तो उसको मुनि कहते नहीं। उसको समभाव है नहीं, विषमभाव है। आहाहा ! यह उपशमभाव की व्याख्या चलती है ३९ गाथा से। ३८ गाथा है न ? फिर चौदह गाथा उपशमभाव की सब समभाव की चलती है। यह ३८ से ५२ तक चलेगा। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है।

परमात्मप्रकाश। दिगम्बर सन्त योगीन्द्रदेव महासन्त जंगल में बसनेवाले थे। उन्होंने सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कहा, ऐसा उपशमभाव किसे कहते हैं ? समभाव को मुनिपना कहते हैं। जो मुनि को अन्तर आत्मा के आनन्दस्वरूप अखण्ड शुद्ध ज्ञान की मूर्ति, वह दया, दान, काम, क्रोध के विकल्प से भिन्न जान लिया है। उसे परिग्रह के ऊपर ममता नहीं तो उसको समता का परिणाम, वीतराग परिणमता है, उसे मुनिपने का परिग्रहरहित भाव कहा जाता है। समझ में आया ? देखो ! **आत्मा का स्वभाव ग्रंथ से जुदा जान लिया है।**

अब पहले, **भावार्थ :- मिथ्यात्व...** है पहला शब्द, देखो ! मिथ्यात्व परिग्रह है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... मिथ्यात्व पहला परिग्रह है। शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, दया, दान, व्रत का परिणाम, वह मेरी चीज़ है, मुझे उससे लाभ होगा, इसका नाम मिथ्यात्वभाव का महान परिग्रह कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? देखो ! इसमें

लिखा है या नहीं ? मिथ्यात्व पहले लिखा है । पहले मिथ्यात्व । मिथ्यात्व किसे कहते हैं, उसकी खबर नहीं । भाई चले गये लगते हैं देहरादून । भाई हैं, दिल्लीवाले हैं । वे भाई थे, वे चले गये लगते हैं । देहरादूनवाले आये थे न । नहीं हैं । आनेवाला है । अब कब आनेवाले हैं ? तुम तो पहले आ गये । जल्दी आ गये आप । सवेरे कहा था न कि भाई ! दोपहर को हिन्दी चलेगा । समझ में आया ? क्या कहा ?

मिथ्यात्व... परिग्रह है । मिथ्यात्व की व्याख्या—शरीर, वाणी, मन, पुण्य और पाप का भाव, वह सब पर है, परवस्तु है । उसमें अपनापन मानना, उससे लाभ मानना, उसका नाम मिथ्यात्व का परिग्रह कहा जाता है । मिथ्यात्व के परिग्रह का जिसको त्याग नहीं, उसको मुनिपना और सम्यग्दर्शन आदि होता नहीं । कहो, समझ में आया ? **वेद...** तीन वेद । तीन वेद का विकल्प । स्त्री, पुरुष, नपुंसक का वेद का विकल्प राग । उस विकल्प का त्याग । वेद-वासना, वह परिग्रह है । वेद-वासना का त्याग । अखण्डानन्द प्रभु भगवान् आत्मा वेद-वासना से भिन्न है, ऐसा जानना और रागरहित होकर समता में परिणमन करना, उसका नाम समभावी उपशमभाव है । उसका नाम मुनिपना कहा जाता है ।

राग, द्वेष... राग में पुण्य-पाप दोनों आये । शुभराग और अशुभराग दोनों राग में आते हैं । द्वेष में पाप आता है । हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ—ये चौदह अन्तरंग परिग्रह... है । ये चौदह अन्तरंग परिग्रह हैं । इनका उसको त्याग होना चाहिए । किसको ? जिसको आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव का भान हुआ, उसका अभ्यन्तर में उसको त्याग होता है । उस अभ्यन्तर परिग्रह से आत्मा भिन्न है । आहाहा ! समझ में आया ? बड़ी चर्चा चलती है न अभी ? पुण्य... पुण्य... पुण्य... चौदहवें (गुणस्थान के) अन्त समय में पुण्य को छोड़ेगा । अभी कहाँ छोड़ना कहते हो ? यहाँ तो कहते हैं कि पहले पुण्य का भाव नहीं छोड़ेगा श्रद्धा में से, तब तक तुझे मिथ्यात्व का नाश नहीं होगा । श्रद्धा की बात है न ! पुण्यभाव हो, परन्तु भाव से मुझे लाभ होगा, ऐसा भाव है, उसको मिथ्यात्व का बड़ा अनन्त संसार का परिग्रह अन्दर में पड़ा है । ओहोहो ! समझ में आया ? चौदह अन्तरंग परिग्रह ।

बाह्य क्षेत्र, वास्तु(घर), हिरण्य,... सोना आदि, चाँदी आदि सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य,... फर्नीचर। भाण्ड... बर्तन। यह दस परिग्रह। उनमें वस्त्र भी आ गये। वस्त्र का परिग्रह मुनि को नहीं होता। क्या है फूलचन्दजी? फर्नीचर कहा न, फर्नीचर कहा था, ध्यान रखो। भाण्ड अर्थात् बर्तन। यह तो भाषा है श्वेताम्बर की अन्दर की। बर्तन। यह फर्नीचर में वे वस्त्र भी आ जाते हैं सब बर्तन में। वस्त्र का त्याग मुनि को होता है और वस्त्र के त्याग के साथ अन्तर में विकल्प का पुण्य-पाप के भाव का भी, मिथ्यात्व का भी त्याग हो, उसको सम्यग्दर्शनपूर्वक उपशमभाव होता है। उसका नाम मुनिपना कहा जाता है। समझ में आया?

इस प्रकार चौबीस तरह के बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहों को तीन जगत में, तीनों लोक में,... और तीन कालों में मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से छोड़... देखो! आहाहा! वीतरागी मुनि उसे कहते हैं। सन्त, 'णमो लोए सव्व साहूण' उसका नाम साधु है। जिसको मन, वचन, काया से करना, करवाना, अनुमोदना... राग विकल्प पुण्यभाव है, करना यह ठीक नहीं, कराना ठीक नहीं और करते हो, उसको अच्छा जानना, वह ठीक नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो! तीन जगत में, तीनों कालों में, मन, वचन, काय,... मन से भी शुभ-अशुभराग करना ठीक नहीं, कराना ठीक नहीं, करते हुए को अनुमोदना ठीक नहीं। ऐसा मन, वचन, काया से तीन काल-तीन लोक में कृत, कारित, अनुमोदना से रहित अपना मिथ्यात्वरहित स्वभाव में स्थिरतासहित आत्मा को जो अन्तर में अनुभवता है, उसको उपशमभाव और निर्ग्रन्थभाव कहा जाता है। उसका नाम निर्ग्रन्थभाव है, मुनिपना है। आता है। उसे याद नहीं होगा। किया होगा कब? सब ऊपर से गया। पाँचवें श्रमणसूत्र में आता है, वह।

वीतराग निर्विकल्प समाधि में ठहरकर... देखो! शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप... कहा न अन्तिम शब्द? 'वियाणियउ भिण्णउ अप्प-सहाउ'। भगवान आत्मा अकेला वीतरागस्वरूप से परिणमा हुआ आत्मा है। उसमें वह विकल्प दया, दान या व्रत-अव्रत का विकल्प भी उसमें नहीं। ऐसी चीज़ को बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह नौ-नौ कोटि से छोड़कर। तीन काल-तीन लोक के अन्दर में से अपना आत्मा हटा लिया और शुद्धात्मा

की प्राप्तिरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि में ठहरकर... ओहो! शुद्ध भगवान आत्मा वीतरागी अनाकुल आनन्दस्वरूप आत्मा, उसमें ठहरकर, शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप कहा न? उस शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप क्या? वीतराग निर्विकल्प समाधि। उसमें ठहरकर परवस्तु से अपने को भिन्न जानता है,... परवस्तु से अपने को निर्ग्रन्थदशा में अन्तर स्वरूप में, निर्ग्रन्थभाव में रागादि विकल्प से पर जानता है। वो ही परिग्रह के ऊपर राग-द्वेष नहीं करता है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को पुण्य-पाप का भाव मेरा है, ऐसी मान्यता नहीं है, परन्तु पुण्य-पापभाव उत्पन्न होता है। समझ में आया

शुभाशुभभाव वह मुझे लाभ करता है, पुण्यभाव मुझे लाभ करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। पुण्यभाव मुझे लाभ करता नहीं, मेरा स्वरूप शुद्ध उसका लाभ है, उसका नाम सम्यग्दृष्टि है। उसको पुण्यभाव होता है, परन्तु उसके उपरान्त निर्ग्रन्थभाव, पुण्यभाव से रहित स्वरूप की स्थिरता (हुई है)। पुण्यभाव विषमभाव था। छठवें गुणस्थान में भी पंच महाव्रत का विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प राग विषमभाव है; समभाव नहीं, पुण्यबन्ध का कारण है। उस विषम से हटकर स्वरूप में सम हुआ, ठहरा हुआ, उसको निर्ग्रन्थदशा, वीतरागदशा, उसको मुनिदशा कहते हैं। कठिन बात है। यह बात तो अधिक लोग इकट्ठे हों, उन्हें यह बैठे नहीं। दस-दस हजार और बीस-बीस हजार। लौकिक बात करे लौकिक। इसलिए उन्हें लगे कि ओहोहो! यह बात तो...

यहाँ तो कहते हैं कि परिग्रह इसको कहते हैं कि भगवान आत्मा अत्यन्त वीतरागस्वरूप है... उसमें पुण्य-पाप का और आस्रव-बन्धभाव का भाव वह मेरा है और मैं उसमें हूँ, वह मुझे लाभदायक है, इसका नाम ही महामिथ्यात्व परिग्रह है। उस मिथ्यात्व परिग्रह को छोड़कर सम्यग्दृष्टि निष्परिग्रह दृष्टि हुई। फिर भी उसको पुण्य-पाप का भाव अव्रतादि का भाव है, वह भी विषमभाव है। उसे भी छोड़कर और पश्चात् व्रत का विकल्प आया, वह भी विषमभाव है। उसे छोड़कर उपशमभाव में परिणमते हैं, उनको निर्ग्रन्थ मुनि कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

समभाव के प्रकार लिये। पहले तो आत्मा शुभाशुभराग और देहादि से पर अपना स्वरूप वीतरागीस्वरूप है, ऐसी अन्तर दृष्टि होना, वह सम्यग्दृष्टि का समभाव, वह

सम्यग्दृष्टिरूप समभाव । पश्चात् अशुभराग का, अव्रत का त्याग और व्रत का विकल्प है, इतना अव्रत का अभावरूप समभाव । पश्चात् व्रत का विकल्प था, वह विषमभाव था । इतना छोड़कर समभाव, वह विशेष समभाव निर्ग्रन्थदशा वीतराग है । आहाहा ! समझ में आया ?

वो ही परिग्रह के ऊपर राग-द्वेष नहीं करता है । यहाँ पर ऐसा व्याख्यान निर्ग्रन्थ मुनि को शोभा देता है,... सम्यग्दृष्टि अथवा गृहस्थाश्रम में श्रावक है, उसको सम्यग्दर्शन हो, परन्तु वह विकल्प पुण्य के उठते हैं, उनको छोड़कर स्थिर न हो, तब निर्ग्रन्थदशा नहीं है । तो यह निर्ग्रन्थदशा गृहस्थाश्रम में होती नहीं । मुनिपना अन्तरदशा में आनन्द में रमता है, अतीन्द्रिय आनन्द में और समभाव में विषमभाव छोड़कर रमता है, उसको यह व्याख्यान शोभा देता है । क्या कहा ? है पाठ में है, देखो ! 'न च सपरिग्रहस्येति' सम्यग्दृष्टि को भी यह व्याख्यान नहीं शोभता । क्योंकि सम्यग्दृष्टि अभी निर्ग्रन्थदशा में नहीं है । समझ में आया ? निर्ग्रन्थ अर्थात् ? शुभ-अशुभभाव का अभाव नहीं है । शुभ-अशुभभाव का दृष्टि में अभाव है, आदर नहीं, लाभ नहीं । परन्तु अस्थिरता का अभाव नहीं (हुआ है) । वह शुभ-अशुभ विकल्प जो व्रत-अव्रत का है, दोनों विषमभाव हैं । दोनों विषमभाव छोड़कर स्वरूप में रमता है निर्ग्रन्थभाव में, उसे यह व्याख्यान शोभता है अर्थात् उसकी स्थिति का वर्णन है । परिग्रहवन्त को इस व्याख्यान की स्थिति है नहीं । समझ में आया ? भारी कठिन बातें, भाई !

पुण्य की व्याख्या आज बहुत लेख आया है बहुत । बहुत लिखा करते हैं, हों ! पुण्य तो चौदहवें गुणस्थान के अन्त में जाता है । तुम्हारे पहले से छुड़ाना है, क्या करना है यह ? सुन तो सही । अरे, भाई ! अभी पुण्य के भाव का अस्थिरपना छूटे, पहले नहीं छूटे । परन्तु पुण्यभाव आदरणीय है, लाभ है—ऐसी मान्यता तो मिथ्यादृष्टि अजैन है, जैन है ही नहीं । उसको जैन कहते ही नहीं । समझ में आया ?

संकल्प-विकल्प से रहित । शुभ-अशुभराग आत्मस्वभाव में है नहीं, ऐसी पहले दृष्टि करना । सम्यग्दर्शन बिना उसका ज्ञान और चारित्र सब व्यर्थ है । एक बिना के शून्य-शून्य हैं । और सम्यग्दर्शन के पश्चात् अव्रत का भाव है, वह विषमभाव भी

छोड़कर, इतना राग छोड़कर जरा व्रत का विकल्प आया तो जितना राग छूटा, उतना समभाव है। विकल्प उठता है, इतना विषमभाव है। पंच महाव्रत साधु का, अट्टाईस मूलगुण, वह विषमभाव है, रागभाव है, कषायभाव है। उसको छोड़कर स्वरूप में निर्ग्रन्थदशा में रमता है, उसका नाम उपशमभाव और समभाव कहा जाता है। साम्यभाव कहो, शुद्ध उपयोग कहो, चारित्रवन्त कहो, निर्ग्रन्थदशा कहो, मोक्ष का साक्षात् कारण कहो। कहो, नेमिदासभाई! ओहोहो! गजब भाई!

★ ★ ★

गाथा - ५०

आगे विषयों के ऊपर वीतरागता दिखलाते हैं— यह परिग्रह के ऊपर बतलाया पहले। अब विषयों की। चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में विषय का प्रेम नहीं। प्रेम अर्थात्? विषय के भोग में सुखबुद्धि नहीं। सम्यग्दृष्टि को विषय के राग का त्याग नहीं, परन्तु विषय का राग होता है, उसमें सुखबुद्धि का त्याग है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को शुभ-अशुभभाव, भोगभाव उत्पन्न होता है, परन्तु उसमें सुखबुद्धि का त्याग है। उसमें सुख है, ऐसा नहीं मानता। तो मान्यता नहीं सुखबुद्धि की, इतनी सम्यक्-दृष्टि और समभाव है, परन्तु जितना भाव उत्पन्न होता है विषय का, इतना विषमभाव है। उस विषमभाव का अभाव होकर मुनि को वीतरागभाव अन्तर परिणति होती है, उसको समभाव कहा जाता है। यह बात चलती है। ओहोहो! समझ में आया?

५० (गाथा)

१७७) विसयहँ उप्परि परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।

विसयहँ जेण वियाणियउ भिण्णउ अप्प-सहाउ ॥५०॥

इन चार गाथाओं की ऐसी शैली है पूरी। समझ में आया? 'देहहँ जेण वियाणियउ, बंधहँ हेउ वियाणियउ' ऐसा करके व्रत का भाव भी बन्ध है, ऐसा सिद्ध कर देंगे। आहाहा! जगत को कठिन (पड़े)। अभी सच्ची श्रद्धा करना उसे कठिन। मुनिपना तो कहाँ रह गया।

कहते हैं, महामुनि पाँच इन्द्रियों के स्पर्शादि विषयों पर राग और द्वेष नहीं करता,... देखो! मिथ्यादृष्टि को विषय-भोग में विकल्प उठते हैं, उसकी उसमें सुखबुद्धि है। इस कारण से वह मिथ्यादृष्टि है। विषय-भोग का राग उत्पन्न होता है, उसमें सुखबुद्धि है, इस कारण से मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि को विषय का राग है, सुखबुद्धि नहीं। सुखबुद्धि आत्मा में आनन्द है, ऐसा भान है, तो उसको सम्यग्दर्शन है, परन्तु विषय के भाव का अभाव नहीं है तो इतना समभाव नहीं है। मुनि को तो विषय का विकल्प जो है, उसका अभाव है। समझ में आया? अन्तर की बात है, हों! बाहर का विषय छूटा, वह विषय नहीं। बाहर का तो अनन्त बार छोड़ा। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' आता है भैया! वह दौलतराम में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आत्मा के भान बिना अनन्त बार बाहर का मुनिपना लिया, क्रियाकाण्ड किया, व्रत लिया, महाव्रत लिया परन्तु वह कोई धर्म नहीं, वह तो मिथ्यात्वसहित का शुभराग है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ भगवान योगीन्द्रदेव नग्न-दिगम्बर मुनि सन्त जंगल में रहनेवाले, ५०वें में कहते हैं, पाँच इन्द्रियों के स्पर्शादि विषयों पर राग और द्वेष नहीं करता,... देखो! मनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गन्ध में राग नहीं और अमनोज्ञ में द्वेष नहीं। सम्यग्दृष्टि को विषयभोग (होता है)। देखो! चक्रवर्ती भरत को भी छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं। परन्तु स्त्री और स्त्री के प्रति का राग, उसमें सुखबुद्धि नहीं थी। सुखबुद्धि आत्मा में आनन्दबुद्धि थी। तो आनन्दबुद्धि थी, इतना सम्यग्दर्शन अर्थात् समभाव उसका था, परन्तु जितना विषय का राग था, इतना विषमभाव था और उस विषय का आंशिक राग का त्याग आत्मा के भानसहित, हों! सम्यग्दर्शनसहित आंशिक राग का अभाव, वह समभाव, वह पंचम गुणस्थान श्रावक का। उससे अव्रत का सर्वथा त्याग कर व्रत का विकल्प उठता है, दूसरा जितना समभाव उत्पन्न हुआ, अव्रत का सर्वथा अभाव होकर उतना निर्विकल्प समभाव है। व्रत का विकल्प उठता है, इतना विषमभाव है। उसका भी अभाव करके, विषय का उतना अभाव करके स्थिर हो गये, उसका नाम निर्ग्रन्थ मुनि, समभाव, उपशमभाव कहते हैं। ओहोहो! कहो, समझ में आया? वीतरागता की व्याख्या यह सब आयी है—ऐसी है। चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें (गुणस्थान में) जितने अंश में स्वरूप

का अनुभव-दृष्टि हुई और अन्तर में आनन्द का वेदन हुआ, उतने अंश में समभाव और सम्यग्दृष्टि है। विशेष रागरहित स्थिरता हुई तो उतनी सम्यग्दृष्टिसहित समभाव है, विशेष अव्रतरहित होकर व्रत के विकल्प में आया, इतना विषम है, परन्तु जितनी कषाय घट गयी, उतना समभाव है। छोटाभाई! गजब बात, भाई! यहाँ तो व्रत के परिणाम को ही (अज्ञानी ने) धर्म मान लिया।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि के व्रत।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि के व्रत। दृष्टि की खबर ही कहाँ है अभी? प्रतिज्ञा ली बाहर से तो व्रत हो गया। मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? जिसको शुभ-अशुभराग में भी समभाव नहीं, शुभ ठीक और अशुभ अठीक है, वह विषमभाव है, मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! क्या होगा इसमें? समभाव की व्याख्या बहुत प्रकार की है। एक समभाव सम्यग्दर्शन के गुणस्थान की हद का, एक समभाव पंचम गुणस्थान की मर्यादा का, एक समभाव छठवें गुणस्थान का और एक समभाव सातवें गुणस्थान का। यहाँ निर्ग्रन्थदशा सातवें गुणस्थान के उपयोग के समभाव की व्याख्या करते हैं। समझ में आया?

जिसको पहले से ही शुभ-अशुभभाव मुझे लाभदायक है और देह की क्रिया में कर सकता हूँ और मैं देह की क्रिया का कर्ता हूँ, वह तो विषमभाव मिथ्यात्वभाव पड़ा है। उसको तो सम्यग्दर्शनरूपी समभाव नहीं। अथवा जिसको विषय परिणाम में और परिग्रह परिणाम में सुखबुद्धि है, वह मिथ्यात्व है। अभिलाषा है, ऐसा कहा न? विषय में अभिलाषा मूल—ऐसा कहा है न! मोक्षमार्गप्रकाशक में (कहा है)। अन्दर अभिलाषा है। स्वरूप की दृष्टि नहीं है, पहले राग से रहित मेरा आत्मा शुद्ध है, उसकी तो दृष्टि हुई नहीं तो उसको विषय अभिलाषा छूटती नहीं। स्वविषय तो पकड़ा नहीं। पुण्य-पाप और विकल्प से रहित अपनी चीज़ निर्विकल्प दृष्टि में तो आयी नहीं तो उसकी अभिलाषा विषय की छूटी नहीं। भले बाहर से विषय न सेवन करता हो, परन्तु अभ्यन्तर में स्वविषय को पकड़ा नहीं, पुण्य-पापरहित निर्ग्रन्थ होकर, तो उसको बाहर की अभिलाषा छूटी नहीं। छूटी ही नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : समभाव में अन्तर है न। जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट बहुत अन्तर है न समभाव में। यहाँ समभाव उत्कृष्ट सातवें गुणस्थान की बात ली है। सम्यग्दर्शन के समभाव में इतना कहा न! शुभ-अशुभभाव मेरा नहीं, मैं अकेला ज्ञायकस्वभाव चिदानन्द आत्मस्वभाव हूँ, शुद्ध ज्ञानस्वरूप (हूँ), इतना समभाव प्रगटा है। परन्तु अभी शुभ-अशुभभाव तो है, विषय का भाव है, भोग का भाव है, परिग्रह की आसक्ति का भाव है, इतना विषमभाव है। पंचम गुणस्थान में आगे गया, जितनी स्वरूप में स्थिरता हुई, शान्ति अविकारी परिणति (हुई), इतना समभाव है। जितना उसको भी अव्रत-व्रत का भाव रह गया, थोड़ा अव्रत है और थोड़ा व्रत है, वह भी विषमभाव है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकार नहीं, मात्रा में अन्तर है। समभाव के प्रकार में अन्तर है न! थोड़ा समभाव, विशेष समभाव, (ऐसा) अन्तर है न उसका बहुत? यहाँ चारित्र अपेक्षा का समभाव वर्णन करना है। वह सम्यग्दर्शन का समभाव। समझ में आया?

यहाँ तो निर्ग्रन्थदशा का वर्णन करते हैं। साधु कैसा होता है? उसको साधु कहते हैं, दूसरे को साधु कहते नहीं। जैन के साधु अर्थात् वीतरागी साधु अर्थात् जिसका विकल्प उठे पुण्य-दया-व्रत का उसको भी छोड़कर स्वरूप में ठहरते हैं निर्ग्रन्थभाव में, उसे जैन का साधु कहते हैं। समझ में आया? बाह्य में परिग्रह कुछ है ही नहीं। वस्त्र-पात्र आदि है नहीं, अन्दर में रागादि है नहीं। अन्तर आनन्दकन्द में झूलते हैं अतीन्द्रिय आनन्द में, उसको समभाव कहो, उपशमभाव कहो, निर्ग्रन्थभाव कहो या चारित्र कहो। समझ में आया? यहाँ तो वे व्रत के भाव हैं, वह बन्धभाव है, ऐसा सिद्ध करेंगे। १५२ गाथा में। व्रत का भाव है, पंच महाव्रत, वह बन्धभाव है। अबन्धभाव नहीं, निर्ग्रन्थभाव नहीं, मुनिमार्ग नहीं, चारित्र नहीं।

परमात्मप्रकाश है न! भगवान् आत्मा वीतरागी समभावीस्वरूप, उससे विरुद्ध जितने विकल्प उठते हैं, वे सब दोषस्वरूप, विकारस्वरूप हैं। उनकी दृष्टि हटाकर स्वभाव की दृष्टि, निर्दोष स्वभाव की दृष्टि हुई, इतनी सम्यक् स्वभाव की दृष्टि, समता

की दृष्टि हुई। वीतरागभाव धर्म है, ऐसी प्रतीति हुई। वीतरागभाव धर्म है, ऐसी प्रतीति हुई। वीतरागभाव विशेष प्रगट हुआ नहीं। रागभाव धर्म है, ऐसी दृष्टि उठ गयी। समझ में आया? शुभराग हो दया का, दान का, व्रत का, भक्ति, पूजा, काम का, वह राग धर्म है, ऐसी दृष्टि उठ गयी। इतना वीतरागी समभाव सम्यग्दृष्टि को हुआ। परन्तु वह राग अभी बाकी है पूजा, भक्ति, दान आदि के विकल्प। उसमें आया नहीं? पंचास्तिकाय में नहीं? नौ तत्त्व की रुचि, यह आया न? आवे न, पंचास्तिकाय में आता है न अन्त में? वहाँ तक अभी परसमय है। नौ तत्त्व का विकल्प उठे श्रद्धा का, तीर्थंकर की रुचि का, तब तक विषमभाव है, इतना विकल्प है, इतना परसमय है, इतना अचारित्र है, दोष है। वीतरागमार्ग समझना लोगों को (कठिन है)। बाहर की दृष्टि से मनवा ले, मान ले कि हम त्यागी हो गये, हम मुनि हो गये। अब हम धर्मी हो गये। मुनि हो तो धर्मी हो न समकिति। मान लिया। ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है तीन काल में। यहाँ तो आचार्य कहते हैं। जिसको पहले सम्यग्दर्शन हुआ हो, पश्चात् राग का अभाव होकर स्वरूप में रमते हों, आनन्द में रमते हों, उसका नाम मुनि और निर्ग्रन्थपना है। उसको बाह्य दशा निर्ग्रन्थ नग्न हो जाती है। नग्न हो जाती है। बाह्य परिग्रह का लक्ष्य छूट जाता है। समझ में आया?

देखो, मनोज्ञ विषयों पर राग नहीं करता और अनिष्ट विषयों पर द्वेष नहीं करता;... सम्यग्दृष्टि को यह अनुकूल है, इसलिए राग होता है—ऐसा नहीं है, परन्तु राग होता है आसक्ति का। प्रतिकूल है तो द्वेष होता है तो ऐसा नहीं है, परन्तु द्वेष होता है। इतना समभाव नहीं, विषमभाव है। मुनि को इष्ट-अनिष्ट के कारण तो राग-द्वेष नहीं है, परन्तु आसक्ति के कारण भी राग-द्वेष नहीं है। ओहोहो! समझ में आया? जिनसे अपना स्वभाव विषयों से जुदा समझ लिया है। देखो! वह परिग्रह से भिन्न था, वह ग्रन्थ से। भगवान् आत्मा पाँच इन्द्रिय के शुभ-अशुभ विषय, उस ओर से जिसने आत्मा को हटा लिया है और अपना आत्मा अत्यन्त भिन्न है, ऐसा आनन्द अनाकुल शान्तरस से परिणमित आत्मा, ऐसा जिसने जान लिया है। इसलिए वीतरागदशा धारण कर ली है। देखो! आहाहा! उसमें साम्यभाव, स्वास्थ्यभाव। स्वास्थ्य अपने में स्व-स्थ—अपने में रहा है। जितना व्रतादि का विकल्प है, इतना स्वस्थ में नहीं है, वह निरोगता नहीं है, वह रोग है।

लोग नहीं कहते स्वास्थ्य है आपको ? पूछते हैं या नहीं ? यहाँ कहते हैं कि आपको स्वास्थ्य है ? विकल्प से रहित निर्ग्रन्थ में ठहरा है, उसका नाम स्वास्थ्य है। ओहोहो ! बहुत यह तो... देखो।

भावार्थ :- द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन दोनों से ग्रहण करने योग्य देखे-सुने अनुभव किये जो रूपादि विषय हैं,... जो 'इंदिये जिणिता' यह लिया। समझ में आया ? विषयों को जीता किसको कहते हैं ? कि द्रव्य इन्द्रिय यह जड़ पाँच, भावेन्द्रिय अन्दर एक-एक विषय को ग्रहण करनेवाली खण्ड-खण्ड इन्द्रिय। समझे ? देखे-सुने अनुभव किये जो रूपादि विषय हैं,... तीन बातें लीं। यह जड़ इन्द्रिय मिट्टी है, भावेन्द्रिय एक-एक विषय को ग्रहण करनेवाली खण्ड-खण्ड इन्द्रिय और उसे देखे, सुने, भोगे। पाँचों आ गये। देखे हुए, सुने हुए और भोगे हुए, इन पाँचों इन्द्रियों के विषय का विकल्प। उनको मन, वचन, काय... मन से, वचन से, काय से। मन से भी शुभविकल्प नहीं। मनोज्ञ विषय अर्थात् वाणी भी मनोज्ञ विषय है। शब्द का विकल्प है, उसका वह विषय मनोज्ञ वाणी। ओहोहो ! उससे भी हटाकर, मन से भी विकल्प को हटाकर। वाणी प्रशस्त या भगवान की प्रतिमा, वह भी... अरे, भगवान ! गजब भाई ! वह भी विषय है। वह शुभराग का विषय है। मनोज्ञ विषय है। अमनोज्ञ—स्त्री, भोगादि आदि बाहर अमनोज्ञ विषय... सबको मन, वचन और काया से।

कृत, कारित, अनुमोदना से छोड़कर... ओहोहो ! वीतरागस्वभाव विषय अर्थात् इस ओर के विषय में आ गया तो वह विषय सब छूट गया, ऐसा कहते हैं। अपना विषय चैतन्यमूर्ति इतना पकड़ लिया कि दृष्टि उपरान्त समभाव में इतना निर्ग्रन्थभाव में हुआ कि बाहर का शुभाशुभ विषय, उसका विकल्प, विषय और भावेन्द्रिय का खण्ड-खण्ड सब विषय है, वह सब छूट गया। सूक्ष्म बात है, भाई ! देखो, विषय में तीन डाले, भाई ! 'जो इंदिये जिणिता णाणसहावाधियं मुणदि आदं' टीका भी... आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा अपना निर्विकल्प वीतरागस्वरूप, उसकी दृष्टि, ज्ञान में रमते हैं, उसको मन, वचन, काया से, कृत, कारित, अनुमोदना से पर की ओर के शुभाशुभ विकल्प का अभाव हो जाता है। उसका नाम विषय का त्याग कहने में आता है और

अपने विषय में स्थिर होना, अपनी दृष्टि अपने में होकर स्थिर होना, पर विषय का अभाव होना। समझ में आया ? निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न... देखो ! लो, आया इसमें, देखो। 'भावनासमुत्पन्नवीतरागपरमानन्द' ऐई ! आज ही आया। वह कल भावना में था न ! निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न... यह भावना करने से उत्पन्न हुआ होगा वीतरागी परमानन्द अतीन्द्रिय सुख ? भाई ! ऐसा कि पाँचवें गुणस्थान में शुद्ध उपयोग की भावना होती है। भावना अर्थात् भावे। वस्तु नहीं, शुद्धोपयोग नहीं। तो यहाँ भावना का अर्थ क्या किया ? देखो !

निज शुद्धात्मा भगवान् आत्मा अनाकुल आनन्द का पिण्ड शिला प्रभु, अनाकुल शान्त की शिला अन्तर अनुभव में आया है, उसकी भावना—उसकी एकाग्रता से उत्पन्न वीतराग परमानन्दरूप अतीन्द्रियसुख के रस के आस्वादन से तृप्त होकर... देखो ! आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि तो पहले हुई थी, परन्तु यहाँ विशेष विकल्प शुभाशुभ को छोड़कर आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में तृप्त... तृप्त... तृप्त... तृप्त... हुआ, आस्वाद से तृप्त हो गया। होकर विषयों से भिन्न अपने आत्मा को जो मुनि अनुभवता है,... तब भिन्न जाना कहलाये। तब मुनिपना कहने में आता है। समझ में आया ?

यहाँ क्या कहते हैं ? कि आत्मा अपनी स्वदृष्टि से निज शुद्धात्मा को अनुभव करे, उसके उपरान्त अपने विषय में इतना स्थिर हुआ कि अपनी एकाग्रता से वीतराग परमानन्द में तृप्त-तृप्त, अतीन्द्रिय आनन्द में अनुभव में तृप्त (हो गया)। उसका—विषय का अभाव हो गया। उसका नाम उपशमभाव और मुनिपना है। समझ में आया ? मानो बातें बहुत बड़ी लगें, हों ! कितनों को मानो यह वह कहाँ की होगी ? यह तो अभी मुनि की बात चलती है। जैन वीतराग सन्त कैसे हैं, उसकी बात चलती है। सुना नहीं, बाहर में....

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विषय-कषाय में तृप्त नहीं ? पाँच पुत्र हों, चार पुत्र हों और व्यवस्थित हों और विवाहित हों तथा सब ऐसे लड़के बैठे हों, स्वयं बैठा हो, नीचे दो-तीन बहुएँ बैठी हों और खाकर पड़ा हो, पापड़-बापड़ खाये हों ठीक से। मैसूर

को खाया हो और फिर बैठा हो, तृप्त बैठा हो या नहीं ऐसे ? नशा चढ़ गया मानो मान का—अभिमान का ।

मुमुक्षु : यह तो समझ में आता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस तब, उसे विरुद्ध यह । ऐसा तृप्त-तृप्त है । गुलौंट खाकर इसमें तृप्त-तृप्त है । इसलिए तो दृष्टान्त है ।

मुमुक्षु : वहाँ क्या दिखता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकार दिखता है, वहाँ अविकारी (दिखता है) । धर्मचन्दजी ! आहाहा ! पाँच-पचास लाख की पूँजी हो, पाँच लाख खर्च करने हों और पुत्र का विवाह हो और अन्तिम हो न, ओहोहो ! बैठा हो और बैण्डबाजा तीन-चार लाये हो न । आहाहा ! मर गया मानो तृप्ति में ।

मुमुक्षु : उसमें तो अनुभव होता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो बस वह तृप्ति विकार की है, पर की नहीं है । बस, वह विकार है, वह दोष है । उससे रहित भगवान् आत्मा निर्दोष को विषय बनाकर अन्दर आत्मा, (पहले) आकुलता में तृप्त था, अब निराकुल आनन्द में तृप्त, उसका नाम आस्वाद कहा जाता है । समझ में आया या नहीं ? छह-सात भाई बैठे हों और अन्दर सब बातें करते हों और ऐसा ठीक सा हो । उसका पिता मर गया हो परन्तु उस समय बैठा हो । आहाहा ! उसमें कुछ कमाई का वर्ष हो व्यवस्थित सबको । भीखाभाई ! तुम्हारे तो अकेला है तो क्या, परन्तु वे अधिक हों और सब समान हों और फिर ऐसे...ऐसे... ओहोहो !

वह राजा काठी थे न भाई, यह जदसण के दरबार । बैठे थे । बैठे थे न दूसरे ? ... हम उपाश्रय में थे तो वहाँ निकले थे । आगे-पीछे । परन्तु वे आगे चले किस प्रकार ? सामने मनुष्य हाथ डालकर चले । चलने की शक्ति सब । परन्तु राजा व्यक्ति चले अकेला ? या हाथ को और ऐसे-ऐसे करे । एक मुख्य व्यक्ति था । उसके ऊपर हाथ ऐसे रखा । हाथ रखकर ऐसे मलकते हुए चले । काठी में और राजा ।

मुमुक्षु : उसके बाप को....

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो, उसे गद्दी मिली थी । उसे फिर तो बहलाना आया न

बहुत। हमने देखा है नजर से, हों! उपाश्रय में बैठे थे तब दरबार निकले थे। ऐसे देशी सादा थे। वस्त्र-बस्त्र सादा, सब सादा। परन्तु ऐसे एक व्यक्ति सामने आगे, उसके ऊपर हाथ रखा हुआ। ऐसे दबदबा कुछ नहीं। बस! ऐसे मलपते मानो तृप्त-तृप्त मानो कुछ हमारे तो कोई हाथ भी हिलाने का नहीं। ऐसे हाथ रखे। यह विचार तो आया था उस समय कि यह गजब भाई! चलने में भी तृप्ति वेदते हैं, ऐसे दूसरे के विश्राम की। विश्राम दे न हाथ देकर? समझ में आया? ऐसे चारों ओर नजरें पड़ती हों लोगों को। लड़के ऐसे, स्त्री ऐसी, पुत्री ऐसी, बहुएँ ऐसी, मकान ऐसा, इज्जत ऐसी... नशा चढ़ जाये जहर का। आहाहा!

यहाँ अन्दर चिदानन्द भगवान् अमृत का सागर आत्मा पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि-सम्यग्दृष्टि हुई और फिर जहाँ स्वरूप में लीनता तृप्त-तृप्त (हुआ), आहाहा! कहते हैं, तृप्त होकर विकल्प छूटे, उसका नाम निर्ग्रन्थपना है, ऐसा कहते हैं। हठ से विकल्प छूटे, ऐसा है नहीं। समझ में आया? ऐसा कि विकल्प, जाओ घटाओ-घटाओ। क्या घटावे? राग घटा दो। कहाँ घटावे? स्वरूप की आनन्द की तृप्ति अन्दर में प्रगट हुए बिना राग का त्याग यथार्थरूप से नहीं होता। समझ में आया?

मुनि तो सिद्धधाम में विराजते हैं। उसका नाम मुनि है। अतीन्द्रिय आनन्द में मौज मनाते हों। शान्त, आनन्द... आनन्द... आनन्द... अमृत के झरने। कहते हैं, देखो न! आस्वादाने से तृप्त होकर विषयों से भिन्न अपने आत्मा को... जानता है। उसका नाम मुनि कहते हैं और उसका नाम निर्ग्रन्थ चारित्र, णमो लोए सव्व साहूणं में आता है। आहाहा! इतना कुरूप कर डाला है वर्तमान वीतराग मार्ग को और लोग बेचारे साधारण बुद्धि। क्या वीतराग मार्ग है और क्या मुनिपना और क्या सम्यग्दर्शन। फेरफार-फेरफार कर दिया। और बहुत लोग प्रसन्न हो जाते हैं, लोग बहुत प्रसन्न होते हैं। स्थूल बात में बहुत प्रसन्न होते हैं। इस बात में समझे नहीं कि यह क्या कहते हैं? धर्मचन्दजी! यह धर्म की बात चलती है। देखो!

आत्मा को जो मुनि अनुभवता है, वो ही विषयों में राग-द्वेष नहीं करता है। उसको विकल्प नहीं उठते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ पर

तात्पर्य यह है कि जो पंचेन्द्रियों के विषय-सुख से निवृत्त होकर... देखो! सम्यग्दृष्टि को विषय सुख में विषय प्रेम-रुचि नहीं है, परन्तु विषयभाव है, छियानवें हजार स्त्रियों के भोग का भाव है। इतना असमभाव है। सुखबुद्धि नहीं, आत्मबुद्धि आनन्द में है। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द ही मेरी चीज़ है, ऐसा सम्यग्दृष्टि को आनन्द की बुद्धि है, इतना समभाव है। भोगबुद्धि है, इतना विषमभाव है। यह तो वह बुद्धि भी गयी, आसक्ति गयी। छोड़ दिया। अतीन्द्रिय आनन्द में तृप्त होकर, अतीन्द्रिय स्वाद लेकर विषय छूट गया, उसका नाम विषय छोड़ा कहने में आता है। समझ में आया? एक ओर आनन्द आया नहीं, एक ओर विषयभाव कैसे छूटे, ऐसा कहते हैं।

ओहोहो! यह परमात्मप्रकाश है। निर्ग्रन्थ मुनि ने अभी नौ सौ वर्ष पहले बनाया है। दिगम्बर आचार्य थे, जंगल में बसनेवाले ऐसे भावलिंगी मुनि थे। यहाँ कहते हैं, ऐसी तृप्तदशा में रमते थे। आहाहा! समझ में आया? ऐसा विकल्प जिसको वाणी श्रवण करने का विकल्प नहीं। समझ में आया? शास्त्र का तो पहला विकल्प है, वह छोड़ दिया। परन्तु विकल्प श्रवण करने का विकल्प नहीं। श्रवण करने का विकल्प, वह भी राग है। इतना विषमभाव है। यह बात तो वीतराग की सुनी जाये नहीं। कायर का कलेजा काँप जाये अन्दर से। 'वचनमृत वीतराग के परम शान्तरस मूल', देखो! यह शान्तरस है न! उपशमरस की व्याख्या चलती है। 'औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' अररर! ऐसा मार्ग होगा? ऐसा मार्ग होगा? अब ऐसा मार्ग हो, सुन न! इस मार्ग की दृष्टि हुए बिना और ऐसी शान्ति हुए बिना समभाव होता नहीं। समझ में आया?

पंचेन्द्रियों के विषय-सुख से निवृत्त होकर निज शुद्ध आत्मा-सुख में तृप्त होता है,... देखो! सम्यग्दृष्टि को पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुखबुद्धि टल गयी है, परन्तु आसक्ति नहीं टली है। आसक्ति का विकल्प छोड़कर आत्मा के आनन्द में तृप्त होते हैं, उसी को यह व्याख्यान शोभा देता है,... उसको यह व्याख्यान की बात लागू पड़ती है, ऐसा कहते हैं। शोभा देता है अर्थात्? उसको वहाँ पर यह व्याख्यान लागू पड़ता है। लागू, क्या कहते हैं समझे? लागू पड़ता है। समझ में आया? आहाहा! स्वयं मुनि हैं, हों! भावलिंगी सन्त हैं, आत्मा आनन्द का स्वाद आ गया है। स्वाद की तृप्ति में तृप्ति में बोलने का विकल्प आया है। फिर भी कहते हैं, उस विकल्प को छोड़कर स्थिर होते हैं,

वही समभाव विशेष है। इसका लिखना, वह विकल्प है, बन्ध का कारण है। आहाहा! परन्तु उस समय भी कहते हैं कि यह विकल्प है, वह विषमभाव है; स्थिर होना, वह समभाव है। समझ में आया? बात बहुत संक्षिप्त। परिग्रह और विषय। अब रही देह, फिर लेंगे व्रत-अव्रत। **विषयाभिलाषी को नहीं शोभता।** सम्यग्दर्शन होने पर भी विषय की अभिलाषा है, वहाँ इतना समभाव नहीं हो सकता।

★ ★ ★

गाथा - ५१

आगे साधु देह के ऊपर भी राग-द्वेष नहीं करता— देह की क्रिया जड़ की पर्याय-मिट्टी की है, धूल की। उसमें ऐसे चला दे तो ठीक है और न चला तो ठीक, उसकी दृष्टि है ही नहीं। जड़ की पर्याय है। मुझसे चलता नहीं और मुझसे वह रहता नहीं। मिट्टी जड़ है वह तो। जड़ का लक्ष्य छोड़कर समिति से प्रवृत्ति करने का विकल्प, उसे भी छोड़कर, उसने देह के प्रति राग-द्वेष छोड़ा, उसको विषमभाव टलकर समता है, उसे उपशमभाव कहा जाता है।

१७८) देहहँ उप्परि परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।

देहहँ जेण वियाणियउ भिण्णउ अप्प-सहाउ ॥५१॥

लो! महामुनि मनुष्यादि शरीर के ऊपर भी राग और द्वेष को नहीं करता,... यह देह अच्छा, निरोगी है तो दया पल सकने का भाव है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? 'शरीर आद्यं खलु धर्म साधनं।' लोग मानते हैं न? झूठ है, कहते हैं। देह धर्म का साधन है ही नहीं। वह तो जड़ है, मिट्टी है, धूल है। आत्मा का निर्विकल्प वीतरागी स्वभाव का साधन धूल-मिट्टी होती है? यह तो मिट्टी अजीवतत्त्व है। भीखाभाई! देह के ऊपर राग-द्वेष नहीं। महामुनि मनुष्यादि शरीर के ऊपर भी राग और द्वेष को नहीं करता,... मनुष्य शरीर ठीक रहे और उससे ईर्यासमिति में चलें, ऐसा विकल्प भी ज्ञानी को होता नहीं। इतना समभाव में स्थिर होते हैं, उनको देह के प्रति ममता नहीं है।

शुभ शरीर से राग नहीं करता,... देखो! है न? शुभ शरीर का अर्थ ऐसे शरीर की

क्रिया व्यवस्थित हो न! वह तो जड़ की क्रिया है। वह राग नहीं। ठीक चला, देह में अठीक क्रिया हुई। वह तो जड़ की है। उसका शुभराग भी उसको नहीं। शुभ शरीर से राग नहीं करता और अशुभ शरीर से द्वेष नहीं करता। शरीर में रोग हो तो द्वेष नहीं, निरोगता के प्रति राग नहीं। इसका नाम चैतन्यदेह, चैतन्यदेह, ज्ञानशरीर। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा ज्ञानरूपी शरीर की दृष्टि करके स्थिर होते हैं, उसको इस शरीर (के प्रति) राग, शुभदेह के प्रति राग और अशुभ के प्रति द्वेष, ऐसा होता नहीं। यह शरीर ठीक है। सम्यग्दृष्टि को थोड़ा राग आता है। शरीर ठीक रहे तो ठीक, ऐसा नहीं, परन्तु आसक्ति का राग आता है। (यहाँ तो) आसक्ति का राग भी नहीं, वह यहाँ समभाव है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को आत्मा में पुण्य-पाप के विकल्प एक सरीखा बन्धन का कारण है, ऐसा जाना है। तथापि देह के प्रति जरा आहार लेने की वृत्ति उठती है या नहीं? कहते हैं कि वह राग है। देह से संयम पलेगा, इसलिए आहार (लेना), वह भी राग है। वह राग भी ज्ञानी ने छोड़ दिया है उपशमभाव में, ऐसा कहते हैं यहाँ। ओहोहो!

अशुभ शरीर से द्वेष नहीं करता, जिसने निजस्वभाव देह से भिन्न जान लिया है। शरीर के रजकण-रजकण की पर्याय, उस ओर का लक्ष्य था, वह छूट गया है। लक्ष्य था सम्यग्दर्शन में लक्ष्य था आसक्ति का, आश्रय का लक्ष्य नहीं। आश्रय स्वभाव का है, परन्तु आसक्ति का था, वह आसक्ति शुभाशुभ की छूट गयी देह के प्रति की। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को ऐसा विकल्प आता है कि ऐसा आहार लूँ, ऐसी दवा हो, यह विकल्प है, इतना विषमभाव है। समझ में आया? संयम के निर्वाह के लिये भी आहार लेने का विकल्प, वह विषमभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह विषमभाव छूटकर निर्ग्रन्थ दृष्टि में निर्ग्रन्थदशा प्राप्त हुई, उसको देह की ममता छूट गयी, कहने में आता है। समझ में आया? **देह से भिन्न जान लिया है। देह तो जड़ है, आत्मा चैतन्य है, जड़ चैतन्य का क्या सम्बन्ध?** है? जड़-चैतन्य का क्या सम्बन्ध? यह अजीब है, वह चैतन्य भगवान है? सम्बन्ध क्या है? मेरा और उसका कुछ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी नहीं है। ऐसा छोड़कर स्वरूप में स्थिर होते हैं, उनको देह की ममता छोड़कर उपशमभाव प्राप्त किया, उसे निर्ग्रन्थ मुनि कहा जाता है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण १५, शुक्रवार, दिनांक - २१-०१-१९६६

गाथा - ५१-५२, प्रवचन - १०४

परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग, ५१वीं गाथा चलती है, इसका भावार्थ :- इन इन्द्रियों से जो सुख उत्पन्न हुआ है, वह दुःखरूप ही है। क्या कहते हैं ? जो यह पाँच इन्द्रिय जड़ है कि उसके विषय जो हैं संयोग, उनके लक्ष्य से उत्पन्न हुई जो कल्पना, इन्द्रियों के विषयों में सुख है — ऐसी कल्पना, वह दुःखरूप ही है।

मुमुक्षु : सुख या दुःख ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सुख माना है, वह दुःख है।

सुख, वह आत्मा के आनन्द में है। धर्मी जीव पाँच इन्द्रिय के विषयों में सुख मानता नहीं। समझ में आया ? देहादि की बात है न यहाँ ? देह की बात है, देह में इन्द्रियाँ लीं। इस देह में सुख है, ऐसा ज्ञानी मानता नहीं, क्योंकि देह जड़ है। उसमें पाँच इन्द्रियाँ जड़, उनका बाह्य में लक्ष्य होने से शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श को भोगने का विकल्प, वह कहीं जड़ को आत्मा भोग नहीं सकता, परन्तु उसमें मुझे सुख है, ऐसी मान्यता, वह दुःखरूप (है और) मिथ्यादृष्टि को होती है। समझ में आया ?

धर्मी को पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुख भासित नहीं होता। क्योंकि दुःखरूप ही है। देखो ! यह धर्मदृष्टि और मिथ्यादृष्टि की व्याख्या है। विशेष बात यहाँ उपशमभाव की है। मुनि को आसक्ति का भी त्याग है। यह विषय की सम्यग्दृष्टि को आत्मा में, धर्मी जीव को आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसा प्रेम और रुचि, दृष्टि हुई है। उसे चक्रवर्ती का राज हो या प्रतिकूल संयोग नरक के हों, उनकी ओर उसकी सुख-दुःख की बुद्धि उनके कारण से, ऐसा नहीं। सुख आत्मा में है और परसन्मुख के लक्ष्य में जरा विकल्प जो उठते हैं, वह सब दुःखरूपी विकल्प और भाव है। जरा अर्थात् ? आत्मा का भान है

कि मैं आनन्द हूँ, तथापि जो राग उठता है सम्यग्दृष्टि को, वह दुःखरूप है। वह सम्यग्दृष्टि को दुःखरूप भासित होता है। मुनि को वह भाव भी होता नहीं, इतनी बात यहाँ विशेष लेनी है। यहाँ उपशमभाव अधिक लेना है न? समझ में आया? देखो! यह धर्मी की दृष्टि में धर्म कहाँ है? कहते हैं कि प्रवचनसार... आधार देते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज का आधार। इसका तात्पर्य ऐसा है,... अन्दर श्लोक है।

सपरं बाधासहिदं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।

ज इंदिएहिं लब्धं तं सुखं दुःखमेव तदा ॥

इसका तात्पर्य ऐसा है कि जो इन्द्रियों से सुख प्राप्त होता है, वह सुख दुःखरूप ही है,... ओहोहो! यह छह खण्ड के राज हों चक्रवर्ती के, छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द हों नजर में, परन्तु उनमें ज्ञानी सुख नहीं मानता। कहो, समझ में आया? यह पैसे में करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़, पच्चीस करोड़ में कितना सुख होगा? उसमें तो सुख-दुःख नहीं, परन्तु उसमें मानता है कि मुझे इसमें सुख है, यह मान्यता ही मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की है। धर्मी को वह दृष्टि होती नहीं। आहाहा! जिसे देह के साथ एकताबुद्धि है, वह विषय के सुख को सुखरूप मानता है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? हमको यह मजा आता है। पैसा, इज्जत, कीर्ति की ओर लक्ष्य जाने पर, शरीर कोमल मक्खन जैसा आदि। कहते हैं कि भाई! वह तो जर्जरित माँस की हड्डियाँ और चमड़ा है।

मुमुक्षु : जर्जरित है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आया था या नहीं, जर्जरित आया था कहीं? अनुभवप्रकाश में नहीं आया था? क्या कहा जाता है यह? इसमें। योगसार में आज आया था सवेरे। इसमें आया था सवेरे, यह तो जर्जरित है। नौ द्वार बहते हैं। पेशाब, विष्टा, मैल, नाक, आँख (का मैल)। यह तो पायखाना है पायखाना। मैल के झरने का पायखाना है यह। भगवान् आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा है। धर्मी को आत्मा के आनन्द में आत्मा भासित होता है। उसे यह विषय में या शरीर में सुख भासित नहीं होता। आहाहा! गजब, भाई! कहो, समझ में आया इसमें? इसे धर्मी कहते हैं। ऐसे धर्मी नहीं बाहर से, यह क्रिया की और व्रत पालन किये और तप किये, (वह धर्मी नहीं)।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी धर्म नहीं उसमें, कहेंगे अभी बाद में। ५२ में। व्रत, अव्रत का भाव दोनों विकल्प और बन्ध का कारण है। अव्रत पाप के परिणाम हैं, व्रत पुण्य के परिणाम हैं। दोनों बन्धन है, दोनों धर्म नहीं और दोनों आत्मा के कल्याण के लिये नहीं। आहाहा! नहीं खबर इसे चैतन्यतत्त्व की। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव क्या कहते हैं और कैसे तत्त्व में क्या स्वरूप है, उसकी इसे खबर ही नहीं। मान बैठा ऐसा का ऐसा, हम कुछ करते हैं।

कहते हैं कि वह सुख दुःखरूप ही है,... लाख प्रकार की सुविधा बाहर की हो। समझ में आया? स्त्री अनुकूल हो, लक्ष्मी अनुकूल हो, मकान अनुकूल हो, सिर पर पंखा हवा का, धूल का घूमता हो, झूला में झूला खाता हो, सोने की सांकल में डाले हुए झूले में और ऐसे बैठे-बैठे अरबी के (भुजिया) और श्रीखण्ड चाटता हो। समझ में आया? कहते हैं कि उसका जो लक्ष्य करके विकल्प उठा है, वह दुःख ही है। आहाहा! उस दुःखतत्त्व को सुखतत्त्व मानना, उसका नाम मिथ्यादृष्टिपना, अज्ञानपना है। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं, वह सुख दुःखरूप ही है, क्योंकि वह सुख परवस्तु है,... है? परवस्तु अर्थात् विकल्प राग है, वह आत्मवस्तु नहीं। बाहर की सामग्री तो पर ही है, जड़ है, मिट्टी है। यह शरीर, पैसा, स्त्री, कुटुम्ब, यह देह, वह तो जड़ है। कर्म अन्दर है, वह जड़, मिट्टी, धूल है। परन्तु उस पर के लक्ष्य में जो राग हुआ कि यह ठीक है, वह राग स्वयं परवस्तु है, चैतन्य की वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह सुख परवस्तु है, निजवस्तु नहीं है,... आहाहा! धर्मदृष्टि अर्थात् कि आत्मदृष्टि; आत्मदृष्टि अर्थात् आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि। धर्मी को इन्द्र के पद में भी कहीं सुख भासित नहीं होता। पुण्य के फल में सुख नहीं भासित होता, ऐसा कहते हैं। तू तो वीतरागी समस्वभावी चैतन्य है, भाई! आत्मा उसे कहते हैं कि अरागी वीतरागी शुद्ध चैतन्यस्वरूप। वह तो समभावी आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा में आनन्द को मानकर जो दृष्टि सम्यक् प्रगट हो, उसे सम्यग्दर्शन और समभाव कहते हैं। विषमभाव

है, विषय के सुख में विकल्प होना, वह विषमभाव है। यह कहेंगे, देखो!

क्योंकि बाधासहित है,... वह विषयसुख एकरूप नहीं रहता। बीच में विघ्न आ जाते हैं, असाता का उदय आता है, धूल की सामग्री दिखती है, पाँच-पच्चीस लाख और स्त्री अनुकूल और जरा असाता का उदय आवे (तो) हाय... हाय... ! समझ में आया ? बाधासहित है। विघ्न एकदम आया। समाप्त। निर्धन, स्त्रीरहित अकेला। सामने कोई देखे नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : सामने तो देखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई सामने नहीं देखता। कौन सामने देखता था ? वहाँ पाप का उदय आवे तो सड़े शरीर, तो कोई सामने नहीं देखता। इसे छूना नहीं, चेप लगेगा। ऐई! सच्ची बात है ? चेप लगेगा। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत अधिक बने, हमारे अभी वह बना था। बड़ा भावसार था न एक उमराला में। गलित कोढ़ हो गया। ऐसे जैन स्थानकवासी था, परन्तु बेचारे को एक बार जरा माँस खाया गया। माँस खाया गया और एकदम शरीर में कोढ़। अब यह बात कहना किसे ? और दामनगर आया था तो एकान्त में कहा कि महाराज ! मुझे कोढ़ हुआ है न, मुझसे माँस खाया गया है। एकदम कोढ़, एकदम कोढ़। फिर तो यह शरीर... मौनजी-मौनजी। अपना पहला समयसार उसको ही भेजा। यह समयसार प्रकाशित हुआ था न। पहला-पहला उसने लोगों का... क्या कहलाता है ? पहला-पहला उसने कहा, मुझे महाराज पहले भेजना, हों ! मुझे मरने की अन्तिम स्थिति है। समयसार पहले (संवत्) १९९७। ९७ में प्रकाशित हुआ न पहले यह ? दहाड़ी करे, वह क्या कहलाता है ? खास। खास आदमी (COURIER) करके भेजा था यहाँ उमराला, पहला समयसार। ऐसे बेचारे को प्रेम और रस। अरे ! मैंने मेरा... यह किसे कहना कि मैं जैन स्थानकवासी भावसार। मुझसे एक बार माँस खाया गया। खाया गया और एकदम उठा शरीर में फटा सर्वत्र रोग। अन्त में तो उसे ऐसी-ऐसी ईयळ फिरती है, ऐसा उसे लगे। पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... घर की स्त्रियाँ, पुत्र, उनकी थालियाँ अलग। छुए नहीं कोई। ऐसी व्याधि और

ऐसी पीड़ा। हम आहार लेने जाते, वहाँ वह बेचारा एक ओर बैठा हो। यह बात नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि वह प्रतिकूलता आवे, वहाँ उसे असाता का उदय आने पर उसे बाधा, विघ्न पड़ जाता है। धूल में भी उसमें सुख नहीं, मुफ्त में होली करके माना है। मोहनभाई! कैसे होगा? जेचन्दभाई! यह सुविधा हो, उसे दुःख है, ऐसा कहना है यहाँ। असुविधा के कारण से नहीं, वह तो मूढ़ मानता है मुफ्त का, ऐसा कहते हैं। क्या करे परन्तु? उलझ गये हैं। समझ में आया?

कहते हैं, बाधासहित है। ऐसे ढेर हों तो हाय... हाय... अब? क्षय हो गया। कैंसर हुआ है। दस लाख, बीस लाख रुपये हैं न! कुछ नहीं खाया जाता। पानी धीरे-धीरे पीना। एकदम पियोगे तो वहाँ वह होगा। पानी लोटा लेना नहीं, अनाज लेना नहीं। यदि कण घुस गया और सड़ा तो पीड़ा होगी। हाय... हाय...! दवा की गोली अटके। सुना है? यह कैंसर हो न, बारीक गोली ले तो वहाँ अटक जाये एकदम, क्योंकि छिद्र पड़ गया हो थोड़ा। वह लेने जाये गले तो वहाँ अटके, अटके और सड़े। आहाहा! ऐई! धर्मचन्दजी! यह डॉक्टर-वॉक्टर क्या सहायक होते होंगे वहाँ?

मुमुक्षु : दवा दे तो होना हो तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी हो नहीं। दवा दे तो क्या हो?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे करावे, डॉक्टर से छिद्र करवावे। आहाहा!

भाई! यहाँ तो कहते हैं कि अतीन्द्रिय अखण्ड ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा है न, भाई! वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर के ज्ञान में देखा कि भाई! तू तो अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर आत्मा है, भाई! उसकी अन्तरदृष्टि कर, उसमें आनन्द है, उसे मान। यदि इस विषय में, सुख में आनन्द माना, मूढ़ मिथ्यादृष्टि तेरी पापबुद्धि है। आहाहा! तेरी तत्त्व में भूल हुई। जो दुःखरूप भाव आस्रव है, उसे तू सुखरूप मानता है कि इसमें मुझे सुख है। गजब बात, भाई! यह तो अभी यथार्थ दृष्टि का विषय क्या और दृष्टि विरुद्ध क्या, उसकी बात करते हैं।

निराबाध नहीं है,... एकरूप रहनेवाले नहीं है। और एकरूप रहे तो उसकी

कल्पना उसके ओर का अकेला दुःख ही है। कैसे होगा इसमें ? फूलचन्दभाई ! नाश के लिए हुए है, ... नाश हो जाये। हाय... हाय... ! अकेला तड़पे फिर। अरे ! मेरा कमाया मुझे खाया नहीं जाये ! ऐसा बोले वापस। मैंने पाप किये, मैंने यह सब इकट्ठा किया, यह सब खाते हैं, हलुवा और पूड़ियाँ उड़ाते हैं, मुझे कुछ नहीं ! धूल में भी किया नहीं, सुन न अब ! तूने तो विकार और राग किया था तब। क्या किया था ? धूल तुझसे प्राप्त हुई है यह ? परन्तु मूढ़ को तत्त्व की खबर नहीं होती। क्या तत्त्व अपने आप आये। उसकी कल्पना तूने की थी। कुछ किया नहीं था तूने। अरे ! हमको भोगने का काल आया। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। नियम लो नियम, कहा। किसी ने कहा। अपने को तो आदत नहीं कहने की। मैं गया था तो भी किसी ने कहा कि महाराज आये हैं। कितने लोग देखो ऐसे। तुमको महाराज के प्रति बहुत प्रेम है सबकी अपेक्षा। इसलिए नियम लो। वह कहे मैंने कहा न। भाई ! हमको अवसर आया और नियम क्या करते हो मुफ्त के ? उम्र ६५-७० की हुई। लड़के अच्छे हुए और पैसे-बैसे ठीक, पलंग-बलंग घर में आये हुए। होली वह मेरा परन्तु यह ! और वापस प्रौषध और प्रतिक्रमण करे, उसमें धर्म माने। धूल में भी धर्म नहीं तुझे प्रौषध, प्रतिक्रमण धर्म कैसे ? वह तो राग है जरा शुभभाव किया हो तो। समझ में आया ?

मुमुक्षु : कोई कहनेवाला नहीं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो भगवान तीर्थकर अनन्त काल से कहते आते हैं। अनन्त काल से केवली परमात्मा परमेश्वर कहते आते हैं अनन्त काल से। सन्त अनादि काल से कहते आते हैं। देखो न यह दो हजार वर्ष हुए, यह ९०० वर्ष पहले। ये कुन्दकुन्दाचार्य।

नाश के लिए हुए हैं, जिसका नाश हो जाता है, बन्ध का कारण है, ... वह बन्ध का कारण है... आहाहा ! भगवान ! तेरा स्वभाव तो अतीन्द्रिय आनन्द है न ! तेरे आनन्द की एक दृष्टि करने से तुझे आनन्द झरे, ऐसा आत्मा है। आहाहा ! समझ में आया ? और यह पर में आनन्द इन्द्रासन में भी माने, वह दुःख का-बन्ध का कारण है। आहाहा ! कहो, यह मकान, यह किया हो न पॉलिस लकड़ी। क्या ? पॉलिस कहे न ? क्या

कहलाता है वह ? सीढ़ियाँ। भूल जाते हैं तुम्हारे (नाम)। ऐसे सीढ़ियों में पॉलिस और उसके उस हाथ में पकड़ने का वह लकड़ा हो न लम्बा, वह पॉलिश और कोमल-कोमल ऐसा सब लगे चारों ओर। कपड़े-बपड़े कोमल और मक्खन जैसे और शरीर मक्खन जैसा और खाने-पीने के मक्खन जैसे ऐसे मावा उड़े और ऐसे मानो कि आहाहा! कहते हैं कि मूढ़! तुझे उसमें कल्पना हुई है कि सुख है, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! नेमिदासभाई! यह सच्चा होगा यह ? आहाहा! अरे प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर स्वभाव है न, भाई! यह आत्मा है, हों! यह आत्मा में वह दुःख नहीं होता। दुःख तो तूने कल्पना खड़ी की है सुख की, उसका नाम दुःख है। भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर तत्त्व है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द में आनन्द न मानकर यह विषयसुख में तूने आनन्द माना, भाई! वह बन्ध का कारण है और उसे तू ठीक मानता है, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसे हम प्रौषध करते हैं, अपवास करते हैं, फलाना करते हैं, ढींकणा करते हैं, ऐसा माने और माने कि यह सब खाये-पीये उसमें सुख है। मूढ़ हो, मिथ्यादृष्टि हो, अपवास कैसे और तपस्या कैसी तेरे ? ऐई! आहाहा!

और विषम है। एक सरीखा नहीं रहता, ऐसा। विषम अर्थात् एक सरीखा नहीं रहता और घड़ीक में हीन हो जाता है, ओहोहो! एक भव में कितनी बार कितनों को उतार-चढ़ाव होता है। होता है या नहीं ? आवे और जावे, घड़ीक में आवे और घड़ीक में जाये। ऐसा हो जाये, ओहोहो! खम्मा... खम्मा... करे वहाँ और पाँच वर्ष वहाँ घूमे। अनित्य वस्तु, इसलिए फिर बदल जाये। और पाँच वर्ष में अच्छा हो। ऐसा माने, हों! अच्छा तो कुछ धूल भी नहीं। अच्छा हो तो मानता है न उसे। ऐसे करोड़ रुपये हैं और पाँच करोड़ हो और हाथ में लकड़ी लेकर चलता था। एक करोड़ (हुए), वहाँ लकड़ी छोड़ दी। ऐसे को हमने नजरों से देखा है। बहुत देखे हुए नजरों से हमने। जो पहले लकड़ी लेकर चलते पैसे गये तब। उसमें पैसे आये और लकड़ी छोड़कर चले, जवानी आ जाये अन्दर। पागल वह भी कहीं। यहाँ सब हमारे तो गाँव, ठाम, नाम की खबर हो न सब। पागल व्यक्ति है, यह मूर्ख है, कहा यह वह। क्या हो गया परन्तु उसमें वहाँ ?

सोने का कन्दोरा, हों! वापस ऐसे कमर में पतले वस्त्र फर्स्टक्लास, सोना का कन्दोरा ऐसे डाला हो, वह क्या कहलाता है? खेस फर्स्टक्लास। ऐसा जरीवाला होन न यहाँ कारीगरीवाला सामने ऐसे। ऐई! न्यालभाई! आहाहा! हम तो बैठे हो न उपाश्रय में, तब निकले। अरेरे! कहा, यह देखो न! क्या स्थिति जीव की? कहाँ मानकर बैठा, कहाँ अटका है? वीतराग के मार्ग में हम हैं और वीतराग के भक्त हैं, ऐसा माने। भगवान की पूजा करने जाये वापस ऐसे हाथ में थैली लेकर। थैली हो न अच्छी और उसमें चावल और बादाम। परन्तु ... क्या है परन्तु यह? अभी तेरी दृष्टि तो पूरी झूठी है।

मुमुक्षु : भगवान भला करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भगवान क्या धूल करे? भगवान तो वहाँ रहा। वह भगवान यहाँ कहाँ भला करे ऐसा है? दूसरा भगवान कोई भला करे ऐसा है? कर्ता है कोई? ईश्वर कर्ता है किसी का? भगवान तो ज्ञाता, सर्वज्ञ है, वे तो परमात्मा हैं। वे तो तीन काल-तीन लोक की बात जानते हैं। वे कहीं किसी के कर्ता हैं? दे देवे, ऐसा है किसी को? समझ में आया? मोहनभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ हमारे नाटक देखने के बहुत हों न। बहुत देखने को मिले। आहाहा! कितने ही तो ऐसे फाट-फाट शरीर कुछ अच्छा हो न, बस! हम ही बड़े। इतना तिलक करे एक व्यक्ति बड़ा। क्या कहलाये? केसर का बड़ा तिलक। व्यभिचारी, झूठ बोलनेवाला, दगाखोर, इतने बुरे काम करे। कहा, यह देखो न, धर्मी नाम धरावे। तिलक इतना बड़ा। यहाँ कहते हैं, भाई! यह तिलक-बिलक में नहीं, सुन न। यह तिलक आत्मा अखण्डानन्द ज्ञानमूर्ति प्रभु पुण्य-पाप के विकार रहित है, ऐसी अन्तर दृष्टि किये बिना सम्यग्दर्शन का तिलक लागू पड़े, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो कहते हैं कि सुख में ऐसे जरा शरीर हो, पैसा हो तो कहे हम सुखी हैं, हों! बहुत सुखी। लोग ऐसा कहे न कि भाई तुम्हारे फलाना सुखी थे।

इसलिए इन्द्रियसुख दुःखरूप ही है, ऐसा इस गाथा में जिसका लक्षण कहा गया है, ऐसे देहजनित सुख को मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से छोड़े।

धर्मी जीव इस देह के निमित्त से होते सुख की कल्पना मन से, वाणी से, देह से, करना, कराना, अनुमोदन से छोड़े। नौ-नौ कोटि से कल्पना छोड़े, ऐसा कहते हैं। विशेष यहाँ तो स्थिरता (की) बात लेते हैं न। **वीतरागनिर्विकल्पसमाधि के बल से...** भगवान् आत्मा **आकुलतारहित परमसुख निज परमात्मा में स्थित होकर...** परम सुखरूप। आत्मा... भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, यह बहुत सूक्ष्म है।

कहते हैं, आत्मा अनन्त आनन्द का सागर भगवान् उसमें यह सुख-दुःख की कल्पनारहित चीज़, उसके अन्दर रागरहित दृष्टि करके निर्विकल्प अर्थात् अभेद शान्ति अन्दर में वेदन हो, उसके बल से आकुलतारहित होता है। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि के अनुभव से, स्थिरता से आकुलतारहित होता है। **परमसुखरूप निज परमात्मा में स्थित होकर...** ऐसा भगवान् आत्मा परम शान्तरस की शिला, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द। जड़ी-बूटी होती है न जड़ी-बूटी कितनी ही। छोटी ऐसी हो परन्तु उसे खाने से पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक भूख न लगे। महीने-महीने तक (खाये नहीं)। बाबा होते हैं न जंगल में। कितने ही रजकण ऐसी रचना से रच गये होते हैं कि उसे एक इतना टुकड़ा पाव भार खाये तो महीने तक खाना न पड़े, ऐसे रजकण होते हैं। स्कन्ध। यह एक स्कन्ध ऐसा है चैतन्य आनन्दकन्द, कहते हैं कि उसमें दृष्टि देने से, एकाग्र होने से तो उसे आनन्द की जमावट हो, ऐसी है। आहाहा! समझ में आया? यह अनादि की आकुलता टल जाये ऐसी, ऐसा कहते हैं। देखो न! आकुलतारहित कहा न? वह जड़ी-बूटी आत्मा ऐसी है कि एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में आत्मा वीतरागी निराकुल आनन्द का कन्द है। उसे रागरहित दृष्टि करके निर्विकल्प अभेद शान्ति में स्थिर हो, तुझे आकुलता टल जायेगी। पर में सुख-दुःख भासित नहीं होगा। समझ में आया?

जो महामुनि देह से भिन्न अपने शुद्धात्मा को जानता है,... विशेष मुनि से बात ली है। आसक्ति का भी त्याग है मुनि को, ऐसा। सम्यग्दृष्टि को आत्मा में आनन्द है, पर में सुख मानता नहीं, परन्तु उसे जरा आसक्ति का भाग सम्यग्दृष्टि को होता है। आसक्ति; रुचि नहीं। भगवान् आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसा अनुभव दृष्टि हो, परन्तु मुनि को जैसा आसक्तिरहित वीतराग अनुभव है, ऐसा अनुभव सम्यग्दृष्टि को नहीं होता।

इसलिए यहाँ विशेष समभाव वर्णन करने के लिये यह आसक्ति का भी अभाव करके स्वरूप में आनन्द में स्थिर होता है, वह शुद्धात्मा इस प्रकार से जानता है। वही देह के ऊपर राग-द्वेष नहीं करता। सम्यग्दृष्टि देह के कारण से सुख-दुःख है, ऐसे तो राग-द्वेष करता नहीं, परन्तु निर्बलता के कारण से सम्यग्दृष्टि को राग-द्वेष होते हैं, मुनि को वे भी नहीं होते। यह मुनिपना। ओहोहो! समझ में आया ?

जो सब तरह देह से निर्ममत्व होकर देह से सुख को नहीं अनुभवता, उसी के लिए यह व्याख्यान शोभा देता है, और देहबुद्धिवालों को नहीं शोभता, ऐसा अभिप्राय जानना। व्याख्यान अर्थात् यह वस्तु का स्वरूप। आत्मा में आनन्द माननेवाला आनन्द की दृष्टि से अनुभव करनेवाला, अनुभव करके आकुलता और देह की ममता छोड़े, उसे यह भाव शोभा देता है। समझ में आया ? यहाँ तो आसक्ति का भी अभाव करके वीतराग परमानन्द में आत्मा झूले, उसे मुनि कहा जाता है, उसका नाम मुनिपना। मुनिपना कहीं बाहर के क्रियाकाण्ड और नग्न हो जाये और वस्त्र बदले, इसलिए मुनिपना, ऐसा नहीं है। भाई ने ऐसा कहा, यह मुनिपने की व्याख्या आयी। कल गये लगते हैं। बैठे हैं।

यहाँ तो मुनिपना और आत्मदर्शन कैसा, उसकी श्रद्धा कराते हैं। ऐई! मोहनभाई! लोग मान बैठते हैं न, मुनि बाहर से त्याग करे वे मुनि। ऐसे मुनि नहीं। मुनि तो उसे कहते हैं कि जिसकी देह के एक रजकण की क्रिया भी मेरी नहीं और महाव्रत का विकल्प उठे, वह भी बन्ध का कारण है, वह धर्म नहीं और वह राग छोड़कर स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द में स्थिर हो, उसे आकुलता टले, उसे मुनि कहा जाता है। आहाहा! अभी मुनिपने की श्रद्धा की खबर नहीं होती। चाहे जो मुनि। बाहर से नग्न हो गये और वे वस्त्र बदले, जय महाराज। समझ में आया ? यह पहचान कराते हैं कि श्रद्धा तो कर अभी सच्ची। जिसे शरीर की अनुकूलता में और बाहर की इज्जत-कीर्ति में सुखबुद्धि उत्पन्न होती है, वह मिथ्यादृष्टि है, सम्यग्दृष्टि नहीं। और मुनि को तो बाह्य के अनुकूल-प्रतिकूल संयोग में आसक्ति भी उत्पन्न नहीं होती। अतीन्द्रिय आनन्द की शान्ति उत्पन्न होती है। अतीन्द्रिय आनन्द। उसे भगवान सन्त और साधु कहते हैं, उसे गुरु निर्ग्रन्थ कहते हैं। ऐसे निर्ग्रन्थ गुरु को मानना, तब उसकी व्यवहार श्रद्धा सच्ची कहलाती है।

समझ में आया? ऐसा बोलते हैं कि कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व, साधु को कुसाधु (माने तो मिथ्यात्व)। नहीं बोलते? आकड़ा में आता है पहाड़े में। सम्प्रदाय के पहाड़े में कहा है न। अर्थ की खबर नहीं। भगवान जाने वह तो लेखन में रह गया, जाओ।

कहते हैं, अहो! जिसे देह मेरी, देह की क्रिया मैं करता हूँ—ऐसे को मिथ्यादृष्टि को यह व्याख्यान शोभता नहीं। जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व है, अज्ञान है। देह की क्रिया मैं करता हूँ, वाणी मैं बोलता हूँ, उपदेश मैं देता हूँ और उपदेश देने में जो राग होता है, वह मुझे लाभदायक है—ऐसा जो मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। उसे तो सम्यग्दर्शन भी नहीं। परन्तु सम्यग्दर्शन के बाद भी जितना विकल्प उठता है, वह भी बन्ध का ही कारण है, ऐसा जानकर उसे छोड़कर अन्दर स्थिर होता है, परम शान्तरस में स्थिर होता है, उसे मुनि साधु जैन परमेश्वर की स्थिति में गिनने में आता है। अन्य में तो है ही कहाँ? समझ में आया? आहा! अब जरा कठिन बात इतनी थोड़ी (करते हैं)। यहाँ तो वस्तु की स्थिति क्या है, उसका सम्यग्दर्शन क्या, सम्यग्ज्ञान क्या और सम्यक्चारित्र (क्या), इनकी—तीनों की व्याख्या है।

★ ★ ★

गाथा - ५२

आगे प्रवृत्ति और निवृत्ति में भी महामुनि राग-द्वेष नहीं करता, ऐसा कहते हैं। देखो! सम्यग्दृष्टि अशुभ का भाव छोड़े और शुभभाव आवे, ऐसी प्रवृत्ति शुभ की हो और अशुभ की निवृत्ति हो, परन्तु वह सम्यग्दृष्टि शुभ को धर्म मानता नहीं। मुनि को वह शुभ प्रवृत्ति ही नहीं होती। अशुभ से निवृत्ति और शुभ की प्रवृत्ति, दोनों का अभाव होकर स्वरूप में स्थिर होते हैं, उन्हें मुनिपना वीतरागी शान्तरस में झूलनेवाले कहा जाता है। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो, योगीन्द्रदेव। ५२ गाथा।

१७९) वित्ति-णिवित्तिहिं परम-मुणि देसु वि करण ण राउ।
बन्धहँ हेउ वियाणियउ एयहँ जेण सहाउ॥५२॥

धर्मात्मा महामुनि... वृत्ति अर्थात् प्रवृत्ति। शुभराग की व्रत की प्रवृत्ति। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का भाव, वह शुभ प्रवृत्ति के परिणाम राग के हैं। समझ में आया निवृत्ति—अशुभ से निवृत्ति। वह राग और द्वेष है। अशुभ से निवृत्ति, शुभ में प्रवृत्ति। अव्रत से निवृत्ति और व्रत में प्रवृत्ति, दोनों राग और द्वेष है। आहाहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि पहले से मानता है। यहाँ तो यह दोनों व्रत-अव्रत के विकल्परहित होकर स्वरूप में स्थिर हो परम शान्तरस में, उसे मुनिपना और उसे साधुपना कहा जाता है। वह नौ तत्त्व में संवर, निर्जरा की ऐसी दशा सन्तों को होती है, ऐसी इसे पहिचान कराते हैं। समझ में आया ?

राग और द्वेष को नहीं करता, जिसने इन दोनों का स्वभाव कर्मबन्ध का कारण जान लिया है। देखो! व्रत का भाव और अव्रत का भाव, दोनों बन्ध का कारण सम्यग्दृष्टि ने जाना है। धर्मी पहली श्रेणी का सम्यग्दृष्टि जैन, उसने व्रत और अव्रत के दोनों परिणाम को बन्ध का कारण जाना है। पंच महाव्रत के परिणाम पुण्यबन्ध का कारण, अव्रत के परिणाम पापबन्ध का कारण। यहाँ तो अब वह चिल्लाहट मचाते हैं भाई! सवेरे कल आया न! ऋषभदेव भगवान से लेकर... अरे, भगवान! सुन बापू! तूने बहुत अभी से माँड़ी। अभी तक यह पुण्य की क्रिया को धर्म मानते थे और यह कानजीस्वामी कहे, धर्म नहीं। भाई! हमारे घर की बात तो (है नहीं), यह है तो घर की परन्तु अनादि तीर्थकर की कही हुई है। आहाहा! खबर नहीं होती, खबर नहीं होती। आहाहा! यह मिथ्यादृष्टि सहित के व्रत वापस। दृष्टि का तो भान भी नहीं होता और थोड़ा सा यह अहिंसा पालन करे और दया पालन करे, व्रत पालन किये, (उसे धर्म माने)। उसे तो व्रत भी कहा है व्यवहार से भी? समझ में आया? कठिन बातें हैं, भाई!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकर का मार्ग समझना, एक सेकेण्ड मात्र समझने से जिसके जन्म-मरण का नाश हो, वह कुछ दूसरा। दूसरे के साथ मिलान हो, ऐसा नहीं है। वीतराग सर्वज्ञ मार्ग, ऐसा दूसरा मार्ग तीन काल में कहीं नहीं हो सकता। समझ में आया? वह आता है न, आज एक कुछ आया था। उस रजनीश का, नहीं? भाई! रजनीश का। वह व्याख्यान—भाषण देता है न। लोग बेचारे उलझ जाते हैं, वीतराग के

मार्ग की खबर नहीं होती। पारस्परिक... वह कहे उसमें उसने विचारा था, वह कहे मैंने उसे सुना था। अब सुन न, उसे तो जैनदर्शन क्या है, इसकी खबर नहीं उसे। समझ में आया? भाषण देता है न वहाँ मुम्बई। मुम्बई में बहुत इकट्ठे होते हैं। आहा! अरे भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ने कहा हुआ आत्मा और उन्होंने कहे हुए तत्त्व, उन्हें समझना जगत को महाकठिन है। ऐसी बात अन्यत्र कहीं (नहीं)... भले दूसरे बातें करे कि आत्मा ऐसा निर्विकल्प। क्या परन्तु? अभी आत्मा कैसा है, (ऐसे) द्रव्य वस्तु के भान बिना निर्विकल्प कहाँ से होता था? आहाहा! निर्विकल्प हो जाना, हों! विकल्प छोड़ दो। परन्तु विकल्प छोड़ना तो जाना कहाँ? कौन चीज़ है अन्दर? समझ में आया? नास्ति से बातें करे, बस राग छोड़ो, परन्तु छोड़कर फिर कौन सी चीज़ है कि अन्दर जाना? कोई पोला-पोला है कहीं? कुछ है या नहीं?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त-अनन्त गुण का रसकन्द पिण्ड, ऐसा आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? शुद्ध अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त बल-वीर्य, ऐसी अनन्त प्रभुता, अनन्त स्वच्छता, अनन्त विभुता, अनन्त कर्ता, कर्म आदि शक्तियाँ जो आत्मद्रव्य में त्रिकाल अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसी अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में। ऐसा भगवान एकरूप आत्मा, उसे पर से—विकल्प से पृथक् करके अन्तर दृष्टि अनुभव की करना, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! ऐसा लो! बेचारे को छोड़ दो, ऐसा करो। परन्तु क्या समभाव करे? यहाँ तो पहले वस्तु कही थी, भाई! कि वस्तु ऐसी है। यह पहले भाग में बहुत वर्णन किया था और पश्चात् इस उपशमभाव का वर्णन करते हैं।

मुमुक्षु : बताया था न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। छह द्रव्य को, नौ तत्त्व को बराबर माने, जाने। छह द्रव्य है, भगवान ने देखे हुए छह द्रव्य हैं। अकेला आत्मा-बात्मा नहीं। और वे अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त परमाणु हैं, असंख्य कालाणु हैं, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति और एक आकाश। छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं। उन छह द्रव्य की श्रद्धा करे, तब तो अभी शुभराग कहलाता है। उसमें से अकेला आत्मा छाँटकर अन्दर निवृत्ति श्रद्धा, ज्ञान की करे, तब

उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! अभी छह द्रव्य की श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता, उसे आत्मा की श्रद्धा कहाँ से आती थी? समझ में आया? छह द्रव्य का विस्तार नौ तत्त्व। उन नौ तत्त्व की बराबर श्रद्धा करे राग से, तब अभी शुभराग है, वह अभी सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! ऐई, मोहनभाई!

भगवान परमात्मा परमेश्वर त्रिलोकनाथ का मार्ग वीतरागस्वरूप से था, उसे मारकर तोड़-मरोड़कर राग और विकार में जोड़ दिया। भान नहीं होता। काल तो हुआ था ऐसा कि अरे! न हो गणधर, न हो इन्द्र, न हो किसी को यहाँ अवधिज्ञान बढ़ा कि जिससे एकदम साक्षी करके बतावे कि देखो यह! अरे! यह क्या करते हैं यह? भगवान गणधर विराजते हैं वहाँ महाविदेह में भगवान के निकट। सीमन्धर भगवान विराजते हैं। महाविदेह में विराजते हैं अभी, उनके पास गणधर विराजते हैं। चार ज्ञान के धनी हैं, चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करे, ऐसे मनुष्यरूप से विराजते हैं। मनुष्य देह में, हों! उस क्षेत्र पर। महाविदेहक्षेत्र है न दूर? वहाँ रोकेट-बोकेट जाये नहीं वहाँ, हों! जमीन के ऊपर बहुत दूर है। गणधर आते नहीं कहा यहाँ, भगवान तो न आवे, ऐसा हुआ। रात्रि को सब चर्चा के बाद उठे थे न जब। रात्रि को नहीं उठे तब? गणधर को खबर पड़े तो आवे नहीं, इन्द्रों को खबर पड़े तो आवे नहीं, महाराज! यह गजब हो गया है चारों ओर। और यहाँ पर किसी को अवधिज्ञान नहीं होता, अवधिज्ञान होवे तो उसे मन की बात करे, भव की बात करे,... करे तो कुछ और... अरे! क्या करता है, प्रभु? तू क्या करता है? भाई! यह मार्ग पूरा अखण्डानन्द प्रभु वह पुण्य-पाप के विकल्परहित चीज है, उसकी दृष्टि से महाधर्म शुरु होता है, बाकी मर जाये, सूख जाये तो कोई धर्म शुरु नहीं होता।

मुमुक्षु : भगवान के प्रतिनिधि के पास.....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! प्रतिनिधि परन्तु यहाँ सामर्थ्य कहाँ है ऐसी किसी की सामने को (कहे कि) देखो इसका भाव यह है, देखो इसका यह भव का पूर्व भव है, वह भव यह है—ऐसी है सामर्थ्य कहीं? सामनेवाले को प्रत्यक्ष हो, ऐसी सामर्थ्य है? ऐसा कहना है यहाँ तो।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा-ज्ञान से कहे, परन्तु उसमें कोई वे विरोध करे, उन्हें भी कहे, देख भाई! ऐसा है, बापू! रहने दे, भाई! देख, यह ले तेरे भाव...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक बात ... बात यह विकल्प आवे, तब ऐसा आवे न! आहाहा! फिर रात्रि में तो ऐसा सब आ गया था, थोड़ा कहा था न, कहा था न? कहा नहीं था? कि चम्पाबहिन बहुत निवृत्तिवाले को अवधिज्ञान हो जाये तो यह बहुत हो जाये। हाँ, ऐसा हुआ था रात्रि को। रात्रि (चर्चा) में कहा था। बहिन को एक तो मानो निवृत्ति बहुत और बहुत ... उसमें से यदि हो जाये तो, आहाहा! ऐई! अमुक शक्ति तो बहुत है, परन्तु यह एक उसमें से ऐसा हो जाये तो... भाई! यह एक बात आयी थी, विकल्प (आया था)। कहा था। चन्दुभाई को कहा था न? यहाँ से उठकर अन्दर गये तब, हों! आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसा परम सत्य है, बापू! नकार करना रहने दे, निषेध करना रहने दे। आहाहा! यहाँ तक रखा कि हमारे ऋषभदेव भगवान से चला आता है, ऐसा धर्म, भरत में धर्म माननेवाले कानजीस्वामी हैं। अररर! ऐ न्यालभाई! आहाहा! अरे भगवान! देखो! यहाँ क्या कहते हैं?

यह योगीन्द्रदेव आचार्य नौ सौ वर्ष पहले महा दिगम्बर सन्त जंगल में रहनेवाले कहते हैं, देखो! इन दोनों का स्वभाव कर्मबन्ध का कारण जान लिया है। व्रत और अव्रत दोनों बन्ध का कारण है। आहाहा! व्रत और अव्रत के रागरहित आत्मा के अन्तर दृष्टिसहित की अनुभव स्थिरता का नाम धर्म है। लोगों ने सुना नहीं। मारकर कुछ का कुछ कर डाला। कहो, समझ में आया इसमें? ऐ न्यालभाई! यहाँ सब बाद में जगे धीरे-धीरे। यह बड़े व्यक्ति हों, जरा पहले से हों तो जरा सहारा हो न। गाँव के लोग कहे कि भाई! ऐसा है, वैसा है। आहाहा! अरे! उसने हमारे कहा तो ऐसा हो गया अन्दर। अरे! भगवान क्या कहते हो? कि कानजीस्वामी ने अभी तक ऋषभदेव भगवान से लेकर यह व्रत और तप में धर्म मानते थे और वही धर्म था, उसका लोप कर दिया कि वह धर्म नहीं। बात सच्ची है, परन्तु तू कहता है ऐसा वीतराग नहीं कहते थे।

यह क्या कहते हैं यह ? यह गाथा किसकी बनायी हुई है, घर की ? यह योगीन्द्रदेव और उनके पहले कुन्दकुन्दाचार्य ने दो हजार वर्ष पहले उन्होंने कहा कि व्रत और अव्रत दोनों विकल्प का राग है। अहिंसा पालने का भाव, वह राग है। यह स्पष्टीकरण इसमें कहेंगे। क्योंकि दया पालना, ऐसा भाव वह शुभराग है। हिंसा नहीं करना, ऐसा ऐसे निषेध भाव, वह प्रवृत्ति का अभाव है। निवृत्ति-प्रवृत्ति। उस प्रकार की निवृत्ति होती है, ऐसी प्रवृत्ति होती है। दया पालना अहिंसा का विकल्प उठे, वह प्रवृत्ति राग है, बन्ध का कारण है। आहाहा ! अब उसे धर्म माने और सबको—लोगों को ठीक पड़े सरल-सरल, जाओं यह हो गया। यह पैसेवालों को कुछ दान का कहे तो तुम्हारे दान हो तो धर्म हो। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न अब। तेरे करोड़ दे देवे तो क्या, राग मन्द हो, कदाचित् पुण्य हो। धर्म-बर्म हराम इससे (हो)।

मुमुक्षु : अभी के धर्म माने तो लाभ हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व हो। यह लोगों को कठोर लगता है। भाई ! तो पैसेवाले को धर्म हो जाये तो गरीबों को रोना पड़े, पैसा खोजना पड़े। चल बापू ! मुझे कुछ दान करना है धर्म हो मुझे। पैसा दो। अरे ! धूल, पैसे से धर्म होता होगा ? तेरे करोड़ दे देवे और पाँच करोड़ दे देवे, (उसमें) कदाचित् ममता घटाये (तो) शुभभाव होता है, पुण्य होता है; धर्म-बर्म हराम दान द्वारा, पैसे द्वारा (होवे तो)। अरे ! मुनि सत्य सच्चे धर्मात्मा को दान देने का भाव भी पुण्य है, धर्म-बर्म नहीं। ऐई ! भाई ! ऐसा नग्न (सत्य)। वीतराग की बात, बापू ! वीतराग तो ऐसे हैं कि दुनिया को कहीं किसी के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं। दूसरे द्रव्य को आहार देने का भाव सन्त-मुनि को, अरे ! साक्षात् तीर्थकरदेव जब छद्मस्थ हों और उन्हें आहार देने का भाव समकित्ता को हो और हो, (वह) पुण्य है, बन्ध का कारण है। परद्रव्य के आश्रय से संवर-निर्जरा तीन काल-तीन लोक में हो नहीं सकती। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, आहा ! देखो न, गाथा कैसी आयी है ! पुण्य और पाप, यह व्रत और अव्रत... देखो ! **भावार्थ :-** व्रत-अव्रत में परम मुनि राग-द्वेष नहीं करता... है भावार्थ ? पहला ही बोल। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का विकल्प है, वह

शुभराग है। वह संवर नहीं, धर्म नहीं, निर्जरा नहीं, सच्चा ज्ञान नहीं। उसे धर्म माने, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! गजब परन्तु। ऐ फूलचन्दभाई! ऐसे तो थोड़े उसके मेरे हाँ.. हाँ... करते हैं, ऐसा कहते हैं। यह रामजीभाई जैसे को सबको उड़ाते हैं सब, लो! मूर्ख होंगे उसमें हाँ करनेवाले। उनके नेता उन्हें ऐसे हाँ... हाँ... करके उनकी भूल निकलने नहीं देते। अरे! भगवान! बापू! तू भी सही, बापू! आहाहा! यह सुनने आवे तो भी समझे नहीं, हों! यह ऐसी विपरीतता घुस गयी है। विरोध ही करे।

व्रत-अव्रत में परम मुनि राग-द्वेष नहीं करता। जिसने इन दोनों का स्वभाव बन्ध का कारण जान लिया है। है? सम्यग्दर्शन हुआ, तब से व्रत का विकल्प उठे कि यह दया, दान, व्रत और सत्य बोलूँ और ऐसा बोलूँ और ब्रह्मचर्य शरीर से पालन करूँ, यह सब शुभराग बन्ध का कारण है और अत्यागभाव, अव्रत का भाव, वह पापभाव है। समझ में आया? हिंसा का, झूठा का, चोरी का, विषयभोग का और परिग्रह का भाव, वह पाप है। उसकी निवृत्ति के—त्याग का भाव, ऐसा विकल्प, वह पुण्य। दोनों के रहित का आत्मा के स्वरूप की दृष्टि और स्थिरता, वह धर्म है। आहाहा! जगत को भारी कठिन। यह तो लोगों को सुनने को ही मुश्किल पड़े यह तो। और उसमें तो लोग दस-दस हजार, बीस-बीस हजार लोग इकट्ठे हों। लौकिक बातें हों और लोग, ओहोहो! हो अकेली अधर्म की बातें। समझ में आया? आहाहा!

है इसमें लिखा हुआ? कब की है यह पुस्तक, किसकी है यह? योगीन्द्रदेव नौ सौ वर्ष पहले महादिगम्बर सन्त मुनि हुए। वे अनादि के जो सन्त हुए आते हैं कुन्दकुन्दाचार्य आदि महामुनि। वे एक ही बात से यह बात करते हैं। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' आहाहा! भारी गाथा आ गयी, हों! यह सरस है। यह अन्तिम है हों उपशम की! फिर वह पुण्य-पाप को समान न माने, वह मिथ्यात्व मूढ़ है, उसके साथ मिलान करेंगे। आहाहा! फूलचन्दजी ने मिलाया है इसमें? इसमें नहीं मिलाया। साधारण है। इसके बाद ७६ से ७८ है। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

उन मुनि को व्रत का विकल्प आता है। आत्मा शुद्ध चैतन्य हूँ—ऐसी दृष्टि और सम्यग्दर्शन होने के उपरान्त विकल्प आवे कि व्रत लूँ, अव्रत छोड़ूँ, परन्तु वह विकल्प

पुण्य है। आहाहा! वह व्रत का भाव संवर है, ऐसा नहीं। यह और व्रत का स्वरूप। व्रत तो संवर और निर्जरा है, ऐसा पूरी दुनिया मानती है। समझ में आया? सवेरे बहुत आया था उन दोहों में 'जो तज सकल भाव व्यवहार... तज सकल परभाव।' बहुत शब्द आये थे, हों! बहुत गाथायें तज सकलभाव, तज परभाव, तज व्यवहारभाव। सब व्यवहार है, व्रतादि का विकल्प, वह व्यवहार पुण्य है। दया, दान, पूजा, भक्ति का भाव, वह सब पुण्य है, धर्म नहीं। यह विवाद आवे। मन्दिर बनावे पाँच, दस लाख खर्च करे तो उसे मुक्ति हो जाये। धूल में भी नहीं मुक्ति, सुन न! राग मन्द करे, भक्ति करे, (वह) शुभभाव है, शुभभाव है। संवर-निर्जरा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि परम मुनि, व्रत-अव्रत में परममुनि राग-द्वेष नहीं करता जिसने इन दोनों का स्वभाव बन्ध का कारण जान लिया है। ऐसा तो स्पष्ट है। 'बंधहूँ हेउ वियाणियउ' पाठ है न 'बंधहूँ हेउ वियाणियउ' यह मूल पाठ है।

१७९) वित्ति-णिवित्तिहिं परम-मुणि देसु वि करण ण राउ।

बंधहूँ हेउ वियाणियउ एयहूँ जेण सहाउ॥५२॥

ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! भगवान तो ज्ञानमूर्ति अरागी चैतन्यद्रव्य है। उसमें यह विकल्प उठता है व्रत का, वह भी पुण्यबन्ध का ही कारण है और अव्रत का-अत्याग का भाव, वह पापभाव है। उसमें (अव्रत) कषाय तीव्र है, इसमें (व्रत में) कषाय मन्द है। परन्तु हैं दोनों बन्ध के कारण। आहाहा! इसका बड़ा विवाद उठा है, लो! उसे तुम धर्म कहो, वह मोक्षमार्ग कहो। अरे! भगवान! अथवा पाठान्तर होने से ऐसा अर्थ होता है कि जिसने आत्मा का स्वभाव भिन्न जान लिया है। देखो! जिसने आत्मा का स्वभाव यह पुण्य-पाप के, व्रत-अव्रत के राग से भिन्न जाना है।

अपना स्वभाव प्रवृत्ति-निवृत्ति से रहित है। भगवान आत्मा। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप को जिसने पहले व्रत और अव्रत के राग से भिन्न जान लिया है। जहाँ व्रत-अव्रत का विकल्प नहीं है। और जहाँ स्वरूप में स्थिर होते हैं मुनि, सातवाँ गुणस्थान आता है, क्षण में सातवाँ, क्षण में छठवाँ, मुनि की यह दशा होती है। सच्चे सन्त की—सच्चे मुनि की। क्षण में सातवाँ आ जाये, वह व्रत का विकल्प छूट

जाये। क्षण में विकल्प उठे, परन्तु विकल्प उठे, उसे बन्ध का कारण जानते हैं। स्थिर हो, वहाँ सातवाँ आता है। ऐसा एक दिन में हजारों बात सच्चे सन्त मुनि की यह दशा होती है। अभी मुनि का धर्म क्या, उसकी खबर नहीं होती इसे। समझ में आया?

ये व्रत, अव्रत, पुण्य, पापरूप बन्ध के कारण हैं। है ? बहुत स्पष्टीकरण है। यह पाँच महाव्रत के परिणाम, वे पुण्य का कारण; अव्रत, वह पापरूप बन्ध का कारण है। आहाहा! अभी बन्ध का कारण क्या और संवर-निर्जरा का कारण क्या, इसकी खबर नहीं होती और संवर-निर्जरा और धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं)। समझ में आया? ऐसा जिसने जान लिया, वह आत्मा में तल्लीन हुआ व्रत-अव्रत में राग-द्वेष नहीं करता। ऐसा। व्रत का भाव, वह राग है, अव्रत का (भाव) पाप है, ऐसी बन्ध की दशा पहले जानी है, स्वरूप की दृष्टि हुई है, फिर व्रत का-अव्रत का विकल्प छोड़कर स्वरूप में स्थिर होता है, उसे समभाव कहते हैं। इसका अर्थ कि व्रत का विकल्प वह समभाव नहीं, वह वीतरागभाव नहीं; व्रत का विकल्प वह रागभाव, विषमभाव है। उसे छोड़कर स्थिर हो, तब समभाव है। उसे वीतरागभाव कहा जाता है और उसे चारित्र कहा जाता है। आहाहा! यह उपशमभाव का (स्वरूप) चलता है न, भाई! उपशमभाव का चलता है। यह सब चौदह गाथायें ३८ से ५२। यह सब उपशमभाव है। भगवान! शान्त होकर, बापू! भाई! यह तो वीतराग का मार्ग है। इसे अनन्त काल तीर्थकरों को समझाता गया। तीर्थकर भी पहले भटकते थे निगोद में और चार गति में। वे बाद में तीर्थकर हुए। पहले तो भटकते थे न! आहाहा! वह तो यह रात्रि में जरा सा आया था न तो थोड़ा... आहाहा!

मुमुक्षु : वे तो व्रत की बात करते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अव्रत की है न। उसमें ही विवाद उठा है न सबको। वे कहे, हमारे व्रत हैं, उसे धर्म कहो। कुन्दकुन्दाचार्य भी व्रत पालते हैं। तो पालते हैं, उन्होंने बन्ध सेवन किया?—कि, हाँ! व्रत था, उसे कुन्दकुन्दाचार्य बन्ध कहते हैं। ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं, परन्तु उसे छोड़कर स्थिर हो, तब उसे समभाव सातवें गुणस्थान की दशा होती है। सुन न!

ऐसा कथन सुनकर प्रभाकर भट्ट ने पूछा,... लो! वह खटका कि महाराज! तुम

व्रत को बन्ध का कारण कहते हो। अरे यह बन्धन! धर्म नहीं? संवर, निर्जरा नहीं? लो! देखो! यह टीका तो बहुत वर्ष पहले की है, हों! और मूल श्लोक तो नौ वर्ष पहले के। यह तो दिगम्बर सन्त महामुनियों ने एक ही धारा से बात अनादि से की है। समझ में आया? उसमें कोई मुनि के कथन में कहीं अन्तर नहीं होता। कोई व्यवहार से कथन हो, कोई निश्चय से हो, उस कथन में अन्तर हो भले, परन्तु भाव में अन्तर नहीं होता। महासन्त दिगम्बर जंगल में बसनेवाले, भगवान के साथ बातें करनेवाले। आहाहा!

तब प्रभाकरभट्ट पूछता है, हों! हे भगवन्, जो व्रत पर राग नहीं करे, तो व्रत क्यों धारण करे? प्रश्न बराबर है न? महाराज! तुम तो व्रत को राग कहते हो, व्रत राग हो तो फिर व्रत धारण कौन करेगा? कौन लेगा पाँच महाव्रत? ऐसे कथन में व्रत का निषेध होता है। महाराज! तुमने तो व्रत को पुण्य ठहराया, बन्ध का कारण ठहराकर निषेध कराते हो। तब योगीन्द्रदेव कहते हैं... यह योगीन्द्रदेव अब इसका अर्थ करेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

 माघ शुक्ल १, शनिवार, दिनांक - २२-०१-१९६६

 गाथा - ५२-५३, प्रवचन - १०५

जो व्रत पर राग नहीं करे, तो व्रत क्यों धारण करे ? क्या अधिकार चलता है ? कि आत्मा पुण्य-पाप के रागरहित... मन्द कषाय या तीव्र कषाय के भाव हैं, वह सब विकार है। विकाररहित अपना आनन्द और ज्ञानस्वरूप जिसने अनुभव में लिया है, उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ है। अब उसे अव्रत के भाव होते हैं। समझ में आया ? यह आत्मा शरीर, कर्म, अजीव, पुण्य-पाप के राग मन्द और तीव्र, व्रत का भाव, वह मन्द कषाय है; अव्रत का भाव, वह पापकषाय है, दोनों से रहित आत्मा का आनन्द और ज्ञानस्वरूप का भान शुद्ध आत्मा का हुआ है, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को, कहते हैं कि अव्रत का भाव तो होता है। स्वरूप में स्थिर नहीं होता, तब तक उसे अव्रत का भाव होता है। तो वह व्रत अर्थात् कि हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना का भाव, वह पाप है और फिर आगे स्वरूप में स्थिर होने पर विशेष तीन कषाय (चौकड़ी) का नाश होकर आत्मा के आनन्द की उग्रता में आता है, अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभवदश में आने पर छठवाँ गुणस्थान जिन्हें प्रगट होता है, उस भूमिका में व्रत के परिणाम शुभ होते हैं। उस भूमिका में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह ऐसा शुभभाव—मन्दराग व्रतरूप से होता है।

यहाँ कहा कि तुम व्रत और अव्रत दोनों का त्याग करके स्थिर होओ। क्योंकि व्रत का भाव भी मन्दराग, राग विकल्प और पुण्यबन्ध का कारण है। आत्मज्ञानी को आत्मदृष्टि हुई है। शरीर की क्रियामात्र मेरी नहीं। जो राग का विकल्पमात्र पुण्य का उठता है, वह मैं नहीं। मैं तो एक चैतन्य ज्ञानज्योति ज्ञाता-दृष्टा आनन्दमूर्ति हूँ। ऐसा अन्तर में स्वभाव-सन्मुख होकर अनुभव दृष्टि में वह सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ है, तो वह तो पुण्य-पाप के भाव से निवृत्त है दृष्टि तो, तथापि पुण्य-पाप के भाव अस्थिरता के

होते हैं। समझ में आया ? दृष्टि में तो राग की मन्दता और तीव्रता से रहित आत्मा की दृष्टि में अनुभव में ज्ञानानन्द है, ऐसा लिया है। यह मन्द और तीव्र (राग) मेरा स्वरूप नहीं। ऐसा अनुभव में सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में आया है, परन्तु उसे अभी अव्रत का भाव है, चारित्र के तीव्र दोष का भाव है, आत्मा का भान है तो भी। तो वह अव्रत का भाव पाप है, उसे भी छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो, तब उसे आत्मा के निश्चय अतीन्द्रिय आनन्द का व्रत प्रगट होता है। तब फिर कहते हैं कि यह व्रत का भाव भी छोड़ने का तुमने कहा। फिर व्रत का भाव आता है, वह राग मन्द है। आत्मा के अन्तर तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव की भूमिका में आनन्द में सन्तों को ऐसा प्रवृत्ति का भाव होता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, ऐसा प्रवृत्ति का शुभराग, अन्दर प्रवृत्तिरूप शुभराग (होता है)। अशुभ से निवृत्त हुआ है, परन्तु उस शुभराग को छोड़कर स्थिर हो, तब उसे समभाव और वीतरागदशा प्रगट हो, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। समझ में आया ?

यहाँ तुमने कहा कि व्रत में राग नहीं करना, ऐसा कहा। व्रत है, वह राग है। परजीव को दुःख न दूँ, दया पालन करूँ, वह सब विकल्प और शुभराग है, वह कहीं संवर धर्म नहीं। **जो व्रत पर राग नहीं करे, तो व्रत क्यों धारण करे ?** ऐसा प्रश्न किया है। प्रभु! आपने तो राग का निषेध किया और राग है, उसे बन्ध का कारण कहा, मन्द कषाय भी। धर्मी की अन्तर दृष्टि अनुभव की सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर भी, तो वह व्रत किसलिए धारण करे समकिती जीव ? **ऐसे कथन में व्रत का निषेध होता है।** भगवन्त ! ऐसे कथन में तो व्रत के भाव का निषेध हो जाता है। तो व्रत किसलिए धारण करना ? समझ में आया इसमें कुछ ? आहाहा ! यह बड़ी गड़बड़ चलती है न अभी, उसका प्रश्न किया है यहाँ।

तब योगीन्द्राचार्य कहते हैं कि व्रत का अर्थ यह है,... वास्तव में व्रत का अर्थ तो यह है, कि सब शुभ-अशुभ भावों से निवृत्ति परिणाम होना। व्रत तो, वास्तविक व्रत तो उसे कहते हैं कि भगवान् आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु में, पुण्य और मन्द कषाय का व्रत भाव और तीव्र अव्रत भाव—दोनों से निवृत्ति और स्वरूप में स्थिर हो

अतीन्द्रिय आनन्द की दशा के अनाकुल शान्त आनन्द और वीतरागभाव से वेदन करे, उसे वास्तव में व्रत कहा जाता है। समझ में आया ? सब शुभ-अशुभभावों से निवृत्ति परिणाम होना। सूक्ष्म बात है, भाई ! बात ऐसी है कि इसने नौ तत्त्व की बात को वास्तविक रीति से अन्तर दृष्टि में कभी ली नहीं और ली हो, पश्चात् भी राग भाग तो ज्ञानी को भी आता है। अब उस राग के दो प्रकार हैं—एक तीव्र राग और एक मन्द राग। तो तीव्र राग है जो आसक्ति का हिंसा, झूठ, चोरी, विषय का, वह सम्यग्दृष्टि को भान है (कि) उसमें सुख नहीं, ऐसा भान होने पर भी आत्मा में आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद सम्यग्दर्शन होने पर लिया है, चौथा गुणस्थान होने पर, तथापि उस आनन्द में स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए उसे पाप के भाव चौथे गुणस्थान में हिंसा के, झूठ के, भोग के, विषयवासना के पापभाव आते हैं, वह दुःखरूप है, ऐसा जानता है, परन्तु अस्थिरता के कारण आये बिना रहते नहीं।

इससे आगे जाकर स्वरूप में विशेष कषाय की अभाव दशा होकर स्थिर होता है, मुनिपने की दशा में, तब उसे पंच महाव्रत के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य के शुभराग का विकल्प मन्द कषाय का आता है। परन्तु है वह दोषस्वरूप इतना वह भाव। समझ में आया ? उस भाव को छोड़कर भी जब स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द में आस्वाद, अतीन्द्रिय आनन्द का आस्वाद-वेदन करे, तब उसे निश्चयव्रत, सच्चे व्रत, वास्तविक व्रत, ऐसा कहा जाता है। गजब व्याख्या ! समझ में आया ? यह शुभ-अशुभभावों से निवृत्ति। क्योंकि शुभभाव भी मन्द कषाय-राग है और अशुभभाव, वह तीव्र राग है। दोनों से रहित होकर आत्मा अखण्डानन्द प्रभु वीतरागी मौज में, आनन्द में पड़े और शान्ति और वीतराग परिणति को वेदे, उसका नाम सच्चे व्रत और मुनिपना कहा जाता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे स्थिरता के व्रत हैं, वे निश्चयव्रत हैं, वे पूर्ण व्रत हैं। आयेगा अभी।

व्रत अर्थात् भगवान् ज्ञानमूर्ति ज्ञानानन्द में लिपट जाना, लिपट जाना। स्वरूप में

स्थिरता में लिपट जाना, स्थिर हो जाना। इसका नाम वास्तविक व्रत भगवान वीतराग कहते हैं। छठवें गुणस्थान में मुनि को आत्मदर्शन, ज्ञान में आदर नहीं, उस व्रत के विकल्प का, परन्तु बीच में अशुभ टलकर ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प का शुभराग आये बिना रहता नहीं। इसे देशव्रत कहते हैं। भाई! आयेगा, एकोदेश—एकदेश। वह अशुभ टला। दृष्टि तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। वह कषाय मन्द विकल्प उठे या तीव्र, वे दोनों आदरणीय नहीं। परन्तु आगे की भूमिका में न जाकर अभी नीचे हो, तब उसे ऐसे अशुभपरिणाम होते हैं, उन्हें छोड़कर जब शुभ विकल्प आता है, पर की दया, अहिंसा पूर्ण पालन करूँ, कभी झूठ न बोलूँ, ऐसा शुभराग है, वह छठवें गुणस्थान में आत्मा तीन कषाय के अभावरूपी जो वीतरागी परिणति से परिणमित है, उसके ऐसे शुभराग को देशव्रत कहा जाता है। उसे छोड़कर स्थिर हो, तब सर्व व्रत और निश्चयव्रत कहा जाता है। आहाहा! कठिन बात, भाई! समझ में आया? उस सम्यग्दृष्टि के, हों! अज्ञानी को व्रत नहीं होते। आहाहा!

जिसकी दृष्टि पुण्य और पाप के राग की मन्दता में प्रेम है, रुचि है, वह तो मिथ्यादृष्टि है, उसे तो व्रत भी नहीं और सम्यग्दर्शन भी नहीं। समझ में आया? जड़ तत्त्व शरीर, वाणी, मन की होती क्रिया अर्थात् पर्याय वह आत्मा से होती है, ऐसा माननेवाले तो अजीव को जीव मानते हैं, अर्थात् वे तो मिथ्यादृष्टि जीव हैं। और राग की मन्दता या तीव्रता, राग का विकल्प उठे कषाय मन्द का, वह मुझे लाभदायक है, ऐसा माननेवाले तो मिथ्यादृष्टि हैं, उनकी यहाँ बात नहीं। समझ में आया? परन्तु जिसने भगवान आत्मा अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का गोला चैतन्यमूर्ति 'अनूप, अमूर्त सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा! ऐसी अन्तर निर्विकल्प दृष्टि अनुभव की, राग को तोड़कर निर्विकल्प दृष्टि हुई है, उसे चौथा गुणस्थान सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसे अभी अशुभभाव छोड़कर जब शुभभाव आवे, उसे मुनिपने की अन्तर दशा के आनन्द में उस शुभभाव को देशव्रत कहते हैं। उसे छोड़कर स्थिर हो तो, शुभ-अशुभ भावों से निवृत्ति परिणाम होना। इसका नाम व्रत है। है न? व्रत का अर्थ यह है। वास्तविक व्रत तो यह है। आहाहा! गजब बात, भाई! वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग जगत को कान में पड़ा नहीं।

वीतराग को क्या कहना है और वीतरागी पंथ क्या है, उसकी पद्धति की खबर नहीं। अब खबर बिना वह कहाँ रुचि करे और किसे छोड़े और किसका आदर करे ? ...

ऐसा ही अन्य ग्रन्थों में भी 'रागद्वेषौ' इत्यादि से कहा है। अर्थ यह है कि राग और द्वेष दोनों प्रवृत्तियाँ हैं, ... अशुभराग विषयवासना, हिंसा, झूठ, चोरी, भोग ऐसा राग वह प्रवृत्ति है। समझ में आया ? और वह नहीं (करके) दूसरे जीव को न मारूँ, दुःख न दूँ, दया पालन करूँ, सत्य बोलूँ, चोरी न करूँ, अदत्त न लूँ, शरीर से ब्रह्मचर्य राग की मन्दता से पालन करूँ, ऐसा जो भाव, वह शुभभाव है। वे दोनों प्रवृत्तियाँ हैं, ... अशुभभाव भी विकल्प तीव्र राग की प्रवृत्ति है, वह शुभराग भी विकल्प का उत्थान-वृत्ति उठती है। भगवान् वीतरागस्वरूप में स्थिर न होकर ऐसा शुभराग उठता है। यह है कि राग और द्वेष दोनों प्रवृत्तियाँ हैं, तथा इनका निषेध वह निवृत्ति है। आहाहा! इनका निषेध होकर स्वरूप में आनन्द में, अतीन्द्रिय आनन्द में निवृत्त स्वरूप में स्थिर हो, उसे भगवान् निवृत्ति और निश्चयव्रत कहते हैं। इसका नाम चारित्र कहा जाता है। आहाहा!

ये दोनों अपने नहीं हैं, ... यह शुभ और अशुभभाव निज स्वरूप की चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया ? भगवान् आत्मा तो ज्ञानानन्द चैतन्यसूर्य है। चैतन्य के प्रकाश का चैतन्यसूर्य भगवान् आत्मा है। उस चैतन्य के प्रकाश में यह पुण्य-पाप का विकल्प (उठे), वह आत्मा का स्वरूप नहीं, वह तो विकार है, विभाव है। अव्रत का भाव, वह विभाव है और व्रत का भाव, वह पुण्यभाव मन्द कषायरूप विभाव अर्थात् विकार है। आहाहा! सुनना कठिन पड़े ऐसा है। परिणामे तो, श्रद्धा तो कठिन और चारित्र तो महाकठिन, सुनना कठिन पड़े ऐसा हाय...हाय..! अर र र! यह क्या कहते हैं ? समझ में आया ? वस्तु तो ऐसी है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर तीन काल और तीन लोक का जिन्हें ज्ञान, ऐसे तीर्थकरदेव समवसरण में इच्छा बिना दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा कथन आया है। इन्द्रों की उपस्थिति में, गणधर की मौजूदगी में, बारह प्रकार की सभा इन्द्र, नागेन्द्र आदि भरे हुए। जिनेन्द्र अर्थात् कितने ही केवली भी बैठे थे अन्दर। सुनने नहीं, हों! यों ही सभा में होते हैं। भगवान् की वाणी निकली थी, यहाँ भी निकलती है अभी। महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर परमात्मा परमेश्वर तीर्थकर अरिहन्त पद में विराजते हैं। चौबीस तीर्थकर तो

मुक्ति में सिद्धपद में विराजते हैं, अब उन्हें शरीर नहीं। इनको—भगवान को तो अभी शरीर है, वाणी है। उस ध्वनि द्वारा यह उपदेश आया, ऐसा उपदेश सन्त करते हैं। समझ में आया ?

कहते हैं, ये राग और द्वेष। ये दोनों अपने नहीं हैं, अन्य पदार्थ के सम्बन्ध से हैं। भगवान आत्मा चैतन्य के तेज के नूर से भरपूर प्रभु, उसे यह पुण्य और पाप का विकल्प उठता है, वह कर्म के निमित्त के संग से उठता है। स्वभाव के संग से वह राग मन्द या तीव्र नहीं हो सकता। आहाहा! ऐ... न्यालभाई! आहाहा! भगवान! बापू! तेरा रास्ता कोई अलौकिक निराला है। अरे! इसने अनन्त काल में अनादि-अनन्त काल, अनादि-अनन्त काल गया न? कभी इसने वीतराग की वाणी के क्या रहस्य हैं, इसने जाने नहीं, माने नहीं। माना था कि हम समझे हैं। आहाहा! हम वीतराग के मार्ग में हैं, वीतराग के मार्ग में, वीतराग कहते हैं ऐसा हम करते हैं, ऐसा माना था, वस्तु की खबर नहीं थी। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि में इसने माना था। आहाहा!

वस्तु भगवान आत्मा की खान में, परमात्मस्वरूप आत्मा है, उसकी खान में... यह परमात्मा है न व्याख्या? आत्मा तो परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप, परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप। परमस्वरूप का दल चिद्घन आनन्दकन्द ऐसा आत्मा है। उसमें यह विकल्प जो पुण्य-पाप का उठता है, वह स्वभाव के संग से नहीं उठता। वह निमित्त, कर्म के लक्ष्य से अपनी निर्बलता के कारण से वह विकल्प मन्द और तीव्र राग उठता है। इसलिए अन्य पदार्थ के सम्बन्ध से हैं। इसलिए इन दोनों को छोड़े। इसलिए इन दोनों को छोड़े, तब उसे आत्मा की शान्ति चारित्रदशा, चारित्र मुनि की दशा जो सप्तम गुणस्थान के योग्य है, उसे चारित्र तब कहा जाता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन के पश्चात् मुनि की दशा ऐसी होती है कि क्षण में छठवाँ और क्षण में सातवाँ (गुणस्थान)। सच्चे सन्त मुनि जो वीतरागी भगवान की आज्ञा के हैं, वे। क्षण में छठवाँ गुणस्थान आता है, विकल्प उठे जरा। कहुँ, सुनूँ, दया पालने का विकल्प, लिखने का विकल्प उठे, वह बस। वह शुभराग है। भान है अन्दर (कि) वह राग मैं नहीं, ऐसा आनन्द का, ज्ञान का भान है। वह विकल्प छूटकर क्षण में सप्तम गुणस्थान आवे। भूल जाये, यह मैं साधू हूँ

या नहीं, यह भूल जाये, आनन्द में पड़े। ऐसी मुनि को एक दिन में हजारों बार दशा आती है, उस दशा के वर्णन में कहते हैं कि जब छठवें गुणस्थान में वह विकल्प उठता है, वह विकल्प है, वह शुभराग है अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (और अपरिग्रह) पंच महाव्रत का। उसे छोड़कर स्थिर हो, तब वास्तविक चारित्र, शुद्ध उपयोगरूप से परिणमन हुआ, तब उसे वास्तविक चारित्र कहा जाता है। आहाहा!

यह पाँचवें काल की बात है, हों! तीनों काल, 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ' वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने तीन काल-तीन लोक में एक ही मार्ग कहा है। वह कहीं चौथे काल के लिये अलग और पाँचवें के लिये अलग, ऐसा है नहीं। यह पाँचवें काल के मुनि कहते हैं। जिसे आत्मा की उग्र शान्ति चाहिए हो, मुक्ति की तैयारी (हो), उसकी बात है। परन्तु उसकी श्रद्धा तो करे कि मुनिपने का ऐसा मार्ग है और ऐसा मुनिपना-चारित्र आये बिना मुक्ति तीन काल में नहीं होती। समझ में आया? अथवा... यह पूरी बात की, अब देशव्रत की बात करते हैं।

'हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यः विरतिर्व्रतम्।' ऐसा कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि प्राणियों को पीड़ा देने का भाव त्याग। समझ में आया? छह काय के जीव को दुःख देने का विकल्प है, उसका त्याग। वह शुभ व्रत है, शुभराग का व्रत है। अशुभराग टूटा और वह शुभराग का व्रत है, वह व्यवहारव्रत है। हिंसा से विरक्त होना। झूठ वचन बोलना,... यह झूठ से विरक्त होना, परधन हरना,... इससे कुशील का सेवन से विरक्त और परिग्रह इनसे जो विरक्त होना, वही व्रत है। यह छठवें गुणस्थान में मुनि को आत्मा आनन्द के मौज में मनाता हुआ भी उन्हें छठवें गुणस्थान में ऐ शुभराग के विकल्प होते हैं, उसे देशव्रत कहा जाता है। व्यवहारव्रत कहो, एकदेश व्रत कहो। समझ में आया? आहाहा!

ये अहिंसादि व्रत प्रसिद्ध हैं,... यह अहिंसादि व्रत जगत में प्रसिद्ध हैं। वे व्यवहारनयकर एकदेशरूप व्रत हैं। व्यवहार से है न, निश्चय से तो वह है। आहाहा! यही दिखलाते हैं — जीवघात में निवृत्ति, जीवदया में प्रवृत्ति,... आत्मा के अनुभव की सम्यग्दर्शनदशापूर्वक में, सम्यग्दर्शनदशा भूमिका के भानपूर्वक में जिसे जीव घात की

निवृत्ति और जीवदया में प्रवृत्ति के शुभभाव हों, भाव, उसे अहिंसा एकदेश व्यवहार व्रत कहा जाता है। आहाहा।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत में कहाँ लाभ आया? व्रत अर्थात् क्या? लिपटना। किसमें? वस्तु में लिपटना। निश्चयव्रत स्वरूप में लिपटना, व्यवहारव्रत जरा राग की मन्दता में लिपटना। आहाहा! अरे! नौ तत्त्व में यह कषाय की मन्दता का व्रत भाव, वह पुण्यतत्त्व में जाता है। उसकी इसे खबर नहीं होती। श्रद्धा की खबर नहीं होती, उसे यह स्थिरता कहाँ से लाना? समझ में आया? पर की दया पालना या उसका प्रश्न नहीं। मात्र जीवघात का भाव जो था, उससे निवृत्ति और जीवदया (अर्थात्) पर को न मारने का भाव, इसका नाम शुभभाव, वह प्रवृत्ति, वह प्रवृत्ति हुई शुभ की। अशुभ की निवृत्ति, शुभ की प्रवृत्ति, परन्तु है शुभराग। आहाहा! समझ में आया?

असत्य वचन में निवृत्ति, सत्य वचन में प्रवृत्ति,... झूठ बोलने का त्याग और सत्य बोलने का शुभभाव। मैं सत्य बोलूँ, मुझे झूठ न बोला जाये, ऐसा भाव, वह शुभभाव है। राग मन्द है, विकल्प है, कषाय की मन्दता का वह भाव है। **अदत्तादान (चोरी) से निवृत्ति, अचौर्य में प्रवृत्ति...** मुझे चोरी न हो। किसी की आज्ञा बिना न लिया जाये। भान है सम्यक् का अन्दर दर्शन का, हों! तथापि अन्तर आनन्द और ज्ञान के अनुभवपूर्वक की दशा की बात चलती है। अचौर्य की प्रवृत्ति। ऐसा शुभ विकल्प उठता है। ऐसा ब्रह्मचर्य में लेना। शरीर से शुभराग (आवे कि) ब्रह्मचर्य (पालन करूँ)। मुझे नौ-नौ कोटि से स्त्री का त्याग हो। ऐसा जो विकल्प शुभराग, वह अब्रह्म से निवृत्ति और ब्रह्मचर्य में प्रवृत्ति, ऐसा एक शुभराग। **इत्यादि स्वरूप से एकदेशव्रत कहा जाता है,...** उसे एक अंश अशुभ—अव्रत का भाव टला है, इस अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि को एकदेश व्रत छठवें गुणस्थान में ऐसे भाव को एक आंशिक व्रत, व्यवहारव्रत कहा जाता है। छोटाभाई! है इसमें?

श्रीमद् में आता है न? हे भगवान! आपने कहे हुए यह दया और शील, संयम मैंने पहिचाने नहीं। ऐसा आता है। पालन तो किये नहीं, परन्तु पहिचाने नहीं। ऐई! आता

है न ? हे भगवान ! मैं भूल गया । उसमें बहुत आता है । परन्तु कहाँ समझे ? उसके अर्थ को समझे नहीं । ऐई ! न्यालभाई ! पहाड़े बोले जाये पूरे दिन भक्ति । भक्ति तो शुभराग है, उसमें कहाँ वहाँ आत्मा आ गया धर्म ? समझ में आया ? हे वीतराग ! हे भगवान ! आपने कहे हुए दया, शील, संयम को मैंने पहिचाना नहीं । किसे कहना दया और किसे कहना संयम ? ऐसा कहा । समझ में आया ? आपने कहे हुए तत्त्व को मैंने पहिचाना नहीं । कुछ का कुछ माना उल्टी दृष्टि से । आहाहा ! समझ में आया इसमें ? इसमें समझ में आया, ऐसा कहा है । वह उल्टा समझा है, उसमें नहीं । यह क्या है यह ? आहाहा !

और... क्या कहा यह ? धर्मी जीव को आत्मा का भान सम्यग्दर्शन के काल में राग का विकल्प भी आदरणीय नहीं और विकल्प करना, ऐसी बुद्धि होती नहीं । तथापि छठवें गुणस्थान में अशुभ का त्याग और शुभ का राग आये बिना रहता नहीं । उस शुभराग को एकदेश व्रत व्यवहार से, (साथ में) आत्मा का भान है और तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव है । ऐसी वीतरागी परिणति के काल में छठवें गुणस्थान के योग्य वीतरागीदशा के काल में ऐसा जो विकल्प वर्ते, उसे एकदेश व्यवहार से व्रत पुण्यबन्ध और कषाय मन्द है, इसलिए व्यवहार से व्रत कहा जाता है । समझ में आया ?

और राग-द्वेषरूप संकल्प-विकल्पों की कल्लोलों से रहित... अब निश्चयव्रत कहते हैं । ऐसा जो शुभराग छठवें गुणस्थान में है, उसे छोड़कर राग-द्वेषरूपी... राग था विकल्प शुभराग । इसे नौ तत्त्व को बराबर जानना-पहिचानना तो पड़ेगा या नहीं ? या नौ तत्त्व की खबर न हो और सम्यग्दर्शन हो जायेगा इसे ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी होगा नहीं, किसका होता होगा ? सब्जी लेने जाये तो पचास सब्जियों में से यह सब्जी छाँटकर कहे तो वह सब्जी दे । इसके बिना देता होगा ? मुझे सब्जी दो, लो ! दो रुपये की सब्जी दो । मूर्ख लगता है । क्या सब्जी चाहिए है ? कि नहीं, मेरे पिता ने दो रुपये लेकर सब्जी लेने भेजा है । परन्तु यह कौन सी दो पचास में से ? कि मुझे कुछ खबर नहीं । यह लेना और यह छोड़ना, ऐसे ख्याल बिना क्या लेगा वह ? उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर ज्ञानानन्दस्वरूप है, वह आदरनेयोग्य

है, रागादि छोड़नेयोग्य है, ऐसा जाने बिना सम्यग्दर्शन होगा कैसे इसे ? मूर्ख कहे, वहाँ लेकर बैठा हो तो। क्या भाई ? दो रुपये लेकर जाये तो सब्जी देना। कैसे क्या सब्जी चाहिए है ? मुझे खबर नहीं। मेरे पिता ने मुझे कहा, सब्जी देना। कहा था सही कुछ, परन्तु मैं भूल गया। यह तो मूर्ख लगता है। पूछकर आ घर जाकर। यह चाहिए है और यह नहीं चाहिए। इसी प्रकार पचास सब्जी में से कि भाई ! यह आम का अवसर है तो मँगाये होंगे करेला। पूछ तो सही वहाँ। समझ में आया ? घीसोड़ा नहीं मँगाते उसमें। हाँ, ... मैं तो भूल गया था। इसी प्रकार इसकी समझण बिना भी वस्तु कौन सी लेनी और क्या छोड़नी, उसकी खबर नहीं होती।

उसी प्रकार आत्मा में हेय और उपादेय क्या है ? उपादेय ज्ञानानन्द भगवान् चिदानन्द आनन्दकन्द वह आत्मा को श्रद्धा में उपादेय-आदरणीय है। और पुण्य के, पाप के दोनों भाव, वे हेय अर्थात् ऐसे छोड़नेयोग्य है। ऐसा किये बिना इसे सम्यक् और विवेक होगा कहाँ से ? आहाहा ! यहाँ चलता होगा ऐसा अन्ध, वहाँ नहीं चलता। यह चलता है न यहाँ। कहना कुछ अपने हाँको। धूल में भी नहीं चलता तेरा, सुन न ! मर जायेगा मूढ़ होकर। अनन्त अवतार गये, वह इकट्ठा यह। यदि यह भान नहीं किया तो सम्यग्ज्ञान बिना तेरे भव के लेख छूटनेवाले नहीं हैं। समझ में आया ?

राग-द्वेषरूप संकल्प-विकल्पों की कल्लोलों से रहित... यह विकल्प था वह। परजीव को न मारूँ—अहिंसा का भाव, वह शुभ विकल्प था। चोरी न करूँ, ब्रह्मचर्य पालन करूँ, वह भी शुभ विकल्प था, कल्लोल था, राग का कल्लोल था। ऐसे **कल्लोलों से रहित तीन गुप्ति से गुप्त समाधि में...** देखो ! स्वरूप में—आनन्द में स्थिर होता है। आहाहा ! सन्त साधु जो णमो लोए सव्व साहूणं। गणधरदेव जिन्हें नमस्कार करें, यह वह पद कैसा है ? समझ में आया या नहीं ? णमो लोए सव्व साहूणं, (ऐसा) गणधर बोले या नहीं। सीमन्धर भगवान् के निकट गणधर विराजते हैं और अंग रचे, तब पंच नवकार का विकल्प उन्हें भी उठता है। णमो लोए सव्व साहूणं। हे सन्त ! तेरे चरण में मेरा नमस्कार। ऐसे गणधर जिन्हें अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना की सामर्थ्य, उस भव में चरमशरीरी मोक्षगामी, उनका जिन्हें नमस्कार पहुँचे, वह दशा कैसी होगी ?

समझ में आया ? यह पंचम काल के सच्चे भावलिंगी साधु को नमस्कार करते हैं, हों ! ऐसे होवें तो ।

कहते हैं, कल्लोलों से रहित तीन गुप्ति से गुप्त समाधि में शुभाशुभ के त्याग से परिपूर्ण व्रत होता है । देखो ! वह व्यवहारनय से एकदेश व्रत था छठवें गुणस्थान में, एक विकल्प उठा था अहिंसा, सत्य आदि का । और आत्मा का भान था कि राग आदरणीय नहीं, मेरा कर्तव्य नहीं । ज्ञातारूप से अन्दर विकल्प की निर्बलता से उत्पन्न हुआ भाव पंच महाव्रत का । ऐसे स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप की स्थिरता चारित्र की शान्ति है । उसमें विकल्प उठा था शुभराग का, उसे व्यवहार से एक अंश व्रत कहा गया है । वह अशुभ टला है, इस अपेक्षा से । शुभाशुभ के त्याग से परिपूर्ण व्रत होता है । वह भी विकल्प टूटकर स्वरूप में स्थिर हो आनन्द में, तब उसे निश्चय से कहो, पूरा कहो, पूर्ण कहो, ऐसा पूर्ण व्रत सातवें गुणस्थान में होता है । आहाहा ! समझ में आया ?

इसलिए प्रथम अवस्था में व्रत का निषेध नहीं है... क्या कहा ? छठवें गुणस्थान में आत्मध्यान और आत्मदृष्टिसहित (होने पर भी स्वरूप में) स्थिर नहीं हो सकता, तब तक ऐसे पंच महाव्रत के भाव आये बिना रहते नहीं । वहाँ उसका निषेध नहीं है । ऐसा भाव वहाँ होता है । शुभराग पुण्यबन्ध का कारण अहिंसा, सत्य (आदि) पंच महाव्रत होते हैं । वहाँ नहीं, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं । वहाँ नहीं, ऐसा नहीं, उसका निषेध नहीं । छठवें गुणस्थान में निषेध नहीं हो सकता, वहाँ तो ऐसा मन्द भाव होता है । एकदेश व्रत है और पूर्ण अवस्था में सर्वदेश व्रत है । वहाँ से हटकर अन्दर में स्थिर हुआ, तब उसे सर्वदेश अर्थात् पूरा निश्चय परिपूर्ण व्रत है । समझ में आया ? कुछ समझ में आता है, ऐसा कहा जाता है न ? आहाहा !

यह वीरों का मार्ग वीतराग का मार्ग.... भगवान का कहा हुआ मार्ग महा पुरुषार्थी जीव को होता है । बकवास करनेवाले को यह मार्ग होता नहीं । अफरगामेण । जिस मार्ग में चढ़े अफर, केवलज्ञान लेकर ही रहेंगे । ऐसे पंथ को पालनेवाले ऐसे सन्त होते हैं, ऐसा कहते हैं । सम्यग्दर्शन में भान होने पर ऐसा चारित्र होता है, ऐसा भान हुआ है उसे, परन्तु अभी चारित्र—अन्दर स्वरूप की स्थिरता का जो आनन्द और शान्ति

चाहिए, वह न हो तो सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में भी होता है। छियानवें-छियानवें हजार स्त्रियों में पड़ा हुआ होता है, परन्तु अन्दर में उस राग को और पर को हेय मानता है, अन्तर आत्मा के आनन्द को वह उपादेय मानता है। समझ में आया ?

अभी श्रेणिक राजा नरक के नारकी हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में पहले नरक में हैं। भगवान के निकट क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त हैं। महावीर प्रभु के निकट श्रेणिक राजा (क्षायिक समकित प्राप्त) और नरक का आयुष्य पहले बँध गया, इसलिए फिर सम्यक्त्व पाये तो बहुत स्थिति घट गयी। आत्मा का भान है। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में पहले नरक में उत्पन्न हुए हैं। ढाई हजार वर्ष व्यतीत हो गये हैं। अभी कितने रहे ? साढ़े इक्यासी हजार (वर्ष) बाकी हैं। परन्तु कहते हैं, नरक के बाहर के दुःखों से वे दुःखी दिखते हैं, परन्तु अन्दर सुख में गटागटी (करते हैं)। 'बाहिर नारकी कृत दुःख भोगत, बाहिर नारकी कृत दुःख भोगत' समकिती की बात है, परन्तु अन्दर सुख की गटागटी है। अन्तर आत्मा का भान है, सम्यग्दर्शन है, आनन्द का अनुभव-भान है, अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद पहले नरक में रहा हुआ श्रेणिक राजा समकिती है, वे लेते हैं। आहाहा! चौथे गुणस्थान में, हों! सुनी है या नहीं बात? बहुत बार आती है अपने। नारकी कृत दुःख भोगत, नहीं आता? पद बोले थे। सेठ पहले आये थे न जब सर हुकमीचन्द। तब वे बोले थे। अर्थ-बर्थ की क्या खबर, समझने जैसा। बाहिर नारकी कृत (दुःख) भोगत, परन्तु सम्यग्दृष्टि अन्तर में सुख में गटागटी। अतीन्द्रिय आनन्द के भान में प्रतीति और पहिचान हुई है। पुण्य-पाप के विकल्प, वह मेरी चीज नहीं, जहर है। अमृतस्वरूप अमृत का भण्डार आत्मा ऐसा अनुभव हुआ, ऐसे सम्यग्दृष्टि को बाहर नरक में गया होने पर भी, बाहर में दुःख दिखता है परन्तु अन्दर में आनन्द की लहर उठती है। आहाहा! यह वह बात! समझ में आया ?

देखो! यह मुनि। बाहर से दिखाई दे कि सिंहनी खाती है। वह उनके इस भव की माँ है, मर गयी, तिर्यचनी हुई है, वह खाती है। लोग तो ऐसा लेते हैं कि, अर र र! आहाहा! अन्दर में आनन्द की लहर उठती है, अतीन्द्रिय आनन्द की। और विकल्प आ जाये तो जाने कि यह है। वरना स्थिरता हो जाये निर्विकल्प में छठवें और सातवें में,

छठवें और सातवें में हजारों बार (आवे और जाये)। मुनि की दशा ही ऐसी है अनादि वीतरागमार्ग की। आनन्द है... आनन्द है... आनन्द है। समझ में आया ?

यह कहते हैं कि पूर्ण अवस्था में सर्वदेश व्रत है। यहाँ पर कोई यदि प्रश्न करे, कि व्रत से क्या प्रयोजन ? ऐसे शुभराग को लाने का और आने का क्या कारण ? प्रयोजन क्या है ? आत्मभावना से ही मोक्ष होता है। हमारे तो आत्मा के आनन्द की भावना से मोक्ष होगा। ऐसे शुभव्रत को लाना और आना, उसका क्या काम है ? समझ में आया ? उसका समाधान... भरतजी महाराज ने क्या व्रत धारण किया था ? यह शिष्य प्रश्न करता है। भरत थे न ? छियानवें हजार स्त्रियाँ, छह खण्ड का नायक। भरत, भगवान के पुत्र—ऋषभदेव के पुत्र। संसार में आत्मज्ञान और आत्मदर्शन के भानवाले थे। उनके ध्यान में अन्तर में बैठे वहाँ ध्यान में। एक बाल दिखाई दिया बाल, अरे ! यह क्या ? एकदम भरत ने वस्त्र उतार दिये। सब नग्न। पंच महाव्रत का शुभराग का विकल्प आया है। आया है पंच महाव्रत का। छूटकर फिर ध्यान में बैठे हैं अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) हो गया। तब यह शिष्य कहता है कि देखो ! उन्हें कहाँ व्रत थे ? भाई ! तुझे खबर नहीं। सुन तो सही ! भरतजी महाराज ने क्या व्रत धारण किया था ? वे तो दो घड़ी में ही केवलज्ञान पाकर मोक्ष गये।

इसका समाधान ऐसा है कि भरतेश्वर ने पहले जिनदीक्षा धारण की,... क्या कहते हैं ? ऐसे आत्मज्ञान था, आत्मदर्शन था, अनुभव था। पाप का राग जो स्त्री, परिवार आदि का था, उसे छोड़ा। नग्न मनि हुए, बाह्य देह की दशा नग्न हो गयी और शुभराग (आया)। णमो सिद्धाणं आदि नमस्कार मन्त्र गिनकर पंच महाव्रत के परिणाम शुभराग के पहले आये थे उनको। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के पास। वहाँ कौन था दूसरा ? तीन ज्ञान के धनी तो पहले से थे। तीन ज्ञान थे—मति, श्रुत और अवधि। किसे ? भरत को। भगवान को—तीर्थंकर को तो होते हैं। तीर्थंकर तो तीन ज्ञान लेकर माता के गर्भ में आते हैं। समकित लेकर, तीन ज्ञान लेकर। परन्तु यह तो फिर अवधिज्ञान पाये हैं। भरतजी भगवान के

समवसरण में एकबार बैठे थे। समकिती, ज्ञान—आत्मा का भान था। सुनते थे, उसमें एकदम मति की निर्मलता, श्रुत की निर्मलता और अवधिज्ञान और अवधिदर्शन हुआ था। उन्हें फिर जब वैराग्य हुआ है... छोड़ दिया। छूट गया। मात्र नग्न हो गये। तब वह विकल्प आया पंच महाव्रत का पहले। कहते हैं, **पहले जिनदीक्षा धारण की, सिर के केशलुंचन किये...** पंचम गुणस्थान में उस भूमिका में यह विकल्प आया कि मैं मुनि होऊँ। अन्दर भान है, हों! आत्मा के आनन्द का। आनन्द है। यह विकल्प उठता है, वह मेरा कर्तव्य नहीं। यह देह की क्रिया होती है, उसे मैं नहीं करता, वह तो जड़ की क्रिया है। ऐसा सम्यग्दर्शन का भान है।

मुमुक्षु : काँचभुवन में हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में हुआ। दर्पण अर्थात् चैतन्य, ऐसा। दर्पण अर्थात् चैतन्य दर्पणभुवन में उसमें हुआ। कहो, समझ में आया इसमें ?

सिर के केशलुंचन किये, हिंसादि पापों की निवृत्तिरूप पाँच महाव्रत आदरे। है, शुभराग हुआ, आया उसने अशुभ छोड़ा। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह अंगीकार करूँ। शुभराग आया पंच महाव्रत। फिर एक अन्तर्मुहूर्त में समस्त विकल्प रहित... वह विकल्प शुभ आया सही पहले, उसे छोड़कर मन, वचन, काय रोकनेरूप निज शुद्धात्मध्यान उसमें ठहरकर निर्विकल्प हुए। भान तो था, यह विकल्प मेरा कर्तव्य नहीं, परन्तु आये बिना रहता नहीं। गुणस्थान प्रमाण उसे शुभराग आता है। छूटकर ध्यान में निर्विकल्प में स्थिर हुए, तब केवलज्ञान हुआ। वे शुद्धात्मा का ध्यान, देखे, सुने और भोगे हुए भोगों की वांछारूप निदान बन्धादि विकल्पों से रहित... लो! यह आगे तो ऐसे ध्यान में मस्त हो गये आत्मा के आनन्द में (कि) देखे हुए, सुने हुए और भोगे हुए सब विकल्प छूट गये। अकेला गोला चिदानन्द आत्मा के गोला में ध्यान में मस्त हो गये।

भोगों की वांछारूप निदान बन्धादि विकल्पों से रहित ऐसे ध्यान में तल्लीन होकर केवली हुए। यह पंच महाव्रत के विकल्प आये थे, इसलिए केवली हुए, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आते अवश्य हैं पहले। गृहस्थाश्रम छूटा अन्दर से, वह तीव्र राग

गया। पंच महाव्रत का शुभराग—विकल्प आया सही, वह पुण्यबन्ध का कारण है, परन्तु उसे छोड़कर जब निर्विकल्प स्थिर हुए, तब शुक्लध्यान हुआ, तब केवलज्ञान हुआ। आहाहा! समझ में आया? जब राज छोड़ा,... छह खण्ड का राज छोड़ा। अकेला भगवान आत्मा जैसा दृष्टि में लिया था, ऐसे अन्दर स्थिर हुए। राज छोड़ा, उस समय महाव्रत का विकल्प आया। और मुनि हुए... पंच महाव्रत के विकल्प आये। पश्चात् उन्हें छोड़कर केवली हुए। तभी केवली हुए, तब भरतेश्वर ने अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त किया। इसलिए महाव्रत की प्रसिद्धि नहीं हुई। एकदम अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान हो गया न, इसलिए नग्नदशा हुई और पंच महाव्रत के विकल्प आये, उन्हें लोग देख नहीं सके। एकदम केवल (ज्ञान) हुआ, इसलिए लोग देखने (लगे), एकदम केवल (ज्ञान) हुआ, ऐसा। इस प्रकार पहले ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। अव्रत को छोड़ना, सम्यग्दर्शन का भान होने पर भी, अव्रत का भाव पाप है, (ऐसा) अन्तर भान है, उसे (व्रत को) छोड़कर स्थिरता हुई, तब उनको शुक्लध्यान हुआ। अथवा उन्हें (अव्रत को) छोड़कर शुभभाव पहले आया, तब महाव्रत हुए, तब उन्हें छोड़कर स्थिर हुए, तब शुक्लध्यान हुआ है अथवा तब शान्ति और समताभाव, वीतरागभाव उत्पन्न हुआ है। समझ में आया?

बहुत बातें आयी इसमें तो। कितनी याद रखना इसमें? घर में, दुकान में पाँच हजार चीजें हों तो सब बातें याद नहीं रखता? देखो, इसे खबर है, ऐई! देखो! कौन-सी चूड़ी कहाँ से आयी और कितने हजार की है और कितनी है, त्रिपुटी खबर होती है। दो लाख का माल पड़ा हो तो सब खबर होती है। कहो, हमारे वहाँ आणन्दजी कितना ध्यान रखता था! यह भाव यह बोरी इलायची की दस बोरी यहाँ से लाये थे इस वर्ष में इतने भाव में। उसमें से अधमण पड़ी है अन्दर, देखो! और इस भाव में अभी बिकती है और इस भाव में अभी देना। ऐसी चीजें तो कितनी पड़ी हो बड़े गोदाम बारह-बारह, तेरह-तेरह गोदाम भरे हों। आहाहा! धूल के। उसे लक्ष्य कितना होता है?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। वह तो पुण्य हो तो ग्राहक आये और जाये।

उसमें क्या है ? धूल में माल है ? वह कोई चतुर है और ध्यान रखे, इसलिए पैसे आते हैं ? ऐसी बातें हैं खोटी-खोटी गप्प । समझ में आया ? यहाँ तो जिसे रुचि उसमें उसका लक्ष्य और यादगिरि रहती है । इतना सिद्धान्त सिद्ध करना है । यहाँ यदि रुचि हो तो यह बात इसे याद हुए बिना रहे नहीं ।

तब भरतेश्वर ने (केवली) अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त किया । इसलिए महाव्रत की प्रसिद्धि नहीं हुई । महाव्रत की प्रसिद्धि नहीं हुई, यह क्या कहा ? लोगों के ख्याल में नहीं आया । एकदम नग्न (दिगम्बर) हुए और ध्यान में बैठे, एकदम केवल (ज्ञान) । परन्तु मुनि हुए, तब विकल्प शुभराग आया पाँचवें गुणस्थान में से हटकर, चौथे गुणस्थान में से हटकर जब विकल्प आया, तब उस जाति की भूमिका आगे बढ़ने का भाव आया । फिर विकल्प छूटा, अन्दर में स्थिर हुए ... ऐसे महाव्रत का भाव पहले आये बिना रहता नहीं । मन्द कषाय का भाव है, पुण्यभाव है, बन्ध का कारण है, परन्तु ऐसा आये बिना रहता नहीं । अशुभराग के तीव्र बन्धन का अभाव करके शुभराग मन्द का भाव आता है । उसे छोड़कर जब अन्दर स्थिर हों, तब आत्मा निश्चयव्रत और सच्चा व्रत और परमार्थ व्रत कहलाता है । समझ में आया ?

इस पर कोई मूर्ख ऐसा विचार लेवे, कि जैसा उनको हुआ, वैसे हमको भी होवेगा । पंच महाव्रत के परिणाम, छठवें गुणस्थान में आगे बढ़ने पर आये बिना रहते नहीं । अन्तर्मुहूर्त में भी थोड़े अन्दर आवे । और कोई ऐसा माने कि वे हमको आये बिना अन्दर में एकदम ध्यान और स्थिर हो जाऊँगा, (ऐसा मानता है), इसलिए (उसे) मूर्ख कहते हैं ।

मुमुक्षु : सच्चा नहीं मानता इसलिए ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा मानता नहीं, सत्य मानता नहीं । आत्मा का भान सम्यग्दर्शन है, शुद्ध चैतन्य की दृष्टि हुई है । देहादि के रजकण की एकमात्र की पर्याय की क्रिया का कर्ता मैं तीन काल-तीन लोक में नहीं, ऐसा सम्यग्दर्शन में भान हुआ है और राग-विकल्प है, वह जहर है, मुझे करनेयोग्य नहीं, ऐसा भान है, तथापि आये बिना रहता नहीं । अशुभ टलने को शुभ आता है । आहाहा ! समझ में आया ?

यह प्रवचनसार में बहुत कहा है। चरणानुयोग (सूचक चूलिका अधिकार में) शुरुआत में (कहा है)। ज्ञान हुआ समकिती, तब से उसे राग का त्याग ही है। राग की क्रिया, जड़ की क्रिया का कर्ता-फर्ता ज्ञानी—समकिती है ही नहीं। समझ में आया? चरणानुयोग में प्रवचनसार है न, उसकी शुरुआत में पण्डित जयचन्द्रजी ने बहुत अच्छा लिखा है। भूमिका में आत्मा की स्थिरता जब विशेष नहीं और अनुभव दृष्टि हुई है, तथापि आगे बढ़ने में अशुभ टलने में वह शुभराग आये बिना रहता नहीं। यहाँ शुभभाव आवे ही नहीं और एकदम ध्यान करूँ तो यह कहते हैं कि मूर्ख है। उसे वस्तु की खबर नहीं। समझ में आया?

ऐसा विचार ठीक नहीं है। यदि किसी एक अन्धे को किसी तरह से निधि का लाभ हुआ,... लो! दृष्टान्त दिया। अन्धे को निधि मिल गयी। तो क्या सभी को ऐसा हो सकता है? बैठा रहे। माँ-बाप निधि मिल जायेगी। अन्धे को मिल गयी। मुझे मिले तब अपने को व्यापार नहीं करना, ऐसा होगा? व्यापार करने का राग आये बिना रहेगा उसे? राग आवे, इसलिए पैसा मिले, यह यहाँ सिद्ध नहीं करना है। राग तो बहुत करते हैं और फिर धूल भी मिलती नहीं। राग मन्द-थोड़ा करे और करोड़ों रुपये मिले। ऐसा होगा या नहीं? हिम्मतभाई! काम करते हो या नहीं तुम कितने? अभी तक कमाते हो या नहीं? और यह तुम्हारा भतीजा बढ़ गया, दो करोड़ रुपये, लो! मलूकचन्दभाई ने मेहनत तो की है या नहीं अभी तक? यह लड़के के पास दो करोड़ रुपये हो गये। दो करोड़। पूनमचन्द मलूकचन्द। इस वृद्ध के पिता के पुत्र। वह वृद्ध तो आये नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी अन्तर नहीं पड़ता, क्या पड़ता होगा? वहाँ क्या काम आवे धूल? यह उसकी अपेक्षा तो यह बैठे हैं, देखो! हिम्मतभाई बहुत बुद्धिवाले हैं। यह सच्ची बात है? तुम्हारे पाँच भाईयों में? घर में भी उसका झुकाव... बुद्धि क्या काम आवे परन्तु उसमें? वह तो पूर्व के पुण्य के रजकण जितने पड़े हों, उतने उदय में आवे, उतनी धूल दिखती है बाहर से कि आयी। उसमें आत्मा को कुछ लेना-देना है? आत्मा को लाभ क्या और उसमें नुकसान क्या? कैसे होगा उसमें? मोहनभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ बहुत मेहनत की थी, फिर कितना छोड़कर चले आये। क्या काम आवे वहाँ धूल भी? वह रजकण मात्र आना या न आना, वह तो स्वतन्त्र जड़ के कारण से है, वे तेरे कारण से आते हैं वहाँ? इसे श्रद्धा की खबर नहीं।

यहाँ तो ज्ञानी को खबर है, परन्तु उसे अभी भाव—अशुभराग होता है, उसे छोड़कर जब वह पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, तब उसे पाँच महाव्रत व्यवहार से कहलाते हैं। अन्तर भान है (कि) यह राग मैं नहीं और अन्तर स्थिरता चारित्र की दशा वर्तती है। वीतरागदशा अन्दर वर्तती है। पश्चात् विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प होता है, तब केवलज्ञान अथवा तब वह वीतरागदशा को प्राप्त होता है। परन्तु ऐसा का ऐसा विकल्प आवे ही नहीं भूमिका के योग्य और मान ले कि हमारे अकेला आत्मध्यान में हो गया, हम केवल (ज्ञान) प्राप्त करेंगे। उसे तत्त्व की खबर नहीं।

यदि किसी एक अन्धे को... कहा न? तो क्या सभी को ऐसा हो सकता है? सबको नहीं होता। भरत सरीखे भरत ही हुए। उनके जैसा कोई हो, कोई जीव हो। समझ में आया? इसलिए अन्य भव्य जीवों को यही योग्य है कि तप संयम का साधन करना (ही श्रेष्ठ है)। आत्मदर्शन होने के पश्चात् भी शुभराग के भाव व्रत के आये बिना रहते नहीं, शुभराग का साधन व्यवहार से करना, ऐसा कहा जाता है। आता है, उसे करूँ, ऐसा कहते हैं। बात तो यह है न, दूसरी क्या है? करेगा अर्थात् कि उपवास आदि का विकल्प शुभराग होता है, वह शुभराग, हों! वह वास्तविक तप नहीं। तप तो आनन्दमूर्ति की दृष्टि हुई है, उसमें—आनन्द में स्थिर होता है, इच्छा छूट जाती है और आनन्द का शुद्ध उपयोग हो, उसे तप कहा जाता है। परन्तु ऐसे तप के पहले ऐसा शुभराग सम्यग्दृष्टि को भी आता है, होता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है, ऐसा ज्ञानी समझता है।

संयम अर्थात् शुभराग का साधन करना, ऐसा ही दूसरी जगह भी कहा है। अर्थ ऐसा है कि जिसने पहले तो योग का अभ्यास नहीं किया, और मरण के समय भी जो कभी आराधक हो जावे,... पहले तो आत्मा का ध्यान (नहीं था), एकदम मरण के

समय ध्यान में उतर जाये एकदम अन्दर से। किसी जीव को ऐसा हो। पहले तो स्वभाव का साधन करना चाहिए, स्वभाव के लिये अभ्यास करना चाहिए। पहले योग का अभ्यास। योग अर्थात् आत्मा के आनन्द का, हों! योग अर्थात् स्वरूप की एकाग्रता। योग अर्थात् दूसरा नहीं। यह वे बाबा-बाबा, साधे, उसकी बात नहीं यह। आत्मा ज्ञानानन्द पुण्य-पाप के रागरहित है, उसका साधन अन्तर एकाग्र होना और ऐसी एकाग्रता में निर्बलता हो, तब शुभराग आता है। तब कहते हैं कि ऐसा कोई अभ्यास नहीं किया और मरण के समय भी जो कभी आराधक हो जावे,... मरण के समय एकदम... होवे कोई जीव ऐसे भी हों। समझ में आया?

तो यह बात ऐसी जानना कि जैसे किसी अन्धे पुरुष को निधि का लाभ हुआ हो। ऐसी बात सब जगह प्रमाण नहीं हो सकती। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान अनुभव होने पर भी, स्वरूप की चारित्रदशा प्राप्त करके ऐसा शुभराग महाव्रत आदि का होता है और उसका पालन व्यवहार से भी एकदेश व्रत कहलाता है। सबको एकदम व्रत के विकल्प (न आवे, ऐसा नहीं होता)। उन्हें—भरत चक्रवर्ती को आया था अन्तर्मुहूर्त में। किसी को अन्तर्मुहूर्त थोड़े काल आकर एकदम स्थिर हो जाये, ऐसा भी आवे। उसमें क्या? किसी को अधिक शुभराग (रहे)। ऐसा प्रमाण नहीं, कहते हैं। अन्तर से आ जाये। आ जाये, वह तो सहज स्वरूप का पुरुषार्थ जगे तो ऐसा विकल्प थोड़े काल रहे और स्थिर हो। किसी को अधिक काल विकल्प हो। साधारण के लिये किसी का अधिक हो। ऐसी बात सब जगह प्रमाण नहीं हो सकती। कभी कहीं पर होवे तो होवे। लो! यह अधिकार पूरा किया।

इस तरह मोक्ष, मोक्ष का फल, और मोक्ष के मार्ग के कहनेवाले दूसरे महाधिकार में परम उपशान्तभाव के व्याख्यान की मुख्यता से अन्तरस्थल में चौदह दोहे पूर्ण हुए।



गाथा - ५३

अब, निश्चयनयकर पुण्य-पाप दोनों ही समान हैं,... बात करेंगे। यह शुभभाव हो या अशुभ, दोनों पुण्य-पाप दोनों समान बन्ध के कारण हैं। ऐसा जो न माने, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि चार गति में भटकेगा, ऐसा कहेंगे। है न पाठ, देखो न!

१८०) बंधहँ मोक्खहँ हेउ णिउ जो णवि जाणइ कोइ।

सो पर मोहिं करइ जिय पुण्णु वि पाउ वि दोइ ॥५३॥

अज्ञानी दो भाग करते हैं कि पुण्य का भाव, वह ठीक और पाप का भाव, वह अठीक। ऐसे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि भेद करते हैं। 'मोहिं करइ' मिथ्यादृष्टि। स्पष्टीकरण आयेगा। समझ में आया? ऐसा चौदह दोहों में कहते हैं। जो कोई स्वभावपरिणाम को मोक्ष का कारण और विभावपरिणाम को बन्ध का कारण निश्चय से ऐसा भेद नहीं जानता है,... देखो! क्या कहा? भगवान् आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द का जो स्वभाव शुद्ध है, उस शुद्धस्वभाव के परिणाम से ही आत्मा को धर्म और मुक्ति होती है। विभाव परिणाम, वह बन्ध का कारण है। पश्चात् शुभराग हो दया का या अहिंसा का, सत्य का, दान का या पूजा का या भक्ति का, परन्तु वह बन्ध का कारण विभाव है। यह नहीं मानता, वह मिथ्यादृष्टि चार गति में हिंडशे (भटकेगा)। 'हिंडदि' आता है न? ७७ गाथा, प्रवचनसार। 'हिंडदि घोरमपारं संसारं' जो कोई मूढ़ जीव शुभ और अशुभ दो राग है, उनमें एक ठीक और दूसरा अठीक माने, बन्ध के कारण में एक को ठीक माने और दूसरे को अठीक माने। वे दोनों बन्ध के कारण हैं। वह मिथ्यादृष्टि, वही पुण्य-पाप का कर्ता होता है,... देखो! है न? पुण्य-पाप का कर्ता होता है, पुण्य का कर्ता—पुण्य वह मेरा कार्य है, पुण्य वह मेरा कर्तव्य है। ऐसा मिथ्यादृष्टि मानता है, अन्य नहीं। ऐसा मन में धारणकर यह गाथा-सूत्र कहते हैं—

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल २, रविवार, दिनांक - २३-०१-१९६६

गाथा - ५३-५४, प्रवचन - १०६

(परमात्मप्रकाश) दूसरे भाग की ५३वीं गाथा। आगे निश्चयनयकर पुण्य-पाप दोनों ही समान हैं,... क्या कहते हैं ? ... तो क्या कहते हैं ? कि यह आत्मा है आत्मा, वह ज्ञानस्वरूप है। वह ज्ञान स्वभाव उसका अनादि-अनन्त चैतन्यस्वभाव आनन्द और ज्ञानस्वभाव है। उसके स्वभाव को भूलकर आत्मा में जितने शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप भाव होते हैं, वे दोनों भाव बन्ध का कारण है। देहादि तो मिट्टी-जड़ अजीवतत्त्व है मिट्टी-धूल, वह कहीं आत्मा नहीं। और उसमें कर्म रजकण हैं, जिन्हें आठ कर्म कहा जाता है, वह भी बारीक धूल जड़ है। आत्मा अखण्ड ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति का स्वभाव ज्ञान चैतन्यसूर्य प्रकाशमय आत्मा है। वह अनादि से भूलकर उसकी दशा में मिथ्या भ्रम अथवा पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह सब विकार है। वह विकार उसे नुकसान का कारण है, दुःखरूप है, परिभ्रमण का हेतु है। सवेरे की बात ली यह। इसलिए कहते हैं, पुण्य और पाप दोनों समान हैं। वे आत्मा में शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप से विपरीत होता भाव दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि का भाव, वह शुभभाव है, वह पुण्य है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, क्रोध, मान, माया, लोभ जो विकल्प उठता है, वह पाप है। वह पुण्य और पाप समान है। समान अर्थात् विकार है। विकार अर्थात् वह नये बन्धन का कारण है। ऐसा चौदह दोहों में कहते हैं। चौदह गाथाओं में यह बात करेंगे।

जो कोई स्वभावपरिणाम को मोक्ष का कारण और विभावपरिणाम को बन्ध का कारण निश्चय से ऐसा भेद नहीं जानता है, वही पुण्य-पाप का कर्ता होता है,... समझ में आया ? 'स एव पुण्यपापद्वयं करोति' ऐसा है मूल तो संस्कृत में। 'बन्धमोक्ष-हेतुभूतौ न जानाति स एव पुण्यपापद्वयं' अर्थात् दो करता है, ऐसा। वास्तव में तो ऐसा

है। दो भाग वह करता है। शब्दार्थ तो ऐसा है कि **वही पुण्य-पाप का कर्ता होता है...** समझे न ? भाई ! पाठ ऐसा है। दो करता है। बस ! ऐसा कहते हैं। मूल टीका (में) ऐसा कहते हैं। क्या कहना है ? भगवान आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप का स्वभाव शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का जो परिणमन स्वभाव का हो, वह मोक्ष का कारण है और विभाव परिणाम बन्ध का कारण है। वह विकारी भाव हो, वह पुण्य हो या पाप हो, दोनों बन्ध का कारण है। **ऐसा भेद नहीं जानता है...** ऐसी भिन्नता को जो जानता नहीं, वह पुण्य-पाप के दो भाग को दो पाड़ता है। पुण्य, वह ठीक और पाप, वह अठीक—ऐसे दो भाग पाड़ता है। समझ में आया ? यह तो मूल की बात है। अनन्त काल से आत्मा के भान बिना यह चौरासी के अवतार में रुला है।

देखो ! यह दृष्टान्त। क्षण में देह छूटकर चले जाते हैं। सुनते हैं न कितने ही। ऐसे ही बनते हैं सब (प्रसंग)। देखो, यह शास्त्रीजी गये, यह कल सुना, यह गज्जर डॉक्टर दो घण्टे में एकदम उड़ गया। राणपुर। वाडीभाई मोढ। बहुत आते बेचारे, यहाँ आते थे मोढ। घड़ीक में (चले गये)। देह जड़ है और उसका टिकना भी संयोग का जितना काल लेकर आया है, उतना टिकना है। भगवान आत्मा तो अनादि-अनन्त है। नित्यानन्द कोई नयी की हुई चीज नहीं कि जो नाश होकर दूसरे में मिल जाये, तीसरे में (मिल जाये)। वह तो नित्य ध्रुव चीज अनादि-अनन्त सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। ऐसे स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, ऐसा स्वभाव परिणमन, शुद्धस्वभाव परमानन्द की मूर्ति का शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, आनन्द का परिणमन, वही मोक्ष का कारण है।

विभाव परिणमन, पश्चात् शुभभाव हो या अशुभ हो। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, करुणा, कोमलता का भाव हो, वह शुभ और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना का (भाव) अशुभ। ये दोनों विभाव हैं, दोनों विकार हैं और दोनों बन्धन का ही कारण है। ऐसा नहीं जानते और पुण्य-पाप के भेद करते हैं, ऐसा कहना है यहाँ। **‘द्वयं करोति’** पुण्य-पाप दो मानते हैं। एक ओर तो स्वभाव परिणमन मोक्ष का कारण, विभाव बन्ध का कारण। बस ऐसे दो हैं। उसके बदले ऐसे दो करते हैं। क्या कहते हैं ? समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! इसने कभी आत्मा का ध्यान किया नहीं। आत्मा क्या

(इसकी खबर बिना) सब थोथे थोथा अनन्त बार किया। या तो पर का करना, ऐसा मानकर भटका, या शुभभाव पुण्य है, वह मुझे धर्म है, ऐसा मानकर भटका। चार गति और चौरासी के अवतार में अनेकरूप से जन्म और मरण अनन्त किये। परन्तु मैं एक आत्मा, यह शरीर, वाणी, कर्म से जैसे निराला—भिन्न हूँ, उसी प्रकार यह शुभ और अशुभभाव एक ही प्रकार से विकार और बन्ध का कारण है, उससे मेरी चीज़ निराली ज्ञानानन्द है, ऐसे स्वभाव का भान इसने अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी किया नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं, यह पुण्य-पाप के कर्ता। कर्ता अर्थात् दो प्रकार का काम है, ऐसा वह मानता है। कहाँ गये जमुभाई ? बहुत कठिन यह वर्तमान लोगों को। वर्तमान क्या, बापू ! अनादि काल का है, भाई ! तू कहाँ नया था ? और नया हो, वह नित्य होगा ? नयी वस्तु कभी होती ही नहीं। होवे, वह जाये नहीं और न हो, वह हो नहीं। होवे उस चीज़ का रूपान्तर, अवस्थान्तर, दशान्तर होता है। इसी प्रकार आत्मा है, वह कभी अभाव होता नहीं। उसमें अवस्थान्तर होता है अनादि। पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान, व्रत और भक्ति, पूजा और नामस्मरण, यह सब पुण्य और पाप के विकारी एक ही प्रकार के भाव हैं। उन्हें बन्धनरूप से दोनों को न मानकर, दो में पुण्य परिणाम, वह ठीक है, पाप अठीक है—ऐसा माननेवाले, वे संसार में चार गति में भटकते हैं और भटकेंगे। समझ में आया ? यह बात कहते हैं, देखो !

१८०) बंधहँ मोक्खहँ हेउ णिउ जो णवि जाणइ कोइ ।

सो पर मोहिं करइ जिय पुण्णु वि पाउ वि दोइ ॥५३॥

जो कोई जीव बन्ध और मोक्ष का कारण अपना विभाव और स्वभाव परिणाम है,... देखो ! विशिष्टता क्या है ? समझ में आया ? निज विभाव, स्वभाव हेतु। भाई ! निज शब्द पड़ा है। ध्यान रखना। कर्म रजकण जो कर्म है, वह आत्मा को बन्ध का कारण या कुछ है ही नहीं, वह तो जड़-मिट्टी है। भगवान आत्मा ज्ञान की, चैतन्य की, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान, आनन्द अर्थात् अनाकुल रस का कन्द अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर पदार्थ

है। आहाहा! ऐसे भगवान के, यह स्वरूप, अपना स्वरूप है, उसके दो प्रकार लिये। समझ में आया ?

बन्ध और मोक्ष का कारण 'णिउ णवि जाणइ'। देखो! पाठ में है न शब्द 'णिउ जो णवि जाणइ' क्या कहा ? भगवान आत्मा पूर्णानन्द की मूर्ति, उसकी अन्तर स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, ऐसा निज भाव शुद्ध, वह मुक्ति का कारण है। और निजभाव विकार पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव, वह भी निजभाव विभाव है। समझ में आया ? वह निज-अपना विभाव और स्वभाव परिणाम दोनों को निज कहा है। चैतन्यगोला भगवान आत्मा है। पूर्णानन्द की मूर्ति अनादि अनाकुल शान्तरस कन्द की अन्तर में निज स्वभाव की श्रद्धा, मैं पूर्णानन्द हूँ, उसका ज्ञान, उसकी रमणता—ऐसा जो स्वभाव, वह तो पूर्णानन्दरूपी प्राप्ति मुक्ति का कारण है। वह परिणाम भी निज परिणाम है। और पुण्य-पाप के विभावभाव भी निज—जीव के उल्टे विभाव परिणाम निज हैं। वह बन्ध का कारण है। कर्म-फर्म बन्ध का कारण (ऐसा तो) यहाँ नाम भी याद नहीं (किया) ? पाठ में देखो शब्द पड़ा है। आहाहा! परन्तु इसमें लोगों को निवृत्ति नहीं मिलती। धन्धे के कारण, पाप धन्धे के कारण। रुपये कमाना यह दो, पाँच, दस लाख इकट्ठे किये धूल। इकट्ठे तो कुछ होते नहीं इससे, वे तो पूर्व का पुण्य हो तो होते हैं, मर जाये तो भी कुछ होगा नहीं एक पाई भी। ऐसा होगा न ? मणिभाई! वह छोड़कर चला आना पड़ा यहाँ, देखो शरीर शिथिल पड़ा वहाँ। रुपये वहाँ रह गये। धूल में भी काम आते नहीं।

मुमुक्षु : डॉक्टर....

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर का अभिमान होता है। आहाहा! डॉक्टर को ऐसा कि सेवा मिले और पैसा मिले, दोनों काम हो।

मुमुक्षु : पैसा तो लड़के को काम आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे नहीं। उसे शाकभाजी लेने में काम आवे, ऐसा माने। धूल में भी नहीं अब यहाँ।

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा अपना स्वरूप अखण्डानन्द चिदानन्द सच्चिदानन्द सत्... सत्... सत्... शाश्वत् है। ऐसी शाश्वत् चीज़ में तो ज्ञान और आनन्द

अन्दर पड़ा है। समझ में आया ? यह भाषा तुम तो समझते हो अब गुजराती। कुण्डला के वासी हो गये न अब तो। गुजराती हो गये। वरना शुरुआत में... जैसे पीपर के दाने में... छोटी पीपर है न, छोटी पीपर होती है न। पीपरीमूल नहीं, छोटी पीपर। पीपरीमूल वह गंठोडा। वह पीपर जो लींड़ीपीपर, छोटी पीपर कहते हैं। उसमें चौंसठ पहरी अन्दर चरपराई और हरा रंग अन्दर पूरा पड़ा है।

मुमुक्षु : पूरा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा पड़ा है, चौंसठ पहरी होता है न घूटे तब। वह कहाँ से आता है ?

मुमुक्षु : घूटने से।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं घूटने से, कंकड़ घूटे नहीं ? कोयला घूटे नहीं आवे तो ? उसमें पड़ी है, प्राप्त की प्राप्ति है। उस पीपर में चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया-रुपया सोलह आने चरपरा रस, (गुजराती में) तीखो कहते हैं और तुम्हारे चरपरा, तुम्हारे चरपरा कहते हैं, हमारे तीखा कहते हैं, चरपरा-तीखा रस अन्दर चौंसठ पहरा रुपया-रुपया (पूर्ण) पड़ा है। और हरा रंग-हरा रंग पड़ा है अन्दर में। तो है, (वह) निकलता है। इसी प्रकार आत्मा के अन्दर में पीपर के दाने की भाँति अनन्त ज्ञान सर्वज्ञ और पूर्ण आनन्द पड़ा है अन्दर। उसकी श्रद्धा की उस धूल की।

इस आत्मा में पूर्ण आनन्द, सर्वज्ञ अर्थात् अकेला ज्ञानस्वभाव, चैतन्यस्वभाव पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... अनाकुल आनन्दस्वभाव पूरा पूर्ण आनन्द। ऐसा उसका वस्तु स्वभाव अन्दर पड़ा है। ऐसे स्वभाव की अन्तर्मुख की स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति। यह कहेंगे अर्थ में। ऐसे परिणाम मेरे अपने निज परिणाम-पर्याय, वह मुझे मुक्ति का कारण है। ऐसा ज्ञानी मानता है और निज विभाव पुण्य और पाप के दोनों विकल्प उठते हैं ...में यह मेरे ही किये हुए विकारभाव, वह मुझे बन्ध का कारण है। समझ में आया ? ऐसा जो नहीं जानता, वही पुण्य और पाप दोनों को ही मोह से करता है। दोनों ही से मोह करता है। मिथ्यादृष्टिरूप से दोपने मानता है कि पुण्य से ठीक है और पाप अठीक है। ऐसे पुण्य-पाप का कर्ता मिथ्यादृष्टि मूढ़ स्वभाव के भानरहित वह

विकार के भाव में जुड़कर कर्ता होता है। भारी सूक्ष्म बात, भाई! कहो, नटुभाई! समझ में आया या नहीं यह? वकालत में आता नहीं ऐसा कुछ। आहाहा! सब गप्प ही गप्प मारनेवाले हैं। डॉक्टर और वकील और सब, हों!

भगवान आत्मा देह में विराजमान चैतन्य दल है। यह (शरीर) तो मिट्टी है, जड़ है। चला जाता है न यहाँ से तत्त्व। लाख उपाय कर। लगाने लगे थे बहुत दो घण्टे। डॉक्टरों ने आकर इंजेक्शन (लगाये)। फूँ होकर उड़ गया, लो। ४५ वर्ष की उम्र का था। ... वह तो ऐसे सब उड़ जाते हैं। वहाँ कहाँ निज चीज़ थी, वह इसके साथ इकट्ठा रहे? वह तो भिन्न चीज़ है। जैसा इसने पूर्व में भाव किया हो पुण्य और पाप के, उस प्रकार से वहाँ कर्म की अवधि—स्थिति बँधती है। उस प्रकार से वहाँ देह में रहता है। लाख तेरे डॉक्टर और इन्द्र ऊपर से उतार तो भी एक समय बदले, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। धर्मचन्दभाई! यह डॉक्टर डंफास बहुत करे। कहो, समझ में आया इसमें? इंजेक्शन लगाना और ऐसा करना... ऐसा करना... रग पकड़कर एक को लगाया, वहाँ श्वास बन्द हो गयी। कहो, समझ में आया? हमारी नजर में हुआ है न यहाँ।

भावार्थ :- देखो, क्या कहते हैं? निज शुद्धात्मा की अनुभूति की रुचि से विपरीत... क्या कहते हैं जरा? यह तो अध्यात्मसूत्र है, इसलिए इसके शब्दार्थ भी जरा सूक्ष्म हैं। निज अर्थात् भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दमूर्ति प्रभु निज शुद्ध-पवित्र आत्मा, ऐसा जो आत्मा, उसकी अनुभूति। उसका अन्दर में अनुभव होना कि वह तो आनन्दमय है, ज्ञानमय अनुभूति हुई है। ऐसी अनुभूति की रुचि, उससे विपरीत मिथ्यादर्शन। उससे विपरीत मिथ्यादर्शन अर्थात् उल्टी मान्यता। समझ में आया? निज शुद्धात्मा के ज्ञान से विपरीत मिथ्याज्ञान,... पाठ में ऐसा है 'स्वशुद्धात्म-प्रतीतिविपरीतं मिथ्याज्ञानं' ऐसी भाषा प्रयोग की है, हों! टीका में ऐसा कहा है। है न? 'निजशुद्धात्मानुभूतिरुचिविपरीतं मिथ्यादर्शनं स्वशुद्धात्म-प्रतीतिविपरीतं मिथ्याज्ञानं' ऐसी बात रखी है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अनुभूति ठीक, वह विपरीत शब्द प्रयोग किया है, प्रतीति शब्द प्रयोग किया है। मिथ्याज्ञान में प्रतीति प्रयोग किया है। रुचि तो उसमें गया।

यह तो ज्ञान में प्रतीति प्रयोग की है संस्कृत टीका में। क्या कहा जाता है, समझ में आया ? आहाहा !

भगवान आत्मा शरीर, वाणी नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प-राग भी नहीं। मैं तो अखण्ड आनन्दकन्द ज्ञानमूर्ति आत्मज्ञान स्वरूप हूँ, ऐसा अन्तर शुद्धात्मा का अनुभव, आत्मा का अनुभव। जो आत्मा शुद्ध है, उसे अनुसरकर दशा का होना। उसकी रुचि, उसकी रुचि, भान में रुचि, उससे विपरीत वह मिथ्यादर्शन। समझ में आया ? और निज शुद्धात्मा के ज्ञान की प्रतीति से विपरीत मिथ्याज्ञान। भगवान आत्मा शुद्धात्मा, शुद्ध चैतन्यमूर्ति का जो ज्ञान, उससे विपरीत यह सब तुम्हारे ज्ञान वकालत के और डॉक्टर के, सब मिथ्याज्ञान।

मुमुक्षु : व्यापारी और नौकरीयात के ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापारी और नौकरीयात के सब मिथ्याज्ञान।

भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति प्रभु चैतन्य। क्या लिखा, देखो न ! शुद्धात्मा के ज्ञान से विपरीत... चैतन्यप्रभु ज्ञान की मूर्ति चैतन्य सूर्य आत्मा है, उसका ज्ञान—आत्मा का ज्ञान, उससे विपरीत। आहाहा ! जगत की जितनी कला और ज्ञान कहलाता है, वह मिथ्याज्ञान। वह तो ठीक, परन्तु शास्त्र का पठन करे, वह भी आत्मा-शुद्धात्मा का जो ज्ञान, उससे विपरीत है। उन सबको मिथ्याज्ञान कहते हैं। समझ में आया ?

और निज शुद्धात्मद्रव्य में निश्चल स्थिरता से उल्टा... भगवान आत्मा चिदानन्द की ज्योति सत्ता स्वभाव भगवान, उसके निज में शुद्धात्म पदार्थ वस्तु, ज्ञानानन्द पदार्थ उसमें निश्चल स्थिरता; स्थिरता अर्थात् चारित्र। स्वरूप में चरना, आनन्दकन्द में रमना, लीनता, उसका नाम चारित्र। उससे उल्टा, वह मिथ्याचारित्र। समझ में आया ? फिर शुभाशुभभाव चाहे जो हो। शुभभाव, वह मिथ्याचारित्र। जयन्तीभाई ! गजब बातें, भाई ! आहाहा ! अरे ! बापू ! अनन्त काल में ऐसा देह मुश्किल से मिला है। निगोद और नरक में से निकल-निकलकर... गये उनके निकलने के भव कर-करके। उसमें इस बात की सत्यता का यदि सम्यग्ज्ञान नहीं करे, वह अवतार का अन्त नहीं आवे, सब फू हो जायेगा उड़कर एकदम। पूर्व के पुण्य-बुण्य मिले हों और धूल मिली हो पाँच, पचास

लाख सब धूल होकर श्मशान की राख होगी शरीर की। भगवान आत्मा अपनी भूल के कारण चला जायेगा भ्रमण में भटकने।

यह कहते हैं कि भूल कौन-सी? भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप की अन्तर रुचि, उससे उल्टी रुचि, उसका नाम मिथ्यात्व। पुण्य-पाप मेरे और शरीर मेरा और यह मेरे और मुझे पर में सुख होता है, फिर धूल से सुख होता है पैसे से शरीर से—वह सब मान्यता मिथ्या रुचि मिथ्या श्रद्धा है। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप के ज्ञान सिवाय, शास्त्र के पठन आदि अकेला पर का ज्ञान, उसे मिथ्याज्ञान कहा जाता है। और भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान में रमे अन्दर में, उसका नाम सम्यक्चारित्र जो मुक्ति का कारण है, उससे उल्टे जितने भाव शुभाशुभ, वह सब मिथ्याचारित्र है। समझ में आया?

जो मिथ्याचारित्र इन तीनों को बन्ध का कारण... ठीक! यह तीनों बन्धन का कारण है। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र तीनों अधर्म हैं और नये आवरण का, बन्धन का कारण है। **और इन तीनों से रहित...** भेदाभेद जरा डालते हैं, भाई! यह थोड़ा-थोड़ा। फिर वापस निकाल डालेंगे। बाद की गाथा में निकाल डालेंगे। जरा यहाँ ज्ञान कराते हैं। फिर अकेला रखेंगे, ५४ में। क्या कहते हैं? आत्मा अर्थात् कि मानो कुछ नहीं। आत्मा अर्थात् कुछ नहीं। जो परम स्वरूप का कन्द पूरा, जिसके अन्दर में सरोवर जिसके स्वभाव में ज्ञान और आनन्द के सागर भरे हैं। भगवान जाने क्या होगा? समझ में आया? वह तो यह देह और यह और हिलना, चलना, बोलना और क्रिया और या तो बहुत तो पुण्य-पाप के भाव। बस, हो गया। जो आत्मा का स्वरूप है ही नहीं, उसे माना इसने। अन्दर भगवान ऐसे अखण्डानन्द प्रभु सच्चिदानन्द अनादि-अनन्त परम महन्त सन्त जिसने आत्मा को साधा है, ऐसा उसका साधन किया है। ऐसा भगवान पूर्णानन्द की मूर्ति प्रभु अपना आत्मा, उससे जितनी विपरीत श्रद्धा, विपरीत ज्ञान और विपरीत चारित्र, वह सब बन्धन का ही कारण है। इन तीन से रहित, मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र—तीन से रहित।

भेदाभेद रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष का कारण... पाठ में तो इतना कहा है न? बन्ध को... है न? 'बंधहूँ मोक्खहूँ हेउ' इतना है। टीका में जरा डाला था। मोक्ष अर्थात् आत्मा

के शुद्धस्वभाव की पूर्ण दशा प्रगट होना, वह मोक्ष। उसका कारण वह आत्मा शुद्धस्वरूप आत्मा जिसे तीन बोल कहे थे यहाँ। अनुभूतिरूपी रुचि, शुद्धात्मा का ज्ञान और शुद्धात्मा में स्थिरता, वह तीन मोक्ष का कारण है। उसके साथ जरा भेदरत्नत्रय भी इकट्ठा लिया विशेष ज्ञान कराने के लिये। क्योंकि जिसे आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप है, उसकी जिसे श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति-चारित्र हो होता है। पूर्ण न हो, तब उसे देव-गुरु-शास्त्र का शुभराग, श्रद्धा में नौ तत्त्व का का भेदरूपी श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का विकल्प राग और शास्त्र में ज्ञान का विकल्प ऐसा होता है। इतना गिनकर उसे व्यवहार मोक्ष का कारण उपचार करके कहा है। और निश्चय से तो आत्मा पहले तीन बोल कहे वे। समझ में आया ?

मुमुक्षु : करना आया नहीं इसे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी करना नहीं आया। धूल भी आया नहीं सब, आया है सब अज्ञान। समझ में आया ? कैसे होगा ? मलूकचन्दभाई ! आहाहा !

भगवान आत्मा जिसकी अन्तर स्वभाव के आनन्द की रुचि कि जो वीतरागी रुचि और वीतरागी आत्मा का स्वभाव उसकी प्रतीति और उसका अनुभव और उसमें स्थिर होना, यही मुक्ति का कारण है। उसके साथ व्यवहार जरा विकल्प-निमित्त का ज्ञान कराने को लिया। समझ में आया ? उससे विपरीत तो सब बन्ध का ही कारण है।

ऐसा जो नहीं जानता है, वही मोह के वश से... मोह अर्थात् मिथ्यात्व। पुण्य-पाप का कर्ता होता है। पुण्य-पाप को दो मानता है। पुण्य को उपादेय जानके करता है, पाप को हेय समझता है। ऐसा कहते हैं। यह नाड़ी परखना कठिन है, भाई ! इसने कभी इसका रोग कैसे हुआ, उसे इसने पकड़ा नहीं। समझ में आया ? अखण्डानन्द प्रभु ऐसे सच्चिदानन्द सत्, सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द की कातली, पूतली स्वयं है। उसकी श्रद्धा से विपरीत पुण्य और पाप के भाव, उसमें पुण्यभाव वह ठीक है, उपादेय है, मुझे करनेयोग्य है और पापभाव, वह अठीक है, हेय है — ऐसा जो मानता है, वह मिथ्यादृष्टि मोह के कारण मानता है, मिथ्यात्व के कारण मानता है। समझ में आया ? है न, उसमें पाठ में ही है, देखो ! 'पुण्यपापद्वयं हेयमपि मोहवशात्' है, देखो ! है तो दोनों

हेय, कहते हैं। है न, टीका में है। पुण्य और पाप के दोनों भाव वास्तव में तो छोड़नेयोग्य है, तथापि मिथ्यात्व 'मोहवशात्पुण्यमुपादेयं करोति पापं हेयं करोतीति'। आहाहा! गजब बात! समझ में आया इसमें? यह जन्म-मरण को गलाने की पद्धति यह समझा नहीं, कहते हैं।

**आत्म भ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान,
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।**

डॉक्टर! यह दूसरा आया। आत्मा भ्रान्ति सम रोग नहीं। शरीर का रोग, वह रोग नहीं आत्मा को। आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसा न मानकर, उसे पुण्य-पाप और शरीरवाला तथा विकारवाला मानना, वह बड़ी भ्रान्ति, वह बड़ा रोग है। समझ में आया? 'आत्म भ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान', उस रोग को मिटानेवाले ज्ञानी इसे बताते हैं, वह सुजान—जाननेवाला चाहिए वापस, हों! अन्ध हो तो उसे खबर पड़ती नहीं। यह श्लोक है। आत्मसिद्धि का न? वह आत्मसिद्धि एक पुस्तक है। आत्मसिद्धि एक पुस्तक है न अपने छोटी? होवे तो देना भाई को। अर्थसहित पूरी पुस्तक है। १४२ श्लोक गुजराती, उनका अर्थ है। शान्तिभाई! एक देना। भाई को देना। यह तो वैद्य का निकला तो ऐसा हुआ... समझ में आया? कहो, नटुभाई! तुम्हारा कायदा क्या करे वहाँ? धूल में भी काम न आवे वहाँ, मरता हो तो ऐं... ऐं... ऐं... हो जाये। कायदा लगाओ वहाँ।

यह कहते हैं, भगवान आत्मा अन्तर आनन्दमूर्ति की शरण, दृष्टि कर, वह तुझे शरण है। बाकी कोई जगत में शरण नहीं है। आहाहा! यह ज्ञाता के ऊपर मार—स्थाप दृष्टि को (कि) चैतन्यमूर्ति आत्मा है। दृष्टि को ध्येय करके उसे स्थापित कर, वही मुक्ति का कारण है और वह ही शरण है। बाकी लाख इसके पुण्य और पाप के भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... करे तो वह पुण्य है। वह कहीं धर्म-बर्म नहीं और वह आत्मा को शरण नहीं। समझ में आया? भगवान... भगवान... भगवान... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... क्या है? ॐ तो वाणी तो जड़ है। विकल्प उठे वह राग है, पुण्य है। शशीभाई! वह धर्म नहीं, वह शरण नहीं। वह आत्मा का स्वभाव नहीं।

विकल्प उठना, वह आत्मा का स्वभाव नहीं, विभाव है, ऐसा कहा न! उस विभाव में दो प्रकार के भाग करे कि यह शुभराग का जो विकल्प उठे पुण्य, वह ठीक और पाप अठीक, (ऐसा) मिथ्यादृष्टि मोह के वश से दो भाग करता है। बन्ध का एक ही प्रकार का भाव है, उसे दो भाव करना, यह मिथ्यात्व के कारण से होता है। आहाहा!

यह बेचारे पण्डित चिल्लाहट मचाते हैं, हों! काशी के पढ़नेवाले। अब पढ़े। यह सुन सके, ऐसे भाग्य कहाँ से हो उनके? ऐई! रतिभाई! यह भाग्य चाहिए है ऐसी बात सुनने को। उघाड़ की योग्यता, विकल्प का आना और यह सुनने का पुण्य। तीनों चाहिए न! क्या कहा? इस जाति के क्षयोपशम की योग्यता, इस जाति का सुनने का विकल्प और इस जाति के सुनने का पुण्य। आहाहा! भारी जगत को उल्टे रास्ते। वाड़ बेल को खाती है। गुरु नाम धराकर मार डाला जगत को। गला पकड़कर नरक और निगोद में ले गये हैं इसे। ज्ञानार्णव में पाठ है, हों! ज्ञानार्णव है न? कुगुरु आत्मा के भान बिना के जगत को धर्म के बहाने ऐसे अधर्म में चढ़ाये। गला पकड़कर उल्टे रास्ते ले गये निगोद में, नरक में। चल मेरे साथ। यह आचार्य कहते हैं, हों! एक शुभचन्द्र आचार्य हैं दिगम्बर सन्त। दिगम्बर सन्त मुनि ने जंगल में ज्ञानार्णव बनाया है। उसमें एक श्लोक है। वे तो नग्न मुनि थे, नग्न मुनि—जंगल में आत्मध्यान में (रहते थे)। उन्हें जगत की कुछ पड़ी नहीं थी। सत्य था, वह बाहर रख दिया जगत को।

कहते हैं, अरे! अज्ञानी। **पुण्य को उपादेय जानके करता है, पाप को हेय समझता है।** मूढ़ है। क्या होगा इसमें? भारी कठिन। अभी सुनने को निवृत्त नहीं हो, अभी पाप परिणाम से निवृत्त न हो, वहाँ कहे पुण्य परिणाम वह छोड़नेयोग्य। बापू! धर्म की बात है यहाँ तो। जिसे धर्म समझना हो, उसे शुभ और अशुभ दोनों पुण्य और बन्ध के कारण है और भगवान आत्मा, वह पुण्य और पाप के राग की विकल्प वासना से पार है। ऐसे शुद्ध भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति एक ही मुक्ति का कारण है। कहो, जयन्तीभाई! ऐई! कपासी! समझ में आया इसमें? मुश्किल से सुने मुश्किल से किसी दिन और उसमें वह सामायिक करो, प्रौषध करो, उपवास करो, प्रतिक्रमण करो। अब इसमें धर्म मनावे, लो! धूल में भी धर्म नहीं, अब सुन न!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : गाँव में होता होगा, पाप हो वहाँ। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अन्तर आनन्द, अन्तर जिनचन्द्र... जिनचन्द्र... जिनचन्द्र... आत्मा को ध्याओ, उसका ध्यान करो। क्या कहना है ? भगवान आत्मा, वह जिनकन्द है। जिनकन्द अर्थात् कि वीतरागी कन्द का दिलिया है आत्मा पवित्र। वह जिनचन्द्र है। वीतरागी ज्ञान की ज्योति आत्मा है। समझ में आया ? ऐसा जिनकन्द और जिनचन्द्र, उसमें जो पुण्य-पाप के विकल्प उठें, वे उससे अत्यन्त विरुद्ध हैं। जिन अर्थात् वीतरागी चन्द्र और वीतरागी प्रकाश और वीतराग का कन्द। उससे उल्टा भाव वह सब रागभाव है। फिर दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों या पाप के, दोनों परिणाम राग के हैं, विकार के हैं, विभाव के हैं, बन्ध के कारण हैं। ऐसा भेद नहीं करता और एक पुण्य अच्छा और पाप खराब — ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि मूढ़ जैनतत्त्व अर्थात् आत्मतत्त्व वीतरागी तत्त्व है, उसे मानता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ?

★ ★ ★

गाथा - ५४

आगे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप परिणामता जो आत्मा, वह ही मुक्ति का कारण है,... देखो, अब मूल वापस ले लिया। ५४।

१८१) दंसण-णाण-चरित्तमउ जो णवि अप्पु मुणेइ।

मोक्खहँ कारणु भणिवि जिय सो पर ताइँ करेइ ॥५४॥

जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमयी आत्मा को नहीं जानता,... भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति, उसके अन्तर में सन्मुख होकर स्वभाव-सन्मुख के, आत्म-अभिमुख के, विभाव से विमुख के, स्वभाव से सन्मुख के जो परिणाम, उन्हें सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा, उसके स्वभाव-सन्मुख के, आत्म-अभिमुख के ज्ञान का ज्ञान, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। और भगवान आत्मा ऐसे शुद्धस्वरूप के दल में स्थिर हो, स्थिर हो, रमणता करे, स्थिर-स्थिर हो। यह ढोर जैसे घास को चरते हैं, उसी प्रकार भगवान

आत्मा अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द को एकाग्र होकर चरे, अनुभव करे, उसे भगवान चारित्र कहते हैं। आहाहा! कपासी! सुना नहीं होगा, यह वस्त्र बदले, जय महाराज! सुने बिना क्या करना? जयन्तीभाई! ठीक इस बार तुमको पकड़कर लाये। भगवानभाई! यह भगवानभाई वहाँ सुनते थे न कितने वर्ष से।

भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ अरिहन्त तीर्थकरदेव की वाणी में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए, उसमें से कितनी ही बातें वाणी में आयी है। समझ में आया? इस वाणी में भगवान का फरमान ऐसा है। अरे! आत्मा वह हमारा मार्ग वीतरागी मार्ग अर्थात् कि जिनचन्द्र, जिनकन्द भगवान आत्मा, उसका अन्तर स्वरूप का मार्ग तूने भगवान! कभी सुना नहीं, भाई! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, भगवान शुद्ध प्रभु देह, वाणी, कर्म से तो भिन्न दृष्टि, परन्तु शुभ-अशुभभाव उठता है, वह कृत्रिम विकार मैल, उससे भिन्न दृष्टि है। अकेला चैतन्य मोहरहित निर्मलानन्द प्रभु के सन्मुख की अन्तर प्रतीति, उसका ज्ञान और उसमें स्थिरता, ऐसा जो आत्मा। देखो! मय कहा है न? उसे ग्रहण करने में कठिन पड़े कि अभी यह क्या कहते हैं? ग्रहण करना कठिन पड़े, वह धारे कब, रुचि करे कब और परिणामावे कब? वह मार्ग यह है। तुझे मुक्ति और मोक्ष चाहिए हो तो (यह मार्ग है)। मोक्ष अर्थात्? आत्मा में परमानन्द शक्ति पड़ी है, उसकी प्रगट अवस्था का पर्याय में—अवस्था में पूर्णानन्द का प्रगट होना, उसका नाम मुक्ति। विकार का पूर्ण अभाव और मुक्ति के आनन्द की पूर्ण प्राप्ति, उसका नाम मुक्ति।

मुमुक्षु : दुःख का क्या होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का अभाव। पर्याय में, अवस्था में दुःख का पूर्ण अभाव और आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण प्राप्ति। अन्तर में जैसा अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, ऐसी शक्ति में से व्यक्ति पूर्णानन्द की प्राप्ति, इसका नाम मुक्ति। समझ में आया? समझ में आया, ऐसा आता है न? कुछ समझ में आता है या नहीं, इसमें क्या कहते हैं यह? अरे! यह किस प्रकार की? अटपटी जैसी लगे नये लोगों को, हों! चन्दुभाई! क्यों लगता होगा? पाँच सौ, पाँच सौ और हजार, हजार और दो-दो हजार वेतनदान लगे। ओहोहो!

आये थे अभी, नहीं अपने ? दलीचन्दभाई का पुत्र नहीं ? दस हजार वेतन है । मासिक दस हजार का वेतन । बीस हजार । उम्र देखो तो ३५ वर्ष की होगी । यह दलीचन्दभाई मोरबीवाले । बैठे थे यहाँ व्याख्यान में । तीन हजार का वेतन है ? नहीं चार, पाँच, छह, दस, ग्यारह हजार । धूल तो सब बहुत इकट्ठी करे पुण्य के कारण । समझ में आया ? परन्तु यह आत्मा क्या ? नटुभाई ! रामजीभाई के पुत्र को बड़ा वेतन है वहाँ । कलकत्ता में नहीं, अमेरिका में । अभी अमेरिका में गया है न । रामजीभाई का पुत्र, उसे भी बड़ा दस हजार का वेतन है । वहाँ और खर्च कम और यह तो कहे मुझे चार हजार ओढ़ना पड़े, ऐसा कहता था । ग्यारह हजार आते हैं, वहाँ आठ दिन में तीन दिन सरकार की नौकरी... नौकरी अर्थात् क्या चार हजार भरना पड़े महीने के । वह ऐसा कहता था अभी, हों ! भाई आया था न, मनोज आया था यहाँ बैठा था, नहीं ? लड़के आते हैं बेचारे प्रेम से । वह कहे सुमनभाई को पैसा अधिक मिलता है, उसे भरने का कम कुछ होगा अमेरिका में । वह उसके पिता को भी खबर नहीं । वह हो, वह पूछे भी नहीं और उन्हें खबर भी नहीं होती । कोई बातें करे यहाँ तो, तब हम सुनते हैं । धूल में भी नहीं परन्तु, कहे, दस हजार हो, तेरे पचास हजार का वेतन हो महीने में । तुझे क्या काम, आत्मा को क्या काम उसमें ? तुझे क्या भला हुआ तेरे आत्मा का ? वह तो पूर्व के पुण्य रजकण थे, वे आये, तब जल गये रजकण बाँधे थे वे । तेरी पूँजी गयी जले हुए परमाणु । पूँजी तो नहीं थी, परन्तु एक रजकण धूल की थी, वह पकी, जहाँ आये वहाँ वह जल गयी । तू कहता है मिले । भगवान कहे, तेरा पूर्व का पुण्य जला । भाई ! दुनिया से तो यह उल्टी बात है न ? और उल्टी से वह उल्टी है । धर्म मार्ग से उल्टी बात है ।

यहाँ कहते हैं, दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय अभेद कहना है, हों ! दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाला, ऐसा भी नहीं । आहाहा ! भगवान आत्मा उस जिनचन्द्र को ध्याओ रे, जिनचन्द्र को ध्याओ । जिसकी चीज़ अन्दर में अखण्डानन्द प्रभु पड़ा है न, उसकी अन्तर दृष्टि, ज्ञान और रमणता, ऐसा जो आत्मा, उस-मय आत्मा, ऐसा नहीं जानते, वही हे जीव ! उन पुण्य-पाप दोनों को मोक्ष के कारण जानकर करता है । आहाहा ! गजब बात, भाई ! उसमें यह जमाना, यह होड़-हरिफाई का । यह किया, वह कहे, इतना करो और वह कहे इतना करो । धीरुभाई ! तुम्हारे पिता भी करते थे न इकट्ठा ? तुमको मदद

करते थे वहाँ अन्दर थोड़ी-थोड़ी। ठेठ तक थोड़ी की। पश्चात् गोलियाँ समाप्त हो गयी तो क्या करे फिर? संसार भी भारी कड़वा, हों!

कहते हैं... आहाहा! अरे! प्रभु! तेरे सन्मुख तूने कभी देखा नहीं। तेरे स्वभाव की सन्मुख की तुझे कीमत कभी आयी नहीं। मैं वह कौन चैतन्य हीरा अन्दर अखण्डानन्द का हूँ। एक दुनिया का हीरा तेरी नजर में आवे तो तुझे ऐसा लगता है कि आहाहा! आहा! होता है। अब धूल है। पाँच करोड़ का वह हीरा नहीं? कहीं कहते हैं न कोहिनूर। सरकार में नहीं विलायत में? धूल है ऐसा बड़ा है न कोहिनूर? अब उसे देखनेवाली आँख है। आँख बिना कीमत कौन करे? और आँख में देखनेवाला चैतन्य है, चैतन्य बिना कीमत कौन करे? उस चैतन्य की कितनी कीमत है? भगवान जाने, वह अपने को खबर नहीं।

इस चैतन्य में केवलज्ञान के कन्द पड़े हैं पूरे, भाई! तुझे खबर नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द के चौसले पड़े हैं अन्दर। आहाहा! यह मैसूर के चौसले (बर्फी / चक्की) नहीं करते? चार सेर घी के मैसूर। एक सेर चने का आटा और चार सेर घी। मैसूर कहते हैं न? मैसूर कहते हैं तुम्हारे। मैसूर पकवान, यह मैसूरपाक। वह तो धूल है। यह (आत्मा) तो आनन्द का चौसला पड़ा है, कहते हैं। बैठे कैसे इसे? अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के पूर्ण चौसला अनन्त है अन्दर। आहाहा! एक आनन्द नाम का गुण है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द केवलज्ञानी को जो पूर्ण आनन्द एक समय का प्रगट हो, ऐसे-ऐसे अनन्त आनन्द की पर्याय के चौसला अन्दर पड़े हैं, उखाड़कर खा तो खाने का तैयार है, कहते हैं। आहाहा! कैसे बैठे? राग का भिखारी, पैसे का भिखारी। एक स्त्री बिना चले नहीं, फलाने बिना चले नहीं, कीर्ति बिना चले नहीं, आत्मा के स्वभाव बिना इसे चलता है। शशीभाई! भगवान अखण्डानन्द प्रभु पूर्णानन्द की चीज के बिना चले। यह वह कहीं जगत है? समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ ने देखा है यह। ऐसा पूर्ण आनन्दस्वरूप, उसकी अन्तर की दृष्टि, ज्ञान और स्वभाव को न जानकर... उसे न जानकर इतना लेना। यहाँ तो मोक्षमार्ग को नहीं जानता। मोक्षमार्गमय

आत्मा, ऐसा। ऐसे मोक्षमार्गमय आत्मा को नहीं जानता। उसे यह पुण्य के भाव ठीक और पापभाव अठीक, ऐसे दो भेद कर डालता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो मूल की पूँजी की बात है, भाई! समझ में आया? **उन पुण्य-पाप दोनों को मोक्ष के कारण जानकर करता है। लो! करता है, कहते हैं।**

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न... भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द की भावना अर्थात् एकाग्रता। देखो, आया भाई यह वापस। यह भावना, भावना। वे भावना कहते हैं न? भावना अर्थात् विकल्प है। अरे! सुन न, तुझे खबर नहीं। शास्त्र के उल्टे अर्थ करते हैं। 'जाति अन्ध का दोष नहीं आकरा, जो जाने नहीं अर्थ, मिथ्यादृष्टि इससे आकरा, करे अर्थ के अनर्थ।' अन्धे को तो बेचारे को अक्षर की खबर नहीं, वह क्या करे? परन्तु यह देखता (सूझता) अर्थ के अनर्थ करता है। अन्दर मार्ग भगवान वीतराग... यह कहते हैं कि वह भावना अर्थात् कल्पना ऐसा कहते हैं वे। पंचास्तिकाय में आया है न समयसार में? ऐसा कि श्रावक भी किसी समय शुद्ध उपयोग की भावना करता है, ऐसा पाठ है। गृहस्थाश्रम में रहे सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा के भानवाले, स्त्री, पुत्र, परिवार में हो भले रागादि, परन्तु अन्दर भान तो सदा ही है, किसी समय शुद्ध उपयोग अन्दर आनन्दकन्द का अनुभव कर लेता है। उसे भावना कहा है। तब उसका अर्थ करते हैं, वह भावना अर्थात् कल्पना करे, अभी भाव नहीं, उसका शुद्ध उपयोग। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न। पहले आ गया है अपने। समझ में आया? आया था न कहीं? पहले आ गया है। ५०वीं-५०वीं गाथा। **निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न वीतराग परमानन्दरूप अतीन्द्रियसुख...** ५० आ गयी। वही शब्द यहाँ है, देखो! क्या कहते हैं? प्रभु! तू तेरी चीज़ जो आनन्दस्वरूप है न, उसकी एकाग्रता यदि अन्दर कर तो उसकी एकाग्रता यहाँ भावना कही है। तो उससे उत्पन्न क्या होगा? वीतराग सहजानन्द एकरूप सुखरस का स्वाद। भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्य का समुद्र, अनन्त गुण से भरा भगवान, उसकी अन्तर की रुचि कैसी? वीतराग सहजानन्द की भावना से उत्पन्न हुआ, ऐसे स्वभाव की एकाग्रता से उत्पन्न

हुआ। ऐसे राग की भावना करे तो राग से उत्पन्न हुई आकुलता है, ऐसा यहाँ कहना है। पुण्य-पाप के भाव की भावना करे, वह आकुलता है, उसमें एकाग्र हो तो। भगवान् आत्मा पुण्य-पाप के विकल्परहित निर्विकल्पानन्द प्रभु की एकाग्रता अन्दर करे तो उसे वीतराग सहजानन्द एकरूप सुखरस का आस्वाद आवे। ऐसे आनन्द का भान करके, **उसकी रुचिरूप सम्यग्दर्शन...** वह यह आनन्द है, वह आत्मा। इतना आनन्द है वह पूरा आत्मा आनन्दमय है, ऐसी रुचि का नाम सम्यग्दर्शन। लो! यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या। देव-गुरु-शास्त्र को मानो, भगवान् ने छह द्रव्य को मानो, वह सम्यग्दर्शन ऐसा नहीं है। धीरुभाई! आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। सीमन्धर भगवान् तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर। वह समवसरण सभा है वहाँ बड़ी। वहाँ इन्द्र उपस्थित होते हैं, उनकी बीच भगवान् वाणी में ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कि भाई! तेरे पूर्णानन्द का स्वरूप, उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हुआ अरागी-वीतरागी आनन्द, उसके स्वाद में प्रतीति करना कि यह आत्मा पूरा ऐसा। इसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! यह पुस्तक में देते हैं न एक-दूसरे को ... हमारा करो। उसमें आता है। ... फलाने का समकित, फलाने का समकित मेरा समकित किसका होगा यह वह? गुरु ने दिया हुआ समकित, साधु को अकेले को नहीं, सब उसके आचार्य का दिया हुआ समकित, फलाने का दिया हुआ समकित। अब समकित वह क्या दिया जाता होगा? लड्डू का टुकड़ा होगा कि खा जा ले लेकर। यह कहते हैं कि लड्डू का टुकड़ा तो यहाँ है तेरा। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, पुण्य, पाप भाव इतने अस्तित्व से दृष्टि छोड़कर पूर्ण अस्तित्व जो पूरा अखण्ड अतीन्द्रिय आनन्दमय ऐसा भगवान् स्वयं, उसकी एकाग्रतारूपी भावना से उत्पन्न हुआ वीतरागी आनन्द का स्वाद, उसकी रुचि। वह आत्मा। उत्पन्न हुआ है। **आस्वाद उसकी रुचि...** स्वाद का अनुभव है, यह आनन्द, ऐसा पूरा आत्मा (प्रतीति में आया है), इसका नाम सम्यग्दर्शन।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। यहाँ तो आस्वादरूप रुचि। आनन्द प्रगट

हुआ, उसकी रुचि अर्थात् कि ओहोहो! यह आत्मा! ऐसा। समझ में आया? अंश जाने बिना यह अंशी इतना है, ऐसा कहाँ से माना? उत्पन्न हुआ कहा न? भावना से उत्पन्न हुआ वीतराग का आस्वाद, शक्तिरूप से, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन। ऐ... चन्दुभाई! यह सम्यग्दर्शन जैन का। जैन का अर्थात् वाड़ा का होगा? जैन वाड़ा है ही कहाँ? वह तो स्वयं वस्तु है। जिनकन्द, जिनचन्द्र स्वयं स्वरूप ही है। समझ में आया? उसका धारावाही अन्दर से ... धारावाही प्रवाह आवे कि जिनचन्द्र, जिनकन्द आत्मा है। ऐसी अन्तर में एकाग्र होकर जो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे उत्पन्न हुआ (स्वाद आवे), उसकी रुचि कि यह आत्मा है। पुण्य-पाप के विकल्प, वे आत्मा नहीं, देहादि आत्मा नहीं। वे नहीं, ऐसा नहीं कहा। यह वह आत्मा, उसमें वे नहीं, उसमें आ जाता है। ओहोहो! इस सम्यग्दर्शन की यह व्याख्या। लगा दिया बेचारे को देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, भक्ति करो, निन्यानवे यात्रा करो पालीताणा की। डोली में बैठे और जाये-आये ऊपर। जाओ निन्यानवे करो तो कल्याण होगा। धूल में भी नहीं, सुन न अब तेरा।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा है, उसकी अन्तर में दृष्टि लगाकर उसके ऊपर चढ़े-एकाग्र हो और उसका जो आनन्द आवे, उस द्वारा रुचि करे कि यह पूरा आत्मा आनन्दमय है। आहाहा! समझ में आया? उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। यहाँ तो उसमय आत्मा वर्णन करना है न, इसलिए पहली व्याख्या करते हैं। समझ में आया? पाठ में तो यह है न, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय आत्मा। ऐसे आत्मा को न जानकर, ऐसा कहते हैं। उन पुण्य-पाप के विकल्प को भेद करें कि यह पुण्य ठीक और यह अठीक। मिथ्यादृष्टि है। जमुभाई! आहाहा!

उसी शुद्धात्मा में वीतराग नित्यानन्द एक स्वसंवेदनरूप सम्यग्ज्ञान... 'एक' रह गया है अन्दर। एक भगवान आत्मा शुद्धात्मा पवित्र, उसका वीतरागी नित्यानन्द एक स्वसंवेदन, एक स्वसंवेदन आनन्द का वेदन, उसका ज्ञान, हों! ऐसा सम्यग्ज्ञान, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। 'एक' शब्द पड़ा रहा है। उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। शास्त्र के पठन-बठन को भी यहाँ सम्यग्ज्ञान नहीं कहते। आहाहा! जो ज्ञान की डली है, बड़ा ढेर पिण्ड

आत्मा है, ज्ञान का पुंज चैतन्य गंज है। उसका वीतरागी नित्यानन्द का एक स्वसंवेदन। एक स्वसंवेदन। दो भाग ही नहीं उसमें, ऐसा कहते हैं, उसका नाम सम्यग्ज्ञान।

और वीतरागपरमानन्द एक परम समरसीभावकर उसी में निश्चय स्थिरतारूप सम्यक्चारित्र... लो ! उसका नाम चारित्र। परम समरसी, (एक) परम समरसीभावकर उसी में निश्चय स्थिरतारूप सम्यक्चारित्र—इन तीनों स्वरूप परिणत हुआ जो आत्मा उसको जो जीव मोक्ष का कारण नहीं जानता,... ऐसे मोक्ष के कारण जीव को न मानकर पुण्य में मोक्ष का कारण है और पाप में बन्ध का कारण है, ऐसा मानता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि, अधर्मी अज्ञान दृष्टि है। उसे आत्मा की श्रद्धा की खबर नहीं और आत्मा की मुक्ति हो, ऐसी खबर नहीं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ शुक्ल ३, सोमवार, दिनांक - २४-०१-१९६६

गाथा - ५४-५५, प्रवचन - १०७

५४ गाथा। परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग। यहाँ तक आया। देखो! जो जीव अपने आत्मा के शुद्धस्वभाव की सम्यग्दृष्टि, शुद्धस्वभाव का स्वसंवेदनज्ञान, इन तीनों (रूप) परिणत होकर मोक्ष का कारण जानता है, वह तो बराबर है। परन्तु उस (रूप से नहीं) परिणत होकर अर्थात् कि परिणत हुए बिना अकेले पुण्य को आदरणीय मानता है और पाप को हेय मानता है, यह दृष्टि जिसकी मिथ्यात्व है। समझ में आया? वह ही पुण्य को आदरनेयोग्य जानता है, और पाप को त्यागनेयोग्य जानता है। इन तीन स्वरूप को नहीं जानता। बात तो यह है, परन्तु जगत को ऐसा (कठोर) पड़ता है कि ऐसे मानो... आहाहा!

वस्तु वस्तु है न, महान चैतन्यरत्नाकर भगवान आत्मा है। एक समयमात्र का एक विकल्प उदयभाव है। आहा! बाकी पूरा चैतन्यरस पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... अनन्त गुणसम्पन्न पूर्ण। ऐसी अन्तर्मुख की स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि, स्वभाव-सन्मुख का ज्ञान, स्वभाव-सन्मुख की चारित्र-स्थिरता, उसे जो मोक्ष का कारण नहीं जानता, वह इस पुण्यभाव को आदरणीय और पाप को हेय मानता है। कहो, यह बड़ा विवाद अभी। पुण्य है, शुभभाव है, वह क्षायिक समकित का कारण है। ऐसी बात नहीं है। यहाँ आओ सामने सुकलचन्दजी! ठीक बैठो यहाँ। लड़कों हट जाओ यहाँ से। बैठने दो इनको। कहो, समझ में आया? आहाहा! कौने में लड़के बैठे हैं। परसों तो सवेरे यहाँ से हिम्मतभाई के वहाँ है। वहाँ वाँचने का है। वह मकान ... हमारे दलाल हैं जमुभाई। कहो, समझ में आया इसमें?

तथा... अब जरा समझने जैसी बात है। जो सम्यग्दृष्टि जीव... धर्मी जीव... आत्मा का स्वभाव धर्मी, ऐसा जो आत्मा, उसमें पूर्ण आनन्द और ज्ञान और शान्ति पड़ी

है ऐसा तत्त्व, उसकी अन्तर दृष्टिवन्त, रत्नत्रयस्वरूप परिणत हुए... अन्दर में स्वभाव की एकतारूप रत्नत्रय। स्वभाव शुद्ध की एकतारूप रत्नत्रय—दर्शन, ज्ञान और चारित्र। परिणत हुए आत्मा को ही मोक्ष का मार्ग जानता है,... देखा ? यह तीन नहीं लिया। तीन से परिणत हुआ आत्मा ही मोक्ष का कारण है। समझ में आया ?

भगवान कारणपरमात्मा, कारणप्रभु आत्मा, वही मोक्ष के कार्य का कारण है। आहाहा ! रत्न सम्यक् चैतन्य की प्रतीति सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से परिणत हुआ, परिणमित, अवस्थारूप से हुआ आत्मा, वह आत्मा पूर्णानन्द की प्राप्ति का कारण है, ऐसा जानता है।

उसके यद्यपि संसार की स्थिति के छेदन का कारण,... देखो ! यह शब्द पड़े हैं यहाँ। संसार की स्थिति का छेदन, ऐसा कहा। अनन्त स्थिति का छेदन, भाई ! नहीं कहा। वे लिखते हैं कि अनन्त स्थिति छेदता है। परन्तु अनन्त स्थिति होती ही नहीं। यहाँ तो संसार की स्थिति अर्थात् कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से परिणत ऐसा आत्मा ही मोक्ष का कारण है, ऐसा जानने, मानने पर भी वह स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए उसे शुभभाव आता है। तीर्थकरप्रकृति आदि बन्ध का कारण ऐसा शुभभाव। उस शुभभाव से संसार की लम्बी स्थिति है, वह घटती है। शुभभाव में भी स्थिति घटती है। समझ में आया ?

स्थिति के छेदन का कारण, और सम्यक्त्वादि गुण से परम्पराय मुक्ति का कारण... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को कारण से परम्परा मुक्ति का कारण व्यवहार से। ऐसी तीर्थकरनामप्रकृति आदि... तीर्थकरप्रकृति बँधे, किसी को आहारकशरीर बँधे, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को शुभभाव होते हैं। यशोकीर्ति बँधे, ऐसे भाव होते हैं। उस भाव से संसार की लम्बी स्थिति कहीं थोड़ी करे, थोड़ी हो। शुभ (पुण्य) प्रकृतियों को (कर्मों को) अवांछितवृत्ति से... ऐसे शुभभाव से इच्छा बिना तीर्थकरप्रकृति आदि का आना अवांछित वृत्ति से आस्रव होता है। आता है, ऐसा लेना। अवांछितवृत्ति से ग्रहण करता है,... इसका अर्थ लेना, पाठ में ऐसा है, देखो ! 'पुण्यमास्रवति' ऐसे शुभभाव आते हैं, शुभभाव के कारण प्रकृति आती है। धर्मी जीव की दृष्टि तो सम्यक् चैतन्य के ऊपर है, आदरणीय तो वह ही है।

शुद्ध ज्ञानानन्द आत्मा पूर्णानन्द पुण्य-पाप के विकल्परहित ऐसा आत्मा ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से परिणमित मोक्ष का कारण है। ऐसा निर्णय अनुभव दृष्टि में होने पर भी, स्थिरता जब न हो, तब उसे शुभभाव तीर्थकरप्रकृति आदि का कारण ऐसा आता है। उस शुभभाव से लम्बी स्थिति सम्यग्दृष्टि को जो स्थिति हो, उसकी थोड़ी स्थिति शुभ से कम करता है। समझ में आया? और उसे तीर्थकरप्रकृति आदि के परमाणु आस्रव आस्रवते हैं, आस्रवते हैं, आते हैं, अवांछितवृत्ति से। वह प्रकृति बाँधने का भाव उसका नहीं। समझ में आया?

जो सम्यग्दृष्टि जीव रत्नत्रयस्वरूप परिणत हुए आत्मा को ही मोक्ष का मार्ग जानता है, उसके... ऐसी बात है। जिसे पुण्य भाव उपादेय है, पाप हेय है — ऐसी जिसकी मान्यता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे तो कुछ धर्म का अंश भी होता नहीं। उसे तीर्थकरप्रकृति का भाव उसको तो नहीं होता। समझ में आया? शुद्ध चैतन्यस्वभाव परम ज्ञायकभाव वही मुझे आदरणीय अथवा वह परिणमित, मोक्ष के मार्ग को परिणमित आत्मा ही मुझे उपादेय है। अथवा वह आत्मा ही मोक्ष का कारण, ऐसा मानने-अनुभवने पर भी, स्वरूप में स्थिर न हो, तब उसे तीर्थकरप्रकृति आदि के कारणरूप षोडशकारणभावना ऐसे शुभभाव होते हैं। इसलिए जरा कर्म की स्थिति घटती है और उस शुभभाव के कारण से नये कर्म के रजकण, कर्म के आस्रवते अर्थात् आते हैं, अवांछितवृत्ति से। यह शर्त। उनकी वांछा नहीं, प्रकृति बाँधे, ऐसी वांछा सम्यग्दृष्टि को होती नहीं। क्योंकि अबन्धस्वरूप ऐसा आत्मा अबन्ध परिणाम से जो दृष्टि में लिया है, उससे बन्धभाव और बन्ध की प्रकृति की वांछा सम्यग्दृष्टि को नहीं होती। समझ में आया?

भगवान् आत्मा अनन्त शुद्ध गुण सम्पन्न प्रभु वह तो अबन्धस्वरूप ही है। ऐसे अबन्धस्वरूप को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अबन्ध परिणाम द्वारा परिणमित आत्मा, वह पुण्य को, पुण्य के आस्रव को इच्छता नहीं। परन्तु अनहित वृत्ति से ऐसा भाव कमजोरी—निर्बलता के कारण से शुभभाव, जिससे तीर्थकरगोत्र बाँधे, ऐसा भाव आता है। उसकी वृत्ति आदरणीय नहीं। उससे तीर्थकरप्रकृति के कर्म आवें, उनकी उसे वांछा

नहीं। आते हैं आस्रव, इतनी बात। और शुभभाव है, इससे कहीं लम्बी स्थिति थोड़ी सी उसके प्रमाण में हो, उससे कम होती है, बस इतनी बात है। और सम्यग्दर्शन आदि के कारण से उसे परम्परा मुक्ति का कारण कहा जाता है। वे गुण हैं, इसलिए (ऐसा कहा जाता है)। समझ में आया? बहुत झगड़े, ऐसे झगड़े। लोगों को अन्दर ऐसे आत्मा क्या, (उसकी खबर बिना) उसे ऐसे पुण्य और पुण्य के फल ऐसे मीठे लगते हैं और आत्मा आनन्दवाला उसे कड़वा लगता है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का रस ही है वह तो। आत्मा अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का रस, आत्मा अर्थात् ज्ञान की अकेली पुतली, आत्मा अर्थात् शान्त चारित्ररस का अकेला स्वरूप। एक-एक गुण खिला वह ऐसा पूरा एक ऐसा स्वरूप सब है वह। समझ में आया? ऐसे आत्मा की जिसे अन्तरदृष्टि, ज्ञान और रमणता हुई है, उसे ऐसा शुभभाव इच्छा बिना, कर्तृत्वबुद्धि बिना (अर्थात्) लाना है, करना है, ऐसे भाव बिना ऐसा भाव आता है। इससे जरा कर्म की स्थिति घटती है और उसे तीर्थकरप्रकृति के परमाणु आस्रवते हैं—आते हैं। सम्यग्दर्शन आदि गुण के कारण से उसे परम्परा मुक्ति का कारण कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? इसमें कितना याद रखना? वह तो झट, पट, फट। यह व्रत पालन किये और यह पूजा की और भक्ति की और जहाँ दया पालन की, जाओ तुम्हारे धर्म हो गया। कुछ समझने का नहीं होता उसमें। अनादि काल का मिथ्यादृष्टि भाव उसमें सेवन किया करे और माना करे कि हम कुछ करते हैं। करता है उल्टी पटरी मिथ्यात्व की उसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया?

तो भी उपादेय नहीं मानता है। देखो! वह शुभभाव को और उसके आस्रव से तीर्थकरप्रकृति बाँधे, उसे उपादेय नहीं मानता। आहाहा! यह तो कहे तीर्थकरप्रकृति बाँधे, वह मोक्ष जाता है। इसलिए वह तो आदरनेयोग्य है, उपादेय है। तीर्थकरप्रकृति का बन्ध हो, उसके कारण से मोक्ष होता होगा? जो भाव आया, उस भाव को छेदकर वीतराग हो, तब उसे केवलज्ञान होता है। तब उस प्रकृति का पाक केवली को उदय में आता है। वह तो संयोग देता है। पुण्यफला अर्हता। यह शब्द रखते हैं सब जहाँ हो वहाँ। वह तो संयोग, पुण्य के कारण से संयोग सामग्री मिली, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दमूर्ति की जिसे दृष्टि और ज्ञान हुआ है, उसे शुभभाव आने पर उसकी शुभ की उपादेयबुद्धि नहीं है। उसके फल में तीर्थंकरप्रकृति आवे, उसकी भी उपादेयबुद्धि नहीं। मात्र वह शुभभाव है, इसलिए संसार की थोड़ी स्थिति घटती है। सम्यग्दर्शन के गुण के कारण से उसे परम्परा से मोक्ष का कारण कहा जाता है। इतनी बात है। समझ में आया? परन्तु वर पूरा पड़ा रहे और बारात जोड़ दे अकेली। वर कहते हैं, क्या कहते हैं? दूल्हा।

एक किसान का लड़का था। खबर है तुमको? लड़का था आठ वर्ष का, उसका विवाह हुआ। तो उसका विवाह हुआ तो ... पहनावे न लाल। तो उसका मित्र था पूछा, भाई! यह तुम्हारे विवाह में मुझे ले जाओगे? कि भाई! मुझे खबर नहीं मुझे ले जायेंगे या नहीं? क्योंकि हर समय मेरा पिता अकेला मृत्युभोज जाता हो न भोज। कोई मर जाये और मृत्युभोज जाये न मृत्युभोज? किसी समय ले जाये और किसी समय (नहीं ले जाये)। क्या कहलाता है? मृत्यु के बाद भोज ले जाये। मृत्यु (भोज) खाने। भोजन करने को। बाहर जाये न कोई वृद्ध मर जाये तो ले जाये लड़के को। उसी प्रकार कहे यह मेरे विवाह में मुझे पिता ले जायेंगे या नहीं, मुझे खबर नहीं। तुझे किस प्रकार ले जाना? विवाह अर्थात् क्या, इसकी खबर नहीं होती। इसी प्रकार यह आत्मा अर्थात् क्या (इसकी खबर नहीं होती और) मुझे मोक्ष जाना है और मुझे धर्म करना है। आहाहा! समझ में आया? मेरा मोक्ष होगा या नहीं? भाई! अपने यह करते हैं, भाई! सही, परन्तु अपने मोक्ष होगा या नहीं, ऐसी मुझे कुछ खबर नहीं पड़ती। परन्तु वर पड़ा रहा पूरा।

कर्मप्रकृतियों को त्यागनेयोग्य ही समझता है। है? जो तीर्थंकरप्रकृति का बन्धन है, वह भी त्यागनेयोग्य मानता है। और उसका भाव है, उसे भी छोड़नेयोग्य मानता है। एक आत्मा शुद्धस्वभाव परिणमन हो, वह आत्मा ही मोक्ष का कारण है, दूसरा कोई है नहीं। ऐसा सम्यग्दृष्टि अपने को मानता है। अब यह ५५। जो ७७वीं गाथा प्रवचनसार की है। कुन्दकुन्दाचार्य जो कहते हैं न प्रवचनसार में? कि जो कोई पुण्य को, पाप को दोनों को समान नहीं मानता, (वह) घोर संसार में 'हिंडदि' यही शब्द यहाँ है लगभग। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव दोनों बन्ध के ही कारण हैं, एक ही

प्रकार है। उसमें शुभभाव, वह ठीक; अशुभ, वह अठीक—ऐसा कोई माने तो कुन्दकुन्दाचार्य प्रवचनसार में ७७वीं गाथा में कहते हैं। ‘हिंडदि’ ‘घोरमपारं संसारं’ में भ्रमेगा। यह यहाँ परमात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव आचार्य इस शैली के अमुक शब्द बदलकर यह बात करते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ५५

आगे जो निश्चयनय से पुण्य-पाप दोनों को समान नहीं मानता,... वास्तव में वर्तमान (सम्यग्दर्शन में) शुभभाव और अशुभभाव दोनों को समान नहीं मानता। वह मोह से मोहित हुआ... मिथ्यादृष्टि मोह से मोहित हुआ, संसार में भटकता है, ऐसा कहते हैं— यह जगत को भारी कठिन पड़ता है।

१८२) जो णवि मण्णइ जीउ समु पुण्णु वि पाउ वि दोइ।

सो चिरु दुक्खु सहंतु जिय मोहिं हिंडइ लोइ ॥५५॥

‘हिंडइ लोइ’ भटकेगा लोक में भटकने में। जो जीव... देखो न! क्षण-क्षण में स्थिति कैसी बदलती है! एक वह शब्द आया है आज उसमें, भाई! शास्त्रीजी के लिये। ऐसा कि नियति क्या करती है? क्या तुम्हारे शब्द है न। ... ऐसा कि देखो! नियति शब्द भी पड़ा है, हों! उसमें। ‘छीन गया लाल बहादुर, गल गया मोती...’ ऐसा करके बड़ा शीर्षक बाँधा है। ‘नियति का इतना कटु परिहास छीन लेता पल में इतिहास’ क्या होती है बाहर की स्थिति, वह आत्मा के अधिकार की बात है? एक क्षण में पूरा पलटा दुनिया में। ऐसा अभी लिखते हैं। यह वाँचने के लिये भी सवेरे निवृत्त खड़े रहना नहीं, इसे खबर नहीं। यह लिखा ही करूँ न फिर से वाँचने को। यह संसार एक क्षण में गुल्लाँट खा जाये पूरा। कहाँ यह शरीर और वाणी उसकी पर्याय कहाँ आत्मा की चीज़ थी? एकदम पलटा। ओहोहो! कहीं द्रव्य मैं कौन हूँ, उसका भान नहीं, क्षेत्र में कहाँ गया उसका भान नहीं, काल क्या हो गया, भाव क्या हो गया, भव क्या हो गया। लो! ओहोहो! ऐसा अनित्यपना!

कहते हैं कि भाई! यह पुण्य-पाप के परिणाम भी अनित्य और एक समान ही बन्ध के कारण हैं, भाई! आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अखण्डानन्द नित्यानन्द ध्रुवस्वरूप है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द ध्रुव नित्य है, उसकी दृष्टि नहीं जिसे, उसे पुण्यभाव वह भला और पापभाव वह बुरा, ऐसे दो भाव एक ही बन्ध के कारण में दो भाग करता है और समान नहीं मानता, वह जीव पुण्य और पाप दोनों को समान नहीं मानता,... है, शब्दार्थ है, देखो! वह जीव मोह से मोहित हुआ... मोह से मोहित मिथ्यादृष्टि मोह से मोहित हो गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? 'मोहिं हिंडइ' 'मोहेन मोहितः सन् हिन्दते भ्रमति।' आहाहा! पहली दृष्टि में ही जिसे अभी क्षणिक अनित्य विकल्प, वह अनित्य है, शुभ-अशुभभाव नाशवान है, अनित्य है, अध्रुव है। आया है या नहीं? कहाँ? आया है कहीं? सेठिया को खबर नहीं होगी, लो! कर्ता-कर्म (अधिकार) में आया है। यह वहाँ अपने वाँचन हुआ था। ७२ गाथा। समझ में आया? उसमें तो वहाँ तीन बोल आये थे—अशुचि, जड़-विपरीत और दुःख। तथा वे छह बोल आये थे, ७४ (गाथा) में छह बोल आये थे। समझ में आया?

कहते हैं, अरे! पुण्य और पाप, भगवान! वे अनित्य हैं, अध्रुव हैं, भाई! यह शरीर अध्रुव है, क्षण में गुलाँट खाये, क्षण में पलटा खाये। आहाहा! ऐसे आत्मा में होनेवाले शुभ और अशुभभाव अत्यन्त क्षणिक, अस्थिर, अशरण हैं। बराबर होगा? आहाहा! कहते हैं, इन दो को एकरूप न मानकर भेद मानता है जो, उसे आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध है, उसकी श्रद्धा का भाव नहीं; इसलिए वह मोहित मिथ्यात्व में मोहित हो गया है। वह जीव 'चिरं' बहुत काल तक दुःख सहता हुआ... दुःख सहन करता हुआ, संसार में 'हिंडंति' भटकता है। चौरासी के अवतार में अनन्त संसार में भटकेगा। आहाहा! देखो! यह दिगम्बर संतों के कथन। समझ में आया? यह शब्द प्रवचनसार में यही है। समझ में आया? यह शैली आचार्य दिगम्बर सन्त तो एक ही प्रकार की शैली सब लेते हैं।

'ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं' जो कोई ऐसा नहीं मानता कि पुण्य-पाप में कुछ विशेष है ही नहीं, परन्तु विशेष मानता है। विशेष है नहीं और विशेष मानता है। शुभभाव या अशुभभाव में अन्तर है ही नहीं। दोनों बन्ध के

कारण एकरूप हैं। ऐसा कोई विशेष नहीं, उसमें भेद ही नहीं। दोनों भाव एक ही प्रकार के बन्ध के कारण हैं, ऐसा नहीं मानता हिडंदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो' मोह-मिथ्यात्व से ढँका हुआ वह प्राणी घोर अनन्त संसार में भटकेगा, परिभ्रमण करेगा। यह (प्रवचनसार की) ७७ गाथा है। समझ में आया? आहाहा!

कढ़ी वह कुछ कहते हैं न, मोहराजा की कढ़ी। बौद्ध की बात आती है न? श्रेणिक के घर में बौद्ध आये थे। फिर वे जूते पड़े थे बाहर। रानी ने मँगायी एक जोड़ी। बारीक-बारीक टुकड़े करके कढ़ी बनाकर खिलाई। बहुत सूक्ष्म ऐसे कढ़ी बहुत ऊँची बनायी। वे जानते कि बौद्ध तो त्रिकाली ज्ञानी हैं और ऐसे हैं और वैसे है। श्रेणिकराजा बहुत महिमा करते थे। फिर कहे, साहेब! धीर होओ, धीर होओ। स्त्री पति को कहती है। फिर वे बौद्ध आते हैं। ओहोहो! कैसी यह कढ़ी! बहुत भारी कढ़ी! बाहर देखने पर वह जूती नहीं मिले। जूती कहाँ गयी? खोजते-खोजते नहीं मिले। रानी कहे, साहेब! आपके पेट में गयी है जूती। हैं! किस प्रकार? उल्टी करो, कहे। उल्टी निकलेगी अभी बारीक-बारीक टुकड़े। उल्टी की वहाँ वह बारीक टुकड़े निकले। लो, यह तुम त्रिकाली ज्ञानी हो न। श्रेणिकराजा को (कहते हैं)। बापू! यह मुनि नहीं होते, मुनि तो अलौकिक है। फिर मुनि की (बात) आती है न। यशोभद्र मुनि थे न? गर्दन में सर्प डाल आये थे राजा श्रेणिक। तेरे मुनि को समता हो तो निकाल डाला होगा सर्प अब। अन्नदाता! ऐसा नहीं होता, वे तो वीतरागी सन्त हैं। आत्मा के आनन्द में झूलते, उन्हें जैसा सर्प डाला वैसा का वैसा होगा, चलो। जहाँ साथ में लेकर जाते हैं... है न, फोटो है कहीं उनका। समझ में आया? यहाँ कैलेण्डर था, कैलेण्डर था यहाँ। जाते हैं, वहाँ हजारों चींटियाँ सर्प पर चढ़ी हुई। वह रानी उठाती है ऐसे धीरे-धीरे, धीरे-धीरे।

यह मुनि तो आत्मध्यान के आनन्द में मस्त, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवी खुराक से उसमें स्थित हैं। यह सन्त की व्याख्या, सन्त के स्वरूप की तुमको, अन्नदाता! खबर नहीं। बाहर का त्याग और यह बौद्ध और पढ़े हुए और उनको मानकर तुमने गुरु माने, ऐसे गुरु नहीं होते। पत्नी पति को समझाती है। वे समझ जाते हैं कि तेरी बात सच्ची है। बात सच्ची। महासन्त मुनि वीतरागी मुनि। ओहोहो! हजारों चींटियाँ ऐसे

शरीर खोखा कर डाला है। आत्मा के आनन्द में मस्त झूलते हैं। आहाहा! हल्के रहकर ऐसे चींटियाँ उठायीं... निकाली। वे स्वयं नहीं निकालते। वीतरागी सन्त हैं, वे उपसर्ग जानते हैं। जब तक उपसर्ग हो, तब तक उन्हें खाने (आहार) का विकल्प नहीं उठता। ऐसे वे सन्त हैं। समझ में आया? फिर मुनि धर्मोपदेश देते हैं। वहाँ श्रेणिक राजा सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं। तीर्थकरगोत्र भी बाद में भगवान के समवसरण में पाते हैं। लो! आत्मधर्म पाते हैं वहाँ वह राजा, पत्नी के निमित्त से। समझ में आया? आहाहा! आत्मा का ज्ञान, दर्शन, बापू! दूसरी चीज़ है। वह तो अखण्डानन्द एक स्वरूप से प्रभु आत्मा वह नित्य ध्रुव है। वे तो क्षणिक माननेवाले हैं, बौद्ध तो क्षणिक माननेवाले हैं। यह तो वस्तु ध्रुव, वह का वह भगवान। क्षण-क्षण में भले पर्याय पलटे, परन्तु नित्यानन्द प्रभु तो वह का वह है। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। राजा! समझ में आया, फिर तीर्थकरगोत्र बाँधते हैं, लो ठीक! रानी और नीचे रह गयी और यह तीर्थकरगोत्र बाँधते हैं। देखो, विचित्रता परिणाम की है। समझ में आया?

यह सीताजी, लो! रावण डिगाने आता है। सीताजी जाती है स्वर्ग में। वहाँ से सीताजी जब निकलेगी तो सीताजी होंगी चक्रवर्ती और रावण होगा पुत्र, लक्ष्मण होगा पुत्र। आहाहा! दोनों यहाँ वैरी थे, वह यहाँ दो भाई होंगे। यहाँ रावण उसे इच्छता था, वह उसका (पुत्र) होगा। अन्त में जब होगा तब रावण होगा तीर्थकर, सीताजी होंगी गणधर। समझ में आया? रावण तीर्थकर होगा, तब सीताजी गणधर होंगी, तब मोक्ष जायेंगे। परिणाम की कैसी विचित्रता है! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि आहाहा! धर्मी ने अपने स्वरूप को शुद्ध चैतन्यरूप से दृष्टि में माना है, उसे पुण्य और पाप दोनों एक ही प्रकार के बन्धरूप से, समरूप से ज्ञात होते हैं। आहाहा! अज्ञानी को पुण्यभाव, शुभभाव वह अच्छा और अशुभभाव, वह खराब, वह मोहित दृष्टि, मिथ्यादृष्टि है, जैन परमेश्वर की आज्ञा से अनजान वह पुण्य को भला मानता है। आहाहा! चिल्लाहट मचा जाये अभी के लोग तो। देश सेवा, भगवान की सेवा, पति की सेवा। कितनी सेवा बहुत प्रकार की होती है या नहीं? गरीब नारायण की सेवा। यहाँ कहते हैं कि हराम पर की सेवा कोई कर सकता हो तो। तुझे भाव आवे, वह

शुभभाव है और अशुभभाव आवे, वह पाप है। उन दोनों को समान न मानकर दोनों में अन्तर मानता है, वह मिथ्यादृष्टि चैतन्य के स्वरूप का घात करनेवाला है। भीखाभाई! आहाहा!

भगवान नित्य प्रभु में परिणाम भले शुद्ध परिणाम अनित्य हैं धर्म के, परन्तु वह अभेदरूप अनित्य है। आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यरूप से परिणमे, वह पर्याय तो अनित्य है, परन्तु ध्रुव के साथ एक है, इसलिए उसे भी एक अपेक्षा से कूटस्थ नित्य कहा जाता है। केवलज्ञान को कूटस्थ नित्य कहा है। आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव तो अनित्य, क्षणिक, अध्रुव, अस्थिर, अशरण है। यह दो भाव में अन्तर माने, कहते हैं कि मोहित हुआ मिथ्यादृष्टि, बहुत काल। देखो! चिर की व्याख्या कितनी करना। अनन्त काल दुःख सहता हुआ... देखो! दुःख सहता हुआ... बीच में कदाचित् वह देवलोक भी भव मिले, परन्तु वह सब दुःख सहता हुआ संसार में भटकता है। चार गति में भटकेगा। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- यद्यपि असद्भूत (असत्य) व्यवहारनय से द्रव्यपुण्य और द्रव्यपाप ये दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं,... असद्भूत-झूठे नय से द्रव्यपुण्य अर्थात् जड़ रजकण, हों! सातावेदनीय आदि के और द्रव्यपाप रजकण असाता के। वह असत्य व्यवहारनय से। देखा? असद्भूत का अर्थ ही कोष्ठक में असत्य। असत्य अर्थात् झूठा। झूठा नय से, झूठे व्यवहारनय से दोनों में अन्तर है। और अशुद्धनिश्चयनय से भावपुण्य और भावपाप ये दोनों भी आपस में भिन्न हैं,... अशुद्धनिश्चय से शुभभाव और अशुभभाव दोनों में अशुद्धनिश्चय से अन्तर है। तो भी शुद्ध निश्चयनयकर पुण्य-पाप रहित शुद्धात्मा से दोनों ही भिन्न हुए बन्धरूप होने से दोनों समान ही हैं। आहाहा! तो भी शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि करने से पुण्य और पापरहित, रहित ऐसा शुद्धात्मा। शुभ-अशुभभाव और उससे रहित ऐसा शुद्धात्मा। उससे दोनों ही भिन्न। शुभ और अशुभभाव भगवान शुद्ध आत्मा से भिन्न। बन्धरूप होने से... दोनों भाव बन्धरूप होने से। दोनों समान ही हैं। बन्ध की अपेक्षा से दोनों समान हैं। समझ में आया?

जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी, ये दोनों ही बन्ध का कारण हैं... दृष्टान्त

दिया है कुन्दकुन्दाचार्य ने। तब कहते हैं कि अरे! सोने की बेड़ी तो काम आवे। और ऐसा बहुत से कहते हैं। क्या काम आवे? भार अधिक होता है। लोहे की अपेक्षा सोने का भार अधिक—वजन अधिक होता है। बन्धभाव की अपेक्षा से समान हैं। व्यवहारनय की अपेक्षा से अशुभ से शुभ ठीक, यह व्यवहार से। परमार्थ की दृष्टि से तो बन्ध की अपेक्षा से दोनों समान हैं। समझ में आया? ऐ.. छोटाभाई! क्या बात है? देखो! चिल्लाहट मचाते हैं अब लो। बहुत तो इकट्ठे हुए थे कल। एक ही दिन लिखा है इसमें। २३-१-६० ऐसा लिखा है। इसलिए एक व्यक्ति ... उसमें भी आया, आज भी आया है। एक इकट्ठे होने के वहाँ। सब सेठिया के नाम हैं। चार-पाँच के नाम। भंवरलाल, देवीलाल, राजेन्द्रकुमार, राजकुमार। ओहोहो! देखो! इस विवाद का क्या करना? इसमें इन्द्र ऊपर से उतरे तो भी माने नहीं। कोई कदाचित् देव आकर कहे तो कहे, नहीं। यह तो कुछ होगा दूसरा। यह वह बात ऐसी है परन्तु लोगों को क्या हो?

कहते हैं, भगवान! तू देव का देव है न प्रभु! आहाहा! अकेला विकल्प एक शुभ या अशुभ विकल्प की वृत्ति, उसका वह स्थान ही आत्मा नहीं। एक समय की अद्धर से उत्पन्न हुई दशा, एक समय जितना विकल्प है, बस हो गया। द्रव्य-गुण ऐसा नहीं कोई उसमें। आहाहा! द्रव्य-गुण तो अकेले शुद्ध, शुद्ध और शुद्ध है, अकेले मोक्ष की फसल पकने की भूमि है वह। आहाहा! खेत तो मोक्ष का खेत पके ऐसा खेत है आत्मा का। उसके खेत में विकल्प उठे, तीर्थकरगोत्र का बन्धभाव हो, वह भी उसका क्षेत्र, आत्मा का क्षेत्र नहीं, उसे यहाँ परक्षेत्र कहा जाता है। आहाहा! संवर में आता है न! आहाहा!

जिस भाव से बन्ध हो वह भाव स्वक्षेत्र का नहीं, स्व वस्तु का नहीं। वह तो सम्यग्दर्शन-दृष्टि में पुण्य और पाप दोनों को ज्ञानी समान मानता है। तथापि उसे स्थिर नहीं हो तब शुभभाव अशुभ से बचने को होते हैं। उसमें कुछ कर्म की स्थिति घटे, इतनी बात तो की, परन्तु इससे भव के बन्धन का अभाव परिणाम है वह, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वे बन्ध के ही परिणाम हैं। उस अबन्ध परिणाम के साथ उसे सहायक मानना, ऐसा किसी प्रकार से नहीं हो सकता। आहाहा!

देखो! दोनों ही भिन्न हुए बन्धरूप होने से दोनों समान ही हैं। जैसे सोने की बेड़ी

और लोहे की बेड़ी ये दोनों ही बन्ध का कारण हैं—इससे समान हैं। सोना की बेड़ी से बँधे, चाँदी की, लोहे की बँधे। समान है। इस तरह नयविभाग से जो पुण्य-पाप को समान नहीं मानता,... यह निश्चयनय के कारण से इस प्रकार से पुण्य-पाप को समान नहीं मानता। वह निर्मोही शुद्धात्मा से विपरीत जो मोहकर्म... बात गुलाँट खाती है दो, तीन बार। कैसा है आत्मा? कि निर्मोही शुद्धात्मा है। उससे विपरीत मोहकर्म उससे मोहित हुआ... मोहकर्म में मूर्च्छित हुआ संसार में भ्रमण करता है। समझ में आया? पहले दृष्टि में उसे समान नहीं मानता। अस्थिरता में पहले उसे शुभभाव अशुभ से छूटकर होता है। पंचम गुणस्थान, छठवें गुणस्थान के योग्य ऐसा भाव होता है। परन्तु दृष्टि में उन दो को समान नहीं मानता, वह मिथ्यादृष्टि चार गति में भटकेगा, इतनी बात की। अभी अस्थिरता की बात में जरा अन्तर अब बतायेंगे।

ऐसा कथन सुनकर प्रभाकरभट्ट बोले, यदि ऐसा ही है, तो कितने ही परमतवादी पुण्य-पाप को समान मानकर स्वच्छन्द हुए रहते हैं,... कितने ही अन्यमति पुण्य और पाप को (समान मानकर) स्वच्छन्द हुए विषय भोगे, माँस खायें, मदिरा पीवे, शिकार करे और कहते हैं कि हमारे कुछ है नहीं। पुण्य-पाप दोनों समान हैं। हमारे उसमें कुछ है नहीं। ऐसा अन्यमति कितने ही कहते हैं और तुम ऐसा कहते हो तो उसमें अन्तर क्या? समझ में आया? स्वच्छन्द हुए रहते हैं,... हों! उनको तुम दोष क्यों देते हो? एक बार जैन का यहाँ साधु यहाँ रहा था चातुर्मास में। मन्दिरमार्गी। पहले स्थानकवासी और फिर मन्दिरमार्गी (हुआ)। उसमें से मोक्षमार्गप्रकाशक वाँचा। फिर यहाँ आया था एक बार। बस! निश्चय में फिर कहाँ माँस को खाना, मदिरा पीना, रोटियाँ खाना, उसमें अन्तर क्या है? मर जायेगा अब सुन न, कहा। खाने की क्रिया नहीं, परन्तु भाव किसका है? माँस खाने का भाव, मदिरा पीने का भाव, भाव किसका? ऐसा कहे, निश्चय हुआ फिर उसे इसका क्या काम है? यह प्याला फट जाता है वापस (अभिमान चढ़ जाता है)। समझ में आया? निश्चय दृष्टि होने पर भी भाव, पुद्गल की रोटी की पर्याय पुद्गल है और माँस की पर्याय पुद्गल है, ऐसा वापस ऐसा मानते हैं। दोनों एक प्रकार की जड़ की पर्याय है, निश्चय में। बापू! निश्चय में तो ऐसा ही है। परन्तु व्यवहार में जैसे अशुभभाव से शुभभाव ठीक है, ऐसा आये बिना रहता नहीं। वह तो उसमें विवेक

आता है कि माँस की पर्याय नहीं और रोटी की पर्याय लेने की वृत्ति होती है। आहाहा! समझ में आया? शिकार करने के भाव, परस्त्री लम्पटी के भाव। फिर तो चाहे जो भाव हो। चाहे जो न हो।

दृष्टि में शुभ और अशुभभाव हेय मानने पर भी, अशुभ से जब छूटता है और स्थिर नहीं रह सकता, तब शुभभाव आये बिना नहीं रहता। वह तो अज्ञानी तो उस शुभाशुभ को कुछ मानता ही नहीं, इसलिए ऐसे स्वच्छन्दी होकर रहता है। समझ में आया? ऐसा नहीं... सम्यग्दर्शन में पुण्य-पाप को दोनों समान मानने पर भी व्यवहार में पाप परिणाम से शुभ परिणाम व्यवहार से ठीक है, ऐसा आये बिना रहता नहीं, वह ऐसा न माने कि हमारे तो सब स्त्रियाँ समान हैं माँ या स्त्री। ऐसा नहीं होता। हमारे तो रोटी की पर्याय और माँस की पर्याय सब पुद्गल की है निश्चय से तो। वह तो ज्ञेय है ज्ञान में। इष्ट, अनिष्ट मानना तो मिथ्यात्व है। सुन तो सही। आहाहा! यह सब दलील है। समझ में आया? ऐसा नहीं होता। उस पर्याय में व्यवहार से अन्तर है। माँस की पर्याय, मदिरा की पर्याय और रोटी की पर्याय में अन्तर है। इसी प्रकार पाप के परिणाम और पुण्य परिणाम में व्यवहार से अन्तर है। समझ में आया? ऐसा न माने और फिर स्वच्छन्दी होकर, खाना तो माँस खाना तो क्या और मदिरा पीओ तो क्या? विषय भोगो तो क्या? मर जायेगा, वहाँ पोपाबाई का राज नहीं है।

यहाँ तो शुद्ध की दृष्टि करने में अशुद्धपने के दो भाव दोनों बन्धरूप से हेय है, ऐसा जानकर ज्ञानी उन्हें छोड़ता है। परन्तु उन्हें छोड़ न सके तो अशुभभाव को छोड़कर शुभभाव में आता है। आदरणीय नहीं मानता। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि भी शुद्धभाव को उपादेय मानता है और दोनों को हेय मानता है। तथापि दोनों के बीच जब स्थिर नहीं हो सकता छोड़कर, तो अशुभभाव छोड़कर शुभभाव में आता है। अनहित वृत्ति से, उपादेय माने बिना, वह भाव आये बिना रहता नहीं और इसलिए उसे पुद्गल की पर्याय में भी विवेक रहता है। समझ में आया? वह माँस की पर्याय नहीं होती, लेने की वृत्ति ही नहीं होती।

मुनि को तो उनके लिये बनाये हुए आहार लेने की वृत्ति नहीं होती। वह तो

पुद्गल है। वह कहाँ इसका किया हुआ और इसकी दशा है? परन्तु सुन तो सही। उनके लिये बनाया हुआ आहार, पानी हो, उसे मुनि को लेने की वृत्ति होती नहीं, इतना शुभ का विवेक है। समझ में आया? भूमिका जहाँ आत्मा की दृष्टि की स्थिरता आत्मा में जमी है, उसमें विशेष स्थिरता का अभाव (हो), तब ऐसा विकल्प आहार का होता है। परन्तु वह आहार उनके लिये बनाया हुआ नहीं, पानी बनाया हुआ नहीं, ऐसी चीज़ हो तो उसकी शुभवृत्ति लेने की आती है। वह लेने की अर्थात्? लूँ इतनी। लेना-देना क्रिया मेरी है, ऐसा वे मानते नहीं। आहाहा! समझ में आया? परमार्थ से जैसे शुभाशुभभाव में अन्तर नहीं, उसी प्रकार व्यवहार से अन्तर नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह कहेंगे, देखो! यहाँ। यही यहाँ प्रश्न करते हैं कि महाराज! उसे दोष क्यों देते हो?

जब शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप तीन गुप्ति से गुप्त वीतरागनिर्विकल्पसमाधि को पाकर ध्यान में मग्न हुए पुण्य-पाप को समान जानते हैं,... अर्थात् स्थिरता होकर समान करते हैं, ऐसा कहना है। तब तो जानना योग्य है। परन्तु जो मूढ़ परमसमाधि को न पाकर... अन्तर स्थिरता शान्ति की, आनन्द की प्राप्त किये बिना गृहस्थ-अवस्था में दान, पूजा आदि शुभ क्रियाओं को छोड़ देते हैं,... दान, क्रिया, पूजा, शुभभाव आये बिना रहते नहीं। वह शुभभाव हमारे आवे ही नहीं। वह मूढ़ है, तत्त्व को नहीं समझता। आते हैं, परन्तु मानता है कि वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? यह गजब बात, भाई! शर्तें भी बहुत अन्दर।

गृहस्थदशा में सम्यग्दृष्टि हो, शुभाशुभभाव को बन्ध का कारण जाने, तथापि उसके योग्य भगवान की पूजा, भक्ति, गुरुसेवा, स्वाध्याय ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। कोई कहे कि हमारे इस भाव का—पुण्य का क्या काम है? तो तुझे भूमिका की खबर नहीं, दृष्टि की खबर नहीं, आत्मा की खबर नहीं, उसे शुभभाव कैसा होता है, उसकी भी तुझे खबर नहीं। समझ में आया? वस्तु में स्थिर होकर जिसे पर्याय उत्पन्न नहीं होती, उसके लिये तो बराबर है, परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थाश्रम में है तो उसे... समझ में आया? दान, पूजा, भक्ति, विनय (होता है)। देखो! हमेशा षट् आवश्यक आते हैं या नहीं? गृहस्थ को पूजा, दान (आदि) छह आवश्यक हैं। ऐसे शुभभाव आये

बिना रहते नहीं और न आवे और समझे कि हमारे वह बन्ध का कारण है, इसलिए नहीं। (तो) दृष्टि मिथ्यात्व है, तुझे वस्तु की खबर नहीं। भूमिका बढ़ गयी है, ऐसा तू मानता है। हमारे ऐसे भाव होते नहीं। तो भूमिका बढ़ गयी, तू केवली हो गया, ऐसा माना उसने। समझ में आया? आहाहा!

परमसमाधि को न पाकर... आनन्द की स्थिरता, निर्विकल्प उपयोग नहीं, ऐसा कहते हैं। निर्विकल्प उपयोग नहीं और ऐसा कहे कि हमारे शुभभाव होता नहीं। तो स्वच्छन्दी है। उसे नहीं दृष्टि का भान, नहीं शुभभाव का भान, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निर्विकल्प अमृत के शुद्ध उपयोग में रमता हो, उसे तो शुभ और अशुभ कुछ उत्पन्न होते ही नहीं। और निर्विकल्प समाधि नहीं, तब कहे कि हमारे शुभभाव का क्या काम है? शुभभाव होते नहीं, वह बन्ध का कारण है। तो तू समझता नहीं। शुद्ध उपयोग तो हुआ नहीं। तो फिर शुभ उपयोग नहीं कर तो क्या होगा तुझे? कुछ खबर ही नहीं, इसका अर्थ यहाँ ऐसा कहना है। उसे शुभ उपयोग आवे ही, ऐसी उसे खबर नहीं। मिथ्यादृष्टि जीव है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को भक्ति का, पूजा का, दान का, यात्रा का, ऐसा भाव आवे, वह भूमिका है। तू कहता है कि वह भाव हमारे नहीं आता। तो तू निर्विकल्प स्थिर हो गया है? स्थिर नहीं हुआ तो हमारे न आवे, ऐसा आया कैसे तुझे? हमारे वह न आवे। हमारे न आवे, ऐसा यह बोला कहाँ से तू? विकल्प कहाँ से आया तुझे? ... शुद्ध उपयोग में स्थिर हो गया हो, यह कहते हैं। निर्विकल्प परमसमाधि को न पाकर। गृहस्थदशा में इस क्रिया को छोड़ दे, शुभभाव हमारे होता ही नहीं। शुभभाव हमारे आदरणीय नहीं, इसलिए होता नहीं। यह मानता है, उसकी खबर नहीं। शुभभाव होता है। जानता है कि मैं स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता, पापभाव से बचने ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं, तथापि वह जानता है बन्ध का कारण। समझ में आया? तीव्र कषाय की अपेक्षा मन्द कषाय ठीक जाने। बहुत नुकसान होता हो, उसकी अपेक्षा थोड़े नुकसान को ठीक जाने। आया है न मोक्षमार्गप्रकाशक में? समझ में आया?

गृहस्थ कन्दमूल नहीं खाता, परन्तु इससे वनस्पति एकेन्द्रिय खाने का भाव, वह

धर्म है, ऐसा नहीं। इसी प्रकार धर्मी को धर्मदृष्टि में भान होने पर भी, स्थिर न हो सके, तब अशुभभाव नहीं होता, अशुभ तीव्र कषाय है। और शुभभाव, उसे—धर्मी जीव को शुभभाव बहुत आता है, इससे सम्यग्दृष्टि मरकर स्वर्ग के वैमानिक में ही जाता है। कोई ऐसा कहे कि सम्यग्दृष्टि जीव की पुरुषार्थ की बहुत उग्रता है, इसलिए हम तो यहाँ से मरकर सीधे महाविदेहक्षेत्र में जायेंगे। हमारे उग्र पुरुषार्थ की दुनिया को खबर नहीं (ऐसा माननेवाला) मूढ़ है। यह आया है, नहीं? आया था। पुस्तक अभी प्रकाशित हुई, उसमें आया था। हमारे उग्र पुरुषार्थ बिना... वह नहीं? सुरेन्द्रनगर से प्रकाशित हुई है वह। वे थे न? शान्ति नहीं थे एक? उन्होंने प्रकाशित की है न। राजकोटवाले... प्रकाशित की है। उसमें लिखा है कि महा पुरुषार्थ हमारा है। हमारे पुरुषार्थ को लोग समझ नहीं सकते। मरकर महाविदेह में सीधे केवलज्ञान हम पायेंगे, वहाँ समाधान करेंगे। बहुत अच्छी बात। समझ में आया? आहाहा! लोग उल्टे गोते खाते हैं। वापस कहाँ जाते हैं गुलॉट खाकर, (इसकी) खबर नहीं रहती। उसमें सोपान ऐसे हों और पैर ऐसा हो। पड़े। ... जाये २५-५० सीढ़ियों में। स्थिर ही नहीं रहे सके वह। ऐसा कि देखो, कितना पुरुषार्थ है! हम तो सीधे महाविदेहक्षेत्र में स्वसंवेदनज्ञान द्वारा जायेंगे। भगवान कहते हैं कि भाई! तेरी भूमिका की तुझे खबर नहीं। समझ में आया? चौथी, पाँचवीं भूमिका हो, छठवीं आदि भूमिका हो, उसे मनुष्यपना आता ही नहीं। उसे तो बारम्बार ऐसे शुभ विकल्प स्वाध्याय के, धर्मध्यान के, बहुत विनय के ऐसे आये होते हैं, उसे ऐसा पुण्य बँध जाता है कि वैमानिक का ही देव होता है। स्त्री होता नहीं, भवनपति, व्यन्तर ज्योतिष में जाता नहीं, नरक, पशु में जाता नहीं। समझ में आया? यह ऐसा कहते हैं, यह श्रीमद् में भी ऐसा कहते हैं न कितने ही। श्रीमद् महाविदेहक्षेत्र में गये हैं केवली हैं, लो! ऐसा मानो कि हम महिमा करते हैं और ऐसे गाली देता हो। यह देवचन्दजी के लिये कितने ही ऐसा कहते हैं, भाई! यह खतरगच्छ के हैं न देवचन्दजी श्वेताम्बर में हो गये हैं। वे महाविदेह में उपजे हैं। अरे! परन्तु तू क्या कहता है?

यहाँ तो कहते हैं, गृहस्थाश्रम के योग्य जब दशा होती है... अरे! मुनि के योग्य दशा छठवें (गुणस्थान) की हो तो भी स्थिर न हो, तब शास्त्रश्रवण, मनन — ऐसा शुभभाव आये बिना रहता नहीं। अट्टाईस मूलगुण के विकल्प भी उन्हें आते हैं। जानता

है कि यह बन्ध का कारण है। तीव्र बन्ध की अपेक्षा इसमें मन्द बन्ध है, ऐसा उसे लक्ष्य में विवेक है। आदरणीय एक भी नहीं है। समझ में आया ? ओहोहो ! परमसमाधि को अर्थात् कि अन्तर शुद्ध उपयोग में रमता नहीं और कहता है कि हमारे ऐसे शुभभाव नहीं होते। तो यह क्या बोलता है ? यह तू बोलता है, वही भाव है। दूसरा कुछ शुद्ध उपयोग का भाव नहीं।

और मुनि पद में छह आवश्यककर्मों को छोड़ते हैं,... मुनि सच्चे नग्न दिगम्बर हो और ऐसा माने कि हम तो मुनि हैं, हमारे शुभभाव का क्या काम है ? वह यहाँ एक साधु बोला था। यहाँ तो सब नमूने मिल गये हैं यहाँ। वह जाने कि निश्चय का यहाँ चलता है न, इसलिए अन्दर बातें करते-करते (ऐसा बोले), हमारे—मुनि को व्यवहार का क्या काम है ? कहाँ काम है ? बहुत अच्छी बात, भाई ! बोलते हो, यह विकल्प उठा है और हमारे व्यवहार का क्या काम है ? समझ में आया ? निश्चयाभासी इतने अधिक बढ़ गये हैं कितने ही कि यहाँ सब निश्चय की बात चलती है न, अपने ऐसा कहें तो अपने को ठीक कहेंगे। हमारे व्यवहार का मुनि को क्या काम है ? ओहोहो ! पावर चढ़ गया लगता है, कहा, इसे। और विकल्प उठता है, वह सब मिथ्यात्वभाव है। विकल्प वह मिथ्यात्व है। (हमने) कहा, परन्तु ऐसा कहाँ से लाये तुम ? विकल्प तो छठवें गुणस्थान में महागणधर को भी उठता है। वह विकल्प मिथ्यात्व नहीं। उस शुभराग को धर्म और परमार्थ से हितकर माने तो मिथ्यात्व है। आहाहा ! समझ में आया ? अरे ! कहाँ का कहाँ खींचते हैं और कहाँ का कहाँ खींचते हैं। समझ में आया ? पगली का पहरना निकाल डाले तो सब और पहने तो तीन। इसी प्रकार भान नहीं होता। हाँ, हाँ। यह हमारे यहाँ हुआ है।

एक बाई थी बेचारी... खोपाळा, खोपाळा। आवास में उतरे थे। एक बेचारी पागल बाई थी। उसका काका सम्हालता था। पैसा ... सम्हालता। हम उतरे वहाँ उसे नयी घाघरी पहनाई। जवान बाई, हों ! १६, १७, १८ वर्ष की। ऐसे वह था क्या ? सर्दी। वहाँ तापती थी, वहाँ लगा। खड़ी रही निकाल डाली। ... उसने निकाल डाला। वह छोटी ओढ़नी थी घर में घुस गयी। परन्तु यह क्या किया तूने ? पहनाया नया वस्त्र अभी

और यह सवेरे पहनायी और जलायी। पागल को क्या भान है ? इसी प्रकार यह निकाल डाले तो सब निकाल डालो, पुण्य-पाप का भाव है, शुद्ध का भान न हो, तो भी पुण्यभाव निकाल डालो। परन्तु कहाँ से निकालेगा। समझ में आया ? और या अज्ञानी पुण्यभाव आवे, उसे धर्म का कारण मानता है। दोनों गहल हैं, पागल हैं। धर्मचन्दजी ! यह तो नजरों से देखा है, हों ! आवास के पीछे है न, खोपाळा का उतारा। पीछे था। बड़ोद के पीछे है न खोपाळा। आहाहा !

मुनि पद में छह आवश्यक... मुनि उसे कहते हैं कि जो शुभाशुभ परिणाम बन्ध का कारण माने। देह की क्रिया का एक रजकण भी कर सकता हूँ, ऐसा न माने। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित हुआ हो और अन्तर आनन्द की लहरें चारित्र की उड़ती हों। तथापि जब शुद्ध उपयोग में रमता न हो, तब छठवें गुणस्थान में उसे छह आवश्यक के भाव आते हैं—सामायिक, चोविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान। वह न आवे और छोड़ दे, वे दोनों बातों से भ्रष्ट हैं। वह नहीं स्थिर हुआ शुद्ध उपयोग में, नहीं आता शुभ में।

न तो यति हैं, न श्रावक हैं। लो ! उसे नहीं कहा जाता साधु और नहीं कहा जाता श्रावक। वे निन्दा योग्य ही हैं। तब उनको दोष ही है, ऐसा जानना। तो उसे दोष ही कहा जाता है। जो पुण्य-पाप के भाव होते हैं, तथापि शुद्ध दृष्टि से उन्हें उपादेय न माने और स्वरूप की दृष्टि रखे तो सम्यग्दर्शन है। उसमें—शुद्ध उपयोग में स्थिर हो तो पुण्य-पाप जैसे श्रद्धा में हेय माने थे, वैसे छूट गये और स्थिर हुआ। परन्तु श्रद्धा में हेय माने थे, वैसा स्थिर नहीं हो सका तो उसे अशुभ से बचने के लिये शुभ आये बिना रहता नहीं। वह शुभ न करे तो निन्दा का पात्र है। क्योंकि वह भूमिका आवे और उस भूमिका को जानता नहीं। निन्दा योग्य ही हैं, तब उनको दोष ही है, ऐसा जानना। लो ! इस ५५ गाथा में यह बात की।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ शुक्ल ४, मंगलवार, दिनांक - २५-०१-१९६६

गाथा - ५६-५७, प्रवचन - १०८

गाथा - ५६

५६ गाथा । परमात्मप्रकाश दूसरा भाग । आगे जिस पाप के... अधिकार पुण्य-पाप का चलता है । उसमें आचार्य ऐसा कहते हैं कि पाप के फल से अधिक कदाचित् दुःख को प्राप्त हो । नरकादि का विशेष डाला है । पाठ तो (ऐसा है कि) दुःख को प्राप्त होता है और दुःख को दूर करने के लिये । वस्तु तो ऐसी है । दुःख पूर्व के पाप के उदय से आया, उसमें दुःख दूर करने का विचार आया तो कहते हैं कि दुःख, वह भी भला है, ऐसा कहते हैं । परन्तु विचार आया है । एक वस्तु, ऐसी है, कहते हैं, देखो न !

१८३) वर जिय पावड़ँ सुदरड़ँ णाणिय ताड़ँ भणंति ।

जीवहँ दुक्खड़ँ जणिवि लहु सिवमड़ँ जाड़ँ कुणंति ॥५६ ॥

ऐसा शब्द है । दुःख स्वयं शिवमति को मोक्षमार्ग का उपार्जन नहीं करता, परन्तु पूर्व के पाप के कारण इतना घेराव (होता है), यह तो भाई ! नरक के भी दुःख में गया, इसका स्पष्टीकरण अधिक करेंगे । क्या कहते हैं ? देखो !

१८३) वर जिय पावड़ँ सुदरड़ँ णाणिय ताड़ँ भणंति ।

जीवहँ दुक्खड़ँ जणिवि लहु सिवमड़ँ जाड़ँ कुणंति ॥५६ ॥

हे जीव, जो पाप के उदय जीवों को दुःख... 'जनित्वा' ऐसा है न ? दुःख का संयोग आवे और बहुत दुःख अपार-अपार नरक के दुःख, सातवें नरक के, तिर्यच के दुःख, मनुष्य के महादुःख, परन्तु जो उस दुःख के उपार्जन करने के काल में शीघ्र ही मोक्ष के जाने योग्य उपायों में बुद्धि कर देवे,... ऐसा । वह कर देवे,... अर्थात् लगे । 'शिवमति कुर्वन्ति' ऐसा । उपाय में बुद्धि कर देवे अर्थात् स्वयं करे, ऐसा । दुःख जो आया उसमें से दुःख... अर्थकार ने तो ऐसा ही कहा है कि 'दुःखविनाशार्थं धर्माभिमुखो

भवति' शीर्षक में है। पाप का ऐसा उदय आया और ऐसा, आहाहा! नरक के अन्दर की दुःख की व्याख्या उसे भगवान जाने और वह (नारकी) वेदे, ऐसी व्याख्या है।

पहले नरक में दस हजार वर्ष की स्थिति में अनन्त बार उपजा। एक दस हजार और एक समय (स्थिति में) अनन्त बार उपजा, दस हजार और दो समय में अनन्त बार उपजा। तीन, चार, पाँच... संख्य, असंख्य, वह ठेठ तैतीस सागर के जितने समय होते हैं, उतना एक-एक समय में अनन्त बार उपजा है। वह दुःखकारण नहीं। परन्तु यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि दुःख तो अनन्त बार ऐसे आये हैं, परन्तु ऐसे दुःख के काल में वह दुःख दूर करूँ। यह क्या? यह क्या दुःख? इतना दुःख कहीं कोई उपाय होगा या नहीं दुःख मिटाने का? ऐसे दुःख का नाश करने के लिये यदि वह आत्मा की मति करे तो, कहते हैं कि दुःख प्राप्त किया, वह भी सुन्दर और भला है। यह गाथा इसकी है, बाद में कहेंगे। पुण्य से राज मिले तो भी नरक में जाये, वह अच्छा नहीं है। यह बाद में कहेंगे। समझ में आया?

... यह करते हैं ऐसा। तू स्वयं कर देवे, हों! करे ऐसा, वह दुःख कर देता है, ऐसा नहीं। 'सिवमइँ जाइँ कुणंति' ऐसा है न? देखो! शिवमति अर्थात् मोक्ष का मार्ग, छूटने का स्वयं उत्पन्न करे कि अहो! यह क्या? लोगों को विचार नहीं आते, वे अनन्त दुःख कि यह जरा थोड़ा सा मनुष्य भव मिला पाँच, पच्चीस वर्ष को ऐसे सुविधा और खावे न, उसकी आड़ में अनन्त-अनन्त दुःख का विचार नहीं। देखो न! वह अभी यह कहीं नहीं आया? बड़ा मर गया है एक मनुष्य। भले वह बाबा हो या भाभो हो। भाभा लिखा है इसमें। यह तो एक बात है कि वस्तु एक क्षण में (पलट जाती है)। और उस समय की पीड़ा, आहाहा! यह वह क्या? खा-पी कर बैठे हों, सुविधा करके वहाँ अपने को मान मिलेगा, वहाँ अपने ऐसा कहेंगे... वह अपने ऐसा (करेंगे)। मुर्दा हाथ आता नहीं, कहते हैं। कहाँ गये मुर्दा? पाँच ... वह भंगार सब घुस गया अन्दर वह। बर्फ हे न बर्फ? कहो, ऐसे दुःख तो अनन्त बार (सहन) किये हैं, एक बार नहीं। ऐसे दुःख के काल में, पाप के उदय के प्रसंग में जीव यदि शिवमति अर्थात् मोक्षमार्ग की मति करे, अरे! यह वह कोई उपाय होगा या नहीं? उसमें अन्दर से भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप

है, ऐसी बुद्धि और मति करे तो, कहते हैं कि वह आये हुए दुःख भी उसे हम निमित्तरूप से सम्मान करते हैं। सुन्दर कहते हैं। पाठ सुन्दर है न। समझ में आया ? बहुत अच्छे हैं, ऐसा ज्ञानी कहते हैं।

भावार्थ :- कोई जीव पाप करके नरक में गया,... यह तो दृष्टान्त देते हैं, हों! शास्त्र में इतनी बात है अभी। पाप करके नरक में गया। वहाँ पर महान दुःख भोगे,... ओहोहो! नरक की व्याख्या अपने कर गये हैं उसमें— (छह) ढाला में। यहाँ का कोई राजा-महाराजा पाँच, पचास करोड़ और अरब, पाँच अरब का मालिक हो। वह मरकर नरक में जाये वहाँ, उल्टे सिर वहाँ उपजने के स्थान नरक में हैं, वहाँ उपजे। उसके अन्दर के शस्त्र ऐसे होते हैं उपजने के (कि) चीर डाले उसके शरीर को। उपजावे वहाँ से पड़े नीचे एकदम। नीचे छत्तीस प्रकार के शस्त्र होते हैं। अन्दर पीड़ित होता है। हाय... हाय... पहले नरक का नारकी। सात-सात योजन उछले पीड़ा से। प्रहार लगे न। एकदम जन्मा और (उछलकर) गिरे नीचे। वह संयोगों के, कहते हैं पाप के काल में भी यदि उस दुःख का विचार आने पर (ऐसा लगे कि) वह इस दुःख का निकलने का कोई उपाय होगा या नहीं? अनन्त बार हुआ। उस दुःख के कारण से यदि होता हो तो दुःख तो अनन्त बार (हुआ)। परन्तु उस दुःख में यदि विचार आवे, ऐसा कहते हैं। उस दुःख को छोड़ने के लिये, ऐसा। दुःख से छूटने के लिये। वापस संसारी स्वर्ग के सुख लेने के लिये, ऐसा नहीं। वह सब दुःख है। वह दुःख... दुःख... दुःख... ओहोहो! उसमें से नरक में जाकर वहाँ पर महान दुःख भोगे, उससे कोई समय किसी जीव के... किसी समय किसी जीव को, सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है। नरक में भी सम्यग्दर्शन, अनन्त काल में नहीं पाया ऐसा पहला पावे। समझ में आया? सातवें नरक में पहले पावे। अनन्त काल में नहीं पाया।

उस दुःख की पीड़ा। आहाहा! संयोग देखते चिल्लाहट मचाये। शास्त्रकार संयोग से बात करते हैं। क्योंकि अज्ञानी को संयोग से दुःख भासित होता है। दुःख तो राग और शरीर की एकताबुद्धि का और विकार का है। समझ में आया? परन्तु संयोग ऐसे देखे, वहाँ हाय... हाय...! यह बाध आया। वास्तव में तो उस समय चैतन्य को भूलकर जितना विकार और शरीर में एकतापने का भाव, उतना असत्यपना अर्थात्

उतना दुःख उसे है। परन्तु उन संयोग को देखकर उसे अन्दर से विचार (आवे) कि, आहाहा! यह पीड़ा सही नहीं जाती। एक बार कहा था। एक बाई को शीतला निकली शीतला। शीतला कहते हैं न, क्या? दाने दाने, हों! दाने-दाने में ईयळ, दाने-दाने में ईयळ। ताजी विवाहित और दाने-दाने में ईयळ (पड़ी)। फिर रजाई में ऐसे फिरे, वहाँ यहाँ से सैकड़ों ईयळ गिरे इस ओर, ऐसे फिरे वहाँ सैकड़ों ईयळ (इस ओर पड़े)। माँ! मैंने यह पाप इस भव में किये नहीं। चिमनभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो उसने क्या कहा वहाँ? वह डेला में रहती थी। डेला के पीछे तुम्हारे लाठी में। दामनगर विवाह किया था। फिर पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... ईयळ चारों ओर भाई! नीचे दीवार में चढ़े। यहाँ से निकलती-निकलती ईयळ नीचे उतर जाये और दीवार में चढ़े इतनी ईयळ। समझ में आया? क्या है अभी? ईयळ-ईयळ, फिर ऐसे चिल्लाहट मचाये। माँ! उस ओर नहीं सुखलाल का घर, उसके पीछे।

मुमुक्षु : डेला में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, डेला में। मैंने ऐसे पाप इस भव में किये नहीं। यह सहन नहीं होता, इतनी पीड़ा। बेटा! क्या हो? ऐसा करके बेचारे ऐसे नीचे गद्दे कोमल हों! परन्तु कोमल गद्दे, यहाँ ईयळ एक-एक दाने में ईयळ, सड़े। ईयळ पड़ी ऐसे दाने-दाने में। ऐसे पड़े वहाँ ईयळ वह नीचे चले। खाट के नीचे गिरे और जाये पूरे घर में। मोहनभाई! ऐसे फिरे वहाँ यहाँ से ईयळ और यहाँ फिरे वहाँ यहाँ से ईयळ (निकले)। इतना सड़ा। मर गयी उसी और उसी में। इस दुःख से तो अनन्तगुणे दुःख नरक के दस हजार वर्ष की स्थिति में हैं। दस हजार वर्ष की स्थिति में जो उपजे और यह कहते हैं, वह तो संयोग से व्याख्या है। अनन्तगुणी पीड़ा पहले नरक में है। इससे अनन्तगुणी बढ़ते... बढ़ते... बढ़ते... बढ़ते... तैतीस सागर। उसमें किसी को विचार आवे कि अरे! परन्तु यह वह कोई दुःख का उपाय? उपजे वहाँ करोड़ों बिच्छू काटे अन्दर। यह ठाकरिया बिच्छू होता है न, ठाकरिया कठोर। एक हो तो दो, चार घण्टे में मर जाये। ऐसे करोड़ों बिच्छू, ऐसे चिपटे। आहा!

ऐसा करके पड़ा हो। अन्दर है इसमें, है या नहीं छहढाला में ? डाला है कहीं। नारकी का दुःख। बिच्छू। ऐसा है उसमें कहीं, हों! देखो यह है। बिच्छू का यहाँ है। यहाँ बिच्छू, यहाँ बिच्छू, चारों ओर बिच्छू मुख फट गया है। पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... वह तो नपुंसक है। उसे स्त्री-पुरुषवेद नहीं होता। क्या करे ? जाये कहाँ ? यह बिच्छू। ऐसे कठोर सर्प, ऐसे कठोर सर्प। समझ में आया ? चारों ओर चिपटे, देखो ! सर्प भी रखे हैं अन्दर में कठोर। परन्तु वे डंक बारीक करते हों ऐसे।

उसमें किसी को विचार आ जाये कि अरे ! परन्तु यह क्या है यह वह ? यह उस दुःख से मुक्त होने का कोई उपाय होगा या नहीं ? वह ऐसा विचारता है, हों ! पाठ ऐसा है न दुखो न। 'दुःखविनाशार्थं धर्माभिमुखो' अरे ! यह क्या है ? ऐसा विचार करते हुए किसी जीव को अन्तर में शिवमति हो जाती है। शिवमति अर्थात् आत्मा का अनुभव, आनन्द का अनुभव हो जाता है। अहो ! आहाहा ! यही उपाय दुःख से छूटने का है। ऐसा अनुभव हो जाये। यह आत्मा में जितना काल रहूँ, उतना मुझे आनन्द। उससे दुःख छूटने का उपाय है। ऐसे नरक के अन्दर भी सम्यक्त्व पाकर भान हो जाये। कहते हैं कि वे नरक के दुःख भी अच्छे हैं इस अपेक्षा से, हों ! कहो, भीखाभाई !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी कहाँ बात है ? यहाँ यह कहाँ कहते हैं ? इन्होंने कहाँ यह कहा ? यहाँ तो कहते हैं, दुःख के काल में, किसी को दुःख के... यह तो एक दृष्टान्त नरक का दिया है। पाठ में नरक का नहीं कहीं। उन्हें तो इतना ही कहना है, वह पाप सुन्दर है। ज्ञानी 'ताड़ँ भणंति' सर्वज्ञ, सन्त ऐसा कहते हैं। जीव 'जीवहँ दुःखइँ जणिवि' दुःख को उपजाकर के भी यदि शिवमार्ग को उत्पन्न करे तो वह दुःख भी अच्छे हैं। इतना पाठ है। फिर इसका स्पष्टीकरण करने के लिये तो अनेक प्रकार (कहे)। समझ में आया ? आहाहा !

एक श्वास लेने का प्रसंग न हो, हों ! कहा नहीं था एक बार ? वस्त्र ... चारों ओर। पोटला बाँधे। बाँधकर फिर लोहे के सरिया डाले हों सरिया। और फिर बाँधे वृक्ष के ऊपर, फिर नीचे करे अग्नि। सिर पर कोड़े मारे। यह ऐसे काल में भी दुःख के प्रसंग

में कोई शिवमति कर ले, ऐसा कहना है यहाँ तो। समझ में आया ? किसी को ऐसा कि श्वास लेना नहीं। ऐसे देखना नहीं, ऐसा सब, सब बन्द कर दो। ... ऐसा कर डाला हो। वृक्ष पर टाँगा, नीचे अग्नि। वह पीड़ा। विचार आवे कि अरे ! यह क्या है ? बोल सके नहीं, आवाज कर सके नहीं, हिल सके नहीं, क्योंकि बाँधा है। हिलना या बाँधना वह तो साधन की अपेक्षा की बात है। ऐसे साधन हैं, इसलिए आत्मा प्राप्त न कर सके, ऐसा नहीं है। तब तो ऐसा हुआ कि ऐसे साधन हैं, वहाँ इसे अवरोधक है। और ऐसे साधन सुलटे ऐसे हों तो इसे अनुकूल पड़ते हैं। तो वह साधन अनुकूल पड़े, ऐसा इसका अर्थ हुआ। समझ में आया ?

इन रजकणों के दल चाहे जिस प्रकार से रचित हों। यहाँ मनुष्य ऐसा जाने कि ऐसी समानता है और ऐसा है। यह बात ही मिथ्यात्व है। नेमिदासभाई ! कि हमको ऐसे साधन है न ऐसे चलने का, बोलने का, बोल सकते हैं, कह सकते हैं, ऐसे हाथ फिरा सकते हैं, इसलिए हमारे ठीक रहता है। इसका अर्थ ही यह है कि जड़ के ऐसे साधन हों, इसलिए जीव को ठीक पड़ता है, यह बात ही झूठी है। आहाहा ! ऐसे प्रतिकूल साधन अन्दर हों, इसलिए आत्मधर्म न प्राप्त कर सके, यह बात खोटी है। समझ में आया ?

कहते हैं कि **क्योंकि उस जगह सम्यक्त्व की प्राप्ति के तीन कारण हैं।** यह तो टीकाकार जरा अधिक स्पष्टीकरण करते हैं। पहला तो यह है कि तीसरे नरक तक देवता उसे संबोधने को (चेतावने को) जाते हैं,... तीन नरक तक तो वहाँ का भवनपतिदेव आदि सम्बोधने जाते हैं। अरे ! जीव यह क्या किया तूने ? महापाप किये। ऐसे किये इत्यादि। **सो कभी कोई जीव के धर्म सुनने से सम्यक्त्व उत्पन्न हो जावे,...** धर्म सुनने से भी उसका भान हो जाये। भान करे तो सुनने से हुआ, ऐसा कहा जाता है। जमुभाई ! भाषा तो ऐसी है, देखो ! क्या है ? सम्यक्त्व उत्पन्न हो जावे। इस प्रकार से धर्म सुनने से, धर्म सुनने से। इसका अर्थ कि धर्म तो बहुत बार इसने सुना ऊपर। देवों ने बहुत बार सुनाया है, मनुष्यपने में अनन्त बार सुनने को मिला परन्तु उसमें इसे विचार आया कि ओहो ! यह चैतन्यमूर्ति अखण्डानन्द द्रव्यस्वभाव। यह क्या ? यह क्या परन्तु यह वह कोई ? जिसे सर्वज्ञ महिमा कर-करके पूरा पड़ता नहीं, ऐसा आत्मद्रव्य। यह वह क्या ?

शुद्ध-शुद्ध कहते हैं, वह शुद्ध है, ऐसा अन्तर में विचार करने से सम्बोधन से अथवा श्रवण से पाया, उसे ऐसा कहा गया कि इससे प्राप्त हुआ है।

दूसरा कारण-पूर्वभव का स्मरण... जातिस्मरण होता है। नारकी के जीव को, हों! पूर्व का याद आवे अन्दर। ओहो! मुनियों ने हमको कहा था। आत्मा शुद्ध चिदानन्द-स्वरूप है, हमने सुना था, धारा था। प्रयोग नहीं किया, प्रयत्न नहीं किया। ऐसा वह प्रयत्न करके कोई पा जाता है। पूर्व भव के स्मरण से समकित पा जाता है। वह स्मरण है, यह उसे प्राप्त करने का कारण नहीं। यदि वह प्राप्त करे तो उसे स्मरण प्राप्त करने का (कारण) कहा जाता है। वरना तो विभंग अज्ञान अभव्य को अनन्त बार हुआ। विभंग, हों! भव को देखे। अभव्य है, वह भव को देखे ऐसे, भव इसके पहले, इसके पहले यह, इसके पहले। सम्यग्दर्शन पावे नहीं। परन्तु यदि वह स्मरण आया और उसमें से ऐसे अन्दर गया। अरे! मैं तो पूर्व में इस भव में था यहाँ राजकुँवररूप से। यह तो माँस खाया, मदिरा पी, मैंने माना नहीं। यह मरकर मैं नरक में आया। अरे, आत्मा तो वह का वह, यह क्या? ऐसा विचार करते हुए सम्यग्दर्शन अनुभव करे तो उसे पूर्व भव के स्मरण से हुआ कहा जाता है।

और तीसरा नरक की पीड़ाकरि दुःखी हुआ, नरक को महान् दुःख का स्थान... तीसरा स्थान दुःख की पीड़ा, ऐसे दो कहे न? यह तीसरा। महान् दुःख का स्थान जान नरक के कारण जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह और आरम्भादिक हैं, उनको खराब जान के पाप से उदास होवे। पाप से उदास होवे, उसमें विकार से उदास होवे एकदम। आहाहा! यह पाप किये, यह पाप किये। मनुष्यपना मिला था। यह पाप किये थे, परन्तु मैं वह का वह आत्मा। मुझे वहाँ कहा, मैंने माना नहीं। ऐसा करके यदि आत्मधर्म पावे तो कहते हैं कि पाप से उदास होवे।

तीसरे नरक तक ये तीन कारण हैं। तीन नरक तक। आगे के चौथे, पाँचवें, छठें, सातवें नरक में देवों का गमन न होने से... देव वहाँ नहीं जाते। धर्म-श्रवण तो है नहीं,... इस अपेक्षा से इनकार किया। लेकिन जातिस्मरण है,... चौथे से सातवें नरक में जातिस्मरण है। भव की याद आने पर, भव की याद आने पर भान हो जाता है। समझ

में आया ? तथा वेदनाकर दुःखी होके पाप से भयभीत होना... यह चौथे से सातवें तक। ये दो ही कारण हैं। इन कारणों को पाकर किसी जीव के सम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है। किसी जीव को उसमें समकित होता है। ऐसा कहते हैं न ? इस कारण को पाकर सबको होता नहीं। उसमें से विचार आने पर अन्तर में गुलॉट खा जाये। ओहो ! यह तो आत्मा आनन्दस्वरूप ! आकुलता तो कृत्रिम क्षणिक। आकुलता किसकी आकुलता ? पूर्णानन्दस्वरूप की विपरीतता। विपरीतता का स्वभाव पूरा त्रिकाल, उससे विपरीत है। ऐसे अनाकुल आनन्द की प्रतीति—अनुभव करे तो वह चौथे से सातवें तक सम्यग्दर्शन पा सकेगा।

इस नय से कोई भव्य जीव पाप के उदय से खोटी गति में गया,... इस नय से, हों ! वापस। और कोई ऐसा कहे कि नहीं, तब ठीक दुःख ही कारण होगा, ऐसा। इसलिए कहा, इस नय से। कोई जीव पाप के उदय से खोटी गति में गया, और वहाँ जाकर यदि सुलट जावे,... सुलट जाये, यह बात है। तथा सम्यक्त्व पावे, तो वह कुगति भी बहुत श्रेष्ठ है। वह कुगति भी श्रेष्ठ गिनने में आवे कि जिसमें से जन्म-मरण का अन्त आया। समझ में आया ? भक्ति में आता है। कहीं-कहीं नहीं आता ? यह पंचम काल भी मेरे अच्छा कि जिसमें मेरा एकावतारीपना मुझे प्रगट हुआ। ऐसा आता है कहीं भक्ति में। मुझे चौथा काल किस काम का ? कहते हैं, उस समय। मुझे प्रभु ! आपके विरह का काल पंचम में जन्मे, परन्तु हमारे जन्म-मरण के अन्त का काल इस काल में हमको आया। हमारे तो पाँचवाँ काल भी अच्छा वहाँ, ऐसा कहे। आहाहा ! समझ में आया ? भक्ति में आता है, हों ! पूजा में। बहुत भक्ति याद है न किसी जगह वह। समझ में आया इसमें ? भगवान के समीप में जिसने भव का छेद नहीं किया था, वह पाँचवें काल में उसका भान होकर छेद करे। हमारे पाँचवाँ काल भी, प्रभु ! तेरे समीप जैसे बैठे हैं, ले ! आहाहा ! समझ में आया ?

यही श्री योगीन्द्राचार्य ने मूल में कहा है जो पाप जीवों को दुःख प्राप्त कराके... जो पाप जीव को दुःख प्राप्त कराकर फिर शीघ्र ही मोक्षमार्ग में बुद्धि को लगावे,... पाप लगावे, ऐसा शब्द है, परन्तु ऐसा नहीं। 'सुदरइँ णाणिय ताइँ भणंति। जीवहँ दुक्खइँ

जणिवि' पाठ तो ऐसा है न? 'दुःखइँ जणिवि लहु सिवमइँ जाइँ कुणंति।' तो वे अशुभ भी अच्छे हैं। तथा जो अज्ञानी जीव किसी समय अज्ञान तप से देव भी हुआ... लो! अज्ञान तप से दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा की बहुत और मिथ्यादृष्टिपना रखा, ऐसे अज्ञानरूप से आत्मा के भान बिना व्रत, नियम, तपस्यायें कीं। है न? अज्ञान तप से देव भी हुआ और देव से मरके एकेन्द्रिय हुआ... वह देव मरकर एकेन्द्रिय में जाये सीधे। कहा था न पहले। उसमें विचार आया था कि अर र! अरे! मुझे यहाँ जाना पड़ेगा? मनुष्य के गर्भ में नौ महीने? यह इनके गर्भ में जाना पड़ेगा ढोर में? अररर! इसकी अपेक्षा तो एकेन्द्रिय में जाना ठीक है। ऐसे विचार करते हुए मरकर एकेन्द्रिय में जाये। है न इसमें दृष्टान्त दिया है न। दिया है न देखो न! वृक्ष का नहीं आया? कहाँ है? कितने में?

कैसा दृष्टान्त दिया, देखो! देव है न देव? यहाँ से मरकर वापस वनस्पति में जाये, वृक्ष में जाये, देखो! है न? सीधा जाता है एकदम। ऐसे विचार आ जाते हैं उसे। अरे! यह वैभव यह सब इन्द्र के साथ रहा हुआ। इन्द्र तो मोक्षगामी है। वह तो एक भव करके मोक्ष जानेवाला है, यहाँ से निकलकर। देखो, यहाँ कोई सेवा नहीं? मेरी इसमें कोई मदद नहीं? मैं अकेला चला जाऊँगा? हाय...हाय..! कहाँ जाऊँगा? कहे, यहाँ तो सब गये थे बहुत देव, ऐसा कि सब गये हैं मरकर, उसमें तुझे क्या नय है? रोवे, फिर रोवे। वह समाधान। अरे रे! कोई मेरा नहीं कहाँ जायेगा अब तेरे? यहाँ कोई मेरा नहीं तो अब मैं जाऊँगा कहाँ? वह जाने का विचार तिर्यच का और मनुष्य का आवे वहाँ, अररर! नौ महीने माता के गर्भ में ऐसे उल्टे (सिर)। अरे! इसकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, ऐसा विचार आवे, उसमें घोलन होकर एकेन्द्रिय का आयुष्य बँध गया। पृथ्वी, जल और मनुष्य गति। यह वनस्पति में उपजे... फूल-बूल हो न ऊँचा वृक्ष? जाकर उपजे फूल में जाकर। कहीं पृथ्वी हीरा-बीरा हो कहीं उसमें। समझ में आया? कहीं पानी का ढेर हो ऊँचा कहीं अच्छा। उसमें जाकर अवतरे। अब देखो! यहाँ मर गया, देखो। मुकुट सहित है हाथ ऐसे करके, देखो! मानो मुकुटसहित जाता हो। जाये क्या, उसका जीव गया, ऐसा। दिखाव ऐसा दिया है। आहाहा! अभी तो कितनों को पूर्व जन्म का सुने वहाँ उन्हें ऐसा होता है कि आहाहा! हैं पुनर्जन्म है? यह उन्हें बैठता नहीं, ले! यहाँ तो

कहते हैं कि भाई! ऐसे अनन्त अवतार किये, ऐसे अज्ञानी के देव-पद पाना भी वृथा है। है ?

मरके एकेन्द्रिय हुआ तो वह देव-पर्याय पाना किस काम का। मिथ्यादृष्टि पुण्य में धर्म माना, ऐसी क्रियायें (क्रिया)काण्ड करके महीने-महीने के अपवास, बारह-बारह महीने के उपवास, वह उपवास आदि तो शुभभाव पुण्य है। उसमें इसने धर्म माना। शरीर की क्रिया मुझसे होती है। यही आता है, श्रावक में यह आता है, नहीं? श्रावक के व्रत पुण्य उपार्जन का कारण है, ऐसा आता है पाठ में। अपने आ गया था न यह? श्रावक ... में। पुण्य उपार्जन कार्य है, धर्म नहीं। धर्म तो आत्मा का शुद्ध चैतन्यमूर्ति जितना आश्रय लेकर शुद्धि प्रगट हुई उतना। ऐसे व्रत और नियम को धर्म माने, मिथ्यादृष्टि अज्ञान तप से मरकर जाये तब वह देव, मरकर जाये एकेन्द्रिय। वह देवपना भी अच्छा नहीं। आहाहा! गजब!

पाना भी वृथा है। जो कभी ज्ञान के प्रसाद से उत्कृष्ट देव होके... समझ में आया? बहुत काल तक सुख भोग के... अब सम्यग्दृष्टि की बात चलती है। जो आत्मज्ञानसहित, आत्मदृष्टिसहित, आत्म-अनुभवसहित। व्रत, नियम के शुभभाव किये, पुण्यभाव हुआ। दृष्टि में पुण्यभाव आदरणीय नहीं, परन्तु भाव आये बिना रहता नहीं। ऐसा जीव ज्ञान के प्रसाद से उत्कृष्ट देव होके बहुत काल तक सुख भोग के... उस पुण्य के फल। बीच में पुण्य बाँधा श्रावक के व्रतों का। समझ में आया? या मुनि के पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का। उसमें पुण्य बँधे और जितना आत्मा के आश्रय से शुद्धता अन्दर अनुभव प्रगट हुआ, उतना मोक्ष का कारण होता है। ऐसा जीव सुख भोगता है।

देव से मनुष्य होकर मुनिव्रत धारण करके... लो! यह तो देव मरकर वहाँ से मनुष्य हो और अधूरा रहा, उसे वहाँ पूरा करे। आहाहा! समझ में आया? करके मोक्ष को पावे,... वह मिथ्यादृष्टि मरकर एकेन्द्रिय में जाये, वह व्रत और तप का करनेवाला। श्रद्धा का भान नहीं, सम्यग्दर्शन की खबर नहीं, वे सब मरकर नीचे एकेन्द्रिय में जाये और यह जीव मरकर स्वर्ग में से मनुष्य होकर, मुनि होकर और केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष में जाये। कहो, समझ में आया? आहाहा! यह आत्मा के आनन्द और शुद्ध

स्वभाव के आश्रय से जो संवर, निर्जरा प्रगट हुई, उसकी महिमा है। बीच में यह पुण्य बाँधा परन्तु उसे छोड़नेयोग्य है। वह छोड़नेयोग्य है, ऐसा करके यहाँ से जाता है। तो वहाँ भी छोड़नेयोग्य करके जहाँ रहता है। वह वहाँ से अवतरे तो छोड़कर स्वयं स्थिर हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो वह आदरणीय है, हमारे करनेयोग्य है, वही हमारा धर्म है। अर ररर! अज्ञानी को व्रत और नियम और उपवास, वह हमारा धर्म है। वह तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी मुनि कहलाता है। समझ में आया? वह मरकर स्वर्ग में जाये भवनपति आदि कोई... मरकर एकेन्द्रिय में जाये। आहाहा! कहाँ मरकर जाये, देखो तो! आहाहा!

तो उसके समान दूसरा क्या होगा। इस स्थिति से आत्मज्ञान पाकर कुछ पुण्य बाकी रहा, उसके कारण स्वर्ग में जाये, फिर मनुष्य होकर मोक्ष जाये, इसके अतिरिक्त दूसरा क्या? कहते हैं। जो नरक से भी निकलकर कोई भव्य जीव मनुष्य होके महाव्रत धारण करके मुक्ति पावे, तो वह भी अच्छा है। नरक में से निकलकर, सम्यग्दर्शन पाकर, मनुष्य होकर महाव्रत धारण करे, मुक्ति पावे तो वह बहुत अच्छा है। ज्ञानी पुरुष उन पापियों को भी श्रेष्ठ कहते हैं,... है न, 'णाणिय ताँ भणंति' इसका अर्थ करते हैं। जो पाप के प्रभाव से दुःख भोगकर उस दुःख से डर के दुःख के मूलकारण पाप को जान के... ऐसा लेना वापस। दुःख के मूलकारण पाप को जान के उस पाप से उदास होवें, वे प्रशंसा करने योग्य हैं,... उस पाप से अर्थात् समस्त विकार से, ऐसा मूल तो। समझ में आया?

और पापी जीव प्रशंसा के योग्य नहीं हैं,... मिथ्यादृष्टि जीव ऐसे कोई पुण्य करे, व्रतादि के भाव करे, मरकर स्वर्ग में जाये, परन्तु वह प्रशंसा योग्य नहीं है। क्योंकि पापक्रिया हमेशा निन्दनीय है। भेदाभेदरत्नत्रयस्वरूप श्री वीतराग देव के धर्म को जो धारण करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। अभेदरत्नत्रय, भगवान् आत्मा आनन्दस्वरूप अखण्डानन्द ज्ञाता-दृष्टा की दृष्टि से उसका ज्ञान और उसकी रमणता। वह अभेदरत्नत्रय, सच्चा रत्नत्रय, निश्चयरत्नत्रय, अभ्यन्तर रत्नत्रय। उसके साथ व्यवहार सम्यग्दर्शन, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार पंच महाव्रत आदि के परिणाम भेदरत्नत्रय, बाह्य रत्नत्रय, व्यवहाररत्नत्रय। दोनों का प्रमाणज्ञान कराने के लिये दो का (वर्णन) करते हैं। वे श्रेष्ठ हैं। यदि सुखी

धारण करे तो भी ठीक, और दुःखी धारण करे तब भी ठीक। ऐसा नहीं विद्यमान भोग त्यागे, उसका मुनिपना ऊँचा हो और दुःखी त्यागे, उसका मुनिपना हल्का हो, ऐसा कुछ नहीं। कहो, समझ में आया? आता है न, विद्यमान भोग के त्यागी, पत्र में लिखते हैं नहीं तुम्हारे संवत्सरी पर? विद्यमान ऋद्धि के त्यागी। ऐसा सब इसने किया है यहाँ। विद्यमान ऋद्धि न हो तो त्यागे, तो कहे अच्छा नहीं? यही कहते हैं यहाँ। ऋद्धि की महिमा है, ऐसा। जिसे ऋद्धि की महिमा है, उसे तो ऐसा ही लगे न, ऐसा यह कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि गरीब मनुष्य हो, बाँझ हो, रोटियाँ भी मुश्किल-मुश्किल से मिलती हों, वह भी यदि आत्मा का ज्ञान करके यह मुनिव्रत धारण करे (तो) प्रशंसनीय है। समझ में आया? आहाहा! लो!

यदि सुखी धारण करे तो भी ठीक, और दुःखी धारण करे तब भी ठीक। क्योंकि शास्त्र का वचन है, कि कोई महाभाग दुःखी हुए ही धर्म में लवलीन होते हैं। है न? 'आर्ता नरा धर्मपरा भवन्ति' यह शब्द है। 'आर्ता नरा' पीड़ित कर्म से दुःखी हुए जीव यदि धर्म परायण हो जाते हैं तो वे भी अच्छे। समझ में आया? वह तुलसीदास तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कि वह पुण्य किस काम का? ऐसा। 'सुख के माथे शिला पड़ो हमारे, हरि हृदय से जाय, बलिहारी उस दुःख की, पल पल...' यहाँ यह बात भी नहीं यहाँ तो। कहते हैं, चाहे वहाँ अनुकूल सुख हो और छोड़कर दृष्टि करे तो भी अच्छा, वह प्रतिकूल हो, उसे छोड़कर इसका अनुभव करे तो भी वह अच्छा—यहाँ तो बात है। समझ में आया?

कितने दुःख हैं अब इसमें? दोनों इकट्ठे थे, तब चैन था वह चैन अभी नहीं, ऐसा कहते हैं। धूल में भी चैन नहीं था। मुफ्त का मूढ़ होकर माना था इसने। कल्पना की थी। बराबर है या नहीं? यह अभी बराबर। फिर दोनों इकट्ठे हों और ऐसे समान हो तो अपने को समान लगे। लड़के भले कम-ज्यादा हो, दो हो, तीन हो न। परन्तु ऐसे सब समान हो न तो ऐसा लगे। परन्तु यह बात ही मिथ्या भ्रम है, कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नोखा ही है तीनों काल। कब इकट्ठा था? मुफ्त का माने। अब

यह मान्यता के ऊपर वापस दौर चलावे। तुम्हारे ... वह तो पागल हो गया है। भाई! छोटे को पैसे हुए तो बड़ा पागल हो गया। दिमाग घूम गया। फिर और ठिकाने आ गया। हाँ, हाँ। है न जगुभाई! जगुभाई कहाँ गये? उसे चढ़ गया था न भगवानभाई को। भगवानभाई के छोटे भाई को पैसे थोड़े हुए। अपने चर्चा में नहीं आये थे? उन झवेरचन्द जादवजी को लेकर। (संवत्) २००६ के वर्ष। यह उपादान से नहीं, निमित्त से होता है, झवेरचन्द कहे। मैंने कहा केवलज्ञानी है या नहीं? केवलज्ञानी ने देखा है या नहीं इस जगह यह आकार होता है? कि नहीं उस समय होवे तब देखे, तो वह भगवानजी कहे, नहीं, यह हमारे मान्य नहीं। आये थे, उनकी मदद में। प्रेमचन्दभाई के समधी। नहीं, ऐसा मुझे मान्य नहीं, कहा, भगवान तो पहले समय में सब देखते हैं, ऐसा तो माना हो या नहीं? सव्वणुं सव्वदर्शी—नहीं आता? नमोत्थुणं में आता है न? सव्वणुं सव्वदर्शी। हे भगवान! आप तो सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो। यह ... कहे हमारे मान्य नहीं। बस, तब अब तुम करो निर्णय। तब वह कहे, यह बात रहने दो। नहीं यह पहली बात है हमारे। पहली हमारे बात यह है कि सर्वज्ञ एक समय में तीन काल जानते हैं या नहीं? फिर दूसरी बात करो, कहा। बहुत बदलना चाहा। यह छोड़ दो दूसरी बात। दूसरी बात भी करना किस प्रकार? इसके ऊपर तो पूरा आधार है। धर्म का आधार सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ ने तीन काल-तीन लोक एक समय में देखे, उसका निर्णय किये बिना तू इस समय यह निमित्त आया और हुआ, यह निमित्त आवे न हो, यह कहाँ से निर्णय करेगा तू? यह दिक्कत ही यह है न अभी पण्डितों के साथ, बहुतों के साथ। बस, यह निमित्त आवे तो वहाँ हो, वरना नहीं हो। परन्तु किस प्रकार से यह निर्णय किया? केवली तो (एक) समय में तीन काल-तीन लोक जानते हैं।

जिस समय में, जिस द्रव्य की, जो पर्याय, जिस काल में, जिस निमित्त से, जिस संयोग से, जिस क्षेत्र में, जिस प्रकार से है, ऐसे तीन काल की पर्याय ऐसा जानते हैं, ऐसे भगवान ज्ञान में अनियत कैसा था? भगवान के ज्ञान में अनियत और अक्रम... समझ में आया? अकाल मरण और तीन काल में नहीं। ऐसे एक ज्ञान का निर्णय करे तो सब स्पष्टीकरण हो जाये। समझ में आया? यह तब उसने न किया, हों! कहे, नहीं, यह नहीं भाईसाहेब। मैंने कहा, उस बात को निमित्त के काल में होता है, यह सिद्ध करने आये

थे नहीं? हाँ, २०० लोग, बहुत लोग लेकर आये थे। विशाश्रीमाली। विशाश्रीमाली कहलाये न। (संवत्) २००६ के वर्ष में रात्रिचर्चा में। पहली बात कर, कहा, बाद में बात। तो उसमें उपादान और निश्चय और व्यवहार सब स्पष्टीकरण उसमें है।

भगवान ने देखा है, इस द्रव्य की यह पर्याय इस काल में होगी, उपादान से होती है। निमित्त है साथ में। उसमें आया नहीं, नहीं थी वह वस्तु कहाँ रही? जगुभाई! ... प्रमुख वे सब कि यह हमारा अच्छा घर चला गया। लाओ, विरोध करें कि यह बात तो तुम्हारी खोटी है। फिर और अन्तिम दिन में आया। ... है। बापू! ऐसा नहीं चलता, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, उसे छोड़कर तुम बात करो। कौनसी बात ... करनी है तुम्हारे? तुम थे या नहीं? ऐसा? ठीक, लागू पड़ा लगता है। रात्रि में अन्त में। कहो, समझ में आया?

‘आर्ता नरा धर्मपरा भवन्ति’ एक ही सिद्धान्त है ... कोई प्राणी दुःखिया भी, वह आत्मा के स्वरूप को याद करके स्मरण करे तो पा सकता है। ऐसा नहीं कि दुःखी नहीं पावे और सुखी ही पावे। और सुखी पावे तथा दुःखी भी पावे, ऐसा कुछ नहीं। जो आत्मा को संयोग से दृष्टि उठ गयी, उसे अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! यहाँ तो खाने-पीने की सुविधा, सेवा करनेवाले बेचारे कितने तत्परता कितनी राजवाले जैसी स्थिति हो तो चिल्लाहट मचाया करे, लो! मोहनभाई! सच्ची बात है या नहीं? देखो, यह क्यों यहाँ पड़े हों लो! इनका वह पुत्र तो बड़े बँगले में पड़ा है। इनको कहे इनका लड़का वहाँ बड़े बँगले में रहता है, दो करोड़ के। और यहाँ एक साधारण झोंपड़ा है, लो! उसके हिसाब से झोंपड़ा लगे या नहीं? उसे शोख होता है न? पुत्र का सन्तोष वर्तता है अन्दर। यह हमारे मगनभाई नहीं। पैसे की हूँफ वर्तती है, ऐसा कहे। धूल में भी हूँफ नहीं। मुफ्त का मूढ़ होकर हैरान... हैरान हो गया है हैरान। आहाहा! कैसे होगा? भीखाभाई! हाँ, परन्तु हीराभाई जैसा पुत्र जगे। भाई... भाई... भाई... कहकर ऐसा अनुकूल, ऐसा अनुकूल। आहाहा! यह बात पाप की ली, अब लेंगे पुण्य। यह सब पुण्य-पाप की गाथायें हैं सब। १४ कहीं थी न १४?

गाथा - ५७

आगे निदानबन्ध से उपार्जन किये हुए पुण्यकर्म जीव को राज्यादि विभूति देकर नरकादि दुःख उत्पन्न कराते हैं, इसलिए अच्छे नहीं हैं—

१८४) मं पुणु पुण्णइ भल्लाईं णाणिय ताईं भणंति ।

जीवहणं रज्जइं देवि लहु दुक्खहं जाईं जणंति ॥ ५७ ॥

ऐसा था न ? उसमें ऐसा था । ‘जीवहं दुक्खहं जणिवि लहु सिवमइं जाईं कुणंति’ आहाहा !

आचार्य कहते हैं । फिर वे पुण्य भी अच्छे नहीं हैं,... वे पूर्व के पुण्य बाँधे । कोई दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप करके पुण्य बाँधे । उससे उसे राज्य मिला । लोग नहीं कहते कि ‘तपेश्री ते राजेश्री’ और ‘राजेश्री ते नरकेश्री’ । और वह एक नरकेशरी... पीछे कोई आया था न, उसने—भाई ने प्रश्न किया था कि कोई ऐसा कहता है न ... के पास एक ... आया था । साहेब ! हाँ, हाँ, यह बराबर है । क्यों ? कि यदि वह पाप करके ऐसे पुण्य किये हों और वापस उसमें पाप करे, तब तो वह नरक में ही जाये । परन्तु यदि पुण्य के काल में धर्म को याद करे और धर्म का भान करे तो नरकेशरी हो । नरकेश्री की अपेक्षा नरकेशरी । यह बात हुई थी । है, उसमें नहीं एक जगह आती है, जीवन चरित्र में आता है ।

नरकेश्री अर्थात् नरक का श्री हो और वह नरकेशरी हो । पुण्य के काल में भी आत्मा का भान करके धर्म करे, महा सन्त श्रेणिक आदि सन्तों के निकट श्रेणिकराजा धर्म प्राप्त हुए । भरत चक्रवर्ती को कितने पुण्य ? ढेर जिनके पुण्य चौदह ब्रह्माण्ड में बिछाने से बिछे नहीं, इतने पुण्य । छियानवें हजार तो जिन्हें स्त्रियाँ, सोलह हजार देव जिनके । छियानवें करोड़ गाँव और सैनिक । नहीं... नहीं... नहीं... यह नहीं । परन्तु अज्ञानी को वे पुण्य भी अच्छे नहीं हैं, जो जीव को राज देकर शीघ्र ही नरकादि दुःखों को उपजाते हैं,... समझ में आया ? जीव को राज्यादि, राज्यादि शब्द है न ? समुच्चय किया है । पाठ में ‘रज्जइं देवि’ है न तो ‘राज्यानि’ शब्द है न संस्कृत में, ऐसा कर डाला ।

‘राज्यानि’ हुआ न, बहुवचन हुआ। राज तो अरबोंपति सेठिया, कोई सेनापति, कोई महान, समझ में आता है न? वह कहे महान रत्न का भण्डार। राज देकर, सेठाई देकर, अरबोंपति करके, शीघ्र ही नरकादि दुःखों को उपजाते हैं,... सम्यग्दर्शन के भान बिना ऐसे पुण्य किये होते हैं, उस पुण्य के कारण से राज आदि हो। यह कहेंगे बाद में, हों! अभी ५८ में। समझ में आया? वह राज के वैभव भोगे, हम राजा हैं, हम पैसेवाले हैं, हम ऐसे हैं। हमको जानकारी नहीं पैसा कैसे प्राप्त करना इसकी। ऐसा अभिमान हो उसे। सम्यग्दर्शन का भान नहीं, पूर्व में सम्यग्दर्शन किया नहीं। सम्यग्दर्शन बिना कोई पुण्य महाव्रत पालन किये, दया, दान पालन किये, व्रत पालन किये, तपस्यायें कीं। आत्मा का भान तो नहीं कि यह पुण्य के विकल्प से भिन्न आत्मा है। उसका सम्यग्दर्शन किया नहीं और उसके पुण्य के फल में ऐसा स्वर्ग हो। तो कहते हैं, वह वहाँ से मरकर ‘लघु’ हों! ‘लघु’ अर्थात् तुरन्त, शीघ्र। नरकादि दुःखों को उपजाते हैं, ऐसा ज्ञानीपुरुष कहते हैं। ऐसा भगवान सर्वज्ञ और सन्त ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न... देखो! अब कहते हैं। निज शुद्धात्मा पुण्य-पाप के राग विकल्परहित अपना शुद्ध आत्मा। निज शुद्धात्मा वापस, भगवान का आत्मा, ऐसा नहीं। भगवान आत्मा स्मरण करे तो पुण्य हो अतीन्द्रिय आनन्द न हो। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान ऐसे थे, ऐसे थे, ऐसे याद करे तो विकल्प उठता है, पुण्य होता है। निज शुद्धात्मा की भावना। लो! इस भावना की क्या व्याख्या? समझ में आया? देखो! इसमें है। निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न... अपना भगवान आत्मा।

मुमुक्षु : परिणमन।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमन का अर्थ ही भावना है यहाँ। भावना दूसरा क्या? भाव है, उसकी एकाग्रता। त्रिकाल आनन्दस्वरूप है, उसकी एकाग्रता। वापस उससे उत्पन्न हुआ, ऐसा। भावना से उत्पन्न हुआ तो कैसे भाव से उत्पन्न हो? वीतरागस्वभाव का आनन्द कैसे भाव से उत्पन्न हो? विकल्प से, चिन्तन से हो? दो अभिप्राय क्या हो खोटे? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है। उसकी अन्तर में एकाग्रता, उसे

यहाँ भावना कहते हैं। उस एकाग्रता से उत्पन्न हुआ वीतरागी आनन्द, उत्पन्न हुआ वीतरागी आनन्द, ऐसा कहते हैं। अकेली कल्पना से आनन्द होता होगा ?

जो वीतराग परमानन्द अतीन्द्रिय सुख का अनुभव उससे विपरीत... उससे विपरीत। जो देखे, सुने, भोगे... जो देखे हुए, सुने हुए, भोगे हुए, इन्द्रियों के भोग उनकी वांछारूप निदानबन्धपूर्वक... बन्धपूर्वक। समझ में आया ? 'दृष्टश्रुतानुभूतभोगा-कांक्षारूपनिदानबन्धपूर्वकज्ञानतपदानादिना' ज्ञान शब्द पड़ा है, हों ! संस्कृत में। समझ में आया ? क्या कहते हैं ? जिसे भगवान् आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप, उससे उत्पन्न वीतरागी आनन्द, उससे विपरीत, उससे विपरीत देखे हुए, सुने हुए इन्द्रियों के भोग। उनकी वांछा निदानबन्धपूर्वक, वह ज्ञान। वह ज्ञान चाहे जितना करे इसके अतिरिक्त का। शास्त्र का पठन, लौकिक का पठन आदि विद्वत्ता। समझ में आया ? वह ज्ञान और दान, तप आदिक से उपार्जन किये जो पुण्यकर्म हैं,... देखो ! इस ज्ञान से पुण्य... आत्मा के ज्ञान के अतिरिक्त पर ज्ञान से तो अकेला पुण्य का ही उपार्जन है, भाई ने ऐसा कहा। समझ में आया ? आहाहा ! 'ज्ञानतपदानादि' ऐसा है न ? उनसे उपार्जितता की। आत्मज्ञान नहीं, मात्र आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप का अनुभव-सम्यग्दर्शन नहीं, उसका—आत्मा का ज्ञान नहीं। उस आत्मदर्शन और आत्मज्ञान बिना उपार्जित ज्ञान, व्यवहारिक ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान, पठन का ज्ञान, इन्द्रिय का ज्ञान। वह ज्ञान और इच्छा आदि शुभ तप और दान से उपार्जित पुण्य, वह पर के जानपने से उपार्जित पुण्य, शास्त्र का—पर का जानपना, उससे उपार्जित उसे पुण्य। आहाहा !

लौकिक के उपार्जन से ज्ञान हुआ, वकालत आदि तो उपार्जित पाप। धर्मचन्दजी ! धूल में भी कल्याण नहीं होता। वह तो सब लोभिया के लिये बोलते हैं कि हम दवा करते हैं, हमारे पैसा आजीविका भी मिले और फिर मुफ्त में लोक की सेवा करते हैं। यहाँ तो आचार्य कहते हैं। आत्मा के अन्तर ज्ञान से उत्पन्न हुआ सुख। समझे ? उससे विपरीत सब यह। क्या ? देखे हुए, सुने हुए के भोग की इच्छा और निदानबन्धपूर्वक ज्ञान। वह निदान हेतु ज्ञान सब परज्ञान है। उसका निदान करता है कि इस ज्ञान से मुझे लाभ होगा, ऐसा ज्ञान उघाड़ हुआ, मुझे धर्म होगा। समझ में आया ? परसन्मुख के जानपने में निदान आया तो इससे मुझे लाभ होगा, मिथ्यात्व है।

शास्त्र के पठन की विद्वत्ता, उसे हजारों लोगों को समझाने की कला। वह विद्या है, वह अज्ञान है, ऐसा कहते हैं। वह ज्ञान सही, परन्तु उससे उपार्जित क्या? यदि जरा शुभ विकल्प है तो पुण्य उपार्जित करे। समझ में आया? धर्म नहीं। आहाहा! यह माप ही अलग प्रकार के हैं। कितना लाभ होता है, लो! आत्मा का ज्ञान भले न हो, परन्तु लोगों को समझाने की शक्ति हो तो कितना लाभ होगा? नुकसान होगा, उसे मिथ्यात्व का लाभ होगा। और जरा शुभभाव है, इसलिए पुण्य का उपार्जन होगा। कहा न, 'दानादिनायान्युपार्जितानि पुण्यकर्माणि' समझ में आया? निदानबन्धपूर्वक ज्ञान, दान, तप। 'एक' शब्द पड़ा रहा है ज्ञान का अर्थ में। आदि से उपार्जन किये जो पुण्य कर्म। देखो! यह दान और तप, वह उपवास करे, ऊनोदरी करे, रसपरित्याग करे, कायक्लेश करे, महीने-महीने के उपवास करे, परन्तु आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन बिना का वह ज्ञान बाहर के और बाहर की श्रद्धा और बाहर का आचरण से पुण्य बाँधे। समझ में आया?

मुमुक्षु : उसके फल में क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न फल में अभी कहेंगे न। जो पुण्यकर्म हैं, वे हेय हैं। क्योंकि वे निदानबन्ध से उपार्जन किये पुण्यकर्म जीव को दूसरे भव में राजसम्पदा देते हैं। राज देंगे। ऐसे पुण्य से उसे राज मिलेगा, सेठाई मिलेगी कोई अरबोंपति, करोड़पति की धूल की। समझ में आया? उसे केवलज्ञान की लक्ष्मी नहीं मिलेगी।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व का ज्ञान इनकार करे मुख भरा जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख भरा जाता है। इसलिए अज्ञानी को कहते हैं। कि ज्ञान अर्थात् शास्त्र का या अकेला ज्ञान आत्मा का ज्ञान जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं, उसे तो यह बाहर में ही हेतु बँध गया है कि इस ज्ञान से मेरी मुक्ति होगी। बाहर का जानपना हुआ और वह मेरा धर्म होगा। इस दान से मुझे कल्याण होगा, यह तप करते हैं, उसमें से मुझे निर्जरा होगी। मूढ़ जीव है। पुण्य उपार्जित करे। समझ में आया?

पुण्यकर्म जीव को दूसरे भव में राजसम्पदा देते हैं। लो! समझ में आया? उस राज्यविभूति को अज्ञानी जीव पाकर विषयभोगों को छोड़ नहीं सकता,... कारण कि

उसकी दृष्टि पुण्य के आदर में थी। पूर्व में पुण्य किये थे दान, ज्ञान, तप में उसमें पुण्यभाव विकल्प का आदरभाव था। उसके फल के अवसर पर भी उसे छोड़ना चाहेगा नहीं। गजब बात! आहाहा! यह बात कठिन पड़े न लोगों को। ऐई! हो, हो, बस। यह मुनि कहते हैं, वह बात ऐसी नहीं... ऐसी नहीं... ऐसी नहीं... दूसरा अर्थ करते हैं। परन्तु इस अर्थ को वाँच न, तू समझ तो सही। समझ में आया ?।

निदानबन्ध किया था न, ऐसा वापस कहते हैं। वह निदानबन्ध ही मिथ्यात्व ही निदान है। निःशल्योव्रति। व्रति कब होता है ? मिथ्यादर्शन, निदान और माया शल्य न हो, तब यहाँ व्रत होते हैं। परन्तु जिसे अभी मिथ्यादर्शन, पुण्य की क्रिया, राग की क्रिया, देह की क्रिया मुझसे धर्म होता है, मुझे लाभ होता है और दूसरे को लाभ होता है। वह तो मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व में निदान ही है पूरा। आहाहा! समझ में आया ? इससे तत्त्वार्थसूत्र में भगवान उमास्वामी कहते हैं, निःशल्योव्रति—जिसे मिथ्यादर्शन शल्य गया, पुण्य परिणाम (का) आदर रहा नहीं, देह की क्रिया को अपना मानता नहीं, पर की दया मैं पाल सकता नहीं, पर को मैं मार सकता नहीं। मेरे ज्ञान से जितनी विपरीतता—विभाव परिणाम उत्पन्न हो, वे सब बन्ध के कारण हैं। ऐसा जानता है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान में पुण्य जो बँध जाये, वह स्वर्ग में जाये, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जाये। यह तो स्वयं पुण्य का आदर मानता है। समझ में आया ?

महासंसरण... ऐसा कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं। पुण्य और पुण्य के फल और पुण्य का बन्धन। संसर्ग करना नहीं, मन से अच्छा मानना नहीं। पुण्य-पाप अधिकार में (ऐसा कहा है)। परन्तु भारी मिठास। पुण्य की मिठास ने जगत को बड़े मूढ़ मानधाता को गिराया। आहाहा! वह राज्यविभूति को अज्ञानी जीव पाकर विषय भोगों को छोड़ नहीं सकता,... वह विषय में एकाकार हो जायेगा। क्योंकि सम्यग्दर्शन बिना के उपार्जित पाप-पुण्य के फल में एकाकार होगा। पर में एकाकार था, ऐसे पर में एकाकार होगा। उससे नरकादिक के दुःख पाता है, रावण की तरह... ठीक! दृष्टान्त दिया। समझ में आया ?

‘रावणादिवत्’ देखो! टीका में है। रावणादि की भाँति। कितना रावण का बाहर

का साधन! ओहोहो! जानपना भी कितना! राज का उघाड़, इतनी विद्याओं का ज्ञान, बहत्तर कलाओं का ज्ञान। पूर्व के मिथ्यादर्शन में बाँधे हुए पुण्य में ऐसे मिले। रामचन्द्रजी लेने आये। विभीषण ने इनकार किया, बाँधव! मैं तुमको अच्छी शिक्षा कहता हूँ। यह रामचन्द्रजी हैं, बलदेव पुरुष हैं, हों! यह तुमको मारेंगे। शास्त्र ऐसा कहता है। बलदेव वासुदेव जन्मे, वे प्रतिवासुदेव को मारते हैं। तुम सीताजी को छोड़ दो। यह तुमने घर में बाधिन ली है। मार डालेंगे यह। घर का धनी भाई को छोड़कर ऐसा बोलता है? वे आये हैं, रामचन्द्रजी आये हैं, वे पुरुषोत्तम पुरुष हैं। वे पीछे नहीं हटेंगे। आहाहा! समझ में आया?

पश्चात् रावण विद्या साधने गया, भगवान के निकट बैठा। दूसरे राजाओं को हुकम किया। रे अन्नदाता! भगवान रामचन्द्रजी प्रभु! वह विद्या साधेगा तो सीता नहीं आयेंगी, हों! इतनी विद्या वह साधता है। वह विद्या साधने बैठा। अब उसमें यदि कुछ विघ्न करें, आप हुकम करो तो। राम कहते हैं कि एक सीता क्या, हजार सीता न आवे, परन्तु हम अन्याय, अनीति नहीं करेंगे। आहाहा! हम सीता को लेने आये हैं, वह सीता को लेने के लिये यह विद्या साध रहा है। उसकी विद्या में विघ्न डालना, यह हमारा काम नहीं, हों! आहाहा! पुरुषोत्तम पुरुष! परन्तु वह सीता नहीं मिलेगी। वह ऐसी विद्या साधता है। भगवान के निकट बैठा है विद्या साधने के लिये प्रतिमा के निकट (बैठा है)। जरा एक विघ्न करें तो। हमारा काम नहीं, भाई! आहाहा! समझ में आया? अब सिर तो काटने आये हैं। ऐसे अनीति... काम नहीं होता, हों! अवसर आया तब हुकम कर दो एकदम छोड़ चक्र। ... छोड़ चक्र। समाप्त हो गया।

कहते हैं कि रावण नीचे नरक में गया, पूर्व का पुण्य देखो तो ओहोहो! वह तो कौन अब राम। दशरथ का पुत्र कौन है? ऐसा ... देव इतने, राजा इतने। मार डाले, कहते हैं, अज्ञान से बाँधे हुए पुण्य। नरक में ले गये, इसलिए वह पुण्य भी अच्छा नहीं और दुःख में आत्मा का भान हो, वह दुःख भी अच्छा है। यह बात है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल ५, बुधवार, दिनांक - २६-०१-१९६६

गाथा - ५७ से ५९, प्रवचन - १०९

.... यह आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध है, इसके भान बिना अज्ञानभाव से जो पुण्यभाव होता है, उसके फलरूप से उसे राज आदि मिले, परन्तु उसका राज में अभिमान आदि करके नरकगति को पावे। **इसलिए अज्ञानियों के पुण्य-कर्म (हेय) भी होता है,...** ऐसा चाहिए। है वहाँ? रावण, के बाद है न दृष्टान्त। रावण की भाँति। है न इस तरह? **इसलिए अज्ञानियों के पुण्य-कर्म हेय है,...** ऐसा चाहिए। पाठ ऐसा है। क्यों? किस कारण से? कि आत्मा शुद्ध सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ने यह आत्मा उसे कहा और देखा और है कि शुद्ध आनन्दकन्द ज्ञायकमूर्ति है। ऐसी जिसे अन्तर दृष्टि हुई नहीं और ऐसी अन्तर दृष्टि के सम्यग्दर्शन बिना अकेले दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभपरिणाम करता है, वह अज्ञानी के पुण्य उसे वैभव देते हैं। यह धूल मिलती है। यह सेठाई, पैसा, राज। परन्तु उसमें अभिमान करके नरकगति में जाये, इसलिए उस अज्ञानी का पुण्य अच्छा नहीं है। अज्ञानी का पुण्य हेय है। समझ में आया?

और जो निदानबन्ध रहित ज्ञानी... ऐसा। अब इसमें से फेरफार करते हैं। जिसे निदान नहीं, मिथ्यात्व नहीं। आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप के आनन्द के बहुमानपूर्वक आत्मा के शुद्ध स्वभाव के हेतुपूर्वक उसे पुण्यभाव हुए हैं, कोई दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभभाव। ऐसे ज्ञानी पुरुष हैं, वे दूसरे भव में राज्यादि भोगों को पाते हैं,... वह उस पुण्य से दूसरे भव में भी राज, बलदेव आदि उत्तम पुरुषरूप से होता है। **तो भी भोगों को छोड़कर जिनराज की दीक्षा धारण करते हैं।** यह दो फेरफार कहे। समझ में आया? परदेश में तो ऐसा कुछ होता नहीं, वहाँ तो गप्प ही गप्प (मारे)। क्यों जयन्तीभाई!

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने यह आत्मा उसे कहा... शरीर, कर्म

जड़ है, वह तो पर है। अन्दर पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे आस्रवतत्त्व बन्ध के कारणरूप भाव है। उनसे रहित जो आत्मा है, वह आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु चैतन्यस्वरूप है। उसकी जिसे अन्तर दृष्टि (हुई है) कि मैं आत्मा हूँ, शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ, ज्ञाता हूँ और दृष्टा हूँ। ऐसा सम्यक् भान अन्दर में हुआ है। उसे अभी अस्थिरता में शुभभाव दया, दान, भक्ति, व्रत, दान, पूजा का भाव होता है। परन्तु उस पुण्य के फल में भविष्य में कोई स्वर्ग में जायेगा, वहाँ भी इस पुण्य के फल का आदर नहीं करेगा। वहाँ से निकलकर राजपद (प्राप्त करके मोक्ष जायेगा)। उसमें रावण का दृष्टान्त दिया था। समझ में आया? यहाँ आया न? बलभद्र का दृष्टान्त दिया है कहीं। वह ऊर्ध्वगामी, देखो! क्योंकि उसके सामने-सामने दिया है। ऊर्ध्वगामी बलदेव आदि की तरह। ऐसा दिया है। यह रामचन्द्रजी आदि सब बलदेव थे। उन बलदेव पुरुषों को पूर्व में आत्मज्ञानसहित पुण्य हुए। उस पुण्य के फल में स्वर्ग गये और वहाँ से यहाँ बलदेव हुए। परन्तु बलदेव ऊर्ध्वगामी होते हैं। उन्हें नरकगति नहीं होती, तिर्यचगति नहीं होती। वे देव में जाते हैं, वहाँ से मनुष्य होते हैं और कोई बलदेव उसी भव में रामचन्द्रजी, जो लक्ष्मणजी के भाई, वे तो उस भव में मोक्ष गये। कृष्ण के भाई बलदेव, वे स्वर्ग में गये, परन्तु उन्हें गति ऊर्ध्व की ही होती है।

वासुदेव हों, उन्होंने आत्मा का भान किया हुआ हो, पश्चात् पुण्य हुआ, निदान किया। उसके कारण से राज आदि मिले, परन्तु अन्त में निचली गति का बन्ध उनको होता है। बलदेव आदि पुरुष या तीर्थकर आदि पुरुषों ने पूर्व भव में आत्मा का आराधन किया है। निर्मल आत्मा वीतरागी कन्द शुद्धस्वरूप है, उसका सेवन किया है। बाकी पुण्य हुए अन्दर अभी राग मन्द है और तीव्र वीतरागता हुई नहीं। उस पुण्य के फल में स्वर्ग में भी इन्द्र आदि होते हैं, वहाँ से मरकर बलदेव आदि बड़े राजा, महाराजा या तीर्थकर होते हैं।

तो भी भोगों को छोड़कर जिनराज की दीक्षा... उस समय भोग का काल अमुक रहे, उसे छोड़कर मुनिदीक्षा ले लेवे। वे (वासुदेव) जाये नरक में, वहाँ यह ले लेवे मुनिदीक्षा। समझ में आया? समझ में आता है या नहीं इसमें? लड़कों को इसमें

समझ में आये ऐसा है। ऐई! सूर्यकान्त! समझ में आये ऐसा है या नहीं? हाँ करता है। यह आत्मा है न आत्मा? इसमें सीधी बात है। इसमें तुम्हारे पहाड़े का नहीं आता एकड़े एक और बिगड़े दो और तिगड़े तीन? आत्मा है न अन्दर, वह वस्तु है या अवस्तु? वस्तु। वह अरूपी है, इसलिए अवस्तु नहीं? अरूपी है, तथापि वह वस्तु है। यह (पुद्गल) रूपी है और जैसे वस्तु है, वैसे भगवान आत्मा अरूपी है, परन्तु वस्तु है। कहीं अरूपी अर्थात् अवस्तु है और अभाव है, ऐसा नहीं।

भगवान आत्मा शरीर से भिन्न महान चैतन्य पदार्थ अरूपी, आनन्दघनस्वरूप है। अकेला ज्ञान का सूर्य ज्ञानपुंज आत्मा है। ऐसे आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान किये बिना जिसने अकेले दया, दान, व्रत, भक्ति के पुण्य भाव किये। उस अज्ञानी के पुण्य के कारण से कदाचित् देवलोक में जाये, वहाँ गृद्धि हो और वहाँ से मरकर मिथ्यादृष्टि कदाचित् एकेन्द्रिय में भी चला जाये। और कोई पुण्य बाकी विशेष रहे हों तो स्वर्ग में से निकलकर यह राजा होता है। यह राजा होकर राज्य में गृद्धि होकर मरकर नरक में जाता है। कहो, सुनाई देता है या नहीं? मैंने तो सुनाई देता है?—ऐसा कहा। समझ में आया, बाद में। कहो, समझ में आया इसमें?

और धर्मी जीव को पुण्य हो, उसके पुण्य का आदर नहीं अन्दर। ज्ञानस्वरूप आनन्द हूँ, मेरी जाति ही आनन्द की है। मैं तो अकेला चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... ज्ञायकभाव। ऐसे अन्तर दृष्टि के अनुभव में वह स्थिर नहीं रह सकता और वीतरागता पूर्ण प्रगट हुई नहीं, इसलिए बीच में ऐसा व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, विनय, देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान, ऐसा पुण्यभाव आता है। उस पुण्य के भाव में मरकर स्वर्ग में जाता है, तथापि उस स्वर्ग के वैभव का अन्तर दृष्टि में आदर नहीं होता। समझ में आया?

यह मुनि पंचम काल के स्वर्ग में ही जाते हैं परन्तु इनके लेख देखो! पद्मनन्दिपंचविंशति (पद्मनन्दि आचार्यदेव) अन्त में यह लेख लिखते हैं। अरे! इस पुण्य के (फल में) स्वर्ग में जायेंगे, परन्तु यह पुण्य भी हमारे चाहिए नहीं, वह स्वर्ग के फल हमको चाहिए नहीं, ऐसा करके निषेध करके यहाँ से जाते हैं। आलोचना में

आया था न, भाई! आलोचना नहीं? पद्मनन्दि (कृत)। सन्तों की शैली ही ऐसी है। पूरा करे तब जानते हैं, ख्याल तो है कि हम आत्मा के आराधक भले हों, परन्तु हमारी गति तो इस भव में पंचम काल में जन्मे हैं, इसलिए स्वर्ग में जायेंगे। दूसरी कोई हमारी गति नहीं। इसलिए पहले से निषेध करते जाते हैं। अरे! यह नहीं नाथ! हमारे तीन लोक के राज हो तो भी हमारे चाहिए नहीं। हमारे तो आत्मा के आनन्द का केवलज्ञान का राज चाहिए। समझ में आया? ऐसी (भावना) भाते-भाते सेवन में निर्विकल्प स्वरूप में स्थिर होने से विकल्प-राग रह जाता है और ज्ञाता-दृष्टा में देह छूटने पर स्वर्ग में जाते हैं। समझ में आया? वहाँ से, कहते हैं कि राजा हो, अरबोंपति सेठिया हो, परन्तु सम्यग्दर्शन का आराधन करके अवतरित हुए हैं, इसलिए भोगों को छोड़ देंगे। वे आजीवन भोग में पड़े नहीं रहेंगे, वे कीचड़ में नहीं रहेंगे। अरे! यह नहीं, हम अवतरित हुए हैं पूर्ण करने के लिये। हमारा यह अवतार भव के अन्त का—अन्तिम अवतार है। हम आत्मा की पूर्ण दशा करने के लिये अवतरित हुए हैं। हम इस भोग में पड़ने के लिये नहीं। ऐसा वैराग्य करके, छोड़कर, वीतराग ने कही हुई—परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ ने कही हुई दीक्षा धारण करेंगे। समझ में आया?

धर्म को सेवनकर ऊर्ध्वगतिगामी बलदेव आदिक की तरह होते हैं। लो! पाठ में है न यह। 'ऊर्ध्वगतिगामिनो भवन्ति बलदेवादिवदिति', 'बलदेवादिवदिति' ऐसा है। उसको रावण को वत् कहा था। इसमें बलदेव को। उदास... उदास... उदास... यह नहीं। समझ में आया? तीर्थकरदेव जैसे तो तीन ज्ञान लेकर ही आते हैं। पूर्व के पुण्य से तीर्थकर (पद) बँधा है। तीर्थकररूप से अवतरित हो, इन्द्र जिनकी सेवा पहले से करे। अन्तर में उदास है, यह नहीं... यह नहीं। बालक हो तो भी शान्त हुए दिखते हैं। आहाहा! यह चार, छह महीने का बालक दिखाई दे न, अन्दर में उपशमरस के ढाले ढल गये हैं। समझ में आया? वे सर्वज्ञ होने के योग्य, यह अन्तिम चरमशरीरी हैं। शान्त... शान्त... उछलते उसे मानो वृद्धावस्था जैसे स्थिर पहले से हों ऐसे। बाल की चेष्टा जैसी कुतुहलता, युवक की चेष्टा जैसी विकृतता उन्हें पहले से नहीं होती। आहाहा! क्योंकि सम्यग्दर्शन क्षायिक आदि लेकर आये हैं और या कोई क्षायिक इस

भव में होनेवाला है। क्षयोपशम लेकर भी कोई तीर्थकर आते हैं। उन्हें, यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... समझ में आया ?

लो ! हनुमानजी। हनुमानजी का है न वहाँ ? महाकामदेव पुरुष हैं। सामने है हनुमान। राजकुमार है, हों ! सुन्दर। ढाई द्वीप में उनके जैसा सुन्दर रूप नहीं। इतना रूप। वे बन्दर कहते हैं, ऐसे हनुमान नहीं थे। उनकी कुल की ध्वजा में बन्दर का चिह्न था। इसलिए उन्हें वानर कुल कहा जाता था। वानर कुल नहीं था। थे तो महाराजा के कुँवर। उनके स्वरूप की सुन्दरता तो ढाई द्वीप में नहीं, ऐसा कामदेव का स्वरूप। उनके जैसे यह दूसरे हों तो भी। एक ओर ऐसे बैठे थे और तारा ऐसे खिरता है। है न वहाँ देखो ! तारा खिरता है तारा। देखो, ऊपर से है न ? तारा खिरता है। दिखता है ? तुमको दिखता है ? धुंधला है। वह दिखता है सफेद खिरता है। वह तारा ऐसा सफेद देखो ! है न इन दो के बीच ? यह उस पर्वत के ऊपर देखो सफेद तारा दिखता है। खिरता है, ऐसा दिखता है अन्दर। आहाहा ! वह घड़ीक में प्रकाश में यह खिरकर कहाँ बिखर गया ? वैराग्य हो जाता है। हजारों रानियाँ। कामदेव पुरुष, हों ! उदास-उदास छोड़ देते हैं। केवलज्ञान पाते हैं, लो ! समझ में आया ? ऐसे पुरुष सम्यग्दर्शन, ज्ञान का आराधन करके अवतरित हुए। उनका अवतार तो भोग छोड़कर पूर्ण अनुभव करने के लिये है। अनुभूति की पूर्ण दशा प्रगट करने का वह अवतार है। आहाहा !

ऐसा दूसरी जगह भी कहा है कि भवान्तर में निदानबन्ध नहीं करते... निदानबन्ध नहीं अर्थात् कि पुण्य आदि भाव में हेतु पुण्य का नहीं। आत्मा का हेतु है, मैं तो ज्ञानानन्द, मुझे साधना है पूर्णानन्द का स्वरूप। समझ में आया ? ऐसे पुरुष ऊर्ध्वगामी हैं। देखो न, ऊर्ध्वगामी कहा न यह ? रामचन्द्रजी थे न छोटे। तो उन्हें ऐसे ही खेल आते थे। एक बार दृष्टान्त नहीं दिया था चन्द्रमा का ? झरोखे में बैठे थे झरोखे में, दो वर्ष की छोटी उम्र। ऐसे, दशरथ कहते हैं, दीवानजी ! यह क्या है रामचन्द्रजी ऐसा क्यों करते हैं ? अन्नदाता ! मैं दीवानपना करूँ या बालक को खिलाऊँ ? ऐसा क्या करता है ? क्या है इतनी तो चेष्टा बताओ। क्या करते हैं ये ? ठीक, अच्छा। ऐसे देखते हैं चन्द्र को। ऐसे ऊपर से नीचे उतारने का। साहेब ! इन्हें खेल ऐसा आया है कि यह चन्द्रमा नीचे उतारना

है। उतार दो। डालो एक दर्पण। हाथ में दर्पण दिया दीवान ने। ऐसे देखे (तो) यहाँ चन्द्र है। डाला जेब में। उतर गया जेब में चन्द्र। समझ में आया? इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को सिद्ध पद लेने के लिये ऐसे लहर आती है अन्दर से, कहते हैं। ऊपर से सिद्ध उतरो। नहीं, नहीं हम अब सिद्ध में आयेंगे। यह सब भावना भी ऐसी थी। छोटी उम्र से समकित लेकर आराधक हुए हैं न आराधक। उस भव में जिन्हें मोक्ष जाना है। केवलज्ञान प्राप्त करना है। इस देह के रजकण अन्तिम हैं। बाद का एक रजकण भी है नहीं। ओहोहो! इतना पुण्य उनका कि ऐसे बलदेव जिन्हें लक्ष्मण ऐसे चरण छुए। तात ऐसे नीचे नमकर। वरना पदवी उनकी बड़ी है, लक्ष्मणजी की। पदवी बड़ी और इनकी आधी है।

जंगल में गये तो चलकर चार-चार कोस, आठ-आठ कोस जाये। सीताजी और रामचन्द्रजी दोनों साथ में, लक्ष्मणजी स्वयं छोटे, पदवी से बड़े और मण, दो मण फूल ले आवे जंगल में से। फूल की शैय्या बना दे, शैय्या कर दे। प्रभु! समझ में आया? ऐसा। परन्तु अन्दर में आदर नहीं। ऐसा एक लक्ष्मण जैसा भी मेरी सेवा करता है ऐसी। वह सब पुण्य के ठाठ। मेरी चीज़ की सेवा तो मैं करता हूँ। समझ में आया? ऐसे वन में गये थे न जब वनवास हुआ था बारह वर्ष। लक्ष्मणजी थे। चौथा मनुष्य कहाँ इकट्ठा था कोई? यह संयोग इस स्थिति में हो। पूर्व का योग ऐसा हो तो उस समय हो! परन्तु हम तो जहाँ हैं, वहाँ हैं। इन अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों को हम छूते नहीं, उसे स्पर्शते नहीं। आहाहा! ऐसा जब अवसर आया (तो) छोड़कर चले गये, निकल गये। इसलिए उनका दृष्टान्त दिया है। ऊर्ध्वगामी बलदेव आदि। वे क्षायिक समकिती अथवा समकिती जीव अकेले ऊर्ध्वगामी ही होते हैं।

कि भवान्तर में निदानबन्ध नहीं करते हुए जो महामुनि हैं, वे महान तपकर स्वर्गलोक जाते हैं। वहाँ से चयकर बलभद्र होते हैं। लो! सम्यग्दर्शन आदि होने से, आत्मा का अनुभव हुआ, आनन्दमूर्ति आत्मा, उस अतीन्द्रिय का स्वाद आया, उसमें इकट्ठा पुण्य आया, उसका स्वाद आया आकुलता का। इसलिए आदर रहा नहीं। आहाहा! इस अमृत के स्वाद के समक्ष यह क्या? समझ में आया? जिसने दूधपाक का स्वाद चखा, उसे पुरानी लाल ज्वार के छिलके की रोटियाँ फोक लगे। पुरानी लाल ज्वार

के छिलके। सफेद ज्वार के छिलके में कुछ कस होता है। समझ में आया ? लाल ज्वार होती है, लाल होती है। हमारे तो सब अनुभव हो गया है। आहाहा ! हमारे तो अनुभव हो गया सब। ज्वार की रोटियाँ भी आयी ऐसी। विठ्ठलगढ़ में एक बार गये थे। लाल ज्वार की रोटियाँ। गरीब मनुष्य। गरीब, बहुत गरीब। विठ्ठलगढ़ है विरमगाम के पास। लाल छिलके, हों ! ऐसे गरीब। रोटियाँ बनावे बेचारे बहुत गरीब मनुष्य। वह आ गयी रोटियाँ। मैं और जीवणलालजी दो ही थे न तब। वे ऐसा कहते हैं कि जिसने दूधपाक का स्वाद चखा, उसे ज्वार के छिलके का प्रमोद आता होगा ? गुड़ की भाँति ऐसे गरीब ऐसे तड़फे ऐसे तड़फता होगा ? इसी प्रकार आत्मा धर्मी को तो ओहोहो ! सम्यग्दर्शन के स्वाद में आत्मा के अतीन्द्रिय का आनन्द का स्वाद आया हैं। आहाहा ! उसमें यह पुण्यभाव आवे सही, परन्तु उस स्वाद का आदर नहीं। आहाहा ! वह भले स्वर्ग में जाये, परन्तु उसके फल का आदर नहीं। वहाँ से मरकर मोक्ष जायेगा।

बलभद्र होते हैं। वे देवों से अधिक सुख भोगकर राज्य का त्याग करके... देखो ! बलदेव आदि को सुख का क्या ? तीर्थकर को सुख की सामग्री उनका आहार, पानी और वस्त्र, गहने देवलोक में से आवे तीर्थकर को। यह नहीं, यह नहीं। हमारे आनन्द की खान अधूरी रह गयी। अरे ! हमारा अनुभव अधूरा रह गया और यह बीच में पुण्य बँध गया। समझ में आया ? उस पुण्यबन्धन में तीर्थकर की प्रकृति का फल आया। हमारे यह चाहिए नहीं। हमारे तो आत्मराज चाहिए। **त्याग करके मुनिव्रत को धारणकर या तो केवलज्ञान पाके मोक्ष को ही पधारते हैं, या बड़ी ऋद्धि के धारी देव होते हैं,...** बलभद्र आदि होवे न, कोई केवल (ज्ञान) पावे, कोई देव (हो)। तीर्थकर तो उस भव में ही मोक्ष जाये। बलभद्र की दो रीति है। बलभद्र की दो रीति है। कोई बलदेव मोक्ष जाये और कोई बलदेव स्वर्ग में जाये, ऐसी बात है। पूर्व का पुण्यबल हो। यह श्रीकृष्ण के भाई बलदेव थे, वे स्वर्ग में गये पाँचवें देवलोक में। और यह लक्ष्मण के भाई रामचन्द्र थे, वे मोक्ष पधारे। समझ में आया ? परन्तु उन्हें दूसरी गति नहीं होती। मनुष्य और देव दो के अतिरिक्त गति नहीं मिलती। आत्मा का भान होने के पश्चात् नरक और तिर्यच के न दावा। न दावा, समझ में आया ? क्या ? दो गति बन्द हो गयी। आत्मा सम्यक् चैतन्य शुद्ध आनन्दकन्द है, ऐसा भान हुआ, पुण्य-पाप का आदर नहीं,

वहाँ उन्हें दो गति हो सकती ही नहीं। एक गति मनुष्य और एक गति देव, दो रहे। किसी को एक, दो भव हो, किसी को पन्द्रह भव विशेष हो (तो)। समझ में आया? या बड़ी ऋद्धि के धारी देव होते हैं, फिर मनुष्य होकर मोक्ष को पाते हैं। वे भी भले, कहते हैं, देवलोक में फिर से जाये बलदेव आदि परन्तु फिर से वापस मनुष्य होकर केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष जाये।

★ ★ ★

गाथा - ५८

ऐसा कहते हैं कि निर्मल सम्यक्त्वधारी जीवों का मरण भी सुखकारी है, उनका मरना अच्छा है, और सम्यक्त्व के बिना पुण्य का उदय भी अच्छा नहीं है। आहाहा!

१८५) वर णिय-दंसण-अहिमुहउ मरणु वि जीव लहेसि।

मा णिय-दंसण-विम्महउ पुण्णु वि जीव करेसि ॥५८॥

हे जीव (आत्मा)! जो (भगवान) अपने सम्यग्दर्शन के सन्मुख होकर... सम्यग्दर्शन सन्मुख का अर्थ सम्यग्दर्शन प्राप्त है। समझ में आया? अपना निजानन्दस्वभाव भगवान के सन्मुख की दृष्टि होकर, कहते हैं कि हे जीव! 'मरणपि' पावे, देह छूट जाये तो भी भला है। आत्मा की अन्तर अनुभव की डोर तो हाथ में लेकर गये हैं। समझ में आया? भगवान ज्ञानानन्द प्रभु पूर्ण चैतन्य रत्नाकर प्रभु की अनुभव की डोरी तो हाथ में ली है। भले देह छूट जाये। तो भी कहते हैं कि उसका मरण भी भला है। समझ में आया? आहाहा!

परन्तु हे जीव! अपने सम्यग्दर्शन से विमुख हुआ पुण्य भी करे तो अच्छा नहीं। शुद्धात्मा ज्ञायक चिदानन्द की अन्तर अनुभव दृष्टि बिना अकेली प्रवृत्ति शुभभाव की भले पुण्य की करे और जीवे तो भी अच्छा नहीं। 'मा वरं... मा वरं...' अच्छा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- निर्दोष निज परमात्मा की अनुभूति की रुचिरूप... सम्यग्दर्शन की

बात करते हैं, हों! निर्दोष निज परमात्मा। निज अर्थात् अपना परम स्वरूप भगवान् आत्मा कि जो पुण्य-पाप के रागरहित तत्त्व-पदार्थ है। उसकी अनुभूति की रुचिररूप तीन गुप्तिमयी जो निश्चयचारित्र। अर्थात् कि उस समय अनुभव में मन और वाणी, देह के विकल्प हैं नहीं। ऐसा लेना। समझ में आया? रागरहित आचरण साथ में हुआ। वीतराग निश्चय सम्यग्दर्शन। उसके सन्मुख हुआ। हे जीव, जो तू मरण भी पावे, तो दोष नहीं,... दोष नहीं। हाथ में डोरी लेकर गया है। वहाँ से निकलकर केवलज्ञान प्राप्त करने को पात्र हुआ है। यह किसकी महिमा वर्णन की जाती है?

यह परमात्मप्रकाश है। परमात्मस्वरूप आत्मा है। उसके अनुभव की दृष्टि हुई, पश्चात् देह छूट जाये तो भी अच्छा है। ऐसे आत्मा के अनुभव की दृष्टि बिना देह रहे और जीवित दुनिया में वैभव में दिखाई दे, वह जीवन अच्छा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? समकित बिना मिथ्यात्व अवस्था। देखो, ऐसा ही लिया सामने, भाई! ऐसा ही लिया है, हों, उसमें मूल में ... परन्तु यहाँ सामने लिया है न अपने तो। ऐसा ही होता है। और उस सम्यक्त्व के बिना मिथ्यात्व अवस्था में... आत्मा आनन्दमूर्ति ज्ञाता-दृष्टा के भान बिना अकेले दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम पुण्य किये। वह पुण्य भी करे तो अच्छा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

जो सम्यक्त्वरहित मिथ्यादृष्टि जीव पुण्यसहित हैं, तो भी पापी ही कहे हैं। शास्त्र में तो आत्मदर्शन बिना के पुण्य करनेवाले जीव को पापी कहा है। समझ में आया? पूर्व के पुण्य का फल हो, वह तो ठीक, परन्तु वर्तमान उसे पुण्य के भाव हो तो भी शुद्धस्वरूप की दृष्टि का भान नहीं, ऐसे मिथ्यादृष्टि को शास्त्र में पापी ही वर्णन किया है। समझ में आया? तो भी पापी ही कहे हैं। अशुभ उपयोग ही कहा है उसे। मिथ्यादृष्टि को अशुभ उपयोग कहा है। शुभ है, तथापि दृष्टि खोटी है न, इस अपेक्षा से उसे मिथ्यात्व के कारण, मिथ्यात्व ही बड़ा अशुभ है। आहाहा! समझ में आया? यह सब विवाद अभी, लो! यह बड़ा विवाद वे करते हैं इसमें। बड़ा लेख है। वह दृष्टान्त दिया था न तब, भाई! यह तुम पुण्य का इनकार करते हो, परन्तु यह शरीर यहाँ हम आवें तो पुण्य हो इकट्ठा तो धर्म सुनाई दे। ऐसे देखो शरीर को यहाँ लायें, शरीर यहाँ

अपने को लावे। वह तब प्रश्न हुआ था न। रखा था। भाई! आत्मा की इच्छा हुई, इसलिए शरीर का यहाँ काम हुआ, ऐसा भी नहीं। शरीर यहाँ आनेवाला था, इसलिए इच्छा हुई, ऐसा भी नहीं। यह रखा है, यह रखा है यहाँ। देखो, यह जैनतत्त्व की व्यवस्था! ऐई! हिम्मतभाई!

मुमुक्षु : वह दूसरे को काम करावे। कर सकता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शरीर को आत्मा यहाँ लावे घर से। ऐ... जमुभाई! आहाहा! भाई! शरीर तो अनन्त रजकण का पिण्ड है यह तो मिट्टी। इसकी अवस्था ऐसे क्षेत्रान्तर होना, वह तो रजकण का कार्य है। वह आत्मा की इच्छा यहाँ आने की हुई, इसलिए इच्छा कर्ता और रजकण यहाँ आने का कार्य, यह तीन काल में नहीं हो सकता। यह इसकी आलोचना की है, लो! ऐसे बोल की आलोचना (विरोध) की है। आहाहा!

कहो, यह निरोगता हो तो यहाँ आया जा सकता है, यह बात सच्ची या नहीं? ऐई! जयन्तीभाई! इनकार करते हैं, ये लड़के इनकार करते हैं। समझ में आया? आहाहा! दिव्यध्वनि, वह कर्ता और सामने समझ में आये, वह काम, ज्ञान कार्य—ऐसा न मानो तो जैनतत्त्व की व्यवस्था ऐसी होगी? ऐसा कहते हैं। भाई! भगवान! तुझे खबर नहीं, बापू! यह कहीं दूसरे के साथ लड़कर जीतना, वह चीज़ नहीं यह। यह तो दूसरी चीज़ है, बापू! भगवान! तू भूला प्रभु! आहाहा! अरे! चैतन्य की समय-समय की पर्याय, कोई कर्म का उदय हो या बाहर निमित्त हो, उससे यहाँ होता है, ऐसा नहीं बनता, भगवान! शरीर के रजकण की पर्याय इच्छा हुई, इसलिए यहाँ ला सके, घर से आ सके, ऐसा नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : इसका मेल साथ में....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वे तो दोनों... वर्तमान का परिणमन हो या किसी का परिणमन आगे-पीछे होगा? अनन्त द्रव्य वर्तमानरूप से परिणमते हैं या कोई भूतकाल, भविष्यरूप से परिणमता है? प्रश्न क्या है इसका। शरीर की पर्याय भी वर्तमानरूप से उस प्रकार की परिणमन की उसकी योग्यता है और आत्मा भी उस प्रकार से ज्ञान समझने के अथवा इच्छा की योग्यता से इच्छा उसे होती है। कहो, समझ में आया

इसमें ? इसका कोई निचोड़ करना चाहिए, ऐसा लिखा है अन्त में, हों ! यह पण्डितों को बात रखी है। गम्भीरता... समझे न ? ऐसा लिखा है सही अन्तिम कुछ। यह विचार करो। भाई ! यह तो झगड़ा किस दिन का चलता है यह। यह रखा है, ऐसा करके।

‘जहाँ तक मत निर्माण की बात है, ये मैं समाज के विद्वानों पर छोड़ता हूँ, मैंने तो उनके सामने विचार की सामग्री की उपस्थिति की है, पत्रों के साथ ही इस वचन को बिना किसी प्रकार के भेदभाव के समाज के सभी विद्वानों को भेजने का विचार है।’ सब विद्वानों को रखेंगे यह सब। समझ में आया ? ‘समयसार आदि हम पढ़ते हैं, इसलिए ऐसा तो कह नहीं सकते कि कर्म आत्मा को राग कराते हैं, किन्तु कर्म के निमित्त बिना किसी को कुछ भी राग नहीं होता, इसलिए कर्मों का प्रभाव होता है, निमित्त का प्रभाव होता है, वह होना ही चाहिए, ऐसा कुछ लोग मानते हैं। किन्तु जीव पर एक समय भी पर का प्रभाव माना गया तो सर्वज्ञ सदैव ही कोई समय कर्मोदय के बिना नहीं रहता...’ इसलिए प्रभाव नहीं। अपने यहाँ कहा या नहीं।

मुमुक्षु : यहाँ तो हाँ किया....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब हाँ किया, यह सब... गंगादास। गंगा किनारे गंगादास, जमना किनारे जमनादास। जहाँ जैसी हवा आयी, (वैसी) ध्वजा पूंछड़ी पटके या नहीं ? लोहे की हो तो क्या करे ? ऐसे दृष्टान्त सब बहुत दिये। विद्वानों को विचारने के लिये रखता हूँ। उसमें तुम आये हो या नहीं, उसमें विद्वानों के बीच में ? आहाहा !

भाई ! आत्मा की पर्याय समय-समय की जो उसकी नियमसर चलती है, उसके कार्य में दूसरी चीज़ हो तो कार्य होता है, ऐसा नहीं हो सकता, बापू ! तब ही उसे निमित्त कहा जाता है। इसी प्रकार जब जड़ की जिस समय की पर्याय हो शरीर की, यह बोलने की, उस पर्याय का कार्य जीव की इच्छा वह कर्ता और भाषा की पर्याय कर्म, ऐसा कभी नहीं होता। निमित्त कहलाता है। वह निमित्त है, इसलिए उसके कारण से हुआ, ऐसा कर्म नहीं। किसी सत् का वर्तमान अंश किसी दूसरे सत् के अंश की अस्ति के कारण उसकी अस्ति है, ऐसा तीन काल में नहीं हो सकता। तब ही उसे निमित्त कहा जाता है। आहाहा ! कैसे होगा ? चिमनभाई ! यह सब विवाद उठाते हैं। लो ! अब निचोड़ करते

नहीं सब एक जगह इकट्ठे होकर। यहाँ तो लड़के भी इनकार करते हैं कि नहीं, ऐसा नहीं होता। ऐ... हेमन्त! क्या हो? वाणी हो तो यह ज्ञान होता है या नहीं यहाँ?

मुमुक्षु : निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है। लो! ठीक यह तो अभी दस, बारह वर्ष का है। निमित्त कहता है। वे सब साठ-साठ वर्ष के, पैंसठ वर्ष के... आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! पर का कर्ता तो नहीं, परन्तु यह राग का विकल्प उठे, वह कर्तृत्व जीव का नहीं। ऐसी दृष्टि हुए बिना चैतन्य का आदर नहीं होता। समझ में आया? कर्म के कारण से राग, ऐसा भी नहीं और राग के कारण से ज्ञान, ऐसा भी नहीं, परन्तु ज्ञानस्वभाव राग को करे, ऐसा भी नहीं। आहाहा! क्योंकि पूरा चैतन्यस्वभाव ही जहाँ शुद्ध घोलन है पूरा, यह वह किसका कार्य परिणमे? रागरूप हो—परिणमे? परिणमे भले, परन्तु राग करूँ, ऐसा परिणमे? समझ में आया? चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... ज्ञायक स्वभाव, वह तो अपने ज्ञान-दर्शन-आनन्द के परिणामरूप ही उसका कर्ता है। ऐसी दृष्टि हुए बिना राग का कर्ता जीव को माने और राग को कर्म कर्ता माने और कर्म बन्धन का राग हुआ, इसलिए बन्धन हुआ पर्याय में—जड़ की पर्याय में, ऐसे राग कर्ता और बन्धन कर्म माने, तब तक उसकी दृष्टि अत्यन्त विपरीत है। समझ में आया? धर्मचन्दजी! क्या है? जैनतत्त्व की व्यवस्था ऐसे और विद्वतता से भाषा में डाला है। क्या यह जैनतत्त्व की व्यवस्था? वस्तु की व्यवस्था। समझ में आया?

जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, जैन कोई वाड़ा नहीं। भगवान सर्वज्ञ ने देखे हुए तत्त्व ऐसे स्वतन्त्र हैं, उस स्वतन्त्र स्वभाव से राग को जीते, उसे जैन कहा जाता है। (जैन) कोई वाड़ा नहीं। वह तो वस्तु ही ऐसी है। ज्ञानानन्द भगवान भरपूर प्रभु अपने स्वभाव साधन द्वारा राग को जीते, उसका नाम जैन। ऐसी वस्तु की स्थिति है। समझ में आया? इस स्थिति को जाने बिना, कहते हैं जो सम्यक्त्वरहित मिथ्यादृष्टि जीव पुण्यसहित हैं, तो भी पापी ही कहे हैं। प्रेमचन्दजी! क्या है? यह दिल्ली में बहुत विवाद होता है।

मुमुक्षु : चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलती है। चले, भाई! दुनिया में सब चलता है न! समझ में आया ?

एक बार कुकड़ा में गये थे तो पानी स्वच्छ नहीं मिले, भाई पूरे गाँव में। मात्र मलिन पानी। यह कुकड़ा है। मुळी से दो कोस, मुळी से दो कोस। कहा, पानी ? कहीं पानी नहीं। पानी सब गंदला। वह आयी हुई नयी वर्षा और कांप में थे, तब वर्षा आयी। और गंदला... गंदला... गंदला... अकेला गंदला वही। तुरन्त पीना हो तो गंदला ही हो, दूसरा हो ही नहीं उसमें। धीर होकर ठारे थोड़ी देर (बाद में पिया जाये)।

इसी प्रकार अज्ञानी को सब बातें गन्दली ही मिलती है। पुण्य-पाप का कर्ता और पर का कर्ता और पुण्य से करते-करते मुझे धर्म होगा। सब गन्दला ही मिला है इसे। यह है। गन्दला ही है न। मैल, कहा न? यह तो प्रत्यक्ष है। कहा, गाँव में (कहीं मिले) ? पूरे गाँव में कहीं नहीं। घर में बासन मलिन। वह कहे हम सवेरे लाते हैं वह शाम तक जरा नीतरे, फिर पानी वैसा हो। वरना सवेरे पानी पीने का नहीं। यहाँ तो हमने वहाँ देखा है। मात्र (गन्दला पानी)। परन्तु पूरे गाँव में कहीं नहीं। मौके से उसमें हम और मौके से वे रतनचन्दजी। आहाहा! उस गन्दला को साफ करना, वह यहाँ काम है, यहाँ तो कहते हैं। भगवान चैतन्यमूर्ति निर्मलानन्द प्रभु है न! उसे कहते हैं कि भान किये बिना मात्र पुण्य के मेल का कर्ता हो, वह मरकर नरकादि में जाये। भोगादि मिले, परन्तु भोग में आसक्त होकर अधोगति को प्राप्त करे। इसलिए उन्हें पापी कहा, देखो!

तथा जो सम्यक्त्वसहित हैं, वे पहले भव में उपार्जन किये हुए पाप के फल से दुःख-दारिद्र्य भोगते हैं,... यह आत्मा का ज्ञान-भान हुआ अभी। पूर्व के पाप के कारण गरीब घर में अवतरित हुआ हो, निर्धन हो। समझ में आया ? शरीर में रोग रहता हो। देखो, कहा न? **दुःख और दारिद्र्य भोगते हैं, तो भी पुण्याधिकारी ही कहे हैं।** उसे भगवान ने पुण्य का अधिकारी कहा है। सम्यग्दर्शन... आत्मा चिदानन्दमूर्ति का भान (हुआ हो), कहते हैं कि गरीब घर में हो, रंक घर में हो, भिखारी घर में हो। आहाहा! अरे! ढेढ के घर में अवतार हो, हरिजन के घर में अवतार। देव है, कहते हैं। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में समन्तभद्राचार्य कहते हैं हों! कि वह अग्नि दबी हुई, राख से दबी हुई

अग्नि, परन्तु वह देव है। शरीर भले काला, मैला (हो)। समझ में आया ?

यहाँ तो अभी शरीर अच्छा हो, उसका अभिमान; कपड़े अच्छे हों, उसका अभिमान; भाषा कुछ ठीक हो, उसका अभिमान; बोलना आवे उसका अभिमान। मार डाला इसने चैतन्य को। किसका अभिमान ? परवस्तु तेरी नहीं, जड़ है, उसे (मेरी मानता है)। ऐसे पाप के उदय से कदाचित् ऐसा मिला तो भी उससे पृथक् भान करके चैतन्य सम्यक् रत्न प्राप्त किया है, कहते हैं कि वह पुण्य अधिकारी है। क्योंकि वह मरकर उसका देह भविष्य का ऐसा होनेवाला है (कि) अनन्त काल में वे रजकण नहीं हुए थे, ऐसी पर्यायवाले होंगे। ऐसा देह, अनन्त काल में नहीं मिला, ऐसा देह भविष्य में मिलेगा। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ बात की ? वह पुण्य का अधिकारी है, इसलिए यहाँ बात की। वे रजकण भी ऐसे परिणमेंगे। सम्यग्दर्शन की भूमिका में जो पुण्यभाव है, कभी ऐसा पुण्यभाव मिथ्यादृष्टिपने में नहीं होता। ऐसे भाव में जो पुण्य बँधा, कहते हैं कि वह पुण्य अधिकारी है। भविष्य में भी उसकी अनुकूल सामग्री और वर्तमान में भी बहुत शुभभाव की अधिकता उसे रहा करती है। वह स्वर्ग में जायेगा, वहाँ से राजा आदि होकर मुक्ति पायेगा। समझ में आया ?

देखो, तो भी पुण्याधिकारी ही कहे हैं। इसलिए जो सम्यक्त्व सहित हैं, उनका मरना भी अच्छा। मरता है कहाँ ? उसका जीवित जीव लेकर जाता है। चैतन्य को जागता लेकर जाता है। और वह बड़ा पुण्य ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। रावण लो न, कहा न रावण का दृष्टान्त। ओहोहो ! उसकी ऋद्धि। उसके स्फटिक के बँगले, हों ! स्फटिक ऐसे। ऐसे पड़े वहाँ पानी है या नहीं, खबर नहीं पड़े। वह कोई राजा अनजाना गया तो फिसल पड़ा। मानो यह फिसल पड़ेगा अभी, ऐसा लगे। तब वे दूसरे मजाक करे कि यह तो हमारो स्फटिक का मकान है। समझ में आया ? ऐसे बँगले। मरकर जाना है नरक में। आहाहा ! उस नरक के झोंपड़े बाँधना है वहाँ नीचे। पड़े हैं अभी रावण नरक में पड़ा है। पुकार... पुकार... पुकार... भविष्य में भले चक्रवर्ती का पुत्र होगा। सीताजी

चक्रवर्ती होंगी और उनका पुत्र होगा। परन्तु अभी ? सीताजी आत्मज्ञानपूर्वक स्त्री का देह था। (आत्म) भान (हुआ)। स्त्री को देह छेद कर डाला, वैमानिक देव हुए। स्त्री का देह था, स्त्रीवेद का छेद कर डाला। भान—सम्यग्दर्शन शुद्ध का हुआ। अरे ! जिसे रावण इच्छे। छेद कर डाला। बहुत सुन्दर रूप था न ? इतना सुन्दर कि ऐसे सीताजी पर मोहित हुआ। मन्दोदरी कहती है, तुम बलात्कार करो। अरे ! बलात्कार (बलजोरी) मुझसे कैसे हो ? इस प्रकार सती को ऐसा देखता है वहाँ। आहाहा ! कोई कहे कि परन्तु तू राम का रूप ले। तो तुझसे प्रसन्न होगी, वरना नहीं, ले ! परन्तु (मैं) राम का रूप लेता हूँ, वहाँ मुझे सीता माता दिखाई देती है। रूप लूँ वहाँ माता दिखाई देती है, मुझे क्या करना ? आहाहा ! रावण के रूप में मुझे ऐसी वृत्ति रहती है, परन्तु जहाँ राम का रूप धारण करता हूँ, वहाँ मुझे सीता माता दिखाई देती है। समझ में आया ? वह राम का कैसा आत्मा होगा, ऐसा उसे था तो बहुत, परन्तु मान मार डालता है। समझ में आया ?

वे रामचन्द्रजी पुरुषोत्तम पुरुष हैं पुण्य लेकर आये हैं और मोक्ष जाना है। हम सीता को न्याय से लेंगे, अनीति से नहीं लेंगे। हम बलदेव, वासुदेव होकर अवतरित हुए हैं। हमारे दूसरा उपाय नहीं। आहाहा ! रावण को मारते हैं। स्वयं साथ में जलाने जाते हैं। बात है यह ? कौन है ? तीन खण्ड का धनी वह रावण। मार डाला चक्र लेकर एकदम। मन्दोदरी के निकट जाते हैं, (और कहते हैं) माँ ! माता ! बहिन ! हमारे तुम्हारे साथ, तुम्हारे पति के साथ वैर नहीं, हों ! परन्तु यह मार डाला न ? माता ! मुझे दूसरा उपाय नहीं। हमारी पुण्य की पदवी ऐसी है, इस स्थिति में ऐसा बनता है। ऐसा शास्त्र कहते हैं और इस प्रकार से फलित होता है। माता ! हम चलें अब ! साथ में मुर्दे को लेकर बहुत शृंगार करके वे भी जलाने गये। साथ में राम और लक्ष्मण सामने। विभीषण को बुलाकर कहे, बापू ! यह राज्य तेरा है, हों ! हमें राज-बाज चाहिए नहीं। यहाँ तो हमारी आज्ञा माने, बस है। समझ में आया ? वह पुण्य के कारण ऐसा भाव था, परन्तु अन्दर आदर नहीं था। लक्ष्मणजी ... है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या दे शाणपना ? गृद्धिपना है, वहाँ गृद्धि में उलझ जाता है।

यह धुएँ में ईयळ चढ़ जाये न, तो उलझ जाये, कहाँ जाना यहाँ से। रास्ते में देखा न वह प्रकाश ऐसा पड़े न, उसमें मर जाते हैं न उसमें? चूहे को देखते हैं न बीच में। प्रकाश में उलझ जाये। ऐसे जाना या ऐसे? उलझ जाये... उलझ जाये। भान नहीं होता कि यह क्या करता हूँ? यह रामचन्द्रजी। शास्त्र सुना नहीं? प्रतिवासुदेव है। विभीषण ने कहा है, भाई! तुम तो प्रतिवासुदेव हो। भगवान के शास्त्र में आया है कि राम और (लक्ष्मण) बलदेव और वासुदेव होंगे। आपको उड़ायेंगे (मार देंगे)।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ? किस प्रकार से? यहाँ आये न। उन्होंने अन्याय किया नहीं। हम सीताजी को लेने आये हैं, बस! हमको सीताजी दे तो हमारे...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : रावण ने कहाँ न्याय से किया? वह तो अन्याय है, उसका तो सब अन्याय है। मैंने कब न्याय का कहा? किसने कहा? तुम समझे नहीं। वह तो रामचन्द्रजी का कहा। तुमको समझने में अन्तर क्या हो गया। ध्यान रखो ऐसे समझने में। रामचन्द्रजी ने जाकर कहा, ऐसा कहता हूँ। मन्दोदरी के निकट रामचन्द्रजी ने कहा, रावण को मारने के बाद (कहा)। माता! हमारा दूसरा उपाय नहीं था। रामचन्द्रजी कहते हैं। रावण को कहाँ? वह तो अन्याय में चला गया। वह तो मरकर नरक में गया। यह तो बात की नहीं? रामचन्द्रजी ने कहा, ऐसा कहा। इसे कथा की कहाँ खबर है? अभी सब नये आये हैं बाहर। ठीक। तुम्हारा बचाव किया, ठीक।

रामचन्द्रजी ने कहा। मारकर घर में गये एकदम वापस। बाहर मारा, अन्दर जहाँ... एकदम घुस गयी। सेना सेना सब करोड़ों सेना ने एकदम हथियार रख दिये। ... है सबको। हमारे दूसरा कुछ नहीं अब। यह तो मात्र यह था। जाते हैं उसमें। हमारी बहिन है माता। ऐसा रामचन्द्रजी ने कहा, हमारा दूसरा उपाय नहीं था। माता! तेरे पति को मारने हमें आना नहीं था, परन्तु यह पुण्य ही ऐसा है कोई कि यह स्थिति ही ऐसी भगवान ने वर्णन की है। ऐसा बोलते हैं, हों! हम माफी माँगते हैं, माता! आहाहा! समझ में आया? उत्तम पुरुष है, वे उत्तमपना छोड़े कहीं? चाहे जिस स्थिति में हो नहीं,

उत्तमपना एक अंश जाये उनमें से कहीं ? वह तो उत्तमपने में ही रमते होते हैं । आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, मरकर ऊपर को जावेंगे और सम्यक्त्वरहित हैं,... देखो ! उनका पुण्य-कर्म भी प्रशंसा योग्य नहीं है । आत्मा के भान बिना के पुण्य दुनिया में माने, लाखों माने, करोड़ों माने, दुनिया प्रशंसा करे, परन्तु वह पुण्य अच्छा नहीं । उसके साथ क्या सम्बन्ध है ? आहाहा ! वे पुण्य के उदय से क्षुद्र (नीच) देव... आत्मा के भान बिना के कोई पूर्व के पुण्य के कारण अथवा वर्तमान पुण्य करेगा... समझ में आया ? (तो) नीच देव, तथा क्षुद्र मनुष्य... देखो, भाषा ! वहाँ से मरकर भी क्षुद्र-हल्का मनुष्य होगा । संसार-वन में भटकेंगे । चौरासी के अवतार में भटकेगा, वह (आत्मभानवाला) मोक्ष जायेगा । यदि पूर्व के पुण्य को यहाँ भोगते हैं, तो तुच्छ फल भोग के नरक-निगोद में पड़ेंगे । लो ! मिथ्यादृष्टि जिसकी दृष्टि ही अन्दर खोटी है । पूर्व के पुण्य के कारण भोगादि पुण्य लोग प्रशंसा करे । ओहोहो ! ऐसा भी हो और वर्तमान शुभभाव भी हो । समझ में आया ? तथापि वह नरक और निगोद में आगे जाकर जायेगा । उसकी गति दूसरी नहीं होगी । आहाहा ! यह मैल करना... जगत को सम्यग्दर्शन का माहात्म्य और मिथ्यादर्शन का हल्कापन (भासित नहीं होता है) । कहो, भीखाभाई ! आहाहा !

इसलिए मिथ्यादृष्टियों का पुण्य भी भला नहीं है । निदानबन्ध पुण्य से भवान्तर में भोगों को पाकर पीछे नरक में जावेंगे । सम्यग्दृष्टि प्रथम मिथ्यात्व अवस्था में किये हुए पापों के फल से दुःख भोगते हैं,... भोक्ता हो, दुःख भोगता है यह व्याख्या की है । उसे संयोग मिलेंगे पूर्व के पाप के कारण से । सम्यग्दर्शन अभी पाया अपने पुरुषार्थ से । पूर्व के पाप के कारण हल्की योनि में साधारण गया हो । मनुष्यादि साधारण हुआ, गरीब के घर में अवतरित हुआ हो । लेकिन अब सम्यक्त्व मिला है, इसलिए सदा सुखी ही होवेंगे । आत्मश्रद्धा के अनुभव से वर्तमान सुखी, स्वर्ग में सुखी और बाद में भी सुखी । यह बाहर के साधन से भी अनुकूल, ऐसा यहाँ तो कहते हैं । जैसे सम्यग्दृष्टि को बाहर के साधन मिलें, वैसे मिथ्यादृष्टि को नहीं मिलते । तीर्थंकर और बलदेव सब सम्यग्दृष्टि होते हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं होते ।

आयु के अन्त में नरक से निकल के मनुष्य होकर ऊर्ध्वगति ही पावेंगे,... लो !

समझ में आया ? कदाचित् समकित पहले आयुष्य बँध गया हो तो नरक में जाये तो मनुष्य होकर ऊर्ध्वगति ही पावेंगे,... वहाँ से निकलकर (मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा) । आता है न, योगीन्द्रदेव में एक श्लोक आता है । समकिती कदाचित् नरक में जाये तो वह कर्म खिरेंगे । उसका कर्म खिरने के लिये वहाँ जाता है । आहाहा ! और मिथ्यादृष्टि जो पुण्य के उदय से देव भी हुए हैं, तो भी देवलोक से आकर एकेन्द्रिय होवेंगे । मरकर एकेन्द्रिय होंगे । आहाहा ! यहाँ लोग उसे महात्मा, साधु, महन्त मानते हों । हो मिथ्यादृष्टि, श्रद्धा एकदम खोटी और मरकर जायेगा देव-बेव होगा, (बाद में) एकेन्द्रिय । ऐसा दूसरी जगह भी इत्यादि श्लोक से कहा है,....

वरं नरकवासोऽपि सम्यक्त्वेन हि संयुतः ।

न तु सम्यक्त्वहीनस्य निवासो दिवि राजते ॥

कि सम्यक्त्वसहित नरक में रहना भी अच्छा,... यह आत्मा की दृष्टि के अनुभव के डोरसहित नरक में रहना भी अच्छा है, कहते हैं । और सम्यक्त्वरहित का स्वर्ग में निवास भी शोभा नहीं देता । समझ में आया ? आत्मा की आत्मदृष्टि, स्वरूप का अनुभव दृष्टिसहित नरक में हो तो, कहते हैं, अच्छा है और समकितरहित देव और बड़ा राजा—चक्रवर्ती हो या बड़ा अरबोंपति सेठिया हो, बुरा है, कहते हैं । आहाहा ! परमात्मप्रकाश है । शोभा नहीं देता । समझ में आया ?

★ ★ ★

गाथा - ५९

अब इसी बात को फिर भी दृढ़ करते हैं — ५९ ।

१८६) जे णिय-दंसण-अहिमुहा सोक्खु अणंतु लहंति ।

तिं विणु पुण्णु करंता वि दुक्खु अणंतु सहंति ॥५९॥

गुलॉट खाकर दो बात करते हैं । जो सम्यग्दर्शन के सन्मुख हैं,... यह सम्यग्दर्शन कौन-सा होगा ? वह आठवें (गुणस्थान) का होगा यह ? यह बात चली आती है कि सम्यग्दर्शन अनुभव की, अनुभूति की । आहाहा ! समझ में आया ? आठवें (गुणस्थान)

वाला देवलोक में जाता होगा ? भाई ! लो, आठवाँ देवलोक में जाये और वहाँ से फिर ऐसा होगा और फिर ऐसा होगा । आहाहा ! यहाँ तो सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से उठाकर बात की है । आहाहा ! जो सम्यग्दर्शन के सन्मुख हैं, वे अनन्त सुख को पाते हैं,... क्योंकि दृष्टि पड़ी है चैतन्य आनन्द के ऊपर, वह साधक होकर क्रम-क्रम से केवलज्ञान को प्राप्त करेगा ।

‘तेन विना’ और जो जीव सम्यक्त्वरहित हैं, वे ‘पुण्यं कुर्वाणा अपि’ पुण्य भी करते हैं,... अब यह शास्त्र ऐसी पुकार करता है । इसके बिना तेरे दया, दान, भक्ति, व्रत और पूजा, वह सब व्यर्थ, बिना एक के शून्य है, ऐसा कहते हैं । अरे, हाय.. हाय ! भगवान से चला आता है ऐसा धर्म और तुम (इनकार) करो ! प्रभु ! ऐसा रहने दे भाई ! तेरी मान्यता प्रमाण धर्म चला आवे, ऐसा तू मानता है, ऐसे कहीं गज काम आवे ? तब वह कहे, समकित सहित तो पुण्य अच्छा न ? परन्तु पुण्य समकित सहित का कौन सा ? अच्छे का कहाँ प्रश्न है ? उसके शुभभाव में आदर नहीं, इसलिए वह स्वर्ग में जाकर पश्चात् भी उसके फल में उसे आदर होगा नहीं । इसलिए क्रम-क्रम से उसे केवलज्ञान होगा, ऐसा कहना है । पुण्य और विकल्प का आदर माने और अच्छा माने तो यह एक ओर भगवान रह गया और उसे खोटा माना । आहाहा ! अजर अमर प्याला ।

तो भी पुण्य के फल से अल्प सुख पाके संसार में अनन्त दुःख भोगते हैं । लो ! मिथ्यादृष्टि... वह (ज्ञानी) अनन्त सुख (पायेगा) । इसे अल्प सुख संसारी का पाकर वह अनन्त दुःख को भोगेगा । निगोद... निगोद... निगोद... भाई ! नरक और निगोद । आहाहा ! अरे ! परन्तु अभी ऐसा दिखता है ऐसों को । लाख-लाख, दो-दो लाख, पाँच-पाँच लाख लोग ऐसे इकट्ठे हों, लो ! बड़े महन्त महात्मा कहलाये । और हों सब नीचे जानेवाले, हों ! दृष्टि खोटी, श्रद्धा मिथ्यात्व, पुण्य में धर्म माननेवाले, पुण्य से धर्म मनानेवाले । आहाहा ! समझ में आया ? कहते हैं कि थोड़ा पुण्य बाँधेगा कदाचित्, अल्प सुख भोग के अनन्त दुःख भोगते हैं । देखो !

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप निश्चयसम्यक्त्व के सन्मुख हुए जो सत्पुरुष हैं,... देखो ! चौथे की ही बात है यह । निज शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप निश्चय-

सम्यक्त्व के सन्मुख हुए जो सत्पुरुष हैं,... लो ! वे इसी भव में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन की तरह अविनाशी सुख को पाते हैं,... पाँच पाण्डव थे न ? यहाँ शत्रुंजय पर थे पाँचों ही । सम्यग्दृष्टि मुनि थे, आत्मज्ञानी थे, आत्मध्यानी थे । यहाँ गये थे पाँच । दुर्योधन के भानेज ने आकर लोहे के गहने पहनाये । जलहलते, जलहलते । ऐसे आनन्द को स्पर्शते, आनन्द को वेदते हुए तीन तो मोक्ष पधारे । युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन, तीन तो मोक्ष पधारे, इस शत्रुंजय के ऊपर ।

और कितने ही नकुल, सहदेव की तरह अहमिन्द्र-पद के सुख पाते हैं । दो जो थे उन्हें जरा शुभराग का विकल्प आ गया । अरे ! यह बड़े भाई को क्या (होगा) ? गहने यहाँ पहने, यहाँ पहने मुकुट लोहे का, यहाँ पहनाया धगधगता । राजकुमार, मक्खन जैसा शरीर । इतना विकल्प आया । अहमिन्द्र का पुण्य बँध गया । सर्वार्थसिद्धि में गये । अहमिन्द्र हुए । वे तीन मोक्ष में गये, दो यहाँ (स्वर्ग में गये) । यह शत्रुंजय । समझ में आया ? सम्यग्दर्शन था तो अविनाशी सुख को पाते हैं, तथा जो सम्यक्त्व से रहित मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य भी करते हैं, तो भी मोक्ष के अधिकारी नहीं हैं, संसारी जीव ही हैं, यह तात्पर्य जानना । लो ! यह आत्मा के सम्यग्दर्शन के अनुभव बिना जितने पुण्यादि करे और उसका अभिमान करते हैं और उस क्रिया को धर्म मानते हैं, वे सब पापी संसार के अधिकारी हैं ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ शुक्ल ६, गुरुवार, दिनांक - २७-०१-१९६६

गाथा - ६० - ६१, प्रवचन - ११०

गाथा - ६०

परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग। ६०वीं गाथा। आगे निश्चय से—वास्तव में मिथ्यादृष्टियों के पुण्य का निषेध करते हैं— ‘अथ निश्चयेन पुण्यं निराकरोति—’ ऐसा है मूल तो। इसका निराकरण करते हैं। यह तो फिर निषेध शब्द इन्होंने प्रयोग किया है।

१८७) पुण्णेण होइ विहवो विहवेण मओ मएण मइ-मोहो।

मइ-मोहेण य पावं ता पुण्णं अम्ह मा होउ॥६०॥

ऐसा शब्द है। एक श्लोक तिलोयपण्णति में, दूसरे भाग में ८७९ पृष्ठ पर ५२वीं गाथा है, यही गाथा है। वह तिलोयपण्णति तो वर्णन है लोक का, तथापि वे गाथायें सब ऐसी डाली हैं। यह वह ७७वीं गाथा प्रवचनसार की थी न, वह इसमें है। वह ५४वीं है।

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।

हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो॥७७॥

... यह ५३वीं है। सब गाथायें भावना की ऊँची ली है। वरना यह तो तिलोयपण्णति है। लोक का वर्णन करणानुयोग का है। तथापि उसमें भावना का यथार्थ भी कहा है। बहुत गाथायें हैं ऐसी।

क्या कहते हैं? पुण्य से घर में धन होता है,... घर में अर्थात्? वैभव। ऐसा कहना है न यहाँ? वैभव कहते हैं न? यह बँगला मिले, फर्नीचर मिले, गहने मिले, यह मोती, सोने के गहने लटके, वे मिलें। सच्चे मोती के हार, यह लटके कान का गहना। समझ में आया? यह सब वैभव की व्याख्या है, यह सब। पूर्व के पुण्य के कारण ऐसे वैभव की सम्पदा प्राप्त होती है। एक सिद्धान्त तो यह कि वैभव मिले, वह वर्तमान

पुरुषार्थ से नहीं। एक सिद्धान्त। वर्तमान तो कमाने का राग करता है। राग तो पाप है। पाप में पैसे मिलें या वैभव मिले, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या वर्तमान पुरुषार्थ से मिलते हैं ? मलूकचन्दभाई चले गये। कहो, समझ में आया ? यह पूर्व के शुभभाव होते हैं। उसने पुण्य बाँधा हुआ हो मिथ्यादृष्टि ने, आत्मा की दृष्टि बिना। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसमें विकल्प जो पुण्य का उठे, वह बन्ध का कारण है। ऐसा जिसने माना नहीं, जाना नहीं, हेयबुद्धि की नहीं, उसे जो पुण्यभाव होता है, उस पुण्य से उसे वैभव मिलता है। समझ में आया ? पूर्व के बँधे हुए पुण्य से यह धूल का वैभव मिलता है। घर में सामग्री, पैसा, मोती, माणेक, हीरा या यह लक्ष्मी दो, पाँच, दस लाख जो धूल कहलाती है वह—यह सब पूर्व के पुण्य के कारण से मिलती है।

और धन से अभिमान होता है,... आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप का जिसे भान नहीं, वीतराग परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ ने आत्मा ज्ञानस्वरूप आनन्द कहा है, उसकी जिसे अन्तर रुचि नहीं और जिसे पुण्य—शुभभाव की रुचि है, उस रुचिवाले को पुण्य बँधता है, शुभभाव है इसलिए। परन्तु उससे उसे वैभव मिलेगा। वैभव के कारण से उसे अभिमान होगा। हम पैसेवाले हैं, हम धनाढ्य हैं, हम बड़ी पदवी दस-दस हजार, पन्द्रह, बीस-बीस हजार के मासिक वेतनवाले हैं। ऐसा उसे अभिमान बढ़ेगा। क्योंकि आत्मा की दृष्टि शुद्ध चैतन्य है, उसका तो भान नहीं। इसलिए अज्ञानी को धन से अभिमान, मान से बुद्धिभ्रम होता है, ... आँख टेढ़ी दृष्टि हो जायेगी उसे। हम ही कमानेवाले हैं, हम ही काम करनेवाले हैं, हम ही होशियार हैं। कहो, धर्मचन्दजी!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ रुपये मिले। गरीब में से पाँच करोड़ हो, वह होशियारी बिना होते होंगे ? पूछो हिम्मतभाई को, इनके भतीजे को पूछो देखो, लो ! कहो, समझ में आया ? कहते हैं, होशियारी-बोशियारी कहीं तेरी काम नहीं आती, भाई ! पुरुषार्थ तो आत्मा का स्वभाव समझने में, उसे पहिचानने में, स्थिरता

में पुरुषार्थ काम आता है। राग के पुरुषार्थ से पैसे मिलें और लक्ष्मी तथा वैभव मिले, इस बात में एक भी प्रतिशत सत्य नहीं है। बराबर होगा ? तुम तो बहुत होशियार कहलाते थे। आहाहा !

कहते हैं कि अज्ञानियों को पुण्य के फल में लक्ष्मी आदि वैभव, इज्जत, कीर्ति ऐसे खम्मा... खम्मा... खम्मा... होता हो। कहते हैं कि उसे अभिमान बढ़ेगा, अभिमान से उसकी बुद्धि भ्रम हो जायेगा। उसे ऐसा ही होगा कि मैं ही मानो कुछ सब कमाता हूँ। मुझसे सब प्राप्त होता है। हम दुकान पर व्यवस्था बराबर गद्दी सम्हालते हैं और हम गद्दी सम्हालें तब मिले, ऐसा साधारण बैठे तो नहीं मिले। लो ! थडो समझ में आया ? थडो अर्थात् क्या ? दुकान पर बैठक-बैठक बराबर उसकी हो न गद्दी और तकिया। वहाँ बैठे हम बराबर सम्हाल रखें तो बारह महीने में लाख, दो लाख, पाँच लाख पैदा करें। यह सब साधारण लड़कों को भान नहीं होता, वह के वह गरीब रह गये। इसी प्रकार अज्ञानी को आत्मा शुद्ध चैतन्य के सम्यग्दर्शन का भान नहीं। ऐसे भान बिना उसने कुछ पुण्य बाँधा हो, उसके फल में उसे वैभव मिलेगा, परन्तु उसे अभिमान होगा और अभिमान से बुद्धि भ्रष्ट हो जायेगा। मूढ़ हो जायेगा, मूढ़... हम क्या करें और क्या मानते हैं ! साधारण प्राणी धर्मी जीव हो और उसे पैसा-बैसा लक्ष्मी न हो तो उसका भी वह तिरस्कार कर डालेगा। समझ में आया ? जेठाभाई ! कहो, पाँच-पाँच, चार-चार हजार दिन के पैदा करता हो, लो ! लाख-लाख आमदनी एक दिन की, तो कुछ होशियारी होगी या नहीं ? धूल की होशियारी नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। मूढ़ जीव ने पूर्व में कोई राग की मन्दता से पुण्य बाँधा हो और राग का अभिमान किया है (कि) हम राग हैं। भगवान आत्मा राग से भिन्न चिदानन्द मूर्ति है। उसकी दृष्टि और ज्ञान और सम्यक् अनुभव किया नहीं, राग का अनुभव किया है उसने। ऐसे राग के फल में उसे पैसे के अभिमान होकर बुद्धि भ्रष्ट होगी। कहो, धीरुभाई ! बराबर बात है ?

‘मति मोहेन’ मति भ्रम होने से, बुद्धि के भ्रम होने से (अविवेक से) पाप होता है,... पाप बाँधेगा। इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवे। आचार्य कहते हैं कि ऐसे पुण्य हमारे नहीं चाहिए। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा कहकर धर्मी को समझाते हैं कि ऐसे पुण्य हमारे काम के नहीं, भाई !

भावार्थ :- देखो कहेंगे। भेदाभेदरत्नत्रय की आराधना से रहित... ऐसे पुण्य किसने कैसे बाँधे हैं ? कि निश्चय और व्यवहार सम्यग्दर्शन, निश्चय-व्यवहार सम्यग्ज्ञान, निश्चय और व्यवहार सम्यक्चारित्र। निश्चय अर्थात् आत्मा आनन्द ज्ञानानन्दमूर्ति वीतरागस्वरूप आत्मा है, ऐसा अन्तर में सम्यग्दर्शन निश्चय। उसके साथ देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और नौ तत्त्व के विकल्प की श्रद्धा, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। आत्मा का ज्ञान, ज्ञान से वेदन हो, वह निश्चय ज्ञान। शास्त्र आदि का ज्ञान व्यवहार ज्ञान। सर्वज्ञ के शास्त्र का ज्ञान। आत्मा का चारित्र, स्वरूप में रमणता, वह वीतरागचारित्र, वह निश्चयचारित्र। पंच महाव्रत के परिणाम बीच में आवे, वह व्यवहारचारित्र कहा जाता है। ऐसी जिसने भेदाभेदरत्नत्रय की आराधना की नहीं, निश्चय और व्यवहार क्या स्वरूप है, उसका जिसने भान किया नहीं।

उसने तो देखे, सुने, अनुभव किये... आत्मा तो देखा नहीं। आत्मा वास्तव में सुना भी नहीं उसने। आत्मा (का) अनुभव भी नहीं किया। बाहर की बातें अनन्त शुभाशुभ परिणाम की बातें सुनी या उसके फल की बातें सुनी है। देखे हुए, सुने हुए और अनुभव किये हुए ऐसे भोगों की वांछारूप... क्योंकि वह देखा, उसके ऊपर उसकी बुद्धि है, रुचि है वहाँ। अनादि के पुण्य करे, उसमें रुचि वहाँ है। यह पुण्य फलेगा और अपने को स्वर्ग मिलेगा और हम सेठिया होंगे और बड़े अधिकारी होंगे। ऐसे मूढ़ की राग और पुण्यभाव के ऊपर जिसका प्रेम और रुचि है। ऐसे जीव को निदानबन्ध के परिणामों सहित... क्योंकि हेतु तो वहाँ पुण्य का पड़ा है। ऐसे हेतु सहित जो मिथ्यादृष्टि संसारी (अज्ञानी) जीव हैं, उसने पहले उपार्जन किये... देखो! ऐसे संसारी अज्ञानी जीव हैं, उसने पहले उपार्जन किये भोगों की वांछारूप पुण्य, उसके फल से... समझ में आया? वास्तव में अनुभव नहीं, इसलिए भोग की वांछा है, ऐसा कहा जाता है। सीधी रीति से भोग की वांछा हो, तब तो पाप परिणाम हो।

भोगों की वांछारूप पुण्य, उसके फल से प्राप्त हुई घर में सम्पदा... लो! समझ में आया? जिसे आत्मा अखण्डानन्द शुद्धस्वरूप का अन्तरदर्शन—सम्यग्दर्शन नहीं, इसलिए उसे पुण्य के फल की ही इच्छा है। यह भाषा ऐसी आती है न, भाई! समयसार

में भी (आती है)। भोग की, भोग की इच्छा अर्थात्? मूल तो भोग की ऐसी सीधी इच्छा हो, तब तो पाप है, परन्तु वह अनुभव सम्यग्दर्शन नहीं, इसलिए उसकी भावना नहीं, इसलिए उसे राग के अनुभव की भावना है। ऐसे भोग की भावना ऐसी कही जाती है। समझ में आया? आता है न वहाँ, नहीं? बन्ध अधिकार में। 'धम्मं भोगणिमित्तं' भोगनिमित्त अर्थात्? भोग के निमित्त से करे तो पाप होता है। यह शब्द उन्होंने लिये हैं। आचार्यों ने तो जो परम्परा समयसार आदि की बात है, वही परम्परा की बात रखी है, कुछ फेरफार नहीं। भोगों की वांछारूप, ऐसा शब्द प्रयोग किया है, देखो! वहाँ भी ऐसा प्रयोग किया है कुन्दकुन्दाचार्य ने 'धम्मं भोगणिमित्तं'। धर्म अर्थात् शुभभाव भोग के कारण से। अनुभवन तो है नहीं। आत्मदर्शन क्या है, ज्ञान क्या, वस्तु क्या है, उसका भान नहीं। इसलिए उसका हेतु राग के दया, दान, व्रत के परिणाम हैं। हेतु वहाँ बँध गया है। उसके ऊपर उसका अनुभव है, उसका उसे भोग है, उसके फल में उसे पुण्य बँधेगा। इच्छा वहाँ है। इस अपेक्षा से इच्छा वहाँ कही है। वरना ऐसे भोग मुझे मिले ऐसी सीधी भावना होवे तो पाप है। समझ में आया?

भोगों की वांछारूप पुण्य उसके फल से प्राप्त हुई घर में सम्पदा... ऐसे पुण्य के कारण से प्राप्त सम्पदा-ऋद्धि देखो न! ओहोहो! कितने पैसे मिलते हैं, लो! समझ में आया? इतने पैसे पैदा होते हैं कि घर में उन्हें कहाँ व्यवस्थित करना? (संवत्) १९८१ में एक व्यक्ति कहता था। चातुर्मास... मुझे पैसे इतने पैदा होते हैं कि पाँचा से इकट्ठे करूँ इतनी आमदनी है। (संवत्) १९८१ के वर्ष में। धारशीभाई। ८१। कितने वर्ष हुए? ४१ वर्ष हुए। परन्तु उसके पहले चातुर्मास रहने की माँग की थी ७९ में। हमारा हुआ फिर ८१ में। उसके पहले माँग की थी कि देखो तुम्हारा.... मुझे पैसे की इतनी आमदनी है कि पाँचा से... खंपाळी समझते हैं? यह खड कचरा इकट्ठा करने की। अर्थात् पैसे की आमदनी बहुत थी लाखों की, बहुत लाखों की आमदनी। तब तो बहुत पैसे कहलाते न करोड़पति कहलाते। धारशी कैसे? धारशी जीवण। गढडा के, कैरोसीन के बड़े व्यापारी। लाखों, बहुत लाखों की आमदनी। देखो, चातुर्मास था, (इसलिए) दुकान बन्द की। भाई! वह हमारे मौका हो तब रहा जाये। तुम्हारी माँग से और तुम निवृत्त होकर आओ,

इसलिए रहें ऐसा कुछ है नहीं। फिर ८१ में हुआ और आये थोड़ा। ... नहीं आये थे। समझ में आया ? फिर तो सब विवाद उठे न सबको।

यहाँ कहते हैं, इस पुण्य के फल में घर में सम्पदा मिलेगी। आत्मा की शान्ति नहीं मिलेगी। मिथ्यादृष्टि की पुण्य के ऊपर प्रीति है, अज्ञानी को पुण्य-शुभभाव के ऊपर दया, दान, व्रत के परिणाम, यह शुभ है, इनके ऊपर अज्ञानी की प्रीति और प्रेम है। मिथ्यादृष्टि को उसके पुण्य से पैसे मिलेंगे भविष्य में, सम्पदा मिलेगी देव आदि होगा। अभिमान-घमण्ड होगा उसे। पाँच-पाँच ऐसे दस-दस लाख की मोटरें घर में हो, ऐसे-ऐसे बड़े बँगले बीस-बीस लाख के बँगले बड़े। ओहोहो! ऐसा ही हो जाये उसे कि मैं ही परमेश्वर हूँ अभी। आमदनी करनेवाला ही मैं हूँ, इसलिए मेरे अतिरिक्त दूसरा प्रभु और कहाँ था ? प्रभु होगा कोई उसके घर में। यहाँ तो डालते हैं, ऐसे निकलते हैं। ... डालते हैं वहाँ पैदा होते हैं, लो! फट... फट... फट... आहाहा! कहो, मनसुखभाई!

ऐसे हैं न अपने बनिया में अभी पैसे नहीं, वे कैसे ? शान्तिलाल खुशाल, गोवा में ४० करोड़ रुपये। पचास हजार की आमदनी एक दिन की पचास हजार की। जोरावरनगर में है न, मकान है जोरावरनगर में। शान्तिलाल खुशालदास पानसणावाले। अभी गोवा में है। चालीस करोड़ रुपये, दशाश्रीमाली। एक व्यक्ति उनका बहनोई कहता था, इससे अधिक होंगे। दिखता नहीं। धूल में भी उसमें आत्मा को क्या ? समझ में आया ? खाने बैठे तो कहे आलू दिये। भाई! तो यह कहे हम आलू नहीं खायेंगे। क्या जीव घुस गये हैं इसमें कहीं ? क्या घुस गया है इसमें ? ऐ... न्यालभाई! वह बेचारा कहता, हों! पोपटभाई। लड़के आये नहीं ? थक गये होंगे। आज गये थे न वन में।

मुमुक्षु : वन में घूमने गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। आ गये हैं। आ गये हैं। यह तुमको खबर नहीं। डेढ़ बजे, एक बजे आ गये। एक बजे आ गये हैं। यहाँ आ गये थे न हमारे पास। थक गये होंगे। समझ में आया ? इतने उन पैसे में... वह कहे, परन्तु इस आलू में अनन्त जीव हैं। क्या जीव घुस गये इसमें ? कहाँ घुस गया जीव ? भगतडा ऐसे के ऐसे। ऐसा है भाई तब। आँखें फट जाये। बुद्धि भ्रम हो जाये ? अब जन्मे-जन्मे। आलू में अनन्त जीव,

इतनी खबर नहीं? उसके एक कण में अनन्त आत्मायें हैं, एक शरीर में अनन्त जीव हैं। ऐसे असंख्य शरीर की टुकड़ी हुई है ऐसी। आलू की, शकरकन्द की, यह लहसुन की, यह क्या कहलाता है? प्याज, यह काई। पानी के ऐसे गोदड़े होते हैं न। एक टुकड़े में असंख्य शरीर है राई जितना टुकड़ा। उसमें एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुणे जीव हैं। जीव हैं, वे कहीं नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु मैं जीव हूँ और यह पूर्व के पुण्य के कारण यह मिला, और दूसरा कौन सा जीव था यहाँ? धीरुभाई! मगज फट जाता होगा अन्दर, कहते हैं।

घर में सम्पदा होने से अभिमान (घमण्ड) होता है, अभिमान से बुद्धि भ्रष्ट होती है,... फिर अभिमान से श्रद्धा भी रहती नहीं। जाओ, नहीं। हमने यह हाथ से पूर्व में किया, वह अभी हम भोगते हैं। देखो! बादशाही से भोगते हैं। बुद्धि भ्रष्टकर पाप कमाता है,... यह राजा, महाराजा हों बड़े, पाप बाँधे, जाये नीचे नरक में। पूर्व के पुण्य के कारण करोड़, दो करोड़ का तालुका मिला हो। और पाप से भव-भव में अनन्त दुःख पाता है। लो! ऐसा पुण्य मिथ्यादृष्टियों का पुण्य पाप का ही कारण है। ऐसा कहना है। अभिमान के कारण से, हों! समझ में आया? 'सहितेन इदं पुण्यं' ऐसा है न? आराधना रहित करते-करते। यहाँ बात तो इतनी ही की है 'जनयति बुद्धिविनाशं च करोति।' बस, इतना पाठ, भाई! इतनी बात है।

जो सम्यक्त्वादि गुण सहित... परन्तु जो सम्यग्दर्शन आत्मा का भान हो, आत्मा ज्ञानानन्द अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, ऐसा सम्यग्दर्शन हो। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति सर्वज्ञपद का स्वभाव धारक ही मैं आत्मा हूँ, विकार आदि मेरे स्वरूप में नहीं, संयोग नहीं। मैं तो सर्वज्ञस्वरूपी हूँ। ऐसी अन्तर दृष्टि ज्ञान की, अनुभव की हुई हो, वह गुण आदि, सम्यक्त्वादि लिया है न? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप का चारित्र। उस सहित भरत चक्रवर्ती। लो! छह खण्ड के धनी भरत, जिसके घर में छियानवे करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव, छियानवें हजार स्त्रियाँ, बहत्तर हजार नगर, अड़तालीस हजार पाटण। कहो, समझ में आया? एक अंश अभिमान नहीं। अरे! यह चीज़ हमारी कहाँ है? जहाँ अन्दर एक शुभभाव दया का हो, वह भी हमारा नहीं, वह भी अहंकार

नहीं तो यह पूर्व के पुण्य जड़ के फल यह बाहर आये, यह हम उसमें नहीं और वे हमारे में नहीं। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव को गृहस्थाश्रम में रहा होने पर भी पुण्य के परिणाम से लेकर पूर्व के पुण्य के फल में उसे अभिमान होता नहीं। कहो, समझ में आया? जिसे पुण्य आदि के फल में अभिमान है, उसे आत्मा की दृष्टि नहीं। जिसे आत्मा की दृष्टि है, उसे पुण्य परिणाम से लेकर पर के फल में उसे अभिमान होता नहीं। कहो, समझ में आया?

चक्रवर्ती अर्थात् ओहोहो! जिसे इन्द्र जिसकी बैठक में साथ में आवे, इन्द्र जिसके मित्र। सोलह हजार देव (सेवा करे)। जिसके सिंहासन में इन्द्र बैठे, मित्ररूप से बैठे। आहाहा! यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। यह तो बाहर के वैभव ऋद्धि पूर्व के पुण्य की है, हमारा आत्मा नहीं उसमें और वे आत्मा से उपार्जित नहीं। पूर्व में ऐसा शुभभाव हुआ, आत्मा की शान्ति जली, शान्ति जली, उससे हुए शुभभाव, उससे बँधा पुण्य, उससे मिले ढेर। सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव को उसका अभिमान नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे गुणसहित भरत, सगर (चक्रवर्ती), रामचन्द्रजी... बलदेव तीन खण्ड के अधिपति रामचन्द्रजी पुरुषोत्तम पुरुष। एक अंश में अन्दर में पर का अभिमान नहीं, हों! राजपाट में दिखाई दे। पुण्यवन्त हैं, रत्न की पुतली जैसा उनका शरीर हो। समझ में आया? और महा हीरा आदि उत्तम करोड़-करोड़ के हीरा, ऐसे हीरा के हार पहने हों। वह मुर्दे पर हार डाला, ऐसा उन्हें होता है। आहाहा! समझ में आया? यह मुर्दे को पालिश के लकड़ियों से सुलगावे, वह मुर्दा प्रसन्न नहीं। और बड़े लकड़े लोहे के तीन-तीन मण के जैसे लकड़े रखे ऊपर और सुलगावे तो वह कहीं नाराज नहीं।

सम्यग्दृष्टि जीव, आहाहा! संयोग में और संयोग के भाव में अभिमान नहीं। उस चीज़ में मैं नहीं, वह चीज़ ही मैं नहीं। आहाहा! मेरी सम्पदा तो केवलज्ञान का कन्द प्रभु भगवान आत्मा है। उस सम्पदा के आगे यह सम्पदा तो धूल पुण्य का फल है। वह धर्मी इसके अभिमान में अहंकार उसे, घमण्ड उसे होता नहीं, उसे घमण्ड होता नहीं। इसे तो थोड़े से जहाँ पाँच, पचास लाख मिले, वहाँ मैं चौड़ा और गली सकड़ी, ऐसा

चले। ऐसे हाथ दो पैर ऊँचे ऐसे हाथ से चले ऐसा। ऐसा। हाथ तो ... परन्तु जब पाँच, पचास लाख मिले और दो, चार, पाँच, दस लाख की आमदनी हो वर्ष की... धीरुभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : मनुष्य तिर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : तिर जाये। क्या करे? सामने ऊँट आवे तो तिर जाता है या नहीं वह? उसको जरा हाथ चौड़ा करता हो न, ऐसा कहना है यहाँ। वह मानो इसमें भटकेगा। ऊँट आवे तो तिरना। इसी प्रकार यह भी एक बड़ा ऊँट है। दूसरा क्या है? समझ में आया? आहाहा!

सगर और राम। आहाहा! राम जैसे पुरुष ऐसे महापुरुष। क्षमा, हमारा कोई दुश्मन नहीं। हमारा कोई वैरी जगत में है ही नहीं, हों! यह रावण है न? वह तो ऐसा कोई पूर्व का पाप का उदय ऐसा संयोग आवे। संयोग आवे, वह कहीं हमको नुकसान करता है, ऐसा नहीं। अनुकूल संयोग, वह हमको लाभ करता है, ऐसा नहीं। हमारी सम्पदा तो हमारे पास ही है। अन्तर्मुख चैतन्य के निहाल में जिसे बाहर की सम्पदा का अंश भी अन्तर के कारण से अभिमान आता नहीं। समझ में आया?

यह युद्ध में ऐसा है। राग जरा द्वेष आ जाता है। अरे! यह नहीं, हों! नहीं। अस्थिरता हो जाती है, अस्थिरता हो जाती है। यह युद्ध की क्रियायें भी हाथी के ऊपर बैठे हों और ऐसे बाण चलते हों। जानते हैं कि अरे! यह अजीव की प्रवृत्ति का परावर्तन यह सामने दिखता है। द्वेष का अंश जो आता है, वह जहर है, हमको शान्ति की लूट पड़ती है। इसलिए उसके अन्दर द्वेष के भाव का भी आदर नहीं। ठीक होता है — ऐसा नहीं। उसे हेयबुद्धि वर्तती है। आहाहा! समझ में आया?

सगर (चक्रवर्ती), राम पाण्डवादिक... देखो! पाण्डव—धर्मराजा, भीम, अर्जुन इतनी शक्तियाँ, इतनी शक्तियाँ, इतनी शक्तियाँ हैं। निर्मान-निर्मान है। कुटुम्ब में क्लेश हो तो कहे, भाई! उसे यह हो तो उसे चाहिए होगा। अपने दे दो। तो भी नहीं माने, इसलिए युद्ध किया तो सामने जरा युद्ध करने का भाव आवे, तथापि उसे खेद है। समझ में आया? अरे! अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत जिसे नजर में आया है, जिसे सम्यग्दर्शन में

आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान का पर्वत जिसे प्रतीति में आया है, उसे यह वह रंक, विष्टा और जहर जैसे राग के ऊपर उसे प्रेम कैसे होगा ? समझ में आया ?

पाण्डवादिक विवेकी जीव हैं, उनको पुण्यबन्ध अभिमान नहीं उत्पन्न करता,... बात ऐसी है। उनको... क्या कहा ? 'सम्यक्त्वादिगुणसहितं पुण्यबन्धवत्' बस इतना। उन्हें पुण्य का फल अभिमान नहीं करता। हम जिसमें नहीं, उसमें हम कैसे मानें ? जिसमें हम नहीं, उसे हम कैसे माने ? जिसमें हम नहीं, उन्हें हमारा कैसे मानें ? समझ में आया ? शरीर, पुण्य फल ढेर (हो)। अरे, प्रभु! यह तो दुनिया के धूल के ढेर हैं। आहाहा! उमसें हम नहीं, वे हमारे कैसे कहलायें ? और जो हमारे हों, वे हमसे भिन्न कैसे रहें ? समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि को अपना आत्मा नजर में दिखता है। संसार में होने पर भी, छह खण्ड के राज में पड़ा होने पर भी। भरत को छियानवे हजार स्त्रियाँ थीं। छियानवे हजार स्त्रियाँ। कहलाती है। उन्हें थी ? कि नहीं। उन्हें नहीं थी और कहना, वह व्यवहार है। समझ में आया ? उन्हें थी अनन्त ऋद्धि का धनी आत्मा, उसकी सम्पदा में था। आहाहा! उन्हें पूर्व में पुण्य किये हुए, समाये नहीं इतने पुण्य, इन्द्र आकर सेवा करे। भरत! आवश्यकता पड़े तो हमको याद करना। इन्द्र आकर कहे, भरतजी! आवश्यकता पड़े तो हमको याद करना। ओहो! यह कहे वे देव करके क्या करेंगे हमको ? समझ में आया ? हमारी सम्पदा की प्राप्ति में बाहर की किसी की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार पर का अभिमान छोड़कर उसे अहंकार और घमण्ड नहीं होता, बस इतनी बात है। समझ में आया ?

यह गाथा तिलोयपण्णति में भी ली है। ५२। लिखा है न इसमें। पृष्ठ ८७९ तिलोयपण्णति भाग-२, गाथा-५२। लिखी है तब। ऐसे लेखन शास्त्र में आवे, उसे समझे नहीं। आहाहा! पढ़ा न पूरा ? या थोड़ा बाकी है ? धीरे-धीरे पढ़ना। सर्वज्ञ की चर्चा पढ़ने जैसी आयी है। बाद में पढ़ना। कोई सुमतिप्रसाद और मुख्त्यार दो की। 'मु' और 'सु' ऐसा लिखा है उसमें। दोनों समझे नहीं केवलज्ञान अर्थात् क्या। कोई दूसरा है, उसे समझण नहीं। कौन होगा कोई सुमतिप्रसाद, सहारनपुर का ... सहारनपुर का लगता

है। अनुमान लगता है। सिद्ध पहले हो, इसलिए सादि-अनन्त भगवान देखे। भगवान अनादि न देखे, यह और उसने—सुमतिप्रसाद ने कहा। वह कहे ऐसा नहीं। अनादि-अनन्त होते हैं। तब भगवान ने तो भविष्य सब देखा। सब भले देखा हो परन्तु उसमें ऐसा है। अनियत हो, उसे अनियत से भगवान देखते हैं, फलाना है, ऐसा करके बहुत डाला है अन्दर। आहाहा! यह तो सवेरे का विषय वह आया था, उसमें आज बराबर सामने आया है। आवे, आवे।

भाई! भगवान तो सर्वज्ञ हैं न! वे तो अनादि-अनन्त है, ऐसा जानते हैं। कहीं जीव की आदि है (कि) वे आदि जाने? और आदि नहीं, इसलिए उन्होंने नहीं जाना, ऐसा है? भाई! अनादि माना, इसलिए जाना नहीं उन्होंने। उसने यहाँ तक लिया है कि संख्या है न अनन्त काल की अनन्त, तो उसमें एक, दो से शुरु होता है, अनन्त जाना उसे एक से जानना चाहिए। यह शुरुआत हो वह सामनेवाला पूछे। ऐसा नहीं होता। ऐसा करके अनादि-अनन्त है, ऐसा तो कहा है। परन्तु पदार्थ है, उसमें पदार्थ का जैसा होता है, वैसा भगवान ने कहा है। जाना है, ऐसा नहीं कहा वापस। और ऐसा कहा है, तत्प्रमाण जाने तो यह विवाद अपने समाप्त हो जायेगा। ऐसा अन्त में यह लिखा है। आहाहा! अरे! यह विवाद समाप्त हो तब तो हो गया न।

सर्वज्ञ भगवान एक समय में तीन काल-तीन लोक, तीन कालवर्ती है, वह एक समय में ऐसा जाने। वहाँ तो सब स्पष्टीकरण हो गया। जिस समय जिस द्रव्य की पर्याय उपादान से हो, तब होती है, निमित्त साथ में होता है... उसमें इससे यह हुआ, (ऐसा) रहता नहीं। तथा सर्वज्ञ ने देखा, वैसा होगा। 'जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा, अनहोनी कबहुं ने होसी काहे होत अधीरा?' ऐसी दृष्टि जिसे हुई, उसे तो निमित्त और विकल्प की रुचि हट गयी। सर्वज्ञपद मेरा है, ऐसी दृष्टि हुई। इसलिए उसमें व्यवहार पहला, निश्चय बाद में, (ऐसा) आता नहीं। आहाहा! सर्वज्ञस्वभाव का निश्चय हुआ, तब राग बाकी रहा, वह व्यवहार कहलाया। तब वह चीज़ कौन थी, उस निमित्त का ज्ञान हुआ। इसमें निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार और क्रमबद्ध, सब सिद्धान्त सर्वज्ञ के निर्णय में आ जाते हैं, कोई बाकी नहीं रहता। क्या हो परन्तु? यह अब वह विवाद कोई....

यहाँ तो कहते हैं सम्यग्दृष्टि ने सर्वज्ञस्वभाव का निश्चय किया है। समझ में आया ? इसलिए उसे कोई क्रिया मुझसे होती है जड़ की, राग की — ऐसा मानता नहीं। इसलिए उसे किसी के ऊपर कुछ अभिमान है नहीं। किसे करूँ ? किसे दूँ ? कौन समझे, कौन समझे मुझसे ? मैं हूँ, वह मुझे समझकर स्थिर होऊँ, एक ही बात है। समझ में आया ? विकल्प का भी अभिमान नहीं। क्योंकि राग है, राग का कर्तृत्व नहीं, परन्तु राग आये बिना रहता नहीं। ऐसा ज्ञानी जानता हुआ राग के फल में, पुण्य के फल में उसे घमण्ड नहीं आता।

जैसे अज्ञानियों के पुण्य का फल विभूति गर्व का कारण है,... बस इतनी बात। अज्ञानी को पुण्य का फल विभूति आदि अभिमान का (कारण) घमण्ड होता है, घमण्ड ऐसा। सिर ऊँचा ऐसा अभिमान... अभिमान... **वैसे सम्यग्दृष्टियों के नहीं है।** सम्यग्दृष्टि अन्तर में स्थिर होता है। अज्ञानी बाहर में गर्व में मरता है। यह हमारे, यह हमारे। समझ में आया ? बहुत वर्ष की एक बात थी। मुम्बई में माल लेने गये न, एक दिन माल बहुत। दो टिकिट ली। माल बहुत। फिर एक महा संसार का खटपटी, अटपटी साथ में आया हुआ साथ में। वह टिकिट ले न, क्या कहलाये दो पैसे की ? पास, पास। वह पास लेकर अन्दर का माल बहुत और दो टिकिट और तुम पास लेकर क्या करते हो तुम यह ? माल तो हमारा इकट्ठा है। मैं और कुँवरजीभाई दो थे। पास लेकर दो, पाँच व्यक्ति इकट्ठे आये और माल बहुत। कहा, यह न्याय है ? भगतडा समझता नहीं। भाई ! क्या करते हो ? तिलक लगाये बड़ा ऐसा, हों ! मन्दिरमार्गी थे। यह क्या कुकर्म की बातें ? समझ में आया ? ऐसा अभिमान चलने का, बोलने का, ऐसा चालाक... चालाक... चालाक... हों ! वापस व्यभिचारी। हमको उसकी सब खबर सभी बातों की। परन्तु ऐसे होशियार ऐसा, किसी को खबर नहीं होती। क्या कहलाता है ? टिकिटवाला। टिकिट चेकर। फट-फट अन्दर घुसे और फट-फट माल रखे अन्दर चढ़ा दे। अब वहाँ तुम्हारा गाँव है पालेज। अब वहाँ तुम्हारे दिक्कत नहीं। अब भी दिक्कत नहीं, यह दिक्कत। ऐई ! धर्मचन्दजी ! हमारे विवाद तो सब बहुत उठता हो उसमें भी। यह नहीं होता। परन्तु ऐसी चतुराई, यह चतुराई नहीं कहलाती। यह कुकर्म कदाचित यदि वह पकड़े न, इसमें भाव तो तुम्हारा देखो। दो व्यक्तियों को डेढ़ मण हो, ऐसा था न तब, ऐसा था भाई ! एक

व्यक्ति तब पौण मण था। अब जो हुआ हो वह सही। तब एक टिकिट का पौण मण था, दो में डेढ़ मण था तब। यह तो बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९६६-६५-६४ की बात है। ...! डेढ़ मण का आठ मण कहाँ डालते हो तुम, कहा, साथ में? डालो न माल के उसमें भले पैसा आवे। नहीं। वह चतुराई माने, उसे बुद्धिवाला। बुद्धि में भ्रष्ट हो गया है। समझ में आया?

यह संसार के होशियार कहलाये। ऐसे कैसे काम लेना और कैसे पार पाड़ना, यह सब चतुराई के काम हैं। कैसे होगा? क्योंकि सब हमने देखा है न, दुकान में भी सब देखा है। माल लेने बाहर जाते थे सब किसी का देखा हुआ छोटी उम्र में। अरे! यह वह गड़बड़ उल्टी! क्या करते हैं यह लोग? सीधे प्रकार से बात करके सीधी रीति से कहो। पैसा देना पड़े पाँच रुपया तो देकर दे देवे। परन्तु ऐसा करके क्या? वहाँ दुकान में आमदनी बहुत है। इतने एक पच्चीस रुपये में या दस रुपये में अन्तर करेगा, उसमें क्या घट जानेवाला है? कहा। दुकान में आमदनी चलती है। ऐसे के ऐसे। उसे वापस माने घमण्ड और उसको माने हलका। जानकारी नहीं। धर्मचन्दजी! यह बात है? आहाहा!

मम् अहंकार विकल्प... कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को ऐसा अभिमान नहीं होता। वे सम्यग्दृष्टि पुण्य के पात्र हुए... देखो, भाषा! धर्मी तो महा पुण्य के पात्र। उनके घर में पुण्य हो, ऐसा मिथ्यादृष्टि को होता नहीं। पूर्व में पुण्य बाँधा हुआ सम्यग्दृष्टि ने। उसके घर में चक्रवर्ती, बलदेव, तीर्थकरपना जिसे फले (-आवे)। सम्यग्दृष्टि के पुण्य ऐसे। मिथ्यादृष्टि के ऐसे पुण्य हो सकते नहीं। वे तो पुण्य के पात्र हुए... समझ में आया? 'पुण्यभाजनाः' है न अन्दर, संस्कृत है। 'यदि पुनः सर्वेषां मदं जनयति तर्हि ते कथं पुण्यभाजनाः सन्तो' ऐसा है न? पुण्य के भाजन। समझ में आया? चक्रवर्ती आदि की विभूति पाकर मद अहंकारादि विकल्पों को छोड़कर... आहाहा! हम तो भगवान् शुद्ध चैतन्य हैं। यह पूर्व के पुण्य से यह मिला, उसका विकल्प वह भी हमारी चीज़ नहीं। उसका विकल्प छोड़कर, अहंकार छोड़कर वे स्वरूप में स्थिर हुए हैं। समझ में आया? विकल्पों को छोड़कर मोक्ष को गये अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्ती बलभद्र-पद में

भी निरहंकार रहे। लो! चक्रवर्ती के पद मिले, बलभद्र के पद मिले। तीर्थंकर की तो बात ही क्या करना! उसकी तो बात नहीं। वे पुरुष भी निरहंकार, निरभिमान, निरभिमान। आहाहा! समझ में आया? ऐसा ही कथन आत्मानुशासन ग्रन्थ में श्री गुणभद्राचार्य ने किया है,... क्या कहा? देखो, श्लोक है।

‘सत्यं वाचि मतौ श्रुतं हृदि दया शौर्यं भुजे विक्रमे लक्ष्मीर्दानमनूनमर्थिनिचये मार्गे गतिर्निवृत्तेः। येषां प्रागजनीह तेऽपि निरहंकाराः श्रुतेर्गोचराश्चित्रं संप्रति लेशतोऽपि न गुणास्तेषां तथाप्युद्धताः॥’

श्री गुणभद्राचार्य ने किया है कि पहले समय में ऐ सत्पुरुष हो गये हैं, कि जिनके वचन में सत्य,... था। बड़े बलभद्र, चक्रवर्ती, तीर्थंकरगोत्र की क्या बात करना! परन्तु कहते हैं कि जिसके वचन में सत्य तिरता, सत्य नितरता। आहाहा! पुण्य के ढेर। अकेले परमेश्वर हों, अज्ञानी तो परमेश्वर माने, ऐसे पुण्य हो बलभद्र आदि के। जिसके वचन में सत्य नितरता हो। बुद्धि में शास्त्र... देखा! वचन में सत्य, बुद्धि में शास्त्र रमता हो। आहाहा! मन में दया... बुद्धि में शास्त्र का ज्ञान है, मन में दया—दूसरे प्राणी को नुकसान नहीं करना, ऐसा उनका भाव होता है। पुण्य के महा पुतले! एक क्षण में यदि विरुद्ध करे तो सबका कर सके, ऐसा (तो भी) नरमाई... नरमाई... नरमाई...

मन में दया, पराक्रमरूप भुजाओं में शूरवीरता,... हाथ में शूरवीरता, बड़े सिंह को पकड़ना हो तो कानबुट्टी पकड़कर खड़ा रखे। पीछे से पूँछ की यदि छोर जरा हाथ में आयी, ऐसे दबावे वहाँ पेशाब निकल जाये उसको (शेर को)। इतने शूरवीर, परन्तु अहंकार नहीं, हों! आहाहा! सामने जो कान पड़ा, मुख आया हो तो कान पकड़ा हो अन्तिम टीशी कान की। ऐसे पकड़े। लींड़ा निकाले। यह वह कौन है? और पीछे के भाग में उसने पूँछ पकड़ी हो ऐसे जाता हो और पीछे का जरा सा टीशी अन्तिम ऐसा (पकड़े)। इतना उसमें बल होता है, कहते हैं, तो भी वे निर्मानी हैं, ऐसा कहते हैं। भुजा में इतना बल होता है कि सिंह को ऐसे-ऐसे खड़ा रखे ऐसा करके, हों! पूँछ का एक भाग यदि ऐसे स्पर्श, वहाँ वह खड़ा हो जाये। यह वह कौन है? दहाड़ कर सके नहीं वह। ऐसा जिनकी भुजा का बल, वे भी मद में, अभिमान में आते नहीं थे।

आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ तो जरा शरीर का बल थोड़ा सा हो, वहाँ तो तुमको ऐसा करूँगा, ऐसा करूँगा। खड़े नहीं रहने देंगे, हों ! गाँव में पेशाब खोद डालूँगा तेरा होगा तो भी, खड़े रहने की जगह नहीं मिलेगी तुझे गाँव में। ओहोहो ! क्या होगा मानो ! कितने का अधिपति और कितने का धनी।

भुजाओं में शूरवीरता, याचकों में पूर्ण लक्ष्मी का दान,... कितना लेने आया है ? भाई ! क्या करना है तुम्हारे ? वह भी शरमा जाये कि अपने कितना माँगना ? कि मुझे पाँच हजार की आवश्यकता है। अरे ! इतना ही वह ? वह कहे इतना ही वह ? ले जाओ भाई ! यह पैसा तुम्हारा ही है। याचक माँगे, वह दे। ऐई ! समझ में आया ? ढेर करोड़ों, अरबों रुपये की बड़ी पूजा करते और ऐसी कीमत है, उसकी पूजा निकाले बड़ी चक्रवर्ती। कोई भी व्यक्ति आवे, माँगे उतना दे उसे। विशाल महोत्सव भगवान का महोत्सव करे वह पूजा का। किम इच्छम ? क्या इच्छा है किसी भी प्राणी की ? स्त्री, पुरुष, कोई बालक कोई भी माँगे, वह दे। दे दो। परन्तु कुछ हमने दिया, (ऐसा नहीं)। जगत की वस्तु है जगत की, उसके पुण्य होंगे वहाँ जायेगी। हमने दी नहीं, हमने दी नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके पात्रा-बात्रा तो ठीक। उसे तो चाहे जो हो, उसकी बात नहीं यहाँ। याचक आवे तो भी ऐसा नहीं, यह ले जा बापू, भाई !

एक दृष्टान्त नहीं था ? एक दृष्टान्त था। समझे ? बड़ा करोड़पति होगा वहाँ वे लोग लेने गये कि हजार, दो हजार दे तो ठीक। वहाँ लेने गये पाँच व्यक्ति इकट्ठे होकर। वहाँ बीड़ी-बीड़ी पीते-पीते वह दियासलाई रह गयी न इतनी ठूँठा तो डाला उस बॉक्स में। इससे माँगना कैसे ? यह ठूँठा यहाँ डालता है। भाई क्यों आये हो ? साहेब ! आपसे आशा करके आये हैं। क्या आशा है ? बहुत ऐसा ठूँठा दिखा तो माँगना कितना ? ऐ... मोहनभाई ! दस हजार रुपये। जाओ भाई ! दस हजार की चिट्ठी (दे दी)। वे कहे भूले। समझ में आया ? लौकिक में ऐसे हों सज्जनरूप से जीव अभी, हों ! दस हजार भाई ! तुम्हें अधिक चाहिए है ? परन्तु अधिक कहना कैसे ? पहले से इतना कहा न ! चाहिए

तो ले जाओ, हों! आवश्यकता पड़े तो फिर से आना। हों! यह पैसे तुम्हारे ही हैं। ऐसा बोले। लौकिक सज्जन की बात है। यह तो धर्मी की बातें तो क्या करना! आहाहा! जो जगत की चीज़ है, पुण्य का जिसे योग होगा, वहाँ जायेगी। उसमें हमारा विकल्प भी क्या काम आवे और वहाँ वह वस्तु जाये, उसमें हमारा क्या अधिकार है? इतनी अन्दर में नरमाई, नरमाई। सम्यग्दृष्टि इतना नरम होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

देखो न! भुजा में शूरवीरता वापस कही है। अवसर आया हो तो कठोर ...आया हो तो तोड़ डाले। यह करे। परन्तु उस जाति का विकल्प आवे और शरीर से काम ऐसे होना हो तो हो। तथापि उसे अन्दर अभिमान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। परन्तु दोनों कह दिया है न! आहाहा! वापस क्या कहा है? याचकों को पूर्ण दान, हों! समझे न? 'विक्रमे लक्ष्मीर्दानम्'। 'अनूनम्' है न? 'अर्थिनिचये मार्गे' देखो! कम न दे। आहाहा! पैसे के प्रमाण में... यह मनुष्य हमारे यहाँ आया, हमारे यहाँ आया माँगने? अरे! हम शरमाते हैं। माँगना (आया है)। बापू! चाहिए वह ले जा। ऐसे धर्मात्मा आत्मदृष्टिवाले साधन हो तो बापू! वह तो बाहर के साधन हैं, भाई! उनसे कहीं आत्मा को लाभ नहीं। उस आत्मा को लाभ तो स्वरूप में एकाग्र हो, उतना हमको लाभ है। उन चीजों में कोई मन्द विकल्प आया, ले जा बापू! ले जा। समझ में आया? वह तो दे तो और दो शब्द चोपड़ते जाये। देखो, यह तुमको देते हैं, परन्तु तुम्हारा व्यवस्थित हम देखेंगे तो तुमको देंगे। कहते हैं अभी कि दस हजार देने हैं, परन्तु तुम्हारा काम बराबर चलता दिखेगा, व्यवस्थित होगा तो दूँगा। वरना यदि अब काम करनेवाले व्यवस्थित नहीं हो तो... ऐसा पहले से ही गाली देता जाये। बहुत ऐसे होते हैं न, तुम्हारा काम बराबर व्यवस्थित नहीं, ऐसा हमने सुना है। इसलिए हमारे देने का भाव (नहीं है)। अब गाली दिये बिना इनकार कर न कि नहीं देना। समझ में आया? परन्तु गाली चोपड़ता जाये और घमण्ड ऐसा लगे। हम तो विवेक करके उसे देते हैं। तेरा लोभ पोसता है और अभिमान दूसरे को गाली दे तू मुफ्त में। धर्मचन्दजी! यहाँ तो धर्म की दृष्टि जहाँ प्रगटी है, भगवान् आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्य का भान है, उसे कहते हैं, लक्ष्मी देने में कमी नहीं होती, ऐसा यहाँ कहते हैं, हों! ऐसा है न भाई! 'अनूनम्' का अर्थ। न्यून नहीं, लक्ष्मी

का दान न्यून नहीं। आहाहा! माँग। कितना लूँ? ले जा न भाई! परन्तु कहाँ हमारी चीज़ थी? तू आया और तेरा पुण्य होगा, ले जा, बापू! आहाहा! समझ में आया?

और मोक्षमार्ग में गमन है,... लो! मार्ग में गति। स्वयं शुद्ध स्वभाव की अन्तर गति दृष्टि में पड़ी है, वहाँ गति करता है, ऐसा कहते हैं। विकल्प आया और यह सब उसका उसे नहीं। शुद्धस्वभाव चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान अनुभव किये हैं, उसमें उसका गमन चलता है। अन्तर रुचि का अन्तर रुचि में उसका परिणमन चलता है। उसे यह बाहर के अभिमान और घमण्ड होते नहीं। कहो, समझ में आया? **वे निरभिमानी हुए, जिनके किसी गुण का अहंकार नहीं हुआ।** ऐसी कोई चीज़ का उसे अहंकार आया नहीं। बहुत आ गया इसमें, नहीं? मेरा राज और मेरा हाथी और राज सब। अभिमान। छहढाला में आता है। किसका बापू? पच्चीस... मद का त्याग तो व्यवहार समकित में आता है। व्यवहार समकित में पच्चीस प्रकार आते हैं न? दोष। उनमें आठ मद का त्याग आता है। पच्चीस में वह तो आता है अभी। निश्चय समकित में तो कुछ विकल्प ही नहीं। वह तो शुभ विकल्प में ऐसे मद नहीं होते, हमारे नहीं होते, यह नहीं होता। जाति का, कुल का मद का त्याग होता है।

उनके नाम शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं, परन्तु अब बड़ा अचम्भा है कि इस पंचम काल में लेशमात्र भी गुण नहीं हैं, तो भी उनके उद्धतपना है,... समझ में आया नाम? अबुद्ध है न? **‘निरहंकाराः श्रुतेर्गोचराश्चित्रं संप्रति लेशतोऽपि न गुणास्तेषां तथाप्युद्धताः’** ऐसा है न? तो भी उद्धतपना है। जरा बुद्धि थोड़ा ज्ञान मिला, कुछ पैसे हुए, कुछ सम्पदा मिली, कुछ लड़के अच्छे निपजे, स्त्री अच्छी हुई, लड़कियाँ कुछ अच्छे घर में गयी, प्रत्येक का उद्धतपना हो उसे। हमको सब जानकारी है, तुमको तो एक भी ठिकाने लगाना आता नहीं। ऐई! आहाहा! आत्मानुशासन में गुणभद्राचार्य महा दिगम्बर सन्त हो गये हैं। उन्होंने सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में इस प्रकार से विवेक बतलाया है। समझ में आया? **अचम्भा है कि इस पंचम काल में लेशमात्र भी गुण नहीं हैं, तो भी उनके उद्धतपना है, यानी गुण तो रंचमात्र भी नहीं, और अभिमान में बुद्धि रहती है।** लो! यह ६०वीं (गाथा) कहीं।

गाथा - ६१

आगे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति से मुख्यता से तो पुण्यबन्ध होता है, उससे परम्पराय मोक्ष होता है, साक्षात् मोक्ष नहीं,... इतनी बात। उससे मोक्ष नहीं होता, इतनी बात है, परम्परा तो बाद में राग को टालकर होगा, ऐसा इसका अर्थ लेना है। पाठ तो इतना है। देखो, योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त मुनि जंगल में रहनेवाले ऐसे। उन्होंने यह परमात्मप्रकाश बनाकर पुण्य और धर्म का विवेक भिन्न किया है। पुण्य अलग चीज़ है, संवर-निर्जरा आत्मा के ध्यान और ज्ञान का हो, वह अलग चीज़ है। दया, दान, व्रत आदि के परिणाम पुण्य हैं, भगवान आत्मा की अन्तर अनुभव दृष्टि और ज्ञान, स्थिरता, वह धर्म है। ऐसे जीवों को देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा होती है। समझ में आया? मुख्यता से तो पुण्यबन्ध होता है,... मुख्यता शब्द पड़ा है सही न! 'मुख्यवृत्त्या पुण्यं' अर्थात् गौण वृत्ति, ऐसा इसमें से निकाला। फिर उस शुभभाव को छोड़कर क्रम से शुद्ध उपयोग प्रगट करेगा, तब उसे मुक्ति होगी।

१८८) देवहं सत्थहं मुणिवरहं भत्तिए पुण्णु हवेइ।

कम्म-क्खउ पुणु होइ णवि अज्जउ संति भणेइ ॥६१॥

श्री वीतरागदेव... सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर की श्रद्धा, वह शुभराग है, पुण्यभाव है। परद्रव्य है न? संवर-निर्जरा नहीं। पंचास्तिकाय में आया है, सर्वत्र बहुत जगह (आता है)। द्वादशांग शास्त्र... भगवान सर्वज्ञ ने कहे हुए शास्त्र, हों! अज्ञानी के कहे हुए नहीं, सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने कहे हुए शास्त्र। उनकी भक्ति। शास्त्र का बहुमान है। उसमें कुछ होगा नहीं? उसमें आया या नहीं कुछ? भक्ति करते हैं सवेरे, नहीं? छहढाला में आता है वह चित्र-चित्र। शास्त्र की भक्ति का चित्र आता है। शास्त्र की भक्ति सवेरे आ गया था, आज नहीं आया हो। वह आया था न। उसमें वापस दृष्टान्त दिया है। देखो! उसमें गृहीत मिथ्यात्व। देखो, वन्दन करता है। यह वह हिंसा करता है, उसे वन्दन करता है। एकान्तवाद दूषित विषयादि... श्रुत को अभ्यास... वन्दन करता है। लम्बा-लम्बा लिखा है, कुछ अन्दर पुस्तक रखी है। कुशास्त्र की भक्ति करता है। समझ में आया? वह पाप का कारण है। यहाँ तो सच्चे शास्त्र—सर्वज्ञ

परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग ने कहे हुए ऐसे शास्त्र की भक्ति पुण्य का कारण है।

और दिगम्बर साधुओं की... मुनिवर की व्याख्या। समझ में आया ? जिन्हें वस्त्र का तागा-धागा न हो। अन्तर में तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव हो, वीतरागदशा अन्तर में प्रगट हुई हो, सम्यक् अनुभवसहित, बाहर में अत्यन्त नग्नदशा हो, अट्टाईस मूलगुण के विकल्प उठते हों, वे भी पुण्य हैं। ऐसे मुनि की श्रद्धा करना, वह भी पुण्यभाव है। समझ में आया ? आहाहा ! निर्ग्रन्थ गुरु ऐसे मुनि दिगम्बर सन्त महान मोक्षगामी। परन्तु कहते हैं कि वे परवस्तु हैं न, उनकी भक्ति वह पुण्यभाव है। समझ में आया ? सवेरे आया था, नहीं ? साधारण आहार, पानी देकर मुनि को और संसार का नाश माने, वह कुशास्त्र है, ऐसा कहनेवाले कुशास्त्र हैं। छहढाला में आया था। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, **मुख्यता से पुण्य होता है,...** 'पुण्यं भवति' पाठ में तो ऐसा है, बस। **लेकिन तत्काल कर्मों का क्षय...** समझ में आया ? भक्ति यह 'पुण्यं भवति कम्मक्खउ पुणु, होइ णवि कर्मक्षयः पुनर्मुख्यावृत्या नैव भवति।' ऐसा टीका में डाला है। 'मुख्यावृत्या' शब्द है न ? **लेकिन तत्काल कर्मों का क्षय नहीं होता,...** शुभराग से कर्मक्षय नहीं होता। यह देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति पुण्य का कारण है। पाप से बचने के लिये शुभभाव समकिती को आये बिना रहता नहीं। भक्ति का भाव होता है, शुभभाव होता है, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, स्तुति, वन्दन होता है। सम्यग्दृष्टि उसे पुण्य का कारण जानता है। उससे रहित आत्मा का जितना सम्यग्दर्शन और आश्रय हुआ है, उतना संवर, निर्जरा को मोक्ष का कारण मानता है। ऐसे दो भाव सम्यग्दृष्टि को होते हैं। सम्यग्दर्शन हुआ तो कहीं शुभभाव न हो, ऐसा नहीं है। परन्तु मानता है कि यह पुण्यबन्ध का कारण है। पाप से बचने के लिये कषाय की मन्दता का भाव, ऐसा सम्यग्दृष्टि को भी आये बिना रहता नहीं। जानता है, हेयबुद्धि से जानता है। समझ में आया ?

'आर्यः शान्तिः' ऐसा शान्ति नाम आर्य अथवा कपटरहित सन्त पुरुष कहते हैं। ऐसा मायारहित सन्त पुरुष दिगम्बर कहते हैं, ऐसा कहते हैं। जो कपटी हो, वे तो उसमें—पुण्य में धर्म मनायेंगे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? हमारी भक्ति करो, तुम्हारा मोक्ष होगा, यह अज्ञानी कहते हैं कपटी बतावे ऐसा, यह यहाँ कहते हैं। सच्चे

धर्मात्मा सन्त दिगम्बर मुनि, वे अपने आत्मज्ञान में मस्त हैं। शुभविकल्प होता है, दूसरे उसकी भक्ति करते हैं, तथापि उसे कहते हैं कि बापू! यह तुमको हमारी भक्ति से शुभभाव-पुण्य है, हों! वह निष्कपटी निःशल्यव्रति। शल्यरहित सन्त ऐसा कहते हैं यहाँ। जिसे शल्य नहीं मिथ्यादर्शन, निदान आदि ऐसे सन्त मुनि आत्मध्यान में तीन कषाय (चौकड़ी) रहित वीतरागदशा प्रगट हुई है, ऐसे आचार्य ऐसा कहते हैं कि हमारी भक्ति से तुझे पुण्य होगा। समझ में आया?

अज्ञानी ऐसा कहते हैं कि हमारी भक्ति से तुमको मोक्ष होगा। समझ में आया? ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं, भाई! शान्ति, 'आर्यः शान्तिः' आर्य पुरुष और या तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाववाले शान्त हुए मुनि सन्त उसे कहते हैं कि बापू! हमारी भक्ति से, तुमको हमारे प्रति लक्ष्य है, उतना शुभभाव है। समझ में आया? ऐसा 'भणति' अर्थात् कहते हैं। अज्ञानी ऐसा मानता नहीं, अज्ञानी कहे हमको जीमाओ, हमको खिलाओ, हमारी भक्ति करो, तुम्हारा मोक्ष होगा जाओ, हम मोक्ष में जायेंगे, हमारे साथ में आना। ऐसा वीतरागी सन्त नहीं कहते। वीतरागी सन्त ढिंढोरा पीटकर ऐसा कहते हैं। मुख के सामने ग्रास हो और अच्छा नहीं लगता, कहते हैं लो! ऐसा कहे न भाई! तुम हमारी भक्ति करो, तुम्हारा मोक्ष हो जायेगा। नहीं। तुमको शुभभाव होगा। तुम्हारा सम्यक् आचरण जितना यह स्वद्रव्य का आश्रय किया है, उतना तुमको मुक्ति का मार्ग है। हमारी भक्ति, वह पुण्य है। ऐसा सन्त, सच्चे साधु इस प्रकार से कहते हैं, इस प्रकार से इसे मानना चाहिए।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल ७, शुक्रवार, दिनांक - २८-०१-१९६६

गाथा - ६१ - ६२, प्रवचन - १११

परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग ।

भावार्थ :- सम्यक्त्वपूर्वक जो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करता है, उसके मुख्य तो पुण्य ही होता है,... आत्मा के सुख की दृष्टि हुई है, आत्मा में आनन्द के पिपासु हैं। सम्यग्दृष्टि अपने अतीन्द्रिय आनन्द के पिपासु हैं। अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण प्रगट हुआ नहीं, परन्तु अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा है, वह पुण्य-पाप के राग से उसकी भिन्न चीज़ है और स्वभाव की शुद्धता से भरपूर आत्मतत्त्व है, ऐसा अन्तर में एकत्वबुद्धि से सम्यग्दर्शन हुआ है। ऐसे सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावक या समकिती कोई भी देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करे तो उसमें शुभभाव की पुण्यता आती है। **मुख्य तो पुण्य ही होता है, और परम्परा मोक्ष होता है।** अर्थात् कि वह राग घटाकर क्रम-क्रम से मोक्ष होगा। समझ में आया? वह राग घटाकर क्रम-क्रम से मोक्ष जायेगा। वर्तमान तो इतना पुण्यभाव देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का बहुत उल्लास भाव आये बिना रहता नहीं।

जो सम्यक्त्वरहित मिथ्यादृष्टि हैं,... आत्मा की दृष्टि ही खिली नहीं, स्वरूप शुद्ध है, उसका आनन्द दृष्टि में भासित नहीं हुआ, ऐसा मिथ्यादृष्टि वह जो समकितरहित है, **उनके भाव-भक्ति तो नहीं है,**... वास्तव में भाव आत्मा की भक्ति तो नहीं, तथा परमात्मा के प्रति भी वास्तविक भक्ति का भाव नहीं। क्योंकि रागरहित की चीज़, रागरहित की चीज़ अपनी, उसकी दृष्टि तो की नहीं, इसलिए वीतराग के प्रति वास्तविक भक्ति तो व्यवहार से भी उसे आती नहीं। **लौकिक बाह्य भक्ति होती है,**... उसे शुभभाव होता है, देव-गुरु-शास्त्र की व्यवहार श्रद्धा आदि, परन्तु वह बाह्य भक्ति कहलाती है, लौकिक भक्ति कहलाती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : परमात्मा की तो कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा अर्थात् पर परमात्मा की भक्ति, उसे व्यवहार लौकिक भक्ति है। अन्तर परमात्मा रागरहित है, उसकी दृष्टि में आया नहीं। उसे वास्तव में पर परमात्मा के प्रति भी यथार्थ (भक्ति नहीं)। वीतराग के प्रति जो उल्लास वीतराग दृष्टि से उल्लसित होना चाहिए, वह उसे उल्लसित नहीं होता। समझ में आया ?

आत्मा राग और पुण्य-पाप विकल्परहित चीज़ है, ऐसी अन्तर दृष्टि हुए बिना उसे वीतराग पूर्ण स्वभाव का माहात्म्य ही अन्दर में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? जिसकी दृष्टि ही पुण्य-पाप के परिणाम की एकत्व में पड़ी है, उसे रागरहित चीज़ क्या है, उसकी दृष्टि और भान तो हुआ नहीं। इसलिए पूर्ण वीतराग की दशा ऐसी होती है, ऐसा उसे अन्तर में माहात्म्य आता नहीं। लौकिक भक्ति करे। लौकिक अर्थात् बाहर से तो उसकी भक्ति अधिक दिखाई दे ऐसे, परन्तु अन्तर में उसे लौकिक भक्ति कहा जाता है। बाह्य भक्ति कहो, लौकिक भक्ति कहो। उससे पुण्य का ही बन्ध है,... मिथ्यादृष्टिसहित है, ऐसे राग के कारण से पुण्यबन्ध होता है। कर्म का क्षय नहीं है। उसे अंश भी कर्म का क्षय नहीं। कर्म के और राग के अभाव—रहित चीज़ का जहाँ भान नहीं, उसके शुभराग में वह अकेला पुण्य बाँधे, उसे जरा भी कर्म का क्षय नहीं होता। समझ में आया ?

ऐसा कथन सुनकर श्री योगीन्द्रदेव से प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया। हे प्रभो! जो पुण्य मुख्यता से मोक्ष का कारण नहीं है,... ऐसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाग मुख्यरूप से मुक्ति का कारण नहीं तो त्यागने योग्य ही है,... वह पुण्यभाव छोड़नेयोग्य है, ऐसा प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया। वीतरागस्वभाव आत्मा, वह आदरणीय है, और ऐसा भाव आदरणीय नहीं तो फिर त्यागने योग्य ही है, ग्रहणयोग्य नहीं है। ऐसा शुभभाव ग्रहणयोग्य नहीं रहा। जो ग्रहणयोग्य नहीं है, तो भरत (चक्रवर्ती), सगर (चक्रवर्ती), राम, पाण्डवादिक महान पुरुषों ने निरन्तर पंच परमेष्ठी के गुणस्मरण क्यों किये ? समझ में आया ?

‘निरन्तरं पञ्चपरमेष्ठीगुणस्मरणदानपूजादिना निर्भरभक्ताः’ निरन्तर का अर्थ ? भाषा तो ऐसी ही आवे न! उसे शुभराग की वृत्ति भगवान के प्रति होती है। निरन्तर

उनकी भक्ति में एकाकार है, ऐसा नहीं, यहाँ तो अपेक्षा से बात है। समझ में आया ? अपना शुद्धस्वभाव, उसकी दृष्टि हुई है, किसी समय उपयोग उसमें भी लागू पड़ जाता है, परन्तु उसे भगवान के प्रति, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति बहुमान अन्तर में होता है, इसलिए उसे निरन्तर भक्ति है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? **महान पुरुषों ने निरन्तर पंच परमेष्ठी के गुणस्मरण क्यों किये ?** अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु वीतरागभावमय पाँच पद का स्मरण क्यों किया ? क्योंकि उसमें तो पुण्य बँधता है, पुण्यबन्ध तो त्यागनेयोग्य है। त्यागनेयोग्य हो तो क्यों उन्होंने पुण्य उपार्जन किया ? समझ में आया ?

दूसरी बात, और दान-पूजादि शुभ क्रियाओं से पूर्ण होकर... है न ? 'निर्भरभक्ताः सनतः किमर्थं पुण्योपार्जनं कुर्युरिति।' निर्भर है न भक्ता। समझ में आया ? दान-पूजादि शुभ क्रियाओं से पूर्ण होकर... दान किये, पूजा की, भक्ति की, ऐसा पूर्ण हुआ। ऐसी शैली है न ? वह पूर्ण आया था न वहाँ अपने ? अन्योन्य, नहीं आया था ? 'लक्ष्मीर्दानमनूनमर्थनिचये मागे' ६० में आया था न। पूर्ण लक्ष्मी का दान किया। वह अर्थ इस अपेक्षा से। उसने जो माँगा था, वह दिया। ले भाई ! यह पुण्य कहलाता है, ऐसा। अपेक्षा से समझना चाहिए न ! यहाँ भी वीतराग, ओहो ! वीतरागी सन्त, साधु, वीतरागी आचार्य, वीतरागी उपाध्याय और वीतरागी अरिहन्त और सिद्ध के प्रति गुणग्राम क्यों किये ? मुनियों को दान और भगवान की पूजादि शुभक्रिया पूर्ण होकर क्यों पुण्य का उपार्जन किया ? पुण्य तो त्यागनेयोग्य कहते हो तुम। पुण्य तो मोक्ष का कारण नहीं।

तब श्रीगुरु ने उत्तर दिया कि जैसे परदेश में स्थित कोई रामादिक पुरुष... परदेश में स्थित कोई रामचन्द्र आदि पुरुष। मूल सीताजी को राम का प्रेम है न, उसका दृष्टान्त अधिक दिया है। अपनी प्यारी सीता आदि स्त्री के पास से आये हुए... समझ में आया ? सीताजी को ले गये न। उनकी खबर कोई लावे तो रामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं। अपनी प्रिय स्त्री के पास से आये हुए किसी मनुष्य से बातें करता है... भाई ! तू कैसे आया ? कहाँ से आया ? सीताजी के पास से। क्या कहता है ? वे कैसी हैं ? उनकी स्थिति कैसी है ? ऐसा पूछते हैं न ? बातें करता है-उसका सम्मान करता है,... आओ,

आओ, बैठो-बैठो। गाँव का व्यक्ति हो तो उसे साधारण गाँव में न पूछे, परन्तु वहाँ से लेकर आया हो तो उसका सम्मान करे, आदर करे। अहो! यह किसका प्रेम है? उस मनुष्य का प्रेम नहीं, उन सीताजी के प्रेम के लिये उसका बहुमान आता है।

और दान करता है,... लो! भाई! तुम्हारे कुछ चाहिए हो तो लो, हों! परन्तु रहो यहाँ एक दिन। बात करो, क्या है, कैसे है? करते हैं या नहीं? यदि गाँव को ढेढ़ हो विलायत में स्त्री के समाचार लेकर, तो भी कहे कि ... आज मेरे यहाँ आना। बापू! माँ ने तो पत्र दिया है, हाल लाओ। चल चल घर में। मोटर में बैठा दे। चूरमा दे ... ओहोहो! तू यहाँ कहाँ से? माँ ने पत्र दिया है, समाचार दिये हैं पुत्र के, पुत्रियों के, फलाना के, ढींकणा के। वे उस मनुष्य के लिए नहीं, गाँव में उस मनुष्य के सामने देखता भी नहीं था। वह समाचार लाया है, उसे वह स्वयं, मुख्यता से बात करता है, उसका सन्मान करता है और दान करता है। **ये सब कारण अपनी प्रिया के हैं,...** देखो! यह स्त्री के कारण से है, व्यक्ति के कारण से नहीं। **कुछ उसके प्रसाद के कारण नहीं है।** उसे प्रसाद करना उसके कारण से नहीं।

उसी तरह वे भरत, सगर, राम, पाण्डवादि महान पुरुष... धर्मात्मा। आहाहा! इतनी पुण्य की वृद्धि (तो भी) कुछ नहीं होता, कुछ नहीं। एक अंश भी नहीं। अरे! हमारी आनन्द सम्पदा तो भगवान् अन्तर (में) है न! एक राग का भी जहाँ अभिमान नहीं। उस ऋद्धि की जहाँ कुछ भी कल्पना देखने में नहीं आती। ऐसे अन्तर में राम, पाण्डव आदि महान पुरुष चक्रवर्ती। **वीतराग परमानन्द एकरूप मोक्ष से लक्ष्मी के सुख...** परमानन्दरूप लिखा है। परमानन्द एकरूप मोक्षलक्ष्मी। **परमानन्दरूप मोक्ष से लक्ष्मी के सुख अमृत-रस के प्यासे हुए...** देखो! आहाहा! प्यासे हुए, इसका अर्थ अमृतरस जरा भी नहीं और प्यासे, ऐसा नहीं। समझ में आया?

देखो! यह निश्चयसम्यग्दर्शन का वर्णन है। नीचे कहेंगे यह। **उनकी दृष्टि केवल निज परिणति पर है,...** निज परिणति प्रगट हुई है। समझ में आया? चक्रवर्ती पद में है, रामचन्द्र आदि के पद में, बलदेव के पद में है। पाण्डव भी राज में हैं। वे वीतरागी परमानन्दरूप मोक्ष की लक्ष्मी के सुख अमृत के प्यासे। ओहोहो! उनकी धगश तो अन्दर

अमृत आनन्द की अभिलाषा, तृषा लगी है। समझ में आया ? देखो ! यह निश्चयसम्यग्दर्शन का वर्णन करते हैं। कोई कहे कि संसार में उसे सम्यग्दर्शन निश्चय होता है या नहीं ? यह क्या कहते हैं ? जिस चीज़ को अन्तर में देखा है, उसकी पूर्ण आनन्द की पिपासा उसे है। धर्मचन्दजी ! आहाहा ! उसे ऐसे पुकार अन्दर से (उठते हों)। आहाहा ! वह अतीन्द्रिय आनन्द अनुभव में आया उसकी पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे अन्तर में पिपासा है। समझ में आया ? इतना राज-पाट, स्त्रियाँ हजारों, छियानवें-छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़े हैं परन्तु परम वीतरागी परमानन्द (के अभिलाषी हैं)। देखो न, भाषा क्या है ? वीतरागी परमानन्द एकरूप मोक्ष की लक्ष्मी के सुख के प्यासे। पूर्णानन्द ऐसा जो मोक्ष, उसके प्यासे हैं, उसकी उन्हें तृषा है। ओहोहो ! समझ में आया ?

संसार की स्थिति के छेदने के लिये... अर्थात् कि बहुत स्थिति हो कर्म की, वह ऐसे भक्ति आदि के शुभभाव से स्थिति बहुत अल्प होती है। अकेले शुभभाव से नहीं, हों ! साथ में सम्यग्दर्शन-ज्ञान है न। उसमें शुभभाव हुआ, इसलिए संसार की स्थिति बहुत घटायी है, परन्तु अभी बाकी है, उसमें से थोड़ी घटती है। लोग अकेले शुभभाव से कहते हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! अनाकुल आनन्द की अन्तर दृष्टि, रुचि हुई है, जिसे कहीं अन्यत्र पिपासा सुहाती नहीं। समझ में आया ? यह पाँच इन्द्रियों के विषय भी जिसे रुचते नहीं। दुनिया इज्जत और गाँव गीत गाये, वे सुहाते नहीं। आहाहा ! ऐसी अन्तर में दृष्टि हुई है, इसलिए उसे शुभभाव भक्ति आदि में होने से संसार की लम्बी स्थिति (होवे), वह थोड़ी होती है। एक।

विषय-कषायकर उत्पन्न हुए... विषय-कषायकर उत्पन्न हुए, आर्त रौद्र खोटे ध्यानों के नाश का कारण... अशुभ ध्यान के नाश के कारण, ऐसा व्यवहार से वर्णन करना है न ? आर्त और रौद्रध्यान के नाश के कारण। श्री पंच परमेष्ठी के गुणों का स्मरण करते हैं,... वह सम्यग्दृष्टि निश्चय अनुभव दृष्टि होने पर भी। समझ में आया ? आहाहा ! संसार के तो वे मुर्दे हो गये। कहीं उत्साह वैभव के प्रति रहा नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भोगता ही नहीं। बात ही पूरी (अलग है)। इसलिए तो यहाँ

कहते हैं। मोक्ष की अभिलाषा, अमृत के रस की पिपासा है, बस। वीतराग परमानन्दरूप मोक्ष की लक्ष्मी सुख, उसके अमृत के प्यासे हैं। उसे राग की प्यास नहीं, शुभ की प्यास नहीं, पुण्य आवे बीच में, उसकी प्यास नहीं। भाई! वस्तुदृष्टि और धर्मदृष्टि कैसी है, उसे यह समझाते हैं। समझ में आया?

इकलौता बीस वर्ष का पुत्र मर जाये और ऐसे दो वर्ष के विवाह की कन्या छोड़ता जाये, उसे कहीं चैन नहीं पड़ता, उसकी माँ को। अभी बहुत बनाव बने हैं। यह दामोदर सेठ का पुत्र इकलौता छह महीने में मर गया था। उसकी वह झूरकर मर गयी। पैसा दस लाख थे। मोहनभाई! दामोदरभाई नहीं? रायचन्द्र। छह महीने का विवाह, वैशाख शुक्ल पूर्णिमा और आसोज में गुजर गया छह महीने में। वह तो वीर्यवाला व्यक्ति था। वह बाई भोली थी बेचारी। ... लीमड़ी। वजुभाई की बहिन। दामोदर सेठ, ऐसे दरवाजा बन्द हो न, ऐसे देखने जाये वापस। रोती हो, सुबक-सुबककर अन्दर रोती हो खाट में। दस-दस लाख रुपये। दामोदर सेठ कर्ता-हर्ता गाँव के नगरसेठ। पैसा चालीस-चालीस हजार की तो आमदनी थी। समझ में आया? (संवत्) १९७५ के वर्ष की बात है। ४७ वर्ष हुए। दामोदर सेठ दरवाजा खोलकर (कहे), परन्तु तू किसलिए रोती है? मर गयी झूरकर। पैसे और पुत्र यह तो देखो अभी। सब था, बँगले घर में आमदनी बड़ी चालीस-चालीस हजार की आमदनी थी। क्या करे? यह एक लड़का मेरा रायचन्द्र, मेरा रायचन्द्र ऐसे पंजादार था, पंजादार रूपवान। मेरा रायचन्द्र, मेरा रायचन्द्र। उसी प्रकार धर्मी को मेरा मोक्ष, मेरा मोक्ष, ऐसा हो गया है — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! मर गयी। यहाँ मर जाते हैं उसके लिये, कहते हैं कि आत्मा प्राप्त करने से ही छुटकारा है। इतनी तीव्र अभिलाषा सम्यग्दृष्टि को होती है। आहाहा! भले बीच में अशुभभाव आवे, तथापि पूर्णानन्द की प्यास छूटती नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, यह विषय-कषाय के उत्पन्न हुए राग के नाश के कारण से। उत्पन्न हुआ, उसका नाश होता है? यह तो पाठ ऐसा है, उत्पन्न हुए आर्त-रौद्र ध्यानों के नाश का कारण... इसका अर्थ कि यह आर्तध्यान, रौद्रध्यान नहीं होता, इसलिए भगवान के गुण स्मरण, परमेष्ठी की भक्ति, पूजा, सन्मान करते हैं। यह पंच परमेष्ठी का करते हैं।

समझ में आया ? यह मोक्ष के कारण से, मोक्ष की पिपासा के कारण से। और दान-पूजादिक करते हैं,... ओहो ! छह खण्ड का राज, छियानवें हजार जिनके घर में स्त्रियाँ। कहाँ हमारे स्त्री ? कहाँ हमारे राज ? अरे ! हम तो आत्मा हैं, उसमें हमारे कहाँ राग है ? हमारे यह चीज़ कहाँ हमारे में है ? समझ में आया ? और दान-पूजादिक (महापुरुष) करते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि केवल निज परिणति पर है,... यहाँ वजन है। है ? न्याय से रखा है। 'परमेष्ठिभक्त्यादिपरिणतानां कुटुम्बिनां पलालवदनीहितं' ऐसी परिणति के ऊपर दृष्टि है। देखो ! इस निज परिणति के ऊपर दृष्टि कही निश्चय सम्यक्त्व बतलाया है। समझ में आया ?

(सम्यग्दृष्टि) दान करता है, पूजा करता है, सन्मान देता है, पंच परमेष्ठी आदि का। उसके आर्त-रौद्रध्यान को छेदने के लिये करते हैं तो रौद्रध्यान भी होने का काल होता है न चौथे, पाँचवें में ? तो उसकी बात है, भाई ! इसमें। समझ में आया ? आहाहा ! होता है, रौद्रध्यान, वह भी हो जाता है। चौथे तक, पाँचवें तक होता है और आर्तध्यान छठवें तक हो जाता है। परन्तु वह नहीं होता। ऐसे आत्मा की वह भावना है न, उसके लिये यह भाव करता है, परन्तु दृष्टि तो केवल निज परिणति पर है। समझ में आया ? निज परिणति अर्थात् कि विकार के परिणामरहित निर्मल परिणति के ऊपर दृष्टि है। वह निज परिणति कहलाती है। शुभ जो परिणाम हुए, वह निज परिणति नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मोक्ष की अभिलाषा के लिये। सन्देशा मोक्ष का देते हैं कि यह मोक्ष... ऐसा है... ऐसा है... ऐसा है... मोक्ष की परिणति निर्मलानन्द की बात करते हैं यह। वह सीताजी की बात करता है न। उसी प्रकार यह पूर्णानन्द की परिणति की बात करनेवाले पंच परमेष्ठी हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? मेरा पूर्ण आनन्दस्वभाव, वह पूर्ण मोक्ष को बतलानेवाला है। यह पाँचों परमेष्ठी मोक्ष को बतलानेवाले हैं। मोक्ष का मार्ग कहो या मोक्ष कहो, वह सब एक ही है। छूटने की बात करते हैं। भाई ! तू पूर्णानन्द है न, भाई ! वीतरागस्वभाव से भरपूर प्रभु है न ! उस वीतराग समभाव को प्रगट

कर न! यह बात करते हैं, देखो! समझ में आया? ऐसा आया था, उसके प्रसाद के कारण से नहीं, परन्तु उस मोक्षलक्ष्मी की पिपासा है, यह बात करते हैं कि आहाहा! उसे प्रमोद आ जाता है देव-गुरु-शास्त्र के प्रति भी। शास्त्र यह बात करे, गुरु यह बात करे, देव यह बात करे, प्रमोद आता है। समझ में आया?

गृहस्थाश्रम में रहे होने पर भी वे उसमें रहे नहीं, हों! आहाहा! मोक्ष की पिपासा, मोक्ष की पिपासा। सीताजी आदि स्त्रियाँ भी गृहस्थाश्रम में आत्मज्ञान प्राप्त (उनको) मोक्ष के आनन्द की पिपासा। आहाहा! समझ में आया? परीक्षाएँ कीं। अग्नि में गिरो। गिरते हैं... हम तो हैं वे हैं। तुम्हारे हृदय में भी हमारा भरोसा है, ऐसा कहती हैं। परीक्षा करो। आहाहा! कूद पड़ती हैं अग्नि में। कमल हो जाता है। लाखों राजा, लक्ष्मण आदि वासुदेव, छत्र ऐसे सिर पर धारते हैं रामचन्द्र, लक्ष्मण को। रामचन्द्रजी कहते हैं, सीताजी! अब घर में आओ। (सीताजी कहती हैं) बस हुआ। आहाहा! वह अर्धखण्ड का, तीन खण्ड का स्वामी। तुझे पटरानी बनायेंगे अब, हों! ऐसी परीक्षा तुम्हारी की, तुम पार उतरी हो। अब आओ। पुरुषोत्तम पुरुष! तुम्हारी भी वृत्ति ऐसी हो गयी। संसार नहीं चाहिए। आहाहा! चल निकलती है अकेला वस्त्र सफेद (पहनकर), मुंडायी, आहाहा! ... रानी को तो शृंगार, वस्त्र और यह सब क्या? एक सफेद वस्त्र। शरीर मुर्दा। चली जाती हैं जंगल में। लो! यह पाँचवें गुणस्थान की बात। आहाहा! समझ में आया? यह अन्तर में दृष्टि तो शुद्ध परिणति के ऊपर है। परवस्तु के ऊपर नहीं। दृष्टि का विषय शुभराग और पर नहीं, ऐसा कहना है, भाई! आहाहा! उस दृष्टि में तो भगवान आनन्दमय तैरता है, कहते हैं। आहाहा! अनन्त गुणसार ऐसे भिन्न है न... भिन्न है न... भिन्न है न... भिन्न है न... भिन्न है न... वह दृष्टि उसकी परवस्तु के ऊपर नहीं। आहाहा! समझ में आया?

पंच परमेष्ठी की भक्ति आदि शुभ क्रिया को परिणत हुए... शुभपर्याय हुई है अवश्य, निज परिणति के साथ, कहते हैं यह। समझ में आया? शुभ दया, भक्ति, पूजा, सन्मान, आहाहा! वीतराग कथन और वीतरागी भाव, अलौकिक बात है! इसके बिना जन्म-मरण का अन्त कहीं आवे, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं कि उस शुभपरिणति के

ऊपर उसकी दृष्टि नहीं, परन्तु होती अवश्य है। शुभ क्रिया को परिणत हुए तो भरत आदिक हैं, उनके बिना चाहे पुण्यप्रकृति का आस्रव होता है। वह शुभ परिणमन हो जाता है। आहाहा! इसलिए उसे पुण्य प्रकृति का आस्रव, बन्ध हो जाता है। तीर्थकरगोत्र बँध जाता है, कुछ चक्रवर्ती आदि, बलदेव आदि। सर्वार्थसिद्धि के देव का आयुष्य आदि शुभभाव से बँध जाता है। समझ में आया ?

अरे! तकरार-तकरार करते हैं। अरे, प्रभु! परन्तु वीतरागमार्ग, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! इस वीतरागी दृष्टि में एक भी उसे रुचता नहीं, शुभभाव रुचता नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। परन्तु उस पूर्णानन्द की पिपासा है, उसे कहनेवाले के प्रति उसको प्रमोद—शुभभाव आ जाये। ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा! समझ में आया? लो! यह संसार के भोग में पड़े हैं न? उन्हें भोग की भावना नहीं होगी? वह भावना नहीं, भाई! यह कहते हैं न, ऐसा भाव छोड़ने के लिये ऐसा भाव आता है। यह कहा न, आर्तध्यान—रौद्रध्यान? ऐसे भाव आते हैं, परन्तु उन्हें छेदने के लिये अन्दर से यह भाव (आता है)। परमानन्द प्रभु मुक्ति के गीत गानेवाले पंच परमेष्ठी... सिद्ध तो आदर्शरूप हैं, वाणी भले न हो, परन्तु सिद्ध आदर्शरूप हैं न। आहाहा! मुक्तानन्दनाथ सहजानन्द का नाथ परमात्मा स्वयं उसके ऊपर प्रमोद आ जाता है। अपनी मुक्ति की—आनन्द की पिपासा है इसलिए। समझ में आया? उसे पुण्य के परिणाम होते अवश्य हैं।

उनके बिना चाहे पुण्यप्रकृति का आस्रव होता है। उसे बिना इच्छा के (होते हैं)। चाहना नहीं कि मुझे यह प्रकृति बँधे। मुझे ठीक पड़ेगा पुण्य बँधेगा तो। नहीं, नहीं। समझ में आया? कहो, छोटाभाई! यहाँ तो ऐसा स्पष्ट लेख है। और वे कहते हैं कि अकेली पुण्य क्रिया करे, वह मोक्ष का कारण होता है और यह होता है और यह। यहाँ तो कहते हैं, ऐसा भाव समकित्ती को होता है तो उसकी—आस्रव की इच्छा नहीं। वह तो अभी ऐसा आया कि उसके पुण्य द्रव्यकर्म पुण्यभाव से ऐसा बँधता है कि द्रव्यकर्म भविष्य में क्षय करे। आया था या नहीं? आया था अजीतकुमार का। कर्म ऐसा बँधे दया, दान, भक्ति, पूजा करे, उसे वह कर्म भी भविष्य में कर्म का क्षय करावे। या कर्म अच्छे साधन दे, साधन देकर कर्म का क्षय करावे। आहाहा! अरे, भगवान! क्या

हुआ मार्ग का ? मार्ग का पूरा पलटा मारा । और इसलिए यह अधिपति वापस मानते हैं, ऐसा । हम मार्ग के समझनेवाले । भाई ! मार्ग दूसरा है, प्रभु ! आहाहा ! समझ में आया ? यह तो वीतराग पंथ है, वीतराग मार्ग है, इसमें राग का प्रेम, उसका उल्लास नहीं होता । आहाहा ! समझ में आया ? कहो, भीखाभाई ! आहाहा !

जैसे किसान की दृष्टि अन्न पर है,... दृष्टान्त है न अन्दर 'कुटुम्बिनां पलाल-वदनीहितं' अच्छे किसान की दृष्टि अनाज बोने पर अनाज के दानों के ऊपर है, उसे घास नहीं चाहिए । किसान को—अच्छे किसान को घास नहीं चाहिए । घास तो भरे हो घर में । वह तो अभी ऐसा (हो गया), पहले तो गोदाम के गोदाम भरे हुए । घर में, हों ! किसान के घर में तो हो, परन्तु साधारण हमने देखा है न ! साधारण मनुष्य थे, गोदाम भरे हों, पाँच सौ-पाँच सौ मण । एक ही भैंस रखी हो तो भरकर रखो । तब सस्ता था न । हरा हो उसे सूखा डाले बरामदे में । ऐई ! तुमने देखा है या नहीं ? तुम्हारे तो घर में था, हमारे तो ननिहाल में देखा हुआ है । समझ में आया ? ऐसे पूरे गोदाम भरे हों, हमारे मामा के यहाँ एक भैंस रखते थे । पूरा गोदाम भरा हुआ । ... सस्ता घास और पैसादार व्यक्ति थे । सब समाप्त कर डाला बाद में । कहते हैं, उस घास के ऊपर उसकी दृष्टि नहीं होती, अच्छे किसान की । घास अच्छा हुआ, ऐसा नहीं, वे दाने कैसे पके हैं ? वह खेत में देखने जाये तो उन दानों के ऊपर की नजर हो, दाना कैसा चढ़ा है । माणकचन्दभाई गये ?

आज ही रास्ते में बात हुई थी । वह कपास का नहीं ? वह है कपास । कितनी बार कपास तुम लेते हो ? मठीयो कपास ऐसा कुछ कहते थे । सात बार लेते हैं । एक बार फसल कट जाये, पश्चात् दूसरी बार कट जाये, तीसरी बार, अन्त में सातवाँ । क्योंकि बाद के फोहा बहुत कसवाले होते हैं । किसान है न उसे तो । व्यापार में उसे बड़ा धन्धा । उसने कपास केदु का बोया हुआ । ओहोहो ! श्रावण महीने बरसात पहले की । वर्षा नहीं आयी, उस पहले का पड़ा हुआ है अभी कपास । कहा, अभी तक ? कि वह एक बार कट जाये, वापस थोड़ा-सा फुलडा अभी हो तो भी दो, तीन मण तो आवे और भाव कितना बढ़ गया है और इतने कसवाला हो कसवाला, कस लेकर निकले अन्त में । सातवीं बार ले, सात बार ले । कहा था । याद है ? तुम नहीं थे । वह बाद में.... आये थे ।

कहाँ गये, नहीं ? ऐसे पीछे । परन्तु कहा, यह तो वर्षा नहीं थी उसके पहले के यह है न यह क्या ? कि अन्तिम कपास सातवीं वार आवे, वह उसके जो हो न, क्या कहलाये ? कपास का गुदा बहुत कसदार हो । चूसकर ले उसे तो बड़ी तीस-तीस हजार की उपज है उसे । घर में किसान की माणिकचन्दभाई को, पाटीयावाले को । ऐसे दिखाई दे सादा । बड़ी आमदनी घर में । दुकानें बड़ी । सब हमारे कि सात-सात वार बीनते हैं । अन्त में दो, तीन मण आवे तो कितने पैसे उपजे, कहे । सातवीं वार करें तो भी । उसकी दृष्टि उसके ऊपर, वह क्या कहलाता है ? रुई के ऊपर थी । उसके ऊपर नहीं, ऐसा । वे बोलते थे, उसके ऊपर से लगता था कि हम ऐसा करते हैं, ऐसा कहते थे । सांठीओ के ऊपर नहीं । समझ में आया ?

यह तो कहे, चाहे जैसे ज्वार पतली, हमारे उसकी कुछ दरकार नहीं । वे तो घर में बहुत पड़े हैं । पड़ा ही हो, जिसके घर में कितने बीघा जमीन । पुण्य की बातें हैं, जमुभाई ! कहो, वे कहते थे कि हमारे २७०० की जमीन ली थी दो हजार में । २७०० की जमीन, पैंतीस हजार की आमदनी । एक वर्ष की पैंतीस हजार की आमदनी । २७०० की जमीन में से । यह पुण्य की बातें हैं, कहीं चतुराई से काम आता होगा ? धूल में भी मेहनत काम नहीं आती, लो ! यह मेहनत कहाँ आयी ? वे कहते थे, स्वयं कहते थे, हों ! (संवत्) २००० में २७०० (रुपये की) जमीन ली है । अभी तीस हजार से पैंतीस हजार बारह महीने में उपजते हैं उस जमीन में । २७०० चले गये । आहाहा ! यहाँ तो उस कस के ऊपर उसकी नजर थी, बात करते थे तो भी उसकी मिठास ऊपर थी... उसे चूसकर ले, ऐसा कहते थे जरा, हों ! ऐसे चूसकर ले, कहे, अन्त में । उसके बहुत पैसे उपजे । दो मण निकले तो कितने पैसे उपजें । इसी प्रकार किसान की दृष्टि अन्न के ढेर पर होती है, वह लोथो पका हो, उसके ऊपर, हों ! नीचे तिनकों के ऊपर नहीं ।

तृण भूसादि पर नहीं है । देखो ! कपास के वे सांठीयुं कहलाये न वे तिनके कहलाये । यह बाजरा के दाने हों, ज्वार के हों, उनके डंठल कहलाये । उसके ऊपर नजर नहीं होती । आहाहा ! दृष्टान्त देकर भी कितनी बात सिद्ध की ! **बिना चाहा पुण्य का बंध सहज में ही हो जाता है ।** है न, 'अनीहितं पुण्यमास्त्रवतीति' है पाठ संस्कृत में

‘अनीहित’ इच्छा नहीं, परन्तु बीच में ऐसा भाव आता है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ, वह तो ऐसा ही हो न। आहाहा! यह तुमको खबर होगी, अपने को बहुत खबर नहीं होती। कोई यहाँ तो बात करे, तब खबर हो। हमने कहाँ देखा है? आहाहा! उसमें उस लोठा का रस न गया हो, यहाँ रस रह गया हो।

यहाँ कहते हैं, अच्छे किसान की दृष्टि अनाज के ऊपर (होती है), उसको अकेले घासफूस पर दृष्टि (होती है)। अज्ञानी को अकेले पुण्य पर दृष्टि। पुण्य बँधा और उससे फल मिलेगा और उसके ऊपर मिथ्यादृष्टि की दृष्टि वहाँ है। ऐसे आत्मा की मेरी शुद्ध परिणति और उसका फल शुद्ध परिणति पूर्ण कैसे आवे, इसके ऊपर उसकी दृष्टि होती है।

बन्ध सहज में ही हो जाता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह उनको संसार में नहीं भटका सकता है। लो! वह पुण्यबन्ध उसे संसार में भटकायेगा नहीं। जहाँ जायेगा वहाँ निषेध करके, वे तो शिवपुरी के ही पात्र हैं। आहाहा! देखो! यह ऊपर लिये सब वे, हों! भरत, सगर, राम, पाण्डवादि, सीताजी आदि सब बहनें-पुत्रियाँ भी लेना। सम्यग्दृष्टि हैं, वे सब राजकुमारियाँ थी बहुत या नहीं? द्रौपदी, सीताजी, अंजना, महासतियाँ आत्मज्ञानी और महा ध्यान में (रहती) और यह पूजा, भक्ति आदि करते, उन्हें अनीहित वृत्ति से वह पुण्य का आस्रव आता था। आहाहा! परन्तु वे तो शिवपुरी के पात्र हैं, पुण्य के पात्र नहीं, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐसे नकार से ऐसा कहते हैं। वे तो मोक्ष के पात्र हैं। हमारे तो पूर्णानन्द-पूर्णानन्द, अमृत के आनन्द का पूर्णानन्द चाहिए। कहो, यह शिष्य ने प्रश्न किया, उसका यह उत्तर दिया। आहाहा!

यहाँ तो जरा-सा थोड़ा-सा कुछ पुण्य करे न तो ऐसा हो, आहा! हमने तो बहुत किया, हमने तो ऐसा किया, हमने तो ऐसा किया। वह तो अभिमान में मर गया। धर्मचन्दजी! आहाहा! आत्मा के ज्ञान बिना का बाहर के ज्ञान का अभिमान, आत्मा की दृष्टि बिना बाहर की श्रद्धा, व्यवहारिक श्रद्धा का अभिमान, आत्मा के चारित्र बिना कोई

क्रिया मन्द राग की आदि, ब्रह्मचर्य पालता हो तो उसका अभिमान। समझ में आया ? मर गया उसमें, कहते हैं। उसे तो अच्छा पुण्य भी नहीं। परिणति तो नहीं, दृष्टि तो नहीं, उसे अच्छा पुण्य भी नहीं हो सकता। वह तो संसार का पात्र है, ऐसा लेना सामने। यह (धर्मी) शिवपुरी के पात्र हैं। समझ में आया ? ६१ हुई। अब ६२ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ६२

आगे देव-शास्त्र-गुरु की जो निन्दा करता है, उसके महान पाप का बन्ध होता है,... उसको अनिहीत वृत्ति से पुण्य बँधता है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र क्या हैं, उसके भान बिना उनका विरोध करता है, निन्दा करता है, वह महान पाप का बन्ध करता है। आहाहा! वह पापी पाप के प्रभाव से नरक निगोदादि खोटी गति में अनन्त काल तक भटकता है— समझ में आया ? देव-शास्त्र-गुरु। देखो, तीनों लिये हैं न! नरक निगोदादि खोटी गति में अनन्त काल तक भटकता है—‘पापबन्धो भवतीति’ ऐसा कहते हैं। फिर इसका अर्थ ... ले लिया है।

१८९) देवहं सत्थहं मुणिवरहं जो विदेसु करेइ।

णियमें पाउ हवेइ तसु जें संसारु भमेइ॥६२॥

लो! उससे उल्टा। वीतरागदेव, सर्वज्ञ परमेश्वर एक समय में जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान (हो), ऐसी दशावन्त परमात्मा की जो निन्दा करे, द्वेष करे निन्दा का अर्थ उनके प्रति विरोध करता है, विरोध करता है। समझ में आया ? देखो न उसमें... छपाया है, ओहोहो! जैन धर्म की इतनी निन्दा की है। बहुत निन्दा की है। दिल्ली से कोई छपाता है न, सरिता (पत्रिका)। आहाहा! नरकगति, निगोदगति का गामी। इतनी-इतनी निन्दा की है। भले अभी के श्रावक देखकर (लिखा है), परन्तु पूरे जैनधर्म की निन्दा की है। वीतराग नहीं हो। सर्वज्ञ कहते हैं, एक समय में तीन काल का ज्ञान। नास्तिक है वापस। देह है तब तक आत्मा, और परलोक में आत्मा कहाँ? वह और सर्वज्ञ कहे, वह तीन ज्ञान का काल कहे, मार गप्पा। अर र र! उसमें भी कितने ही कहे

कि भाई विचारक थे सर्वज्ञ परमात्मा। सर्वज्ञ नहीं थे। यह सुधरी हुई भाषा। आहाहा!

एक समय में अरे! जिसे ज्ञान की पूर्ण दशा प्रगट हुई है। यहाँ भी ख्याल में नहीं आता? उस ज्ञान की वर्तमान दशा में भी अनन्त द्रव्य हैं, उनका ख्याल नहीं आता? अनन्त क्षेत्र है, अनन्त काल है, उन द्रव्यों के अनन्त भाव हैं, वह सब ख्याल में आवे, ऐसी सामर्थ्य ज्ञान की एक समय की मति की, श्रुत की पर्याय... परन्तु प्रत्यक्ष दिखता है या नहीं इसे? इनकार करे उसे, इतने अनन्त का इनकार करे, इतना तो उसे ज्ञान है या नहीं? क्या कहा? अनन्त ऐसे नहीं होते, अनन्त ऐसे, 'अनन्त ऐसे नहीं होते', उसका भी निषेध करके इतना अनन्त अस्तित्व का निषेध करता है, इतना अनन्त का ज्ञान है उसमें, लो! क्या कहा? समझ में आया, क्या कहता हूँ वह? अनन्त का निषेध करता है कि अनन्त जीव नहीं होते, अनन्त पुद्गल नहीं होते, ऐसे नहीं होते, ऐसा नहीं होता, ऐसे अनन्त नहीं होते। अनन्त नहीं होते, उसके ज्ञान में अनन्त ऐसा ख्याल आया, परन्तु नहीं होते, इतना निषेध। आहाहा! समझ में आया?

एक समय में परमेश्वर त्रिकालवर्ती वस्तु को एक समय में जाने, ऐसा उनका ज्ञान। विकल्प की अपेक्षा नहीं, लोकालोक की अपेक्षा नहीं। ऐसे केवलज्ञानी की निन्दा करे। ऐसे वे होंगे? ले और ऐसा कहे, ऐसा होगा? केवलज्ञान का समय तीन काल माने, वहाँ हो गया, अपना पुरुषार्थ कहाँ रहा? ऐसा करके वह केवलज्ञान उड़ा दे। समझ में आया? भगवान ने यदि सब देखा है तो अपने को तो उनके देखे प्रमाण होगा, इसलिए अपने हाथ में कुछ बात रही नहीं। ऐसा करके उन सर्वज्ञ को उड़ाना है इसे। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ आया था न, (संवत्) १९९२ में एक व्यक्ति। तुम कहते हो केवली सर्वज्ञ। जैन का साधु हुआ, हों! स्थानकवासी साधु हुआ। जवाहरलालजी का साधु। पाँच वर्ष साधु हुआ। पढ़ा हुआ बहुत पण्डित हो गया। पाँच बार पण्डित सब जाने। सब साधुओं की अपेक्षा अधिक पढ़ा हुआ हो गया। ऐसा अन्दर में से आया कि एक समय में केवलज्ञान सर्वज्ञ हो तो तीन काल जाना। फिर किसी के हाथ में पुरुषार्थ करना, कुछ नया करना तो रहा ही नहीं। लो! और भगवान ने जाना और ऐसा तुम कहो कि

असातावेदनीय के उदय के कारण शरीर में दुःख होता है। तो यहाँ से निकला एक मनुष्य, बैल का सींग लगा यहाँ, उस असाता को कहाँ से खबर पड़ी कि यह सींग इसे लगाना ? न्यालचन्दभाई ! वे जवाहरलालजी थे न... वह शिष्य हुआ। बुद्धिवाला बहुत उघाड़, परन्तु क्षयोपशम उल्टा, ऐसा उल्टा। छोड़ दिया। फिर स्त्री से विवाह किया था। यहाँ आया था। ... व्याख्यान में आता था फिर किसी समय। शान्तिभाई बैठते हैं न, वहाँ बैठता था। ९२ के बाद भी। वहाँ देवराज थे उसके बहनोई। परन्तु वह ऐसा सिर घूमा हुआ। मुझसे ऐसा प्रश्न किया ९२ में कि केवली सर्वज्ञ हों, तब तो किसी के हाथ में रहा नहीं। मैंने कहा, क्या कहते हो तुम ? क्या कहते हो ? सर्वज्ञ है या नहीं, ऐसा निर्णय कराना है कि सर्वज्ञ ने देखा, (इसका) निषेध करना है ? क्या करना है तुम्हारे ? तो पहले ऐसा निर्णय करो कि केवलज्ञान नहीं और सर्वज्ञ नहीं, उसका पूछो। ऐसा न पूछो आड़ मारकर। समझे नहीं न्याय को। भाई ! ऐसा नहीं किया जाता। बापू ! ऐसे सर्वज्ञ को नहीं उड़ाया जाता। एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसे देव की निन्दा करे कि ऐसे देव होंगे ? लो ! यह सब जाना उसे हाथ में रखा। ऐई ! हाथ में तो तेरे है, बापू ! यह निर्णय करना, वह तेरे हाथ में है। उन्होंने देखा, इसलिए निर्णय नहीं कर सके, ऐसा कुछ है नहीं।

कहते हैं, ऐसे सर्वज्ञ वीतरागदेव, हों ! वापस ऐसा लिया न ? भाषा कैसी ली, देखा ? समझ में आया ? ६२ है न। 'साक्षात्पुण्यबन्धहेतुभूतानां परंपरया मुक्तिकारण-भूतानां च योऽसौ विद्वेषं करोति।' 'देवशास्त्रमुनीनां' इतना शब्द पड़ा है अन्दर। पाठ साक्षात् पुण्यबन्ध हेतु है, हों ! साक्षात्। सीधे तो पुण्यबन्ध का हेतु है, ऐसा। अन्तर के स्वभाव की दृष्टि हो, उसे यह साक्षात् पुण्यबन्ध का कारण है। भान न हो उसे तो, कहे, साक्षात् पुण्यबन्ध का कारण (नहीं), उनकी निन्दा करे तो अकेला पाप ही बाँधता है।

वीतरागदेव, जिनसूत्र... सर्वज्ञ के कहे हुए शास्त्रों में दोष निकाले, भूल निकाले। वे शास्त्र मिलते नहीं। एक व्यक्ति कहे, इस समयसार में नौ तत्त्वों में भूल है। कहो, समझ में आया ? बहुत पढ़े हुए शास्त्र सबके। इसमें प्रत्येक तत्त्व में भूल है। ठीक, बहुत अच्छी बात है ! आहाहा ! वह शास्त्र की भूल निकाले। अपने अभिमान में ज्ञान का

अभिमान चढ़ गया हो न पावर, वह (कहे) खोटे शास्त्र हैं। और निर्ग्रन्थमुनियों से... देखो! भाषा की। समझ में आया? निर्ग्रन्थ मुनि, वीतरागी मुनि हों। जिन्हें अन्तर वीतराग आनन्द की रेलमछेल उठती हो। बाहर में नग्न दशा होती है। मलिन अवस्था भी शरीर की होती है। अन्तर में निर्मलानन्द में अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में होते हैं। ऐसे मुनि की निन्दा करे, यह नग्न आवे, वह कहते हैं कि, हम वीतरागपना साधते हैं। अब नग्न लोक में लज्जा का ठिकाना नहीं और हम धर्म साधते हैं? ऐसा कहनेवाले हैं, लो! समझ में आया? परन्तु नग्न वह तो शरीर की दशा है, उसमें वस्तु क्या है अन्दर की दशा? आहाहा! जिसे शरीर की इच्छा भी रही नहीं कि यह शरीर ऐसा रहे या वैसा रहे। जैसे परिणमना हो वैसे परिणमो, हम तो हमारी दृष्टि और अनुभव में हैं। ऐसे वीतरागी मुनि सन्त जिनकी दिगम्बरदशा है, जिन्हें वस्त्र का एक धागा भी नहीं। जैन के आचार्य, उपाध्याय और साधु तीनों महा वीतरागी होते हैं, महा निर्विकल्प आनन्द में झूलते होते हैं।

जो जीव (मुनियों) द्वेष करता है,... समझ में आया? विरोध करता है, द्वेष का अर्थ विरोध करता है। उसके निश्चय से पाप होता है,... वास्तव में उसे मिथ्यात्वसहित का अघाति का भी पाप बँधता है। मिथ्यात्वसहित का सब पाप ही उसे बँधता है। समझ में आया? श्रीमद् ने एक जगह कहा है, अरे! जिनके गुणग्राम करने से लाभ हो, उनकी ही निन्दा और विरोध करके लोग अनन्त संसार बढ़ाते हैं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि जीव को भी पहिचाने बिना उसका विरोध करे, वे भी अनन्त संसार के पाप को ही बाँधते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह सब उसमें आ जाता है।

संसार में भ्रमण करता है। अर्थात् परम्पराय मोक्ष के कारण... स्पष्टीकरण किया है। वह निमित्त है, परम्परा निमित्त है। और साक्षात् पुण्यबन्ध के कारण... है, ऐसा। जो देव-शास्त्र-गुरु हैं, इनकी जो निन्दा करता है, उसके नियम से पाप होता है,... देखो, उस सम्यग्दृष्टि के अनुभवसहित की दृष्टि में उसे पुण्य है, वह चौथे गुणस्थान से बात ली है और उसके सामने यह मिथ्यादृष्टि की बात ली है। वहाँ नहीं कि वह वीतराग समकित है, इसलिए आठवाँ है, ऐसा नहीं। निज परिणति है, इसलिए आठवाँ है, ऐसा

नहीं। निज परिणति चौथे से प्रगटी है। समझ में आया ? उसके सामने यह बात ली है। पाप से दुर्गति में भटकता है। लो !

भावार्थ :- निज परमात्मद्रव्य की प्राप्ति की रुचि, वही निश्चयसम्यक्त्व,... देखो ! समझ में आया ? है अन्दर, देखो ! 'निजपरमात्मपदार्थोपलम्भरुचिरूपं निश्चय-सम्यक्त्वकारणस्य तत्त्वार्थश्रद्धानरूप-व्यवहारसम्यक्त्वस्य' इन्होंने ऐसा लिया है अभी। समझ में आया ? निज परमात्मद्रव्य, भगवान आत्मा परम शुद्ध आनन्द प्रभु एकाकार अभेद अखण्डानन्द की अन्तर की निर्विकल्प दृष्टि की रुचि। परमात्मद्रव्य की प्राप्ति की रुचि। 'पदार्थोपलम्भरुचि' ऐसा शब्द है न ? समझ में आया ? निज परमात्मद्रव्य की प्राप्ति, पूर्णानन्द की प्राप्ति, उसे यहाँ वर्तमान में निज परमात्मद्रव्य की रुचि हो गयी है। इसका नाम निश्चय समकित है, इसका नाम सच्चा समकित है। लो ! आयेगा सवेरे अधिकार आता है न ?

उसका कारण तत्त्वार्थश्रद्धानरूप व्यवहारसम्यक्त्व,... उसका कारण तत्त्वार्थ-श्रद्धान, वह व्यवहार सम्यक्त्व है। वह विकल्पवाली व्यवहार की बात अभी यहाँ ली है, हों ! वरना तत्त्वार्थश्रद्धान निश्चय समकित है। परन्तु यहाँ अभेद का दर्शन आत्मा का, उसे निश्चय समकित कहा, नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा को व्यवहार समकित कहा है। समझ में आया ? पाठ में ऐसा है, देखो ! 'तत्त्वार्थश्रद्धानरूपव्यवहारसम्यक्त्व विषयभूतानां' ऐसा है न ? 'तत्त्वार्थश्रद्धानरूपव्यवहारसम्यक्त्व विषयभूतानां देवशास्त्रयतीनां' इसलिए दो भेद किये। यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान ऐसा लिया कि जिसका विषय देव-गुरु-शास्त्र है। भाई ! ऐसा करके यह अलग किया। निश्चय समकित जिसका विषय निज परमात्मा है और तत्त्वार्थश्रद्धान जिसका विषय देव-गुरु-शास्त्र है। अर्थात् व्यवहार का विषय पर है, निश्चय का विषय स्व है। ऐसा करके यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान को... ऐसी तत्त्वार्थश्रद्धान की बात की है। समझ में आया ?

निज परमात्म शुद्ध आनन्दस्वरूप की पूर्ण की प्राप्ति, ऐसी यहाँ वर्तमान आत्मा की रुचि निश्चय, वह स्व विषय हुआ उसमें। और तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहाररूप सम्यक्त्व दर्शन, उसका विषयभूत यह 'देवशास्त्रयतीनां' उसका विषय, व्यवहार तत्त्वार्थश्रद्धान

का विषय यह है। उसमें तत्त्वार्थश्रद्धान डाला है, उसमें तो आत्मा विषय है और नौ तत्त्व का विषय उसमें आत्मा विषय आ जाता है। उमास्वामी। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं जो उमास्वामी ने कहा, वहाँ तो आत्मा विषय आ जाता है। अभेद है वहाँ। समझ में आया? यहाँ तो इससे विषय को अलग किया जरा। तत्त्वार्थश्रद्धान ऐसा यहाँ लिया कि जिसका विषय देव-गुरु-शास्त्र है, ऐसा। अकेले देव-गुरु-शास्त्र लिया न भाई! उसमें? वह नहीं लिया। सात तत्त्व है और उसमें अभेद है, ऐसा नहीं लिया, नहीं लिया, उसमें अकेला निज परमात्मा लिया। समझ में आया इसमें?

उसके मूल अरहन्त देव, निर्ग्रन्थ गुरु, और दयामयी धर्म, इन तीनों की... यहाँ विषय छोड़ दिया शब्द में। विषय लेना चाहिए खास आवश्यक का है। अर्थ में नहीं, शब्द में। नहीं न? अर्थ में नहीं डाला, उसका मूल कहा, परन्तु वह विषय है न? विषय है, ऐसा लेना चाहिए वास्तव में तो। विषयभूत है न। मूल अर्थात् यह देव-गुरु-शास्त्र। यह निज है। निश्चय सम्यक्त्व का विषय निज आत्मा अखण्ड आनन्दमय हो गया है रुचि में। व्यवहार समकित तत्त्वार्थश्रद्धा का विषय देव-गुरु-शास्त्र है। ऐसा कहना है। समझे न? यह तो पंचास्तिकाय में नहीं कहा? व्यवहार समकित का विषय आत्मा से पर है। वही यहाँ लिया। बराबर है, भाई! इस तत्त्वार्थ की अपेक्षा से तो बराबर है। वह कहे तत्त्वार्थश्रद्धा का विषय अकेला पर है, वह तत्त्वार्थश्रद्धान अकेला चौथे गुणस्थान में है। परन्तु स्व बिना पर कहाँ से आया? स्व के आश्रय सम्यक् बिना पर के आश्रय का अकेला विषयभूत व्यवहार समकित हो नहीं सकता। यह तो दोनों की साथ में बात ली है। समझ में आया? इसलिए दो की साथ में बात ली है यहाँ। अभी तो इसे अर्थ करने की भी बाधा, इसे अन्तर की दृष्टि को कहाँ? आहाहा! और अन्तर्मुख एकाग्र हुए बिना निश्चय समकित हो कहाँ से? देव-गुरु-शास्त्र के सामने देखकर तो निश्चय होता होगा? यह चौथा गुणस्थान होगा इसका नाम?

यहाँ तो निज परमात्मद्रव्य की प्राप्ति की रुचि निश्चय समकित, उसका कारण तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहारसम्यक्त्व। प्राप्ति है न, इसलिए वे डाले। उसका मूल अरहन्त देव... व्यवहार समकित का विषय अरिहन्त देव। आहाहा! व्यवहार समकित का विषय

अरिहन्तदेव, सर्वज्ञदेव। अभी जिसका सर्वज्ञदेव का ठिकाना न हो मानने में, उसे निश्चय का ठिकाना नहीं हो सकता।

मुमुक्षु : व्यवहार का भी ठिकाना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का कहाँ ठिकाना ? आहाहा ! एक सर्वज्ञ पर्याय तीन काल-तीन लोक को व्यवस्थित जानती है। आहाहा ! निकाला है कि देखो ! भगवान ने, पदार्थ है, वैसा भगवान ने देखा है और वैसा कहा है। और पदार्थ है, वैसा जाना है। पदार्थ है, वैसा देखा और वैसा कहा, कहा वैसा जाना, ऐसा डाला है। पदार्थ है, वैसा कहा है, कहा है वैसा जाना है, ऐसा। पदार्थ है, वैसा जाना है, पहले नहीं लिया। नियतिवाद उड़ जाये वरना। भगवान ने नियत को मिथ्यादृष्टि कहा है, ऐसा। इसलिए भगवान नियत नहीं कहते, ऐसा। अरे ! भगवान ! क्या करता है ?

मुमुक्षु : उड़ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ उड़ता नहीं, सब रहता है, परन्तु समझे बिना ?

यहाँ तो व्यवहार समकित का विषय अरिहन्तदेव, निर्ग्रन्थ मुनि-गुरु दिगम्बर सन्त मुनि आत्मा के ध्यान-ज्ञानवाले, हों ! यहाँ उन निर्ग्रन्थ गुरु को लिया गया है। समझ में आया ? और दयामय धर्म, अहिंसा धर्म, राग की अनुत्पत्ति ऐसा धर्म अथवा शुभभाव ऐसा विकल्प व्यवहारिक धर्म। इन तीनों की जो निन्दा करता है, वह मिथ्यादृष्टि होता है। वह मिथ्यात्व का महान पाप बाँधता है। उस पाप से चतुर्गति संसार में भ्रमता है। वह मोक्ष जाता है और यह (अज्ञानी) चार गति में भटकता है, ऐसा ६२वीं गाथा में कहा। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ शुक्ल ८, शनिवार, दिनांक - २९-०१-१९६६

गाथा - ६३ - ६४, प्रवचन - ११२

गाथा - ६३

(परमात्मप्रकाश, ६३वीं गाथा) दूसरे भाग की। आगे पहले दो सूत्रों में कहे गये पुण्य और पाप फल हैं, उनको दिखाते हैं—

१९०) पावें णारउ तिरिउ जिउ पुएणें अमरु वियाणु।

मिस्सैं माणुस-गइ लहइ दोहि वि खइ णिव्वाणु ॥६३॥

यह जीव पाप के उदय से नरकगति और तिर्यचगति पाता है,... पाप करे तो उसे नरकगति और ढोरगति मिलती है। पुण्य से 'अमरः' देव होता है,... अमर अर्थात् देव। पुण्य का आचरण करे तो उसका देवभव होता है। अमर अर्थात् देव। अमर कुछ (नहीं), वह मरता तो है, परन्तु बहुत काल रहता है। कोई पुण्यभाव हो, उसके फल में बहुत असंख्य वर्ष रहे, इसलिए उसे अमर कहा जाता है। 'मिश्रेण' पुण्य और पाप दोनों के मेल से मनुष्यगति को पाता है,... किंचित् पुण्य और किंचित् पाप का मिश्रपना, उससे यह मनुष्यगति मिलती है, लो! समझ में आया? और पुण्य-पाप दोनों के ही नाश होने से मोक्ष को पाता है, ऐसा जानो। मोक्ष मिलता है, ऐसा जानना। चार स्पष्टीकरण किये, चार गति और मोक्ष दोनों।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : आकर अमर। अमर-अमर। पुण्य से अमर हो अमर। अमर अर्थात् देव, ऐसा कहा न। आत्मज्ञान बिना अथवा आत्मज्ञानसहित पुण्यभाव हो, उससे स्वर्ग में जाये। पाप में नरक और पशु हो तथा मिश्रपना पाप और पुण्य का हो तो मनुष्य हो। और ढोर में अकेला पाप ही लिया है। तिर्यच में जाये। यहाँ जुगलिया होते हैं। तिर्यच जुगलिया होते हैं बड़े, परन्तु उन्होंने थोड़ा-सा पुण्य इकट्ठा होता है। परन्तु यहाँ

पाप में, समुच्चय गति है न हल्की, इसलिए उसे पाप में गिना।

भावार्थ :- सहज शुद्ध ज्ञानानन्द एक स्वभाव जो परमात्मा है,... लो! यह आत्मा सहज स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानन्द—ज्ञान के आनन्द की मूर्ति शुद्ध एक स्वभाव। ‘एक’ (शब्द) पड़ा रहा है अन्दर। यह सर्वत्र ‘एक’ पड़ा रहता है। समझ में आया? सहज शुद्ध चैतन्यस्वरूप एक स्वभाव वस्तु आनन्द नित्यानन्द आत्मा। उससे (पाप से) विपरीत ऐसा जो आत्मा परमात्मा, उससे विपरीत पापकर्म। उससे विपरीत जो पापकर्म उसके उदय से नरक तिर्यचगति का पात्र होता है,... उसके उदय से ढोर / तिर्यच और नारकी का पात्र होता है। पात्र का अर्थ यह है कि वह नारकी और तिर्यच होता है, ऐसा। पात्र का अर्थ ऐसा है, भाजन होता है न। बाद में नहीं आता सिद्ध भाजन होता है, समयसार में। सिद्धि का भाजन होता है, भाजन अर्थात् सिद्धि होती है, ऐसा। समझ में आया?

आत्मस्वरूप से विपरीत शुभकर्मों के उदय से... देखो! शुभकर्म आत्मा के स्वरूप से विपरीत है। वह शुभ पुण्यभाव हुए, वे भी आत्मा के स्वरूप से विपरीत हैं और उससे बँधा हुआ शुभकर्म भी आत्मा से विपरीत है। उसके उदय से देव होता है,... दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे आत्मा के स्वरूप से विपरीत हैं, उनसे उसे पुण्य बँधता है। वह पुण्य कर्म भी आत्मा के स्वरूप से विपरीत है। उसके फल में स्वर्ग में जाये, देव हो देव। दोनों के मेल से मनुष्य होता है,... किंचित् पुण्य और किंचित् पाप के मिश्र से मनुष्य होता है। और शुद्धात्मस्वरूप से विपरीत... भाषा तो यही ली है सर्वत्र। दोनों पुण्य-पापों के क्षय से निर्वाण (मोक्ष) मिलता है। लो, पुण्य से और पाप से मोक्ष मिलता नहीं। समझ में आया? मोक्ष है, वह पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव रहित (अवस्था है)। देखो! वहाँ कर्म-कर्म शब्द प्रयोग किया है, तथापि वहाँ परिणाम भी लेना। क्यों? कि मोक्ष का कारण एक शुद्धोपयोग है,... ऐसा लिया यहाँ वापस, देखो! समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दमूर्ति का जो शुद्ध उपयोग व्यापार। पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव से रहित शुद्धस्वभाव का उपयोग अन्तर में आत्म-आचरण, आत्म-आचरण कैसा कहते हैं, देखो! वह शुद्धोपयोग... कैसा है?

निज शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान... निज शुद्धात्म पदार्थ भगवान् आत्मा आनन्द, उसकी सम्यक् श्रद्धा—उसका अन्तर सम्यग्दर्शन। वह शुद्धात्म निज तत्त्व का सम्यग्ज्ञान, ऐसे शुद्धात्मा का सच्चा ज्ञान, अन्तर आत्मज्ञान और निज शुद्धात्मतत्त्व का सम्यक् आचरण, उसे शुद्ध उपयोग कहते हैं। कहो, समझ में आया? शुभ-अशुभभाव, वह मोक्ष का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। कहाँ भाई गये हैं, नहीं? जमुभाई भावनगर गये हैं। समझ में आया? शुभ परिणाम से स्वर्ग मिलता है, अशुभ परिणाम से नरक और ढोरपना मिले, दोनों के मिश्रपने से मनुष्यपना मिले और दोनों के अभावरूप शुद्ध उपयोग से मोक्ष मिलता है। स्पष्टीकरण स्पष्ट किया इसमें तो। इसके अन्दर आया कि शुभ उपयोग से पुण्य बँधता है और पुण्य से देव (पना) मिलता है, परन्तु शुभ उपयोग से कभी सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं होता। ऐसा आया न इसमें? क्योंकि कहा देखो न, उससे विरुद्ध कहा। कि निज शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान... लो! कहते हैं न, सम्यग्दर्शन शुभ उपयोग से होगा। तुमने कुछ अभ्यास किया है शास्त्र का? दूसरे बहुत पढ़े हुए शास्त्र के हों और तुम उनके साथ बात करने जाओ तो फें फें हो जाओ।

देखो न! स्पष्ट बात की है कि यह आत्मा है, वह अन्दर शुद्ध आनन्दकन्द अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा है। उसका अन्तर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-आचरण, उसे शुद्ध उपयोग कहते हैं। शुद्ध उपयोग की यह व्याख्या की। उससे आत्मा को मुक्ति मिले। बीच में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से मुक्ति नहीं मिलती, संवर-निर्जरा नहीं होती। उससे पुण्य बँधता है और उसमें से देवलोक मिलता है। और पाप के भाव से नरक और निगोद होता है। मनुष्यपना मिश्र से मिलता है। थोड़ा-सा पाप और थोड़ा-सा पुण्य, उससे यह मनुष्यपना मिले, देखो न! समझ में आया?

मोक्ष का कारण एक शुद्धोपयोग है,... लो! परन्तु शुभ उपयोग कहाँ से हो धूल में? शुभ उपयोग तो पुण्य का कारण हुआ। पुण्य का कारण, वह मोक्ष का कारण हुआ? वह मोक्ष का कारण शुद्ध उपयोग, सम्यक् श्रद्धा। यह शुभ उपयोग मोक्ष का कारण। गप्प ही गप्प मारी है। दुनिया को बेचारे को उल्टी पट्टी (पढ़ाई)। ऐसी योग्यता जीव की तो उसे ऐसे मिले। क्या करे? एक ही आत्मा स्वयं शुद्धस्वरूप से है। पुण्य-

पाप के रागरहित चीज आत्मा है। वह आत्मा। और ऐसे आत्मा की निज श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का आचरण अन्तर, उसका नाम शुद्ध उपयोग है। एक ही शुद्ध उपयोग ही आत्मा को मोक्ष का कारण है। अर्थात् कि संवर और निर्जरारूप है। शुद्ध उपयोग संवर और निर्जरारूप है, शुभ उपयोग पुण्य आस्रवरूप है, यह अशुभ उपयोग पाप आस्रवरूप है और आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह शुद्ध उपयोगरूप संवर, निर्जरा है। ऐसी स्पष्ट बात है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

इसलिए... लो, मोक्ष का (कारण) शुद्ध उपयोग। वह शुद्ध उपयोग तीन (सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र)। इसलिए इस शुद्धोपयोग के बिना किसी तरह भी मुक्ति नहीं हो सकती,... यह शुद्ध उपयोग। आत्मा शुद्ध आत्मा अन्तर स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता के उपयोग सिवाय आत्मा को मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष से छुटकारा कभी नहीं होता। समझ में आया? यह सारांश जानो। लो! यह सारांश कहा। ऐसा ही सिद्धान्त-ग्रन्थ में भी हरएक जगह कहा गया है। लो! यहाँ तो ऐसा कहा। है न? 'चोक्तम्' है न?

जैसे - यह जीव पाप से नरक और तिर्यचगति को जाता है,... अशुभभाव से। और ऐसा कहे कि, कर्म से जाये। परन्तु कर्म वह बँधा किस प्रकार? अशुभभाव से पाप; हिंसा, झूठ, चोरी, क्रोध, मान, माया, लोभ के भाव से बँधा पाप। उस पाप से मरकर जाये नरक और पशु। और धर्म (पुण्य) से देवलोक में जाता है,... देखो पाठ में धर्म शब्द पड़ा है। 'पावेण णरयतिरियं गम्मइ धम्मेण देवलोयम्मि' धर्म शब्द से पुण्य, धर्म शब्द से ही पुण्य है। शुभभाव को व्यवहारधर्म कहा जाता है, परन्तु व्यवहारधर्म से स्वर्ग मिलता है। मुक्ति और संवर-निर्जरा उससे नहीं होते। पुण्य-पाप दोनों के मेल से मनुष्यदेह को पाता है, और दोनों के क्षय से मोक्ष पाता है। लो! यह परमात्मप्रकाश की बात। अब इसका स्पष्टीकरण विशेष दूसरे प्रकार से करते हैं।



गाथा - ६४

आगे निश्चयप्रतिक्रमण,... शुद्ध उपयोग कहा न? निश्चयप्रत्याख्यान और निश्चयआलोचनारूप जो शुद्धोपयोग उसमें ठहरकर... ऐसा। जो शुद्धोपयोग उसमें ठहरकर... समझ में आया? 'स्वरूपे स्थित्वा' ऐसा है न? इसलिए फिर यहाँ शुद्ध उपयोग 'स्थित्वा' व्यवहारप्रतिक्रमण,... अर्थात् शुभराग, व्यवहारप्रत्याख्यान... अर्थात् शुभ उपयोग, और व्यवहार आलोचनारूप... शुभयोग, शुभोपयोग को छोड़े... देखो! पहले सम्यग्दर्शनपूर्वक स्वरूप में स्थिरता न हो, तब उसे व्यवहारप्रतिक्रमण आदि अशुभभाव से बचने को ऐसा शुभ उपयोग होता है। समझ में आया? परन्तु वह शुभ उपयोग है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। सम्यग्दृष्टि को व्यवहारप्रतिक्रमण होता है, हों! अज्ञानी को नहीं होता। समझ में आया? जिसे आत्मा में, पुण्य और पाप का राग भी जिसके स्वभाव में नहीं, ऐसी आत्मा की अन्तर दृष्टि हुई है, अन्तर आत्मदृष्टि हुई है, उसे ही ऐसे व्यवहारप्रतिक्रमण का शुभराग होता है, परन्तु वह शुभराग पुण्यबन्ध का कारण है। उसे छोड़कर शुद्ध में स्थिर हो, वह मोक्ष का कारण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह समयसार की मोक्ष अधिकार की शैली ली है। ऐसा कहते हैं— देखो!

वंदणु णिंदणु पडिकमणु पुण्णहं कारणु जेण।

लो! स्पष्ट बात है। अर्थात् वह पुण्य है और वह शुभयोग है और वह शुभयोग नीचे छठवें, चौथे, छठवें तक होता है। ठीक! परन्तु क्या करते हैं? अरे! जगत को मुश्किल से मनुष्य देह का समय मिला, उसमें ऐसे मिले, पढ़े हुए मिले ऐसे।

१९१) वंदणु णिंदणु पडिकमणु पुण्णहं कारणु जेण।

करइ करावइ अणमणइ एक्कु वि णाणिण तेण ॥६४॥

यहाँ तो इतनी ही बात लेनी है। 'णाणिण तेण' कहा सीधे। पंच परमेष्ठी की वन्दना,... अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, परमेश्वर की वन्दना, वह शुभ उपयोग है। सम्यग्दृष्टिसहित की बात है। समझ में आया? 'निंदनं' अपने अशुभकर्म की निन्दा... देखो, पापभाव की निन्दा, वह शुभभाव है, पुण्यभाव है। 'प्रतिक्रमणं' और

अपराधों की प्रायश्चित्तादि विधि से निवृत्ति,... प्रायश्चित लेना, मिच्छामि दुक्कडम आदि शुभभाव में... मुझे पाप लगा (उसका प्रायश्चित ले) । प्रायश्चित्तादि विधि से निवृत्ति, ये सब जो पुण्य के कारण हैं,... देखो ! यह पुण्य का कारण है । मोक्ष के कारण नहीं हैं,... मोक्ष का कारण नहीं, इसलिए मोक्ष का मार्ग नहीं, ऐसा हुआ । तो फिर शुभ व्यवहार मोक्ष का मार्ग और शुद्ध, वह वापस निश्चयमोक्षमार्ग और यह व्यवहारमोक्षमार्ग दो हुए । शुभ व्यवहार यह शुभ प्रतिक्रमण आदि व्यवहारमोक्षमार्ग और वह निश्चयमोक्षमार्ग, ऐसा नहीं हुआ इसमें । मोक्ष का कारण तो एक ही कहा । यह नहीं मोक्ष का कारण । व्यवहार प्रतिक्रमण, निन्दा और प्रायश्चित, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है । भाव हो, शुभभाव आवे । इसीलिए पहली अवस्था में पाप के दूर करने के लिये... देखो ! स्पष्टीकरण किया । यहाँ तो इनकार ही करते हैं । ज्ञानी पुरुष इनको करता है,... इसलिए आते हैं । चौथे, पाँचवें में, छठवें गुणस्थान में शुभभाव होते हैं, चौथे में भले न हो पंच महाव्रत आदि, शुभभाव आवे प्रतिक्रमण व्यवहार विकल्प (आवे) परन्तु है शुभराग । कहो, करते हैं अर्थात् होते हैं । कराता है,... अर्थात् उसे विकल्प हो कि भाई ! इस प्रमाण शुभभाव होते हैं । और करते हुए को भला जानता है... पाठ में तो नकार है, उसमें से हकार निकाला शुभ का ।

तो भी निर्विकल्प शुद्धोपयोग अवस्था में... आत्मा अपने ध्यान में ज्ञानानन्द में लीन हो, तब ऐसा ज्ञानी जीव इन तीनों में से एक भी न तो करता है,... शुद्धोपयोग, बहुत ऊँची बात है, ऐसा लोगों को लगता है । पहली वस्तु यह है, ऐसा कहते हैं । आत्मा की दृष्टि में ज्ञायकमूर्ति चैतन्य बसा है, परन्तु स्थिर नहीं हो सकता, स्वरूप के आचरण में । इसलिए पहली अवस्था में पाँचवें, छठवें आदि गुणस्थान में शुभ व्यवहार प्रतिक्रमण आदि का भाव आता है । समझ में आया ? परन्तु उसमें से निकलकर स्थिर होने से, आत्मा के वस्तु के स्वरूप में जमने से, अन्दर निर्विकल्प ध्यान में जमने से ज्ञानी जीव तीन में से एक भी न करे । 'वंदणु णिंदणु पडिकमणु' ऐसे तीन हुए न ये ? न कराता है, और न करते हुए को भला जानता है । समझ में आया इसमें ? पाठ तो यह है मूल तो इतना ही है ।

भावार्थ :- केवल शुद्धस्वरूप में जिसका चित्त लगा हुआ है,... क्या कहते हैं ? यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसी दृष्टि हुई है; इसलिए चित्त वहाँ लगा है। समझ में आया ? सालमपाक खाया हो न एकबार, फिर उसे झट पच जाये और झट सवेरे उठकर वह खाऊँ, उसकी नजर हो। सर्दी में बहुत करे। खबर है ? सर्दी में बनाकर रखे घर में मण, दो मण। सालमपाक समझते हो ? ऊँचा होता है ऐसा। दस-दस रुपये के। अभी कोई कहता था पच्चीस रुपये का एक सेर। अभी कहता था। पच्चीस रुपये का एक सेर। महँगाई कितनी ! सवा पाँच का सेर तो यहाँ सुना है यहाँ बनाते उसमें। यहाँ लोग जाते ... सवा पाँच का सेर देवे पाक। पच्चीस रुपये का एक सेर ऊँचा, ऐसी चक्की घी और अन्दर ठीक से सुगन्ध-फुगन्ध... मूल तो धूल हो सब ठीक सी। परन्तु सवेरे वह पाव सेर खाया हो न। ... भाग दे, हों ! घर के दस व्यक्ति हों, सबको उस प्रमाण में। बड़े को दस पावसेर, छोटे को पावसेर। उससे छोटे को कम। नहीं, नहीं, यह सब बात हुई है, सब देखी हुई और खायी हुई है। सबके भाग करे। छोटा बहुत छोटा हो तो माँगे तो सही, बहुत छोटा हो इसलिए उसे थोड़ा दे। बड़ा हो चालीस वर्ष का, पचास वर्ष का उसे डेढ़ पाव सेर। बहुत अधिक न दे। वापस ... खाना हो न। उसे थोड़ा उसकी नजर वहीं की वहीं रहे। यह रोटी, दाल खाते हैं... करते नहीं हो तुम घर में ? यह वह ऊँची चीज़ हो न, ऐसे और उसमें बादाम और पिस्ता डालकर ऐसे व्यवस्थित किया हो, केसर कस्तूरी और वापस। आहाहा !

एक बार नहीं कहा था ? था कुछ। ... थी हमारे वहाँ आगे कल्याणजी गोविन्दजी। कल्याणजी गोविन्दजी। कल्याणजीभाई नहीं ? एक बार वहाँ बहुत ऊँची चीज़ थी। मात्र पिस्ता का कुछ करके की हुई। बादाम, पिस्ता क्या कहलाता है ? चिरौंजी-चिरौंजी। चिरौंजी का ही कुछ बनाया हुआ सब पीसकर। परन्तु एक बार वह खाया हो और खाने की गृद्धि हो, उसकी बात है, हों ! फिर से सवेरे वह याद रहे कि आहा ! वह चीज़ आवे न, वह चीज़ (आवे तो खाऊँ)।

इसी प्रकार यहाँ आत्मा का आनन्द एक बार चख लिया है न ! समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि जीव ने स्वसंवेदनज्ञान में आत्मा अतीन्द्रिय स्वरूप अनाकुल, अकळ कळा

जिकी आनन्द की है, ऐसी चीज़ को एक बार अनुभव किया है, इसलिए बारम्बार... यह कहते हैं, देखो! उसका चित्त वहाँ लगा है। भले शुभोपयोग में आवे, परन्तु चित्त वहाँ लगा है। यह छोड़कर वहाँ जाऊँ, यह छोड़कर वहाँ जाऊँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह तो दृष्टान्त है, हों! उस दृष्टान्त की बात नहीं। यह तो उसका चित्ता ऐसा रहा करे अन्दर। ऐसे, **केवल शुद्धस्वरूप में जिसका चित्त लगा हुआ है,...** आहाहा! अनाकुल आनन्द का कन्द आत्मा, जिसके स्वाद के एक अंश के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन जहाँ सड़े हुए तिनके लगे। इन्द्र के इन्द्रासन, करोड़ों अप्सराओं की ओर के झुकाव का राग दुःखदायक लगे। समझ में आया? ऐसा जो आत्मा का अनुभव हुआ है उसे, अभी अन्दर स्थिर नहीं हो, तब ऐसा शुभभाव प्रतिक्रमण आदि का होता है। चित्त वहाँ लगा है कि यहाँ से जाकर वहाँ स्थिर होऊँ, यहाँ से जाकर वहाँ स्थिर होऊँ, ऐसा। समझ में आया?

ऐसा निर्विकल्प परमात्मतत्त्व की भावना के बल से देखे,... अब देखो, यह भावना शब्द इसमें बहुत बार आयेगा। ऐसे शुद्ध चैतन्य का आनन्द अन्तर में, एक विकल्प की आकुलता क्षणिक उसके अतिरिक्त की पूरी चीज़ निराकुल है। वह ऐसा आत्मा! कल तो कहा था, रात्रि में नहीं? भाई! तीन रत्न हैं न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्न कहे हैं। क्या? रात्रि (चर्चा में) बात हुई थी। सुनी है? क्या कही थी? भूल जाये। उसे कहाँ याद रहता है? आत्मा है, वह निज शुद्ध चैतन्यमूर्ति पवित्र आनन्दकन्द है। उसमें पुण्य-पाप का जो विकल्प है, उतना विकार आत्मा के निज स्वरूप से विरुद्ध है। अब ऐसा जो स्वरूप आत्मा का शुद्ध आनन्द, उसकी जो श्रद्धा सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान सम्यग्ज्ञान, उसकी रमणता सम्यक्चारित्र, उसे रत्नत्रय कहते हैं। किसी ने सुना है या नहीं? अब इन तीन रत्न के फलरूप से केवलज्ञान कहते हैं। तो केवलज्ञान तो इस रत्न का महा रत्न हुआ। ऐसे-ऐसे अनन्त केवलज्ञान प्रगटे, ऐसा महा रत्न का पिण्ड तो आत्मा ज्ञान में पड़ा है, अकेला ज्ञान में। उस ज्ञानगुण में ऐसे अनन्त महा रत्न पड़े हैं। समझ में आया या नहीं? वह आत्मा क्या चीज़ है? जिसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को रत्न कहा, उस रत्न की कीमत में मोक्ष मिलता है। कहीं कंकड़ देने से मोक्ष नहीं मिलता। शुभभाव से मोक्ष नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह कंकड़ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कंकड़ है यह । यह कंकड़ में कंकड़ मिले—देवलोक । समझ में आया ?

भगवान आत्मा एक उदय के विकल्प के भाव का लक्ष्य छोड़ दे (तो) पूरी चीज़ अकेले अतीन्द्रिय आनन्द का और अतीन्द्रिय ज्ञान का अकेला कस रस है । उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के आचरण को जब रत्नत्रय कहा, तो उसके फल को केवलज्ञान रत्न तो महा रत्न हुआ । ऐसे केवलज्ञान सादि-अनन्त पर्याय के अनन्त रत्न, अनन्त रत्न, वह ज्ञानगुण की शक्ति में ऐसे अनन्त रत्न पड़े हैं । रात्रि में कहा था । याद कहाँ रहा है ? परन्तु अब है ऐसा कहा न, पहले तो जरा ऐसे-ऐसे हो गया था थोड़ा । कहो, समझ में आया इसमें ?

इसी प्रकार केवलदर्शन, वह रत्नत्रय का फल । ऐसा केवलदर्शन अनन्त काल प्रगटे, ऐसा एक महारत्न, ऐसे अनन्त रत्न दर्शन शक्ति में पड़े हैं । चारित्ररत्न, उससे प्रगट हुआ यथाख्यातचारित्र । पूर्ण स्वरूप आचरण यथार्थ चारित्र कि जिसके रत्न के फल में पूर्ण चारित्र प्रगट हुआ, ऐसे अनन्त चारित्र, महाचारित्र रत्न, वे चारित्रगुण में पड़े हैं । रात्रि में बात की थी । अभी तुम्हारे वहाँ जाते हैं न, अभी रात्रि में तो बहुत निकलता है बहुत । कहो, समझ में आया इसमें ? किसी समय निकले, हों ! कहीं सब समय निकलता है, ऐसा कुछ नहीं । कोई समय बातों में जाये अमुक प्रकार की । कहो, समझ में आया इसमें ? अमुक प्रकार की, हों ! यह सब चलता हो, कोई ऐसे लिखता हो, उसकी बातें होती हैं कि यह लिखते हैं ।

उसमें अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, उसका जो यहाँ चारित्र का—स्थिरता का फल, अतीन्द्रिय आनन्द थोड़ा अनुभव में आया, उसका फल पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द । वह अतीन्द्रिय आनन्द महारत्न, ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द सादि-अनन्त प्रगट हो, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का एक आनन्द (गुण में) अनन्त रत्न पड़े हैं ऐसे । छोटाभाई ! यह आत्मा कितना, यह इसे प्रतीति में आता नहीं । समझ में आया ? यह आत्मा कितना और कैसा ? ऐसा बैठता नहीं, उसे भरोसे में आता नहीं । यह क्या ? आत्मा अर्थात् कुछ है नहीं, यह

करो तुम तुम्हारे यह प्रतिक्रमण, सामायिक करो। परन्तु आत्मा क्या? जिसे लाभ हो, वह आत्मा क्या? और जो धर्म करनेवाला है, करनेवाला है, वह आत्मा कौन? वह भगवान जाने, अपने को कुछ खबर नहीं। चिमनभाई! आहाहा!

वह आत्मा ऐसे अनन्त रत्न एक गुण में हैं, अनन्त रत्न। जिसके उस रत्न में से अनन्त केवलज्ञान आदि अनन्त गुण की निर्मल पर्यायें प्रगट हों, उन सबको महारत्न कहा जाता है। ऐसे महारत्न अनन्त काल प्रगटे, ऐसे अनन्त महारत्न एक-एक गुण में पड़े हैं। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण में एक-एक रत्न, ऐसे अनन्त गुणरूपी अनन्त रत्न का पिण्ड, उसे आत्मा कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? समझ में आया या नहीं इसमें? यह त्रिरत्न, त्रिरत्न कहते हैं, लो! त्रिरत्न। रत्नत्रय... रत्नत्रय... रत्नत्रय (बोले), परन्तु रत्नत्रय क्या? भाषा या भाव? तो वह भाव कौन सा? भगवान पूर्ण अनन्त... अनन्त... अनन्त... एक-एक गुण में उसके पूर्ण अनन्त रत्न पड़े हैं। अनन्त, हों! ऐसे एक-एक गुण में अनन्त पूर्ण रत्न अनन्त ऐसे गुणों का गुणरूप रत्न, एक गुण में अनन्त रत्न, ऐसे अनन्त गुणरूप अनन्त रत्न का पिण्ड एक द्रव्य आत्मा है। आहाहा!

उसमें यह तुम्हारे धूल के हीरा और माणेक तो कहीं धूल में भी नहीं, कहते हैं। वह तो कोई शुभ परिणाम साधारण हो जाये न, ऐसे अरबों, अरबों हीरा, माणेक मिल जाये। एक शुभ में। यह तो शुद्ध में ऐसे रत्न की प्राप्ति दृष्टि में हो, तब उसे उसके फल में शुद्ध अनन्त ज्ञान आदि रत्न प्राप्त होते हैं। वह कहीं बाहर से नहीं आते वे रत्न। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह आत्मा क्या वस्तु—आत्मपदार्थ? इसलिए यहाँ परमात्मा, परमात्मा माँडा है यहाँ तो देखो न।

परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप। परमस्वरूप भगवान, परमस्वरूप भगवान, परमस्वरूप परमात्मा। परमस्वरूप अर्थात् क्या? समझ में आया? वह महा परमस्वरूप प्रभु, जिसके एक गुण में ऐसे अनन्त-अनन्त रत्न, जो मोक्षमार्ग के रत्न, उससे अनन्तगुणी पर्याय प्रगट हुई है। ऐसे एक-एक अनन्त रत्न, उसका—अनन्त रत्न का एक गुण, ऐसे दूसरे अनन्त रत्न का एक गुण। ऐसे अनन्त रत्न के अनन्त गुण, ऐसा एकरूप आत्मा। आहाहा! इसलिए उसे चैतन्य रत्नाकर कहा जाता है। लो! ठीक। वहाँ गया वापस। समझ में आया?

चैतन्य रत्नाकर। जैसे समुद्र में अखूट रत्न भरे हों, अखूट। स्वयंभूरमणसमुद्र में तो अखूट रत्न हैं। असंख्य योजन का समुद्र, असंख्य रत्न, असंख्य रत्न धूल के। वह तो स्वयंभू स्वयं। समझ में आया? वह तो स्वयंभू समुद्र पानी का। यह स्वयंभू अनन्त बल का धनी, पानी उसका बल है एक-एक गुण का। देखो, यहाँ बल आया न! आहाहा! क्या कहते हैं? निर्विकल्प परमात्मभावना के बल से। भगवान आत्मा जिसके अन्तर खजाने में, जिसके तल में, जिसके तल में, जिसके अन्तर में अनन्त-अनन्त रत्नवाला एक-एक गुण, ऐसे अनन्त गुण के रत्नरूप भगवान की निर्विकल्प परमात्मतत्त्व की भावना। ऐसा जो निर्विकल्प अर्थात् एकरूप परमात्मा। क्या कहा? ऐसा जो एकरूप परमात्मा। निर्विकल्प अर्थात् एक। अभेद परमात्मा की भावना। समझ में आया? यह कहा न आत्मा। निर्विकल्प परमात्मा। परमात्मतत्त्व की व्याख्या की इतनी तो। कहो, हीराभाई! यह हीराभाई नाम ले। यह तो हीरा अन्दर है पूरा, कहते हैं। आहाहा! ऐसा परमात्मतत्त्व, उसकी भावना, उसकी एकाग्रता का बल, देखो! उसकी भावना के बल से, हों! शब्द पड़ा है न? कितना है? ६४, देखो! अन्दर है वह। परमात्म भावना 'परमात्मतत्त्वभावनाबलेन' पहली ही लाईन है, पहली लाईन है। बल से। आहाहा! यह शुभ विकल्प, वह आत्मा की भावना नहीं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि शुभ विकल्प को गम्य नहीं आत्मा कैसा है वह। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त रत्न का थर, अरूपी है परन्तु वस्तु, वस्तु है या नहीं? और वह दल है या नहीं? साढ़े तीन हाथ, पाँच सौ धनुष में लो न लम्बा। दल है बड़ा अरूपी का ऐसा दल है। उसके दल में, उसके तल में, उसके दल के, उसके तल के सत्ता में अनन्त एक-एक गुण में अनन्त रत्न, ऐसे अनन्त रत्न का पिण्ड, उसे आत्मदल कहते हैं। आहाहा! उसकी भावना। उसकी भावना अर्थात्? उस स्वरूप की ओर एकाग्रता। भावना अर्थात् कल्पना, ऐसा नहीं यहाँ। वे कहे न, भावना का अर्थ ऐसा करते हैं। अरे! भगवान! क्या करता है यह? सर्वज्ञ नहीं होते, गणधर नहीं आते, इन्द्र ऊपर से (कुछ) करे नहीं कि यह तुम कुकर्म करते हो।

कहते हैं, ऐसा निज परमात्मा निर्विकल्प परमस्वरूप भगवान की भावना अर्थात्

उसकी अन्तर एकाग्रता, उसके बल से। देखो भाषा! वह विकल्प का बल और निमित्त का बल और शरीर का बल और संहनन बड़ा मजबूत है, इसलिए उसका बल (—ऐसा नहीं कहा)। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, उसकी **भावना के बल से देखे, सुने और अनुभव किये भोगों की वांछारूप जो भूतकाल के रागादि दोष उनका दूर करना...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा परम—आत्म अर्थात् परमस्वरूप जो यह कहा, उसकी अन्तर की एकाग्रता, उसके जोर द्वारा, जोर अर्थात् बल द्वारा जितने देखे हुए, सुने हुए, अनुभव किये हुए भोग, उनकी जो इच्छा, ऐसा जो भूतकाल का राग—द्वेष का भाव, ऐसी भावना के बल से दूर करना। ऐसी भावना के बल से दूर करना। देखो! इसका नाम **निश्चयप्रतिक्रमण...** है। कहो, न्यालभाई! शाम—सवेरे वह प्रतिक्रमण करे न ... सेठिया व्यक्ति। प्रतिक्रमण किया। चलो भाई! न्यालभाई ने किया, हम भी करें, चलो। प्राणभाई! कहाँ गये तुम्हारे प्राणभाई? आहाहा! कहाँ गये यह तुम्हारे बड़े... आहाहा!

अरे! तूने दरबार की भेंट नहीं की, कहते हैं। जिसके खजाने में कमी नहीं, इतनी अन्दर कीमती चीजें पड़ी हैं। ऐसा भगवान आत्मा अन्दर में अनन्त—अनन्त गुण का पिण्ड। तूने सुना नहीं और वह क्या चीज़ है, यह ख्याल में कभी ली नहीं। तब यह भावना कब हो? ऐसा आत्मा है, उसकी अन्तर रुचि हुई है, श्रद्धा हुई है, विश्वास आया है, ज्ञ—रूप से ज्ञान में जाना है। समझ में आया? तब उस वस्तु में एकाग्र होकर स्थिर हो, उसके बल द्वारा पूर्व के पुण्य और पाप के... देखो! है न? **भोगों की वांछारूप जो भूतकाल के रागादि दोष...** कोई भी शुभ—अशुभभाव सब, हों! उन्हें दूर करना, ऐसी भावना के बल से उन्हें दूर करना। यह भावना, ऐसे आत्मा की भावना करना, उसके बल से विकार दूर होता है। भूतकाल का दोष नाश होता है। उसे निश्चयप्रतिक्रमण कहते हैं, उसे सच्चा प्रतिक्रमण कहते हैं। समझ में आया? यह तो बहुत कहा गया हो, फिर दो मिनिट में कोई कह दे झट एकदम? कहो, भगवानजीभाई! लो! यह प्रतिक्रमण कहा। सच्चा कहा। यह तो वस्तु स्वयं है।

समुद्र में मोती लेने नहीं जाते मरजीवा? टोपी पहनकर श्वास ऊपर रखे, श्वास आवे। वापस मर जाये तो अन्दर? इसलिए श्वास ऊपर रखकर नीचे खोजने जाये। सच्चे

मोती भर-भरकर लेकर फिर ऊपर आवे कितने ही समय में, हों! दो, पाँच घण्टे में, दस घण्टे में अन्दर जाये। वे पड़े हैं रत्न अन्दर, कहते हैं। सच्चे मोती पड़े हों समुद्र में, रत्न पड़े हैं, बहुत पड़ा है। उसी प्रकार भगवान आत्मा तल के ऊपर की जो वर्तमान पर्याय है, उसे अन्तर तल में, अन्तर तल में एकाग्र होने से जिसमें महान रत्न पड़े हैं। परन्तु उसके गुण कितने कहना, कहते हैं। समझ में आया? ऐसा भगवान अनन्त रत्नमय प्रभु चैतन्यरत्न की एकाग्र भावना के बल से दोष का नाश होता है। गत काल के पाप का और पुण्य का उसके बल से नाश होता है। दूसरी कोई पद्धति और उपाय शास्त्र में सच्ची दूसरी पद्धति है नहीं। आहाहा! भूतकाल का प्रतिक्रमण, यह उसकी व्याख्या चली। आता था या नहीं? भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर, आगामी काल के प्रत्याख्यान। यह तीनों आते थे। यह तो अभी एक प्रतिक्रमण चलता है पहला। आहाहा! लोगों को इसकी कीमत नहीं। अर्थात् यह शुभभाव व्यवहारधर्म है, यह निश्चय होवे तो। वह व्यवहारधर्म तो पुण्य है, पुण्य को यहाँ व्यवहार निमित्त साधन व्यवहार से कहा गया है। परन्तु उसका फल तो पुण्यबन्ध है, स्वर्ग मिले। समझ में आया? संवर, निर्जरा नहीं। यहाँ ऐसा जो आत्म भगवान, उसकी एकाग्रता वह संवर-निर्जरा। उस संवर-निर्जरा के बल से भूतकाल के दोष का नाश करना, इसका नाम सच्चा-निश्चय प्रतिक्रमण। कहो, समझ में आया इसमें? व्याख्या भी (अलग प्रकार की)। एक बोल हुआ।

अब, निश्चयप्रत्याख्यान कहते हैं। **वीतराग चिदानन्द एक शुद्धात्मा की अनुभूति की भावना के बल से...** सर्वत्र भावना लेंगे। अब निश्चयप्रत्याख्यान कहते हैं। निश्चयप्रतिक्रमण कहा। निश्चय अर्थात् सच्चा। निश्चय अर्थात् नियमवाला वह निश्चय सत्य। समझ में आया? वह वीतराग चिदानन्द... समझ में आया? वहाँ ऐसा लिया। उसमें शुद्ध निर्विकल्प परमात्मतत्त्व भावना, ऐसा लिया था। यहाँ **वीतराग चिदानन्द एक शुद्धात्मा की अनुभूति...** वीतराग चिदानन्द एक अनुभूति, ऐसा लिया है। वीतराग चिदानन्द एक अनुभूति, वीतराग चिदानन्द एक अनुभूति। अनुभूति किसकी? ऐसा फिर स्पष्टीकरण किया कि वीतराग चिदानन्द, वह कौन? एक शुद्धात्मा, एक शुद्धात्मा। एक शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... अनन्त रत्न का समुद्र भगवान, उसकी अनुभूति—उसका

जो अनुभव। समझ में आया? उसमें परमात्म भावना का बल लिया था, यहाँ उसके अनुभूति की भावना के बल से, ऐसा शब्द लिया। विशेष शब्दों में अन्तर डाला है जरा।

भगवान आत्मा शुद्ध आत्मा वीतराग निर्विकल्प शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा का त्रिकाल, उसकी अनुभूति, शुद्धात्मा की अनुभूति। लो! शुभ का अनुभव, वह नहीं। शुद्धात्मा, वह त्रिकाल; उसकी अनुभूति, वह वर्तमान पर्याय। उसकी भावना के बल से, लो! भावना अर्थात् एकाग्रता है। वह कहे, भावना अर्थात् वह तो कल्पना है। श्रावक को भी सामायिक काल में किसी समय शुद्धोपयोग हो जाता है। भावना, उसने शुद्ध भावना का अर्थ ऐसा किया है कि शुद्धोपयोग हो जाता है, वह भावना है। तब वह कहे कि नहीं, वह शुद्धोपयोग नहीं वह तो...

मुमुक्षु : वह भावना

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कभी करे किसलिए, ले? वह तो हर समय भावना करता है, नहीं करता? वह तो कभी करता है। शुभभाव है, दृष्टि शुद्ध चैतन्य का ज्ञान है। कभी भावना करे अर्थात् शुद्धोपयोग करता है। समझ में आया? ऐसा इसका अर्थ है। अरे! यह अर्थ के अनर्थ करते हैं। भगवानजीभाई पूछते थे एक बार (संवत्) १९८७ में। वकील, रामजीभाई के मित्र। वे तो फिर मित्र वे एक जाति के हों? बहुत प्रकार के होते हैं। ८७ में पूछते थे पोरबन्दर में कि महाराज! खोटा बोले तो जीभ कटे तो मानूँ कि पाप है। लो, ठीक! ८७ में आये थे पोरबन्दर। खोटा बोले, उस समय जीभ कटे। ... परन्तु भाव है जीव का खोटा बोलने का और जड़ है जीभ। जड़ कटे इसका अर्थ क्या अभी? इसका अर्थ क्या? ऐई! खबर नहीं होगी तुमको। खबर है? ८७ में पूछा था। व्याख्यान में आये थे। ... यह क्या बोलते हैं परन्तु? भाव अशुभ पाप का हुआ तो उसके पास वहाँ शान्ति की लूट हुई इतना। अब जीभ कटे, इसका अर्थ क्या? जड़ को, उसमें जड़ को क्या है?

मुमुक्षु : प्रमाण चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाण चाहिए। यह वकालत की बात सच्ची। यह वकालत में

प्रमाण माँगते हैं। आहाहा! प्रमाण (सबूत), बापू! उसे पाप के भाव हुए, वहाँ शान्ति घात हुई, यह उसका प्रमाण है। समझ में आया? बाहर में शरीर का कुछ हो, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? ओहोहो! यह देखो न ऐसे बकरों को काटनेवाला नहीं? लठु जैसा एक राजकोट में ऐसा था लठु जैसा। वह कसाई है न, वह काटे नहीं, ऐसा गला नहीं काटे, उसके पहले गलकटा अलग हो। वह देखा था एक बार कि यह गलकटा। परन्तु लठु जैसा शरीर, हों! यह गलकटा वह काटने सवेरे आ जाये सिर, गला काट जाये बकरे का। फिर वह काटे, कसाई बारीक टुकड़ा करे। देखा हो तो शरीर ऐसा टुकड़ा करे। अब जाना है नरक में। परन्तु अभी उसके शरीर में तो ऐसे देखो तो लठु जैसा ऐसे धम... धम... धम... चलता था। वह हमारे रतनगढ़ जाते हुए बहुत आवे वे कसाईखाना। फिर कोई कहते थे, यह गलकटा है। वह गला काट आवे मुर्गे का, बकरे का, भेड़, बस इतना। उसे कुछ दे वे। वह बहुत पापी और कसाई फिर उसके टुकड़े करे छोटे-छोटे। यह सुनते हों रास्ते में हम निकलते हों, फट-फट ऐसे-ऐसे टुकड़े करते हों कसाई। वह ऐसे देखो तो लठु जैसा शरीर और यहाँ हो बनिया और एक हरितकाय खाने में पाप है। ऐं.. ऐं... .. वह तो पूर्व के पुण्य-पाप हैं, उसके फलरूप से शरीर की अवस्था है और शरीर की अवस्था तो उस प्रकार से होनेवाली है परमाणु की। समझ में आया? उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं कि यह पापभाव करे तो जीभ कटे। जीभ ही कटती है उसे। परन्तु उसकी या पर की? पाप के भाव करे तो आत्मा की शान्ति लुटती है, उसे भान नहीं। वह आकुलता करता है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं, अरे! भगवान! तुझे उल्टे अर्थ करना कहाँ आया ऐसा? ऐसा उघाड़ कहाँ से आया? देखो! क्या कहते हैं?

वीतराग चिदानन्द एक शुद्धात्मा की... सर्वत्र वस्तु एक रहे, परन्तु ऐसे वस्तु एकरूप लेनी है न द्रव्य? अभेद भूतार्थ एकरूप वस्तु है, उसकी **अनुभूति की भावना के बल से...** एकाग्रता के बल से, ऐसा कहना है। **होनेवाले...** होनेवाले अर्थात्? भविष्य में जो **भोगों की वांछारूप रागादिक का...** उसके बल से त्याग, ऐसा लेना। समझ में आया? आत्मा... परन्तु वह आत्मा अर्थात् आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प तो आस्रवतत्त्व है। कर्म, शरीर, वह तो अजीवतत्त्व है। नौ तत्त्व है न नौ? व्यवहारप्रतिक्रमण शुभभाव

वह तो आस्रवतत्त्व है, पाप के परिणाम अशुभ, वह आस्रवतत्त्व है। आस्रव अर्थात् नये आवरण का निमित्त है। शरीर, कर्म तो अजीव है, जड़ है। तब चैतन्यदल क्या है ? जिसे चैतन्य कहते हैं, आत्मा कहते हैं, वह तो अनन्त-अनन्त रत्न के गुण का समुद्र है। ऐसा जो शुद्धात्मा की अनुभूति के बल की एकाग्रता के बल से भविष्य की इच्छाओं का वर्तमान त्याग होना, नाश होना, उसे निश्चयपच्चखाण / प्रत्याख्यान कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसे तो सादी भाषा में (आता है), कहीं ऐसी बहुत नहीं कि कोई पढ़ना पड़े बहुत लम्बा। समझ में आया ? आहाहा !

छोटे-छोटे सिंह के बच्चे हों न, छिपावे चोरी करके ऐसे। एक चोर था न, सिंह का बच्चा छिपाया यहाँ। विलायत में। सिंह का बच्चा था छोटा, वहाँ जा चढ़ा होगा। वहाँ वह कहे ... परन्तु बच्चा कहाँ गया ? तो उसने सिंह का बच्चा लेकर पेट में ऐसे डाल दिया अन्दर यहाँ। कपड़ा पहना हो न ऊपर ? अन्दर डाल दिया। ऐसे कोट-बोट ऐसा रह गया, पेट बड़ा लगे। दूसरे को कुछ खबर नहीं पड़े कि यह तो सिंह का बच्चा कुछ डाला होगा ? छोटा बच्चा होगा ऐसे। अरे ! यह छिपाना आया ? अन्दर गुप्त अनन्त गुण पड़े हैं, उन्हें छिपाना आया नहीं, उन्हें देखना नहीं आया। समझ में आया ? महा पराक्रमी सिंह आत्मसिंह अन्दर गुण का पिण्ड है, उसे दृष्टि में लेना नहीं आया और इस सिंह को रखने लगा। वहाँ जहाँ अन्दर कोर्ट में ले गये, भाई ! वह व्यक्ति यह था, बच्चा चला गया कहीं, खबर पड़ती नहीं। यह तो खड़ा था ऐसे अन्दर वह कोट का वैसा पहन लिया हो ऐसा। यहाँ खड़ा रखा उसमें वहाँ। घण्टा, आधा घण्टा हुआ, वहाँ पेट खा गया वह अन्दर में, उसमें उसे एकदम मूर्च्छा आ गयी। सिंह का बच्चा कहीं... फड़ाक... सहन करने लगा बहुत, वह मानो किसी प्रकार से बाहर गुनाह बाहर न पड़े। फिर वह तो पेट खाया। मूर्च्छा आयी, गिर पड़ा, लो ! जब तक सहन करने की शक्ति, उसने सिंह को छिपाने की (थी)। यह भगवान आत्मा अनन्त गुण का धनी रत्न प्रभु इसे एक श्रद्धा द्वारा विश्वास करना हो तो (कहे), यह नहीं हो सकता। यह नहीं छिपाया जाता, यह आत्मा ऐसा है, नहीं। यह अपने को कुछ खबर नहीं पड़ती। ऐसी कला आती है। फिर उसमें वापस परिणाम उघाड़ा-खुल्ला पड़ गया।

यह तो भगवान आत्मा के ज्ञान की दशा में जिसकी चीज़ की महत्ता आयी है। जिसकी श्रद्धा के भाव में यह आत्मा महान प्रभु अलौकिक अनन्त-अनन्त जिसके माहात्म्यवाले रत्न गुण से भरपूर भगवान, उसकी अनुभूति के बल से ही भविष्य का प्रत्याख्यान हो सकता है। इसके अतिरिक्त त्याग भविष्य प्रत्याख्यान हो नहीं सकता। यह नियम ले कि लो, यह मुझे नहीं खाना। परन्तु उसमें क्या हुआ? कहो, न्यालभाई! ऐई! प्राणभाई! क्या कहा? यह इन्होंने बहुत किया था। यह तीस वर्ष से रस खाया नहीं, लो उसने तीस वर्ष से हरितकाय खायी नहीं। ऐई! मनहरभाई! तुम्हारे दादा ने ऐसा किया था, परन्तु वह तो चलता था, वह था न! आहाहा! अरे! भगवान! आहाहा!

जिसकी नजर डालने से अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, जिसे आह्लाद और आनन्द आवे, उसे भूलकर, यह सब शुभाशुभ विकल्पों में वह फँसकर हम कुछ करते हैं। क्या करता है तू भी? वह तो अनादि का कर्मचक्र है शुभाशुभभाव। समझ में आया? वह प्रत्याख्यान सच्चा नहीं, लो! हमारे यह चलता नहीं, मुझे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालन करो। परन्तु अहिंसा अर्थात् क्या? कहाँ से आती होगी? क्या सूझता होगा? कुछ खबर नहीं। कहो, समझ में आया?

कहा नहीं था एक बार? एक साधु ने बुढ़िया की मजाक की होगी, भाई! बुढ़िया माँ! तुम्हारे रत्नप्रभा जाना है? पहले नरक का नाम रत्नप्रभा है न पहले, सात नरक हैं न नीचे, पहले नरक का नाम रत्नप्रभा है, इसलिए (कहा), क्यों माँ, बुढ़िया माँ! तुम्हारे रत्नप्रभा जाना है? अरे! महाराज! हमारे जैसे पामर जायें? आपके जैसे जायें। कौन जाने रत्नप्रभा क्या होगा? इस चैतन्य के रत्न की खबर नहीं होती, वह नाम रत्न। कहो, समझ में आया? रत्नप्रभा आता है न, सात नरक आते हैं न। पहला, दूसरा, तीसरा, सात नरक। उसमें पहले नरक का नाम रत्नप्रभा है। क्योंकि उसमें वह रत्न के आकार में उसके रंग जैसा उसका वह है वळा। पत्थर उसके वळा ऐसे हैं पत्थर के। इसलिए उसका नाम रत्नप्रभा। उसको नाम की खबर नहीं होती, रत्नप्रभा अर्थात् क्या? वह मजाक करने गया। महाराज! हमारे जैसे पामर कहीं रत्नप्रभा में जाये? आपके जैसे जाये। जा तू नरक में। अभी तो नाम की खबर नहीं होती, रत्नप्रभा अर्थात् क्या? अभी

रत्न नाम पड़ा वहाँ उसे हो गया बड़ा। अब यह तो महारत्न भगवान आत्मा। धर्मचन्दजी! आहाहा! महारत्न ऐसे अनन्त रत्न एक गुण में पड़े हैं। आहाहा! नाम की खबर पड़े, परन्तु उसका भाव क्या है? समझ में आया?

कहते हैं, अहो! भगवान शुद्धात्मा की अनुभूति के, अनुभूति के भाव के बल से। राग-फाग विकल्प नहीं। होनेवाले... अर्थात् भविष्य में होनेवाले। बल से इतना, बस। होनेवाले भोगों की वांछारूप (शुभाशुभ) रागादिक का त्याग... इसका नाम निश्चयप्रत्याख्यान कहा जाता है। इसका नाम सच्चा प्रत्याख्यान। समझ में आया? व्यवहारप्रत्याख्यान तो अशुभ छूटे और विकल्प शुभ रहे, उसे व्यवहारप्रत्याख्यान कहते हैं। है तो वह पुण्य-शुभभाव। प्रत्याख्यान नहीं, उसे कहना, इसका नाम व्यवहार। यह सच्चा प्रत्याख्यान उसे कहा जाता है। अभी तो उसे ग्राह्य होना—पकड़ना (कठिन पड़ता है कि) यह क्या कहते हैं यह? इतने सब माहात्म्य आत्मा के? समझ में आया? लो!

यह निश्चयप्रत्याख्यान... है। अब निश्चय आलोचना। और निज शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से... ऐसा है, देखो! समझ में आया? 'निजशुद्धात्मोपलम्भबलेन' प्रत्येक में भाषा बदली जरा। 'निजशुद्धात्मोपलम्भबलेन' देखो, अब यहाँ दूसरी बात की। शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से अर्थात् कि कुछ पूर्ण प्राप्ति हुई नहीं यहाँ। भाई! यह तो वह उपलम्भ शब्द आया है न! उपलम्भ उसमें आता है, उस मुक्ति के लिये। पहले आ गया था उपलम्भ। उस निश्चय में आ गया था न पहले? वह उपलम्भ वह नहीं यहाँ। वह शब्द तो यहाँ पड़ा है, देखो! 'निजशुद्धात्मोपलम्भबलेन' अर्थात् निज शुद्ध आत्मा पवित्र है, उसे वर्तमान में प्राप्ति करनी है, कहनी है ऐसा। शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से अन्तर वर्तमान लेना है न यहाँ। वर्तमान उत्पन्न राग का अभाव होता है, आलोचना होती है, संवर होता है। वह किस प्रकार से होता है? कि वर्तमान निज शुद्धात्मा के अन्तर अनुभव की प्राप्ति, शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से। शुद्धात्मा की प्राप्ति अर्थात् वर्तमान पर्याय में प्राप्ति। यह आत्मा ऐसा पर्याय में हुआ, उसका नाम प्राप्ति कहा जाता है। निज शुद्धात्मा पूरा पर्याय में प्रगट हो जाता है, ऐसा नहीं। तथापि शब्द ऐसा प्रयोग किया है—निज शुद्धात्मा की प्राप्ति। अर्थात् जो शुद्ध आत्मा दृष्टि-श्रद्धा-ज्ञान में नहीं था, वह श्रद्धा,

ज्ञान में लिया, इसलिए शुद्धात्मा की ही प्राप्ति होती है। पुण्य-पाप की जो प्राप्ति थी, वह श्रद्धा ज्ञान में शुभ-अशुभ राग की ऐसी प्राप्ति थी, वह ऐसे निज शुद्धात्मा ऐसी अन्तर दृष्टि, ज्ञान और रमणता हुई तो शुद्धात्मा की ही प्राप्ति हुई। नहीं था, वह प्राप्त हुआ पर्याय में, ऐसा। समझ में आया? लो! उसके बल से।

वर्तमान उदय में आये जो शुभ-अशुभ के कारण हर्ष-विषादादि अशुद्ध परिणाम उनको निज शुद्धात्मद्रव्य से जुदा करना... अपने विकल्प उठें, उनसे भिन्न (करना) अर्थात् उठता नहीं यहाँ स्थिर हुआ इसलिए। शुद्धात्मद्रव्य से भिन्न करना अर्थात् स्थिर होना, इसका नाम निश्चयआलोचन... निश्चय संवर कहा जाता है। इन तीन के बल से आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल ९, रविवार, दिनांक - ३०-०१-१९६६

गाथा - ६४ - ६५, प्रवचन - ११३

इस तरह निश्चयप्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और आलोचना में ठहरकर... क्या कहते हैं ? कि यह आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् राग शुभ-अशुभरागरहित आत्मस्वभाव है। उसका अन्तर भान करके सम्यग्दर्शन का भान, शुभ-अशुभराग से रहित आत्मा है, उसे अन्तर सम्यग्दर्शन करके, फिर स्वरूप में स्थिर नहीं हो सके, तब तक उसे चारित्र सम्बन्धी का शुभ उपयोग राग व्यवहारप्रतिक्रमणरूप से आता है। उसे छोड़कर भी स्वरूप में स्थिर होना, इसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण, सच्चा प्रत्याख्यान और सच्ची संवर और आलोचना कही जाती है। समझ में आया ?

पहले तो सच्चा करना, ऐसा ही सिद्ध किया। आत्मा शुद्ध अनन्त गुण का रत्न ऐसा स्वरूप। उसकी अन्तर की निर्विकल्प—रागरहित श्रद्धा, रागरहित ज्ञान, रागरहित स्थिरता। उस स्थिरता को निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रत्याख्यान और निश्चयआलोचना कहते हैं। वह तो सम्यग्दर्शनपूर्वक स्वरूप की स्थिरता, वही साक्षात् मोक्ष का कारण है। परन्तु उसमें स्थिर नहीं हो सकता। यहाँ तो स्थिर होकर ही बात की है। स्थिर होकर—ठहरकर जो कोई व्यवहारप्रतिक्रमण, व्यवहारप्रत्याख्यान, व्यवहारआलोचना, इन तीनों के अनुकूल वन्दना, निन्दा आदि शुभोपयोग है,... व्यवहारप्रतिक्रमण, वह शुभ उपयोग है। अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति, ऐसा अशुभ का त्याग और शुभराग में उसे व्यवहार प्रत्याख्यान, ऐसा अशुभ का त्याग और शुभ में रहना, वह व्यवहार आलोचना कही जाती है।

शुभोपयोग है, उनको छोड़ता है... उसे छोड़कर स्वरूप आनन्दस्वरूप में स्थिर होता है, शुद्ध आनन्द में ठहरकर स्थिरता करता है, उसे साक्षात् मोक्ष का कारण कहा जाता है। उनको छोड़ता है, वही ज्ञानी कहा जाता है,... ज्ञानी अर्थात् मोक्ष का तत्काल

आराधक। चारित्रवन्त स्वरूप की स्थिरता आनन्द में, उसे साक्षात् ज्ञानी अर्थात् मोक्ष का आराधक कहा जाता है। अन्य नहीं।

सारांश यह है कि ज्ञानी जीव पहले तो अशुभ को त्यागकर शुभ में प्रवृत्त होता है,... क्या कहते हैं? पहले यह चारित्र की अपेक्षा से पहले—बाद की बात है। दर्शन की अपेक्षा से शुद्ध चैतन्यस्वभाव की अन्तर अनुभव में प्रतीति करना, वह तो पहले में पहला निश्चय सम्यग्दर्शन है। उस निश्चय सम्यग्दर्शन के बाद चारित्र की स्थिरता की अपेक्षा से धर्मी पहले अशुभ का त्याग करके शुभ में प्रवर्ते। अशुभ जो पाप है, उसे छोड़कर शुभराग में आवे, उसे व्यवहारप्रतिक्रमण, व्यवहारप्रत्याख्यान, व्यवहारआलोचना कहा जाता है कि जो पुण्य का कारण है। वह ऊपर कह गये हैं। देखो! 'येन पुण्यस्य कारणं' वह मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया? मोक्ष का कारण नहीं। अशुभ से छूटकर शुभ में आवे, वह मोक्ष का कारण नहीं, पुण्यबन्धन का कारण है। परन्तु स्वरूप में स्थिर नहीं हो सके और दृष्टि शुद्ध चैतन्य में दृष्टि का अनुभव सम्यक् है, (परन्तु) स्थिर नहीं हो सके तो अशुभ को छोड़कर शुभ में आता है। वह शुभभाव पुण्य का कारण है। ऊपर कह गये थे, वह पुण्य का कारण, मोक्ष का कारण नहीं। अर्थात् वह शुभभाव मोक्षमार्ग नहीं। मार्ग हो तो उसे व्यवहारमोक्ष कारण कहना, वह भी कहा यहाँ पहले तो। समझ में आया? सवेरे बात आयी थी। यह अभी दूसरे प्रकार से आती है।

बाद शुभ को भी छोड़ के शुद्ध में लग जाता है। पहले तो धर्मी आत्मा का,... परन्तु वह आत्मा महा अनाकुल आनन्द का पिण्ड है, उसकी जगत को अन्तर महिमा आती नहीं। महिमा या तो परपदार्थ की और या अन्दर शुभभाव (की)। पाप के भाव की महिमा एक ओर, परन्तु शुभभाव आवे तो उसकी महिमा लगती है। परन्तु वह शुभभाव पुण्य का कारण है। मिथ्यादृष्टि हो तो भी पुण्य का कारण है, मिथ्यात्वसहित। सम्यग्दृष्टि हो तो भी शुभभाव पुण्य का ही कारण है, मोक्ष का कारण (ऐसी) संवर-निर्जरा नहीं। इस प्रकार प्रथम जहाँ आत्मा को शुभ-अशुभराग से भिन्न ज्ञायकमूर्ति, अकेली चैतन्य रत्न की वज्रमय कातली शुद्ध आनन्दकन्द आत्मा है, ऐसा अन्तर में दर्शन होना, उसे प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया?

यह सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र के फिर दो प्रकार किये। पहला जो अशुभभाव है — हिंसा, झूठ, चोरी, विषय आदि, उसे छोड़कर शुभभाव में आवे कि जिससे राग की तीव्रता घटकर मन्द हो। परन्तु वह मन्दता का भाव पुण्य का कारण है; संवर-निर्जरा, मोक्ष का कारण नहीं। वह संवर-निर्जरारूप नहीं, इसलिए मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया? उसे छोड़कर यहाँ शुद्ध में लगे। है न? **लग जाता है**। चित्त में आया था न, कहीं नहीं आया था? कहाँ आया था पहले? चित्त लगता है, कहीं नहीं आया था? ... चित्त लगा। बस, यहाँ आया यह। समझ में आया? यह क्यों कहा है? कि धर्मी जीव को प्रथम सम्यग्दर्शन में आत्मा अनाकुल आनन्द है, ऐसा दृष्टि का भान हुआ होता है। इसलिए 'चाखे रस क्यों करी छूटे?' समझ में आया? धर्म की पहली सीढ़ी में पहले प्रकार में आत्मा शुभ, अशुभ विकल्प रागरहित निर्विकल्प आनन्द है, ऐसी अन्तर भूमिका में दृष्टि होने से सम्यग्दृष्टि को प्रथम अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है। अब कहते हैं कि वह चाखे रस क्यों करी छूटे? सुरीजन सुरीजन टोरी। देवता के झुण्ड उतरें परन्तु जो अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि और स्वाद आया है, उसमें से दूसरे में पुण्य-पाप में स्वाद है, ऐसा सम्यग्दृष्टि कैसे माने? समझ में आया? दास!

मक्खी जैसा जन्तु भी फिटकरी के स्वाद को छोड़कर शक्कर के स्वाद में जाये तो वहाँ से हटता नहीं। (छोटे) लड़के को रोटी में शक्कर दे न डली, दो, चार, पाँच? उसमें खाये और थोड़ा सा ऐसा जूठा हो। वह मक्खी स्वाद लेने आये तो उसका पंख चिपक जाये। वह डली ले तो भी उखड़े नहीं। क्योंकि उसे स्वाद आया है। फिटकरी इतनी डली हो, उसे खाये तो उसे स्वाद नहीं लगता। शक्कर की इतनी डली हो, परन्तु उसका स्वाद लगता है तो वहाँ से हटती नहीं। सुनाई देता है? समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा में पुण्य और पाप के भाव हों, वे फिटकरी के स्वाद जैसे हैं और भगवान् आत्मा वह पुण्य-पापरहित चैतन्य आनन्द है, वह शक्कर की डली जैसा उसका स्वाद है। शक्कर की डली जैसा स्वाद होगा? शक्कर का स्वाद तो जड़ है। यह तो मिठास की अपेक्षा से। समझ में आया?

कहते हैं... यहाँ नहीं कहा था? पहली अवस्था में... क्या कहा? भावार्थ। **केवल**

शुद्धस्वरूप में जिसका चित्त लगा हुआ है,... यह वापस यहाँ आया न ? लग जाता है, शुभ को भी छोड़ के शुद्ध में लग जाता है। लोगों को भारी कठिन बात लगती है कि यह वह कैसा धर्म ? ऐसा सब कहाँ इतना अधिक धर्म... होगा ? यह तो अभी पहले सम्यग्दर्शन की बात चलती है। जयन्तीभाई !

कहते हैं कि भगवान आत्मा शान्त वीतराग परमेश्वर तीर्थंकर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी परमेश्वर ने यह आत्मा कहा और भगवान ने देखा और बतलाया। ऐसा जिसने सम्यग्दर्शन में जाना कि यह आत्मा अर्थात् अखण्ड आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द पूतली है। उसके अतीन्द्रिय आनन्द की रुचि के प्रेम में, रुचि के पोषाण में बारम्बार चित्त वहाँ लगता है। प्रवीणभाई ! कल दृष्टान्त नहीं दिया था ? वह सालमपाक का। भाई कहते थे, नहीं ? सालमपाक चखा हो न एक बार मीठा, फिर ज्वार के छिलके का स्वाद उसे, ज्वार के छिलके के रोटियों का स्वाद अच्छा नहीं लगता।

उसी प्रकार आत्मा वस्तु है, वह तो आत्मपदार्थ है अनादि-अनन्त। सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसे अनन्त आत्मा देखे। उससे अनन्तगुणे परमाणु देखे जड़, मिट्टी, धूल। उसमें आत्मा उसे कहते हैं कि जिसमें दुःख की गन्ध नहीं, दुःख का भाव नहीं अर्थात् कि आस्रवतत्त्व नहीं। जिसमें अजीव शरीर और कर्म नहीं अर्थात् कि रूपीपना नहीं। जिसमें रूपीपना नहीं और जिसमें दुःख नहीं। अर्थात् कि दुःख नहीं अर्थात् सुख है। रूपीपना नहीं अर्थात् कि अरूपी भगवान आत्मा अरूपी है। समझ में आया ? दोनों से रहित अर्थात् सुखरूप और अरूपी आत्मा है। अर्थात् सुखरूप और अरूपी आत्मा की जहाँ सम्यग्दृष्टि हुई, इससे उसे चित्त में आनन्द का स्वाद आने पर चित्त बारम्बार वहाँ लगा करे। गृहस्थाश्रम हो, पाप के परिणाम आवे तो भी चित्त वहाँ लगे। यह नहीं, यह नहीं। शुभपरिणाम आवे तो भी चित्त वहाँ लगता है। यहाँ चित्त नहीं, वहाँ लगता है। आहा ! जिसका अनाकुल स्वाद, एक समय का, जिसके चौदह ब्रह्माण्ड में इन्द्र के, इन्द्र के सुख तीन काल के इकट्ठे करे, तो भी आकुलता का दुःख था। यह तो आनन्द। समझ में आया ? ऐसे आनन्द की रुचि में चित्त तो वहीं लगा है, कहते हैं। समझ में आया ? परन्तु स्थिर नहीं हो तब तक वह अशुभ परिणाम से छूटकर शुभ में आवे। परन्तु चित्त

तो वहाँ है, इसलिए शुभ को छोड़कर वहाँ लगे। देखो! है न?

शुभ को भी छोड़ के शुद्ध में लग जाता है। यह बात कृत्रिम नहीं। यह कहनेमात्र बात नहीं यह। इसके भास में इसे आना चाहिए। समझ में आया? वस्तु क्या है? एक ऊँचे-ऊँचे आम या ऐसी बड़ी चीज़ आती है न? उसकी एक फाँक खिलायी हो तो इसे ऐसे स्वाद इसके गले में रह जाता है। आहाहा! परन्तु यह उसे खाये तब न? परन्तु वह फाँक करके रखी, परन्तु वह चखे तब न! न चखे तो? फल बहुत प्रकार के होते हैं न! बहुत प्रकार के परदेश के फल ऐसे-ऐसे ऊँचे-ऊँचे फल होते हैं कि जिसके स्वाद की मधुरता ऐसी मिठास कि किसी दूसरे फल में न हो, ऐसा कोई स्वाद होता है। एक बार इसने चखा हो तो इसे मन में रहा करे। आहाहा! यह फल बहुत अच्छा था।

सवरे गाय का ताजा पकाया हुआ घी पीला सरसों की दाल जैसा। अभी तो सब समझने जैसा थोड़ा है खाने-बाने का। वह तो कपासिया वहाँ पशु को बहुत छोड़ते थे, हों! यह तो कल एक बात सुनी। पहले की पद्धति थी न कपासिया के गोदामों में भैंसों को छोड़ देते। यह वीरजीभाई कहते थे। छककर खाये फिर निकले, उसका हो दूध और उसका हो दही। अब तो कपासिया लावे कहाँ से? और कल कोई कहता था माणेकचन्दभाई के घर में ... गोदाम में छोड़ दे। अभी, कहते हैं, लो! यह पहले साधारण परन्तु ... सरखाई है। आमदनी-बामदनी है। तीस-तीस हजार की आमदनी बाहर। कल कोई कहता था। ऐसा कि छोड़ दे। खाकर छककर निकले। यह हमारे ... है। ... यह देते हैं ... समझ में आया? वह के वह कपासिया खाये हुए घी, दूध। उसका घी, उसका दही, अब उसका स्वाद जिसने चखा हो, वह अभी के साधारण दहीवाले के स्वाद उसे नहीं लगते। समझ में आया? इसी प्रकार जिसने आत्मा के आनन्द की अनाकुलता चीज़ प्रतीति और श्रद्धा में, आनन्द में, स्वाद के अंशसहित बैठी है। ऐसे धर्मी को शुभपरिणाम तो अशुभ छोड़ने को भले आवे, परन्तु चित्त दृष्टि वहाँ लगी है। कब वहाँ स्थिर होना और कब वहाँ स्थिर होना?

इसलिए कहते हैं कि **शुभ को भी छोड़कर...** सम्यग्दृष्टि शुद्धोपयोग में रमे। पहले किये हुए अशुभ कर्मों की निवृत्ति वह व्यवहारप्रतिक्रमण... समझ में आया?

उस दृष्टिसहित है। आनन्द के स्वाद के समक्ष अशुभ परिणाम उसे भले हो, मिठास नहीं, मिठास नहीं। विषय के भोग की वासना आवे। समकिती है, गृहस्थाश्रम है, परन्तु उसमें उसे प्रेम-मिठास नहीं। इस चीज़ के समक्ष यह सब जहर... जहर... जहर... लगे। इससे पहले तो अशुभ तीव्र जहर को छोड़कर। समझ में आया ?

पहले किये हुए अशुभ कर्मों की निवृत्ति वह व्यवहारप्रतिक्रमण, अशुभपरिणाम होनेवाले हैं, उनका रोकना वह व्यवहारप्रत्याख्यान और वर्तमान काल में शुभ को प्रवृत्ति अशुभ की निवृत्ति वह व्यवहारआलोचना है। समझ में आया ? अशुभभाव को छोड़कर शुभभाव में आना तीनों के लिये। व्यवहारप्रतिक्रमण, व्यवहारप्रत्याख्यान, व्यवहारआलोचना। व्यवहार में तो अशुभ का त्याग, शुभ का अंगीकार होता है, और निश्चय में शुभ-अशुभ दोनों का ही त्याग होता है। ऐ न्यालभाई ! देखो न, वहाँ आवे न पहला 'त्याग वैराग्य न चित्त में, होवे न उसको ज्ञान।' कर डाले परन्तु वह उसमें अटके, भूल जाता है। अटके त्याग वैराग्य में तो भूले निज भान। वैराग्य में तो... समझ में आया ?

यह बात क्या है ? यह चीज़ आत्मा... परन्तु वह आत्मा जैसा सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ ने देखा, उसमें तो अकेला आनन्द और ज्ञान की मूर्ति ही भगवान ने देखी है। उस आत्मा में भगवान ने दुःख देखा ही नहीं। ऐ जेचन्दभाई ! आत्मा में दुःख देखा नहीं। दुःख है, वह तो उसकी विकृत आस्रवतत्त्व की पर्याय है। आस्रवतत्त्व की पर्याय, वह कहीं आत्मा नहीं। आहाहा ! अरे ! वह आत्मा किसे कहना इसमें ? क्योंकि एक जरा-सी प्याज की सब्जी ठीक से घी में तलकर ऐसा वह हो न उसे ... दे, वह साधु प्रसन्न हो जाये। ऐसा सुना है। समझ में आया ? आते हैं न, कितने ही खाते हैं। ऊँचे-ऊँचे प्याज इतने घी में तले हुए। फिर लावे तो उसे मुख्य आचार्य, उसको बहुत दे... दूसरे को इतना-इतना टुकड़ा दे तो प्रसन्न हो। अरे ! परन्तु यह वह कहीं प्याज की खुराक वह कहीं साधु को होती है ? समझ में आया ? परन्तु यह उसका स्वाद ऐसा होता है, एक तो चरपरी। होता है न, लोग कहते हैं न कि गरीब को तो प्याज कस्तूरी जैसा। उसे घी में तला हुआ और उसकी जो मिठास आवे घी की। तो धूल की मिठास का ज्ञान

है यहाँ। आहाहा! ... देते होंगे। स्वाद वापस पहले ग्रास में तो रहा, परन्तु थोड़ा-सा दूसरा ग्रास रहे तो दूसरी आवश्यकता न पड़े। एक ग्रास में उसका स्वाद आया जरा सा, वापस ऐसा का ऐसा थोड़ा-सा भाग रह जाये न, वह दूसरे ग्रास में दूसरा टुकड़ा न लेना पड़े, इसलिए वहाँ रहे ऐसा लम्बावे स्वाद को।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक बात है। तेरापंथी को ऐसा है। तेरापंथी है न। यह तो खुल्ली बात है, यह कहीं ढँकी हुई नहीं। वे लोग... तेरापंथी है न तुसली और यह ... बातें आयी है बाहर। कैसी ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : और वह माने ... और यह तो स्पष्ट बाहर आयी हुई। बात कहीं गुप्त रहे। हमारे एक भाई थे न, लीलाधर थे। ... सब हमको खबर है। अपने तो जो हो पक्का हुआ हो, वह कहा जाता है। लीलाधरजी अभी थे हमारे साथ बहुत रहते थे यहाँ आये थे। (संवत्) १९९८ में यहाँ आये कितने दिन रहे थे। वे पहले हमारे साथ तो समझे न? ८३। ८३ के वर्ष से साथ में भावनगर गये थे तो साथ में थे। लीलाधरजी थे। वे कहते थे वे स्वयं हमारे... तुम्हारे प्याज का एक इतना पिंडा आवे दो, उसमें बहुत भाग आचार्य को देते हैं बहुत। फिर उसमें टुकड़े... टुकड़े... टुकड़े... जिस साधु को दे न, सब प्रसन्न हो जाये। मैंने कहा, यह क्या? तुम्हारे यह गृद्धि यह वस्तु? यह तो हुई बात है, हों! और होती है वहाँ। लोग कौन जाने, किस प्रकार से आत्मा क्या है और उसे यह क्या है और राग का कर्तव्य, राग का कर्तव्य भी उसके घर की चीज़ नहीं। राग उठे, वह तो दुःखरूप कर्तव्य है। वह दुःखरूप कर्तव्य भी जिसे आनन्दमय आत्मा का दुःख कर्तव्य है? आवे जहाँ ... करनेयोग्य है, ऐसा हो सकता है? नहीं। यह धूल के स्वाद में चिपट जाये, वह तो दृष्टि में मिथ्यात्व तीव्रता है। समझ में आया ?

आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप के आनन्द में मिठास को लेकर कहते हैं कि पहले एकदम अस्थिरता छोड़ न सके। इसलिए उसे पहले अशुभ छोड़कर शुभ प्रवृत्ति आवे। पश्चात् शुभ छोड़कर शुद्ध में जाये, तब उसे विशेष शुद्धता के उपयोग के आचरण का,

आनन्द का आचरण विशेष हो, उसे सच्चा प्रतिक्रमण सच्चा, सच्चा कहो या निश्चय कहो। उसे सच्चा प्रतिक्रमण, सच्चा प्रत्याख्यान, सच्चा संवर कहा जाता है, बाकी तो सबमें दृष्टि जिसकी सच्ची नहीं, उसे तो व्यवहारप्रतिक्रमण भी कुछ होता नहीं।

★ ★ ★

गाथा - ६५

आगे इसी कथन को दृढ़ करते हैं— ६५। ६४ हो गयी।

१९२) वंदणु णिंदणु पडिकमणु णाणिहिं एहु ण जुत्तु।

एक्कु जि मेल्लिवि णाणमउ सुद्धउ भाउ पवित्त ॥६५॥

देखो, भाषा इतनी बदली। क्या कहते हैं? कि वन्दना, निन्दा और प्रतिक्रमण ये तीनों पूर्ण ज्ञानियों को ठीक नहीं हैं,... क्योंकि शुभराग है। आहाहा! पूर्ण ज्ञानियों को ठीक नहीं हैं, (क्योंकि) एक ज्ञानमय पवित्र शुद्धभाव को छोड़कर अर्थात् इसके सिवाय ज्ञानी को कोई कार्य करना योग्य नहीं है। यहाँ देखो शुद्ध शब्द प्रयोग करके वह शुभराग होता है प्रतिक्रमण का, वह भी अशुद्ध है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? शुभ-शुभराग। सम्यग्दृष्टि को अशुभ छूटकर शुभराग, वह पुण्यभाव, वह मोक्ष का कारण नहीं, वह अशुद्धभाव है। है शब्द? देखो! 'ज्ञानमयं शुद्धं भावं पवित्रम्'

भगवान् आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा। उसके ज्ञानमय आनन्द की मूर्ति का ध्यान और एकाग्रता, उसे छोड़कर, ज्ञानी को कोई कार्य करना योग्य नहीं है। कहो, शुभ-अशुभ में से कोई भाव लाना, करना, वह योग्य नहीं। समझ में आया इसमें? क्या भीखाभाई! शुभ करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। 'मुक्त्वा शुद्धं भावं पवित्रम्' है न? कोई कार्य करना योग्य नहीं है। वस्तु की ऐसी दृष्टि है, उसमें शुभ-अशुभ करना, वह तो वस्तु में नहीं, परन्तु अस्थिरता का भाव अशुभ छोड़कर शुभ आवे, वह भी उसे परिणमने और करनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया?

देव-शास्त्र-गुरु की वन्दना करना, वह शुभभाव है, पाप का प्रायश्चित्त लेना, वह भी शुभ। निन्दा, शुभभाव और प्रतिक्रमण—पाप से विमुख होकर शुभभाव में

आना, ऐसा व्यवहारप्रतिक्रमण भी शुभभाव। वह ज्ञानी शुद्ध चिदानन्द की लीनता में, लीनता में, रुचिसहित लीनता में यह भाव करनेयोग्य है नहीं। आहाहा! कठिन बातें, भाई! ऐसे तो मजा करते हैं न बाहर में। पाँच-दस लाख रुपये हों, इज्जत मिले तो कितनी मिठास आ जाये। जेचन्दभाई! कहो, पाँच-दस लाख रुपये, दस लाख रोकड़ नकद, लड़के कमाते हों तो पचास, पचास हजार, लाख-लाख रुपये तो अब उसकी कुछ मिठास आती होगी या नहीं? मिठास नहीं, परन्तु पागल हो जाये।

मुमुक्षु : किसकी मिठास ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धनी हो, ऐसा कहते हैं, वह पागल ऐसा हो जाये, नहीं, परन्तु मस्त हो जाये, उसमें मूढ़ होकर, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इतनी अधिक मिठास आवे कि मस्त हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मस्त हो जाये। कहो, किशोरभाई! क्या होगा ? लो ! यह सब तुम पैसेवाले हो न सब, ऐई ! पाँच, दस-दस लाख, बीस लाख, पचास लाख धूल में मोटरें ऐसे लाख-लाख रुपये की हो, आहाहा ! एक मोटर आयी थी न। लाख के ऊपर की मोटर कैसी तुम्हारी ? नहीं आयी थी वह ... लो, वे कहते थे लाख रुपये की मोटर है। उसमें दो-तीन महिला बैठीं और दो व्यक्ति ... मोटर यहाँ निकली थी। हिम्मतलाल शाह। हिम्मतलाल शाह कहाँ, वह तो मोटर आयी तो याद आये। कहे राजुल। ओहो ! मैंने कहा यह तो उसके काका। लड़की को जातिस्मरण हुआ है न ... धर्मचन्दभाई थे नहीं ? मोटर देखने... यह हिम्मतलाल ... उस लड़की के पिता के काका यहाँ लेने आये हैं जातिस्मरण ज्ञान का रिकॉर्डिंग लेने आये हैं जयपुर से। मोटर तो ऐसी ऊँची थी बाई को तो ऐसा कि मानो बँगले में बैठी हो ऐसा लगे। आहाहा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा लगे ऐसे दूसरे अज्ञानी को तो ऐसा, आहाहा ! कहीं धूप नहीं और ऐसे ऊपर से ऊँचा वापस यहाँ से बहुत ऊँचा। यहाँ ऊँची मोटर हो न। खड़ी हो जाये। अन्दर मनुष्य खड़ा हो जाये तो अवरोधक नहीं इतनी, इतनी ऊँची। हिम्मतलाल ! देखी है या नहीं ? मोटर। नहीं देखी होगी। अन्दर मनुष्य खड़ा हो तो सिर अवरोधक

नहीं इतनी ऊँची थी। देखी थी न मैंने बराबर देखी थी। वह महिला बैठी थी, उससे ऊँचा बहुत नीचे था। एकदम हिलती हो ऐसे खड़े होकर देखना हो तो चारों ओर देखा जाये। लो, कितना मजा ? धूल में भी नहीं, मुफ्त की आकुलता के राग को सेवन करता है। आहाहा ! ऊपर ढकाव और ऊपर वर्षा का प्रपात गिरता हो और दरवाजा बन्द करे तो ... सुखी है न जीवन वह ? चेतनभाई !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ है, वहाँ क्या परन्तु कहाँ ? सुख-दुःख तो आत्मा की दशा में है। आत्मा आनन्द है, उसकी दृष्टि और ज्ञान में आनन्द है और या उल्टा पड़े तो उसमें सुख है, ऐसी मान्यता करे, वह दुःखरूप आकुलता है। बाहर में दुःख भी कहाँ था और धूल में सुख भी कहाँ था ? समझ में आया ? आहाहा ! अजीवतत्त्व में सुख है, अजीव में ? वह तो अजीव है। पैसा, शरीर, मिट्टी यह सब अजीव, जड़, जड़ तत्त्व है। जड़ में सुख होगा ? मूढ़ की मान्यता है कि यह अनुकूल हो तो हम सुखी हैं और यह प्रतिकूल हो तो हम दुःखी। भगवान तो कहते हैं कि मूढ़ है, तुझे तत्त्व की श्रद्धा की खबर नहीं। किसे नौ तत्त्व कहा जाये।

यहाँ कहते हैं कि धर्मी को... है न ? शुद्ध पवित्र भाव जहाँ प्रगटे, उसे आनन्द कहा जाता है। जितनी आत्मा की श्रद्धा प्रगट हुई सम्यग्दर्शन, उतना शुद्ध पवित्र आनन्दभाव। जितना आत्मा का ज्ञान प्रगट हुआ, आत्मज्ञान, हों ! दूसरा ज्ञान नहीं। आत्मा को स्पर्शकर, छूकर जो ज्ञान हुआ, वह शुद्ध पवित्र ज्ञान, वह आनन्द। और आत्मा में स्थिरता अशुभ छोड़कर शुभ, शुभ छोड़कर स्थिर। वह शुद्ध पवित्रता, वह आनन्द का रूप है। इसके अतिरिक्त आनन्द तीन काल में कहीं है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ? पागल हो गये हैं, कहते हैं। ऐई ! गाँडा अर्थात् क्या ? मस्त न ? मूढ़। मस्त मूढ़ हो गये, आँखें टेढ़ी चली गयी। कहाँ आत्मा में सुख है, पर में भान नहीं और इसने भगवान को माना। भगवान कहाँ है, वह माने ? भगवान तीर्थकरदेव तो आत्मा में सुख कहते हैं। परमेश्वर केवलज्ञानी तीन लोक के नाथ जिन्हें एक समय में तीन काल का ज्ञान था। वे भगवान कहते हैं कि आत्मा में आनन्द है, यह कहता है कि इस धूल में

आनन्द है। इसलिए भगवान तो वैरी हुआ। हिम्मतभाई! आहाहा! भगवान कहते हैं कि हमको तो आत्मा में आनन्द और तुझे भी आत्मा में आनन्द है, ऐसा इसे चाहिए है। तो यह कहे, नहीं, उसमें नहीं, मुझे इसमें आनन्द लगता है, मूढ़ हुआ ...। भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव से भी तू वैरी विरोध हुआ। जयन्तीभाई! आहाहा!

कहते हैं, उस ज्ञान को शुद्ध पवित्र भावन कहते हैं, यहाँ इसके ऊपर से व्याख्या चलती है। यह 'ज्ञानमयं शुद्धं भावं' ऐसा है न? 'णाणमउ सुद्धउ भाउ पवित्त' चौथा पद है। आत्मा जो चैतन्य का पिण्ड है, आनन्द का पिण्ड आत्मा, उसके ज्ञान की एकाग्रता की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह ज्ञानमय शुद्धभाव पवित्रता प्रगटे, उसका नाम शुद्ध और आनन्द है। बाकी कहीं तीन काल में आनन्द नहीं। समझ में आया? यह भी... वहाँ कहे कि परन्तु हमारा आनन्द लूट ले लेते हो। धूल में। बाहर में आनन्द है। मान, मौज मनाते हैं, तब तुम कहो दुःख है। हमको तो कुछ दुःख लगता नहीं। सुन न...! मूढ़ को दुःख क्या लगे? तुझे भान नहीं, हर्ष सन्निपातिया को दुःख लगे? हर्ष सन्निपातिया दाँत निकाले (हँसे) लो। वह सुखी है? दाँत निकाले वह सुखी है? सोजा चढ़ा हो और वह सोजा अन्दर पेट में अन्दर उतरे न, फिर दाँत निकाले ऐसे। वह सुखी है? परन्तु दाँत निकालता है न? वह मूढ़ता है, वह दाँत ही निकाले न, भान कब था वहाँ? इसी प्रकार आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी जिसे रुचि नहीं और पर में आनन्द है, ऐसा मानता है, उसकी तो दृष्टि मिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो यह शुरू करते हैं, दृष्टि आनन्द आत्मा में है, उस सहित शुभ छोड़कर शुद्ध भाव का परिणमन होना, उसे पवित्र और शुद्ध सुखरूप दशा कहते हैं। है ६५, ६५? पवित्र शुद्ध भाव को छोड़कर अर्थात् इसके सिवाय ज्ञानी को कोई कार्य करना योग्य नहीं है। आहाहा! गजब बात, भाई! तब हमारे बाबा हो जाना? बाबा ही है। कब घुस गयी है तेरी चीज़ में दूसरी चीज़? कहा नहीं? कि दुःख की दशा जो उत्पन्न होती है, वह भी स्वरूप में नहीं, वह तो उससे रहित स्वरूप है। जेठाभाई! आहाहा! नौ तत्त्व मानोगे या नहीं नौ तत्त्व? नौ तत्त्व भगवान ने कहे, ऐसे जानना पड़ेंगे या नहीं इसे? तो यह शरीर, लक्ष्मी यह तो अजीवतत्त्व है मिट्टी, जड़, जड़ तत्त्व है भगवान ने देखे हुए।

और तुझमें शुभ, अशुभभाव उत्पन्न हो तो आस्रवतत्त्व है, आस्रव अर्थात् नये बन्ध के परिणाम आवें, उसका कारण है। या सुख का कारण है? अब रहा आत्मा शुद्ध ज्ञानमय पवित्र। ऐसे पवित्र की परिणति पवित्ररूप से प्रगट करना, वह 'णाणमउ सुद्धउ भाउ पवित्त' वह पवित्र भाव है। उसने स्नान किया, मैल निकाल कर स्नान किया, वह पवित्र भाव हुआ, लो! समझ में आया? आहाहा!

नारकी जीव भी सम्यग्दर्शन को प्रगट करता है, इतना उसका ज्ञानमय शुद्ध पवित्र भाव है। ऐसे कीचड़ में, ऐसे बाहर के प्रतिकूल संयोग में, नरक में नारकी जीव को सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? वह भी अन्दर ज्ञानमय ऐसा शुद्धभाव श्रद्धा की परिणति निर्मल प्रगट करता है, उतना आनन्द है। यहाँ तो विशेष स्थिरता की बात विशेष लेनी है चारित्र की। समझ में आया? आहाहा! उसका ज्ञान भी करे नहीं, श्रद्धा करे नहीं, पहिचान करे नहीं और उसे धर्म हो जाये। अनादि काल का अज्ञान में मान बैठा है, ऐसा का ऐसा अनादि काल और ऐसा का ऐसा फू होकर चला गया। कुछ भान नहीं होता।

भावार्थ :- पाँच इन्द्रियों के भोगों की वाँछा आदि लेकर सम्पूर्ण विभावों से रहित... देखो! देखो! यह बात करते हैं। कैसा है आत्मा? यह आत्मा कैसा है? परम आत्मतत्त्व। परम आत्मतत्त्व, परम आत्मस्वरूप, अपना परम स्वस्वरूप। आत्मा कैसा है, ऐसा कहते हैं पहले। कि पाँच इन्द्रियों के भोगों की वाँछा आदि लेकर सम्पूर्ण विभाव... सम्पूर्ण विकल्प जितने दया, दान, व्रत आदि, वे सब विभाव परिणाम हैं। उनसे रहित जो केवलज्ञान आदि अनन्त गुणरूप परमात्मतत्त्व। यह आत्मा की व्याख्या करते हैं। यह आत्मा परम आत्म, परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप तत्त्व, परमस्वरूप भाव, अपना परमस्वरूप भाव, परम आत्म परमस्वरूप तत्त्व ऐसा जो आत्मतत्त्व। कैसा है? कि पाँच इन्द्रियों के भोगों की वाँछा, वह पाप, आदि लेकर शुभादि परिणाम सम्पूर्ण विभाव, उनसे रहित। अब आत्मतत्त्व कैसा है, उसकी बात करते हैं। कर्म, शरीर तो रहित है, यह तो मिट्टी है, धूल है। अन्दर कर्म, मिट्टी, जड़ है आठ कर्म, वह धूल है। उससे रहित ही आत्मा है। परन्तु अशुभ और शुभ विकल्प जो विकार है, उनसे रहित, तो सहित क्या?

केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप... यह पर्याय की बात नहीं। केवल—अकेला ज्ञान, अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, अकेली शान्ति, अकेला अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, स्वच्छता, प्रभुता, ऐसा अकेला एक केवल अकेला ज्ञानादि अर्थात् एक... एक... एक... एक ज्ञान, एक आनन्द एकरूप से ऐसे अनन्त गुणरूप भगवान् आत्मा है। समझ में आया ? कब ? अभी। ऐसा आत्मा इसने सुना नहीं होगा, लक्ष्य में लेना न हो, रुचता न हो, क्योंकि यह पुण्य-पाप रुचे और यह रुचे, उसमें वह कहाँ रुचे ? परन्तु इतना बड़ा यह होगा तो कौन बड़ा पर्वत कहाँ गया परन्तु वह ? आहाहा ! भाई ! वह वस्तु है। वस्तु है, वह अरूपी है। वह अरूपी है, उसका स्वरूप है। अरूप का स्वरूप है। अरूपी का भी स्वरूप है। अरूप, वह केवलज्ञान, अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, अकेली शान्ति, अकेली स्वच्छता, विभूता ऐसे अनन्त गुणरूप परम आत्मतत्त्व परमस्वरूपभाव, परम अपना स्वरूपभाव, उसे यहाँ आत्मा कहा, अब उसकी श्रद्धा। समझ में आया ?

उसकी सम्यक् श्रद्धा। **उसके सम्यक् श्रद्धान...** है ? विभाव-विकल्प जो पुण्य-पाप के भाव, वह भाव। उसे छोड़ दिया। वे इसमें नहीं, इसलिए उनकी श्रद्धा की बात नहीं की। यहाँ अस्ति श्रद्धा की बात की। शरीर, कर्म की बात नहीं की। शरीर और कर्म वह तो अजीव मात्र धूल उसमें नहीं और पुण्य-पाप के विभावभाव भी आत्मा में नहीं। अब नहीं है, परन्तु तब है क्या ? केवलज्ञान की मूर्ति अर्थात् अकेला ज्ञान का स्वभाव, ऐसा। वह केवलज्ञान पर्याय की यह बात नहीं। अकेला केवलज्ञान की मूर्ति, अकेला श्रद्धास्वरूप की मूर्ति, अकेला आनन्द की मूर्ति, ऐसे स्वच्छता, प्रभुता, विभुता, कर्ता, कर्म आदि अनन्त अकेला निर्मलानन्द गुणरूप परमात्मस्वरूप तत्त्व की सम्यक् श्रद्धा। ऐसे परम स्वरूप का अस्तित्व है, विभाव से उससे नास्ति है। और ऐसा उसका अस्तित्व है, ऐसा उसका अस्तित्वपने होना है, ऐसे अनन्त गुणरूप से अस्तिरूप से जिसका होना है, उसकी सम्यक् श्रद्धा। उसकी सम्यक् सत् श्रद्धा। यह पूर्णानन्द है। यह अकेला ज्ञानकन्द आत्मा है, अकेली शान्ति का रसकन्द है, अकेला दर्शनबिम्ब है, अकेली वीर्य की मूर्ति है। आत्म बल शक्ति। ऐसा जो आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। बँगला-बँगला कहाँ गया इसमें ? जड़ में गया। नास्ति में गया वह। इसमें नहीं वह। क्या

है इसमें ? उसमें क्या है ? नहीं कहा तो है क्या उसमें ? अकेला ज्ञान । यह पृष्ठ की बात नहीं । यह तो समझण का पिण्ड, अकेला आनन्द का पिण्ड, अकेला दर्शन का तत्त्व, अकेली शान्ति... शान्ति... शान्ति... वीतराग रस का तत्त्व । ऐसे अनन्त ज्ञानादि गुण परम स्वरूप आत्मा है । आहाहा ! समझ में आया ?

उसके सम्यक् श्रद्धा... ऐसे आत्मा की अन्तर्मुख होकर यह आत्मा, ऐसा श्रद्धा में लेना, उसका नाम सम्यग्दर्शन । समझ में आया ? **उसका सम्यक् श्रद्धा ज्ञान...** अनन्त गुण स्वरूप भगवान आत्मा वस्तु है, उसका सम्यक् ज्ञान और उसका सम्यक् आचरणरूप । समझ में आया ? शब्द अभी कठिन पड़े लोगों को । आचरणरूप यह चारित्र । उसका आचरण । केवल अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु आत्मा अकेला परम तत्त्वस्वरूप रस, उसकी सम्यक् श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसका **आचरणरूप (चारित्र) निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न...** आचरणरूप ऐसी निर्विकल्प शान्ति, ऐसा । समझ में आया ? उससे उत्पन्न जो परमानन्द परमसमरसीभाव वही हुआ अमृत-रस... लो ! यह पर्याय ली । वह था द्रव्यभाव । परमात्म तत्त्व अभी द्रव्य वस्तु थी । उसकी सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और आचरण निर्विकल्प समाधि शान्ति । उसके सन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और आचरण की शान्ति । समाहिवर मुत्तं दिंतु तो बहुत बोलते हैं लोगस्स में । बहुत बोलते हैं न ? अर्थ की कुछ खबर नहीं होती । आता है न ? लोगस्स में आता है 'समाहिवर मुत्तं दिंतु' आता है न ? 'चंदेसु निम्मलयरा आईरयेसु... सागरवरगंभीरा... एवं मअे अभिथुआ विहूयरयमला पहीणजरमरणा...' आता है न ? 'समाहिवर मुत्तं दिंतु।' उसमें । समाहि अर्थात् क्या ? वह बाबा की समाधि होती होगी वह ? यहाँ तो भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर यह आत्मा जो ऊपर कहा ऐसा, उसकी सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और आचरण की निर्विकल्प शान्ति का नाम भगवान समाधि कहते हैं कि जिस समाधि में आधि, व्याधि और उपाधि नहीं है । उसे यहाँ समाधि (कहते हैं) । समाधि ऐसे चढ़ा देना, वह कोई समाधि नहीं । समझ में आया इसमें ?

यह और तीन कहा न । तीन क्या कहा ? कि आत्मा अपने परम स्वरूप, जो कहा अनन्त गुणरूप परम स्वरूप, उसकी सम्यक् श्रद्धा, उसका सम्यक् ज्ञान, उसका सम्यक्

स्वरूप आचरणरूप निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न हुई निर्विकल्प शान्ति, उसरूप तीन को निर्विकल्प शान्ति कहा। सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र इन तीनों को शान्ति कहा। वह समाधि कैसी है ? कि जिसमें उपाधि, शरीर आदि की उपाधि नहीं, व्याधि नहीं, शरीर में रोग है, वह व्याधि उसमें नहीं और आधि—कल्पना पुण्य-पाप की आधि उठती है, वह भी उसमें नहीं। ऐसी परम शान्तिरूपी समाधि जिसमें से उत्पन्न हुआ परम अमृत स्वाद। भाषा। परमानन्द उत्पन्न हुआ परमानन्द। परमसमरसी परम वीतरागभाव। परमानन्द वीतरागभाव, ऐसा। परमसमरसीभाव। वह शुभभाव था, वह परमसमरसी नहीं था। समझ में आया ?

परमसमरसीभाव, वही हुआ अमृत-रस... ओहो ! अच्छा आम हो न मजबूत। तो उसकी छाल को ऐसे चूस डाले। दाँत ऐसे दो दाँत ठीक हो न यहाँ ऐसे करके चूसे। उसमें से उस छाल का भाग भी आवे थोड़ा। उस रस की मिठास है न। खींचकर दो दाँत के बीच खींचकर। अच्छे दाँत हों ऊपर के, नीचे के। यहाँ कहते हैं कि आहाहा ! आत्मा परम स्वभाव की अन्तर दृष्टि, ज्ञान और आचरणरूप शान्ति से उत्पन्न हुआ परमानन्द, ऐसा जो परमरसी। परन्तु वापस परमानन्द कैसा ? अच्छी रीति से समभावी भाव है वह। वीतरागी परमानन्द आया ऐसा। समझ में आया ? शुभ-अशुभभावरहित समभावी परमानन्द की पर्याय प्रगटी, **वही हुआ अमृत-रस, उसके आस्वाद से...** उसके आस्वाद के स्वाद से **पूर्ण जो ज्ञानमयीभाव...** यह पर्याय की बात की है, हों ! यह पर्याय की 'णाणमउ सुद्धउ भाउ पवित्त' यह पर्याय की बात है। है न चौथा पद ? पर्याय समझ में आया ? अवस्था-दशा। जिसे अशुभ परिणाम, वह विकारीदशा है; शुभपरिणाम, वह राग मन्दरूप विकारीदशा है और यह शुद्धपरिणामरूप निर्विकारीदशा। समझ में आया ? कितनी बार प्रतिक्रमण किये होंगे शाम, सवेरे, आसन फाड़े हों और पगथिया फाड़ डाले हों। पगथिया तोड़ डाले हों कितने ही। परन्तु यह वस्तु क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं। ऐसा आत्मा अर्थात् क्या, खबर भी नहीं होती आत्मा क्या है।

सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने यह आत्मा देखा, ऐसा इन्द्रों के समक्ष में, चक्रवर्ती के समक्ष में समवसरण में वर्णन किया। ऐसा यहाँ सन्त

वर्णन कर रहे हैं। आहाहा! यह पाँचवें काल के सन्त की व्याख्या है। यह चौथे काल के लिये नहीं कि, चौथे काल के लिये यह बात होगी, यह तो पाँचवें काल के धर्मी जीव की ऐसी दशा होती है, उसका वर्णन करते हैं। समझ में आया ?

कहते हैं कि परमसमरसीभाव वही हुआ अमृत-रस उसके आस्वाद से पूर्ण जो ज्ञानमयीभाव... वह स्थिरता। जिस स्वाद का आत्मा का स्वाद, अतीन्द्रिय स्वाद की मिठासरूपी पूर्ण में तृप्त हो गया है। उसे छोड़कर अन्य व्यवहारप्रतिक्रमण प्रत्याख्यान आलोचना के अनुकूल वन्दन निन्दनादि शुभोपयोग विकल्प-जाल हैं,... आहाहा! समझ में आया ? व्यवहार प्रतिक्रमण, वह शुभभाव है। ऐसे ज्ञानमय भाव को छोड़कर जो भाव हो, वह तो विकल्प की जाल है शुभराग की। आहाहा! वह व्यवहार प्रतिक्रमण, वह शुभ विकल्प जाल है राग की। वह आत्मा की शान्ति का भाव नहीं। पहले कहा था कि अशुभ छोड़कर शुभ होता है, परन्तु वह है विकल्प की जाल। वह आत्मा की निर्विकल्प शान्ति की परिपूर्ण पर्याय नहीं। शुद्ध नहीं, वह तो अपूर्ण पर्याय में शुभभाव उत्पन्न था। वह शुभ गया और स्थिर हुआ, तब पर्याय पूर्ण हुई उस जाति की चारित्र की। समझ में आया ? ज्ञानमय भाव अर्थात् कि जो शुभरागभाव था, वह ज्ञानमय भाव नहीं था। उसे छोड़कर आत्मा के अतीन्द्रिय अमृतरस के आस्वाद में आया, वह ज्ञान की पूर्णता अर्थात् जो राग उत्पन्न होता था, उसमें अपूर्ण ज्ञान आदि खिला था। उसे छोड़कर स्थिर हुआ तो इस अपेक्षा से पूर्ण ज्ञानमय स्थिरता को निश्चय प्रतिक्रमण कहा जाता है। समझ में आया ?

यह तो ऐसी बात है कि भाई! समझते, सुनते हुए मानो दूसरे देश में हूँ (ऐसा माने) तो समझ में आये ऐसा है। क्या कहते हैं ? देखो! इसके आनन्द के आस्वाद, स्थिरता के आनन्द के समक्ष उसे छोड़कर पुण्य व्यवहार प्रतिक्रमण जितने भाव शुभ थे, वे सब व्यवहार प्रत्याख्यान अशुभ छोड़कर शुभ आया था, ऐसे आलोचना अशुभ छोड़कर शुभ आया था, वह उसे अनुकूल वन्दन निन्दा आदि शुभ उपयोग था। व्यवहार प्रतिक्रमण के प्रति अनुकूल कौन ? कि वह शुभभाव, गुरु आदि का वन्दन करना। वह शुभ उपयोग विकल्प-जाल है। आहाहा!

वे पूर्ण ज्ञानी को करनेयोग्य नहीं हैं। ज्ञानी अर्थात् तीन में एकता करनेवाले को, ऐसा। ज्ञानस्वरूप को दर्शन, ज्ञान और स्थिरता की एकता करनेवाला। एकता उसका नाम पूर्ण ज्ञान, ऐसा। समझ में आया ? पूर्ण वापस वह केवली की यहाँ बात नहीं। भाई ! उन तीन की एकता हुई दर्शन, ज्ञान और चारित्र की एकता। उन तीनों एकता से पूर्ण हुआ, ऐसा। समझ में आया ? ऐसी बात करते हैं। आत्मा भगवान आनन्द का अतीन्द्रिय शान्त का पर्वत है। जिसकी श्रद्धा, ज्ञान करने से अतीन्द्रिय आनन्द झरे। श्रद्धा-ज्ञान का आनन्द झरे, उसमें उसकी ज्ञान की परिपूर्णता का वह चारित्र भाग नहीं आया, इसलिए अपूर्ण हुआ। इसलिए मोक्षमार्ग में दो भाग आये, उसमें तीसरा बाकी रह गया। शुभभाव आया, उसे छोड़कर स्थिर हुआ तो ... चारित्र आया अर्थात् ज्ञानमय तीन एक हो गये। समझ में आया ?

वापस कोई कहे कि यह पूर्ण ज्ञान... केवलज्ञानी की। उनकी बात नहीं, यह तो चारित्र के अन्दर में उपयोग शुद्ध जमा, इसलिए जिस चारित्र में जो न्यूनता थी, दो भाग थे बराबर दर्शन, ज्ञान के, जो चारित्र की न्यूनता थी शुभभाव में, वह गयी और स्थिर हुआ, तीन की एकता हुई, ज्ञानमय की तीन की एकता की पूर्णता हो गयी। ऐसी ज्ञानी को ऐसे शुभभाव करनेयोग्य नहीं अर्थात् हो सकते नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? गजब ! कोई कहे कि ऐसी यह किसकी बातें हैं ? यह पंचम काल में भी जिसे धर्म करना हो, उसको यह बात है। समझ में आया ? चौथे काल और पाँचवें काल में शक्कर में अन्तर पड़ता होगा कि उसको चौथे काल में शक्कर को शक्कर कहा जाये और पाँचवें काल में पत्थर को शक्कर कहा जाये ? मिठास में अन्तर पड़े, वह अलग बात है। ... समझ में आया ? इसी प्रकार चौथे काल और पाँचवें काल का मोक्ष का मार्ग तो एक ही है। समझ में आया ? यहाँ तो कहते हैं, जो मुनि आत्मा का ज्ञान करके, आत्मा की दृष्टि करके आनन्द की और उस शुभभाव को छोड़कर अपूर्णता चारित्र की थी, उसे पूर्ण करके स्थिर होता है, उस ज्ञानी को दूसरा कर्तव्य नहीं हो सकता।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है। वह तो शुद्ध उपयोग ही रहता है। वह तेरा कर्तव्य

है, तेरा स्वरूप तो वह है। आहाहा! आनन्द में से बाहर पहले होना, वह कहीं कर्तव्य है? समझ में आया? भरे घर छोड़कर बाहर भटकता है, नहीं कहते लोग? परस्त्री का लम्पटी हो, उसे लोग कहते हैं...। परन्तु घर में, घर में बर्तन भरा है और यह जहाँ-तहाँ भटकता है। कोळी और वाघरी के घर में। नहीं कहते? सज्जन को कहे या नहीं? घर में स्त्री बेचारी, कैसी खानदान की पुत्री, फूल झरे ऐसी बाई। ऐसे भरे बर्तन छोड़कर यह कोळी और वाघरी के घर में घूमता है? उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि अरे! तेरे घर में आनन्द और ज्ञान भरे हैं, उन्हें छोड़कर यह विकल्प में घूमता है मुफ्त का। आहाहा! वह परघर में जाता है। छोड़ उसे और स्वघर में जा, इसका नाम ज्ञान की पूर्णता और चारित्र की एकता और मोक्षमार्ग की एकता कहा जाता है।

परमात्मप्रकाश है न। जिससे परमात्मा झट प्रगट हो। वे पूर्ण ज्ञानी को करनेयोग्य नहीं हैं। प्रथम अवस्था में ही हैं, आगे नहीं है। यह तो बाद में लेखन किया है, हों! टीका में नहीं। टीका में 'तदनुकूलं वन्दननिन्दनादिशुभोपयोगविकल्पजालं च ज्ञानिनां युक्तं न भवतीति' बस। वहाँ आगे स्थिरता में वह योग नहीं। पहले जब तक स्थिर नहीं हो सके, तब तक ऐसा भाव होता है, परन्तु शुभभाव को इसे हेय जानना चाहिए। इसके बिना उसे छोड़कर स्थिर हो सकेगा नहीं। उसे परमात्मा के प्रकाश का भाग प्रगट हुआ, ऐसा कहा जाता है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल १०, सोमवार, दिनांक - ३१-०१-१९६६

गाथा - ६६ - ६७, प्रवचन - ११४

गाथा - ६६

परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग ।

१९३) वंदउ णिंदउ पडिकमउ भाउ असुद्धउ जासु।

पर तसु संजमु अत्थि णवि जं मण-सुद्धि ण तासु ॥६६ ॥

क्या कहते हैं ? कहते हैं कि वन्दना करो, भगवान की स्तुति आदि करो । सरल टीका में दिया है । पाठ में, जो भाव है, वह अशुद्ध है, ऐसा कहना है । पाठ में है 'करोति' । जब तक आत्मा की सम्यग्दर्शनपूर्वक व्यवहार की स्तुति, भक्ति, वन्दन हो, तब तक मन को अशुद्धता है । दृष्टि की शुद्धता हो, परन्तु अस्थिरता में उसकी अशुद्धता है । क्या कहा ? समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसकी ही बात है यहाँ तो निश्चयपूर्वक की ही बात है । आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञानमूर्ति का सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, इतना तो शुद्ध है । यहाँ चारित्र की अपेक्षा से अशुद्ध और शुद्ध का वर्णन है ।

कहते हैं कि जब तक आत्मा में वन्दना परवस्तु की हो, देव-गुरु-शास्त्र आदि की, वहाँ तक वह शुभभाव अशुद्ध है । टीकाकार ने स्वरूप अर्थात् भले हो ऐसा, भूमिका के प्रमाण में उसे वह व्यवहारभाव हो, परन्तु है वह अशुद्धभाव । भगवान की स्तुति, निःशंक वन्दना करो, निन्दा करो, प्रतिक्रमणादि करो,... व्यवहार आचरण की जो योग्यता पंच महाव्रत के परिणाम, अट्टाईस मूलगुण विकल्प इत्यादि वे छठवें गुणस्थान में आत्मा के दर्शन-दृष्टि पूर्वक ऐसे भाव अशुद्ध, अशुद्ध हो, कहते हैं । तथापि

वह मलिन है। समझ में आया ? लेकिन जिसके जब तक अशुद्ध परिणाम हैं,... जब तक वे परिणाम व्यवहार के हैं, निन्दा, स्तुति, भक्ति, अपने पाप की निन्दा, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित, आलोचना, शुभ विकल्प राग है, तब तक अशुद्ध परिणाम है। समझ में आया ?

उसके नियम से संयम नहीं हो सकता,... यहाँ तो यह कहते हैं। है न ? 'तसु संजमु अत्थि णवि' जो संयम शुद्ध चाहिए, वह संयम नहीं। समझ में आया ? क्योंकि उसके मन की शुद्धता नहीं है। शुद्ध वस्तु की दृष्टि और ज्ञान होने पर भी शुद्ध परिणमन का उपयोग न हो, तब तक उसे संयम उस प्रकार का चाहिए, वह संयम नहीं। समझ में आया ? जिसका मन शुद्ध नहीं, उसके संयम कहाँ से हो सकता है ? जिसके मन में शुभभाव होता है, उसे शुद्ध उपयोग का परिणमन कहाँ से होगा ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वस्तु का शुद्ध, शुद्ध वस्तु है चैतन्य। ज्ञान, आनन्द आदि शुद्ध चैतन्य, उसका शुद्ध उपयोग का परिणमन, शुद्ध आचरण का परिणमन न हो, तब तक मन में शुद्धि नहीं होती। जितने व्यवहार के विकल्प हैं, वे सब अशुद्ध हैं, पुण्यबन्ध के कारण हैं। इसलिए वहाँ तक संयम कहाँ से ? उस प्रकार का जो संयम शुद्ध उपयोग चाहिए, वह संयम है नहीं।

भावार्थ :- नित्यानन्द एकरूप निज शुद्धात्मा की अनुभूति के प्रतिपक्षी (उल्टे)... देखो ! भगवान् आत्मा नित्यानन्द मूर्ति है। आत्मा का शब्द यह निकाला है ... यह आत्मा अर्थात् आत्मोति प्राप्नोति इति आत्मा ... ऐसा शब्द पड़ा है, फूलचन्दजी का। यह आत्मा अर्थात् आत्मोति प्राप्नोति इति आत्मा। सबको जाने, ज्ञेय को जाने अतति गच्छति, वह आत्मा कहलाता है। पड़ा है। देखा है संस्कृत। अतति गच्छति इति आत्मा नहीं लिया, वह तो आत्मोति प्राप्नोति वह आत्मा, ऐसा शब्द पंचाध्यायी में रखा है। आत्मा तो शुद्धस्वभाव उसकी शुद्ध दृष्टि, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध उपयोग को प्राप्त करता है। तो उसे संयम कहा जाता है और वह चारित्र, वह मुक्ति का कारण है। समझ में आया ? जब तक इसे व्यवहार के विकल्प प्रतिक्रमण के, प्रायश्चित के, वन्दना के, स्तुति के, भक्ति के हों, तब तक मन परसन्मुख है। अन्दर मुड़ा नहीं। शुभ विकल्प है, वह अशुद्धभाव है, वह पुण्यबन्ध का कारण है, उसे इतना असंयमभाव है। ऐसी बात है। भगवान्

अकेला चैतन्य के दरबार में अन्दर स्थिर हो, उपयोग जिसमें स्थिर हो, जिसमें मन के शुभ विकल्प का अशुभभाव भी न रहे, ऐसी दशा को संयम कहते हैं। कहो, धर्मचन्दजी! यह कब इस काल में होता है या नहीं? या चौथे काल की बात होगी? उपदेश तो पाँचवें काल के मुनि उपदेश करते हैं। ओहो!

जिसके घर में अकेली पवित्रता और शुद्धता ही अन्तर स्वरूप में पड़ी है, उसकी दृष्टि, ज्ञान और अन्तर में रमणता, वही संयम है। मन बाहर भटके शुभ परिणाम में, व्यवहार प्रतिक्रमण आदि क्रिया में बाह्य आचरण, वह बाह्य आचरण विकल्प, हों! वह बाह्य आचरण। देह की क्रिया की बात नहीं। ओहो! दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण... श्रीमद् कहते हैं न, ...रहस्य समझा जा सकता है। वस्तु... वस्तु... वस्तु... ऐसे महा चैतन्य भण्डार। अनन्त गुण रत्नाकर प्रभु की अन्तर में रुचि और ज्ञानसहित की अन्तर में रमणता, वह संयम है। जितना मन बाहर भटके यह दया, दान, व्रत, विकल्प में, वह अशुद्ध परिणाम है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अभी सम्यक् के भान बिना अकेले परिणाम बिना ठिकाने के, उसे माने संयम? दया और दान और यह हमारे महाव्रत हैं यह। समझ में आया?

यहाँ तो शुद्धस्वरूप की दृष्टि और चारित्र्य मुक्ति का तत्काल कारण है, उसकी व्याख्या की है। समझ में आया? बाद की गाथा यह आती है न, देखो न! प्रवचनसार में अन्त में आती है न!

नित्यानन्द एकरूप... देखो, भाषा! आत्मा शाश्वत् आनन्द के रूप का करनेवाला स्वयं। उसकी पर्याय में दुःख है, वह स्वरूप में नहीं। स्वरूप तो नित्यानन्द शाश्वत् आनन्दवाला तत्त्व है। कौन-सा आनन्द? अतीन्द्रिय आनन्द। समझ में आया? उसे अन्तर घर में तो नित्यानन्द अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय अनाकुल शान्तरस ही पड़ा है। उसे आत्मा कहते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे तो दुःखरूप दशा, विकार हैं; वे कोई आत्मा नहीं। शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, पर है। कैसा है आत्मा? कि नित्यानन्द एक तो। दूसरा एकरूप। पाठ में है न नित्यानन्द एकरूप, निज शुद्धात्मा। वापस अपना शुद्धात्मा।

ऐसी वस्तु है महान चैतन्य निज पदार्थ शुद्धस्वरूप, पुण्य-पाप के विकल्प, कर्म, शरीर रहित चीज़ है। ऐसा निज शुद्धात्मा, अपना निज शुद्धात्मा नित्यानन्दरूप है, उसकी अनुभूति। यहाँ तक आत्मा कहा। द्रव्य की अनुभूति, उसका जो अनुभव शुद्ध आनन्दस्वरूप आत्मा की एकाग्रता, उसकी अन्तर एकाग्रता, वह आत्मा आनन्द है, उसे अनुसरकर दशा में आनन्द का होना, उसका नाम अनुभूति। समझ में आया? उसे अनुसरे बिना, संयोग, निमित्त को अनुसरकर जो पुण्य-पाप के विकल्प राग होता है, वह विकार और दुःखरूप अनुभूति है। समझ में आया? वह आत्मा की अनुभूति नहीं। अनुभूति... समयसार के अन्तिम कलश में। आहा! कथन पद्धति दिगम्बर आचार्यों की शैली कोई अलौकिक है।

कहते हैं, भगवान आत्मा की अनुभूति, वह पर्याय है। पहले कहा कि नित्यानन्द एक निज शुद्धात्मा, वह द्रव्य कहा, द्रव्य अर्थात् वस्तु। उसकी एकाग्रता पर्याय की वस्तु में एकाग्रता, वह अनुभूति। उससे प्रतिपक्षी, ऐसी अनुभूति के प्रतिपक्षी (उलटे) जो विषय कषाय, उनके आधीन... विषय-कषाय के परिणाम, शुभ-अशुभभाव दोनों अनुभूति से विरुद्ध पक्षवाले हैं। आत्मा से तो विरुद्ध है, परन्तु आत्मा की पर्याय जो अनुभूति निर्मल होनी चाहिए शुद्धपर्याय (होनी चाहिए)। आत्मा उसमें एकाग्र होने पर शुद्धपर्याय प्रगट हो, वह अनुभूति। उससे उलटी पर्याय विषय कषाय के परिणाम हैं, वह शुभ हो या अशुभ हो। यहाँ तो वास्तविक शुद्ध की व्याख्या की है। ऐसे पर के ऊपर जितना लक्ष्य जाता है, उतना विकल्प, वह पर का विषय करके विकल्प उठाता है। उतना कषाय, उनके आधीन आर्त रौद्र खोटे ध्यानोंकर जिसका चित्त रँगा हुआ है,... उसमें लीन होकर जो आर्तध्यान में हो या रौद्रध्यान में। जिसका चित्त रँगा हुआ है। उसके द्रव्यरूप व्यवहार-वन्दना,... उसे द्रव्यरूप व्यवहार वन्दना या निन्दा, निन्दा है, हों! शब्द। 'णिंदउ' है न निन्दा। निन्दा अर्थात् पाप की निन्दा। समझ में आया? 'वंदउ णिंदउ पडिकमउ' है न संस्कृत में। वन्दना, निन्दा प्रतिक्रमणादि क्या कर सकते हैं? समझ में आया? एक बात कोई चाहिए तो जिसकी दृष्टि शुद्ध के ऊपर करनी नहीं, उसे यह व्यवहार वन्दन, प्रतिक्रमण आदि के शुभ, उसका आत्मा को क्या काम? समझ में

आया ? और निश्चय दृष्टि होने पर भी ऐसे जो शुभभाव हैं, वे वन्दन आदि, उनसे क्या शुद्ध होगा ? ऐसे द्रव्य प्रतिक्रमण आदि, द्रव्य प्रतिक्रमण, द्रव्य प्रायश्चित्त, द्रव्य आलोचना, द्रव्य संवर, विकल्प से आत्मा की सिद्धि किस प्रकार होगी ? समझ में आया ?

जो वह बाह्य-क्रिया करता है, तो भी उसके भावसंयम नहीं है। बाह्य क्रिया के आचरण में भाव है, परन्तु दृष्टि शुद्ध के ऊपर नहीं और शुद्ध उपयोग नहीं, इसलिए उसे संयम नहीं होता। कहो, समझ में आया ? ऐसे द्रव्य प्रतिक्रमण आदि करे, द्रव्य प्रत्याख्यान करे, द्रव्य आलोचना अर्थात् कि शुभ व्यवहाररूप विकल्प करे, स्तुति, वन्दन, भक्ति, शुभभाव करे, परन्तु उससे क्या कर सके ? उसे भावसंयम कैसे हो ? सिद्धान्त में तो उसे असंयमी कहते हैं। इतने परिणाम शुभ हों, अकेले शुभ हों, दृष्टि शुद्ध नहीं और स्थिरता की अन्तर शुद्धता प्रगटी नहीं। कहते हैं कि तो ऐसे उन परिणाम से वह असंयमी है। ... यहाँ तो अशुभ और अज्ञानी। समझ में आया ? उसकी दृष्टि शुद्ध तत्त्व के ऊपर नहीं और अकेले व्यवहार से यह ... दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के परिणाम अपवास के आदि करता है, शुभ है। इससे उसे संयम कहाँ से होगा ? वह तो असंयमी है। और सम्यग्दर्शनसहित हो तो भी वह शुभ परिणाम है, इतना तो वह स्वयं असंयमभाव से संयमभाव नहीं। वह चारित्र का दोष है ऐसा। समझ में आया ? सम्यग्दर्शनरहित हो, तब तो असंयमी है। सम्यग्दर्शनसहित हो तो चारित्र का दोष है, उतना उसे संयम नहीं।

कैसे हैं, वो आर्त रौद्र स्वरूप खोटे ध्यान... सिद्धान्त में उसे असंयमी कहते हैं। कैसे हैं, वो आर्त रौद्रस्वरूप खोटे ध्यान अपनी बड़ाई,... वहाँ से आया न ? अपनी बड़ाई। चैतन्य की बड़ाई की खबर नहीं। अभिमान बाहर के, शरीर के, वाणी के, कण्ठ के, जानपने के, बाहर की श्रद्धा के, व्यवहारश्रद्धा आदि, हों ! समझ में आया ? राग की मन्दता की जिसे बड़ाई है, उसे आत्मादृष्टि नहीं। समझ में आया ? बड़ाई, प्रतिष्ठा... दुनिया में अपना कुछ रखना, प्रतिष्ठा रखना, प्रतिष्ठा। उसे आत्मप्रतिष्ठा की खबर नहीं। हमारी प्रतिष्ठा रहे थोड़ी जगत में, हम कुछ थे, हम कुछ हैं। वह आत्मा नहीं परन्तु यह प्रतिष्ठा रहे हमारी, वह हम हैं। इज्जत रहे, हमारी प्रतिष्ठा रहे, हमारा नाम रहे, हमको पीछे याद करे। समझ में आया ? ऐसा जिसे अन्तर भाव चढ़ा है, वह असंयमी है।

लाभादि सैकड़ों मनोरथों के... स्वरूप की दृष्टि बिना, शुद्धस्वभाव के भान बिना, उसे सैकड़ों मनोरथ बाह्य के ही होते हैं, उसे किसी प्रकार भी बाह्य प्रवृत्ति में अधिकरूप से ज्ञात होऊँ, ऐसा उसे अनेक प्रकार में अभिप्राय में यही भाव उसे चढ़ा होता है। समझ में आया ? दुनिया में, इज्जत में, कीर्ति में, प्रशंसा में, शास्त्र के बहाने शास्त्र में, पठन के बहाने पठन में, कहने के बहाने बोलने में, प्ररूपित करने के बहाने प्ररूपित करने में अधिकपने कहने में, शिष्य अच्छे हों तो उनके द्वारा प्रतिष्ठा, हमको देखो हमारे माननेवाले हैं। उसमें तुझे क्या आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ख्याल हो, तब तो रखे किसलिए ? ज्ञान में इच्छा होती नहीं, उसे तो वह ऐसा ही माने कि यह मैं अच्छा करता हूँ। प्रभावना—धर्म की प्रभावना है, हम दुनिया की सेवा करते हैं, दुनिया को लाभ देते हैं, हमको उसमें नुकसान क्या है ? ऐसी अन्दर मिठास गहराई में मिथ्यात्व की पड़ी है, इससे बाहर की प्रतिष्ठा और इज्जत में ही पूरा जीवन व्यतीत करता है। उसे असंयम और मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसे शुभभाव की क्रिया करता होने पर भी, ऐसा कहते हैं यहाँ तो, तो बाह्यक्रिया अर्थात् वह शुभपरिणाम उसे क्या कर सकता है ? अन्दर अभिप्राय में तो बड़ी शल्य पड़ी है पूरी। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! इस बात को अन्दर पकड़ना... क्या कहते हैं ?

सहस्र विकल्प, है न ? सहस्र विकल्पजाल, माला, प्रपंच, इतने शब्द प्रयोग किये हैं, लो ! **विकल्पों की माला के (पंक्ति के)...** माला है न पंक्ति। वह अन्दर की विकल्प की जाल। जैसे रुई की पुणी एक के बाद एक निकला ही करे, निकला ही करे, ताना निकला ही करे। उसी प्रकार एक के बाद एक शुभ... शुभ... शुभ... शुभ... शुभ... एक यह। यह... यह और अशुभ। शुभ-अशुभ के विकल्प की लार चला करती है, कहाँ इसे निवृत्ति से स्थिर होना कि यह वस्तु क्या है, उसकी दृष्टि में जाना, यह इसे समय मिलता नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पकड़ना सूक्ष्म है, ऐसा। सुनना सरल है। समझ में आया ? परन्तु अन्दर में इसका विवेक करना, वह सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्थूल कहा न, यह सुनना स्थूल बात है। ऐसा कहा नहीं ? सुनने में आवे वह स्थूल है, परन्तु उसमें अन्दर विवेक करना, वह सूक्ष्म बात है। यह कहा, इस प्रकार ऐसे हो जाये कि यह मुझे समझ में आता है, परन्तु समझे ऐसा अन्दर कठिन है, ऐसा कहा है। समझ में आया ? ऐसा कहे, यह पकड़ में आता है, परन्तु पकड़ में किस प्रकार आता है ? यह उसकी स्वच्छन्दता के भाव हैं, उसे समझना कठिन है। इसे बहुत धीर होना चाहिए। समझ में आया ? यह विकल्प की माला की पंक्ति। माला का अर्थ पंक्ति है।

प्रपंच कर उत्पन्न हुए हैं। विकल्प की जाल के प्रपंच। शुद्धस्वरूप ज्ञायकमूर्ति की अन्तर दृष्टि नहीं, स्थिरता नहीं। यह विकल्प की जाल में धमाधम, धमाधम उत्पन्न हुए हैं। ऐसा कहते हैं। वह उत्पन्न होती नहीं, अनुभूति नहीं। जब तक ये चित्त में हैं, तब तक बाह्य-क्रिया क्या कर सकती है ? यहाँ तो शुभ परिणाम हो, तथापि अन्तर शुद्ध में दृष्टि नहीं, झुकाव नहीं, वह बाह्य क्रिया क्या करती है ? कुछ नहीं कर सकती। समझ में आया ? 'भाउ असुद्धउ जासु।' लो ! यह गाथा पूरी हुई।

इस तरह मोक्ष, मोक्ष-फल, मोक्षमार्गादि का कथन करनेवाले दूसरे महा अधिकार में निश्चयनय से पुण्य, पाप दोनों समान हैं, इस व्याख्यान की मुख्यता से चौदह दोहे कहे। आगे शुद्धोपयोग के कथन की मुख्यता से इकतालीस दोहों में व्याख्यान करते हैं... शुद्ध उपयोग। और आठ दोहों में परिग्रहत्याग के व्याख्यान की मुख्यता से कहते हैं, तथा तेरह दोहों में केवलज्ञानादि गुणस्वरूपकर सब जीव समान हैं, ऐसा व्याख्यान है। लो !



गाथा - ६७

अब, प्रथम ही रागादि विकल्प की निवृत्तिरूप शुद्धोपयोग में संयमादि सब गुण रहते हैं,... यहाँ तो शुद्ध को संयम है, यह सब सिद्ध करना है। प्रवचनसार की गाथा है २७४, प्रवचनसार की २७४ है। मूल तो शुद्ध के उपयोग को सिद्ध करना है। आत्मा में शुद्ध उपयोग, सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर भी शुद्धोपयोग, वह संयम आदि सद्गुण उसमें है। शुद्ध के बिना कोई संयम, चारित्र, तप, मोक्ष, निर्वाणमार्ग शुद्ध के बिना नहीं हो सकता। यह कहते हैं, ऐसा वर्णन करते हैं—

१९४) सुद्धहं संजमु सीलु तउ सुद्धहं दंसणु णाणु।
सुद्धहं कम्मक्खउ हवइ सुद्धउ तेण पहाणु ॥६७॥

अन्वयार्थ :- शुद्धोपयोगियों के ही... लो! जिसे अन्दर शुद्ध उपयोग है। सम्यग्दर्शनसहित का अन्दर शुद्ध उपयोग है। पंच रत्न कहे हैं न वहाँ? प्रवचनसार में, उसकी यह गाथा है। यह उसमें का सार है इसमें। दया, दान, प्रतिक्रमण आदि के भाव, वे शुभराग हैं, वे अशुद्धभाव हैं, शुद्ध उपयोग नहीं। और शुद्ध उपयोग हो, वहाँ संयम आदि की शुद्धि होती है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

शुद्धोपयोगियों के ही पाँच इन्द्रि छठे मन को रोकनेरूप संयम, शील और तप होते हैं,... इसकी व्याख्या करेंगे टीका में। वह संयम शुद्धस्वभाव की दृष्टि में, अन्दर स्थिरता का शुद्ध उपयोग है, उसे संयम होता है, उसे सच्चा शील—स्वभाव होता है और उसे तप होता है, देखो! यह तप, यह तप। वे कहते हैं न भगवान ने तप किया था न! पूछते थे न दो दिन पहले वे। उनके हम अपवास करते हैं। भगवान ने उपवास किये थे न। वैसे हम अपवास करते हैं। अरे! सुन न तेरे अपवास है, उनके—भगवान के तो उपवास थे। ऐसे उपवास करते आया नहीं अनन्त काल में? रोटियाँ नहीं खायी जाये दो, चार दिन और पाँच दिन, आठ दिन, पन्द्रह दिन, महीने-महीने, बारह-बारह महीने रोटियाँ नहीं खायीं ऐसा तो अनन्त बार किया है। राग की खुराक छोड़ी नहीं इसने। राग की खुराक छोड़े तब अनाहार, वह अमृत का खुराक आवे, तब उसे तप कहा जाता है। ऐसा है यहाँ तो। पूछता था सवेरे। भगवानभाई!

यह सब अपवास, अपवास करे। कहते हैं, अपवास नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान ने ऐसे अपवास नहीं किये थे। भगवान तो अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त रह गये थे। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में 'तपयन्ति विजयन्ति इति तपः' अपनी शुद्धता की विजय अन्दर प्रगट की थी, उसे तप कहा जाता है। उस तप से कर्म का क्षय है, आता है न, देखो! **'सुद्धहं कम्मक्खउ'** वह यह ... शुभराग है, उसमें तो दृष्टि वापस उससे मुझे लाभ होता है, यह दृष्टि मिथ्यात्व है। समझ में आया? प्ररूपणा भी वह करे। वही करते हैं, उन्हें तो सब खबर है न जिन्दगी की। पिचहत्तर वर्ष में सब सुना है न वहाँ बहुत। हिम्मतभाई! यह करो, व्रत लो, दीक्षा लो, परन्तु किसकी दीक्षा? दख्या है। समझ में आया? अभी देव-गुरु-शास्त्र कौन हैं सच्चे, इसकी खबर नहीं होती और आत्मा शुद्धस्वरूप क्या है, किस प्रकार से प्राप्त हो, उसकी पद्धति की खबर नहीं होती और हमारे हो गये व्रत और दीक्षा और संयम। मिथ्यात्व है। अज्ञान की घूंटण, अज्ञान घूँटा है अधिक। समझ में आया?

देखो! यह तीन बोल संयम, शील और तप है न। पाठ में है सही न? यह शुद्धों को सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन शुद्धस्वरूप, उसे सम्यग्दर्शन होता है। देखो! व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह सम्यग्दर्शन नहीं, ऐसा कहते हैं। **शुद्धों के ही सम्यग्दर्शन और वीतरागस्वसंवेदनज्ञान...** अन्तर आत्मा का ज्ञान, वह शुद्ध को होता है। शास्त्र ज्ञान का ज्ञान, वह तो अशुद्ध है। समझ में आया? आहाहा! भारी पूर्व-पश्चिम का अन्तर है या नहीं? और ऐसा माना है, और ऐसा करता है अनादि से। नया कहाँ करता है? वह तो ऐसा किया ही करता है। मुझे कह, मुझे यह ज्ञान हुआ। यहाँ तो कहते हैं शुद्ध को ज्ञान होता है, आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति, उसका ज्ञान, उसे ज्ञान होता है। दूसरे को ज्ञान होता नहीं। शास्त्र पठन-बठन, वह अशुद्ध है, ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? **'सुद्धहं कम्मक्खउ'** और शुद्धस्वभाव की दृष्टि और स्थिरतावाले को कर्म का क्षय है। आंशिक भी कर्म का क्षय शुद्धता के कारण से है। शुभ-अशुभ परिणाम से कहीं कर्मक्षय होता नहीं। देखो यह कहे, शुभ नाम से कर्मक्षय होता है, मिथ्यात्व ... होता है, शुभयोग से मिथ्यात्व का क्षय होता है और क्षायिक समकित होता है। धूल में भी नहीं होता। आहाहा! यह तो शुद्ध को ही कर्मक्षय होता है। स्वभाव की शुद्धता की एकता

होने से ही मिथ्यात्व का क्षय और क्षायिक समकित होता है। इसलिए क्षयोपशम आदि सूक्ष्म, वह शुद्ध को ही होता है। अशुद्ध परिणाम में वह होता नहीं। समझ में आया? इसलिए शुद्धोपयोग ही जगत में मुख्य है। लो! आचार्य स्वयं कहते हैं, इसलिए वह शुद्धोपयोग ही जगत में मुख्य है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् क्या? वह तो एक क्षण का विकल्प है पुण्य। पूरी चीज़ तो शुद्ध है। उस शुद्ध की दृष्टि और ज्ञान वह शुद्धतावाले को ही होता है। शुभ के विकल्पवाले को वह सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता नहीं। समझ में आया?

इसलिए शुद्धोपयोग ही जगत में मुख्य है। समझ में आया? ... पुरुष प्रधान शैली है। वह भावप्रधान कही थी न? उसमें धारक पुरुष प्रधान है टीका में। है न अन्त में। 'शुद्धोपयोगपरिणामस्तदाधारपुरुषो वा' ऐसे दो। वह पुरुष ही प्रधान है, ऐसा कहते हैं, शुद्ध उपयोगी पुरुष। उसका यह धारक प्रधान, ऐसा। कि जो शुद्ध उपयोग तो परिणाम है, परन्तु परिणामी जीव—शुद्ध का परिणामी परिणमनेवाला जीव ही प्रधान है, वही जगत में मुख्य है। आहाहा! सर्वोत्कृष्ट वह आत्मा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुद्धोपयोग अर्थात् शुद्ध व्यापारवाले को शुद्ध व्यापार अर्थात् आत्मा का शुद्ध आचरण। शुद्ध दृष्टि, ज्ञान तो है।

भावार्थ :- अब यहाँ शुद्ध आचरणवाले को शुद्धोपयोगियों के पाँच इन्द्रि छठे मन का रोकना,... वास्तव में उसे ही रोक गया है। विषयाभिलाष की निवृत्ति... संयम है न संयम? उसकी व्याख्या है न यह? छह काय, पाँच इन्द्रिय और मन, ऐसे हैं न बारह? अर्थात् मन छह हुए। विषयाभिलाष की निवृत्ति, और छह काय के... यह बारह हुए। जीवों की हिंसा से निवृत्ति, उसके बल से... अर्थात् निमित्त लिया। आत्मा में निश्चल रहना,... उसका अभाव करके आत्मा में निश्चल रहे, ऐसा। उसका अभाव करके आत्मा में निश्चल रहना, उसका नाम संयम है,... समझ में आया?

पाँच इन्द्रिय, छठवाँ मन, छह काय की ओर के विकल्प की चीज़ छूटी और आत्मा में स्थिर होना, निश्चल रहना, इसका नाम संयम है, इसका नाम इन्द्रिय निरोधरूपी

संयम है। इसका नाम छह काय की हिंसा से निवृत्तिरूप संयम है। समझ में आया ? उसका नाम संयम है, वह होता है,... उसे संयम होता है। अथवा उपेक्षासंयम अर्थात् तीन गुप्ति में आरूढ़... मन, वचन से हटकर स्वरूप में आरूढ़ और उपहृतसंयम अर्थात् पाँच समिति का पालना, विकल्प अथवा सरागसंयम अर्थात् शुभोपयोगरूप संयम और वीतरागसंयम अर्थात् शुद्धोपयोगरूप परमसंयम वह उन शुद्ध चेतनोपयोगियों के ही होता है। यह शुद्ध का अर्थ, यह यहाँ शुद्ध होता है, तब उसका विकल्प, उसे व्यवहार संयम कहा जाता है। समझ में आया ?

शुद्ध उपयोग की परिणति है, तब उस व्यवहार से संयम को शुद्ध अथवा उस शुभ को शुद्ध व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया ? यहाँ तो शुद्ध उपयोग हो, इसलिए शुद्ध परिणति हो तो ही इस व्यवहार संयम को व्यवहार कहा जाता है। वह शुद्ध उपयोग और शुद्धता अन्दर नहीं और अकेला व्यवहार संयम हो, ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा कहना है। समझ में आया ? ‘अथवोपेक्षासंयमापहृतसंयमौ वीतरागसरागापरनामानौ’ ऐसा ... उपेक्षा अर्थात् वीतराग, अप्रहृत अर्थात् सराग। समझ में आया ? ‘तावपि तेषामेव संभवतः’ शुद्ध दृष्टि और ज्ञान है, ऐसे जीव को शुद्ध परिणति है, उसे वह व्यवहार आदि सम्भव है। ऐसा शुद्ध नहीं, वहाँ उसे वह व्यवहार भी सम्भवित नहीं। समझ में आया ? बात बहुत रूखी और बहुत रसवाली। राग के रस से भिन्न और वीतरागरसवाली। पाँच समिति का पालना, अथवा सरागसंयम अर्थात् शुभोपयोगरूप संयम और वीतरागसंयम अर्थात् शुद्धोपयोगरूप परमसंयम वह उन शुद्ध चेतनोपयोगियों के ही होता है। जिसे शुद्ध चेतना का उपयोग होता है परिणति, उसे ऐसा व्यवहार होता है, दूसरे को होता नहीं। मूल तो ऐसा सिद्ध करना है। संयम एक बोल हुआ। ‘सुद्धहँ संजमु’ इस गाथा के पहले शब्द में।

शील अर्थात् अपने से अपने आत्मा में प्रवृत्ति करना यह निश्चयशील,... समझ में आया ? यह शुद्धता अन्तर दृष्टि ज्ञायक शुद्ध चैतन्य की शुद्ध दृष्टि का ज्ञान और स्थिरता है, उसे ऐसा शीलभाव होता है, निश्चयशील, अपने से अपने आत्मा में प्रवृत्ति करना... आत्मा में आत्मा की प्रवृत्ति शील। अपने से अपने आत्मा में प्रवृत्ति करना...

वह ज्ञानस्वरूप आत्मा, उस ज्ञान द्वारा अन्दर में प्रवृत्ति-स्थिरता, इसका नाम अपना शीलस्वभाव निश्चय शील है। वह निश्चय शीलस्वभाव है।

रागादि के त्यागने से शुद्ध भाव की रक्षा करना, वह भी निश्चयशील है,... समझ में आया? है न? 'सीलु स्वात्मना कृत्वा स्वात्मनिवृत्तिर्वर्तनं इति निश्चयव्रतं, व्रतस्य रागादिपरिहारेण परिरक्षणं निश्चयशीलं तदपि तेषामेवे।' ऐसा। यह निश्चय शील है। विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। और देवांगना, मनुष्य की, तिर्यच की तथा काठ पत्थर चित्रामादि की अचेतन स्त्री — ऐसे चार प्रकार की स्त्रियों का मन, वचन, काया, कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना,... यह विकल्प है, इसलिए व्यवहारशील है। दूसरी अपेक्षा आयी न? ये दोनों शील शुद्ध चित्तवालों के ही होते हैं। दोनों शील शुद्ध सम्यग्दृष्टि सिद्ध है, उन्हें होते हैं। जिन्हें शुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान नहीं, उन्हें होते नहीं। समझ में आया?

अब यह तपस्या-तपस्या करते हैं न लोग? तप अर्थात् बारह तरह का तप उसके बल से भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरूप सब वस्तुओं में इच्छा छोड़कर शुद्धात्मा में मग्न रहना, काम क्रोधादि शत्रुओं के वश में न होना, प्रतापरूप विजयरूप जितेन्द्री रहना। यह तप शुद्ध चित्तवालों के ही होता है। शुद्ध ज्ञानमूर्ति आत्मा पवित्र, एकदम पुण्य-पाप के विकल्परहित—ऐसी शुद्ध दृष्टि और शुद्ध आत्मा का भान है, उसे अन्दर स्वरूप में स्थिरता की उग्रता को इच्छा के निरोधरूप आनन्द की विजय होती है, तपे-प्रतपे उसकी दशा को तप कहा जाता है। गजब व्याख्या तप की! यह (अज्ञानी) तो कहता है भगवान ने साढ़े बारह वर्ष आहार नहीं किया था। साढ़े बारह वर्ष आहार नहीं किया था। ... एक थोड़ा उपवास किया था। और इतनी वह सब तपस्या की थी, हम तपस्या करते हैं।

गृहस्थ की महिला वह चावल खांडती थी न चावल। ऊपर छिलके, मानो अन्दर चावल उतरते थे खांडनी में नीचे। चावल-चावल। दूसरी गरीब महिला देखने गयी थी यह लाखोंपति करती है, इसलिए छिलकों में कुछ होगा। वह कहीं से दस सेर छिलका लाकर खांडने लगी, परन्तु वहाँ चावल कहाँ थे छिलकों में? वह खांडती है उसमें

चावल उतरता जाता है, वजनदार नीचे है वह। उसी प्रकार आत्मा शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और उसमें रमणतारूप जो इन्द्रियों की जो विजय हुई और तप हुआ, उसका नाम तप है। बाहर में दिखाई दिया कि इन्होंने इतने दिन आहार नहीं किया, पानी नहीं पिया छह महीने तक। यह बाहर का देखा। दूसरा ऐसा कहे कि अपने बाहर से आहार-पानी नहीं किये, (इसलिए) हमारे भी तप होता है। क्या धर्मचन्दजी!

काल मुफ्त में जाता है। छिलका पाई का भी उपजे नहीं उसमें। परन्तु उसमें खांडती थी न सेठानी? यह कुछ लगता है इसमें। परन्तु लगता है नीचे चावल है। उतरते जाते हैं, वे छिलके जैसे हल्के पड़ते जाते हैं, वैसे ऊँचे आते हैं, चावल नीचे है, वे तो देखे नहीं और ऊपर के छिलके खांडने लगी। इसी प्रकार आत्मा शुद्ध अन्तर दृष्टि में पड़ा है, उसमें शुद्धता और एकाग्रता बढ़ती है, वह माल है। और यह खाया, नहीं खाया—ऐसा जो बाहर का दिखना, वह तो बाहर के छिलके हैं। बाहर के छिलके करने लगी महिला कि अपने उपवास करना। भगवान ने वर्षीतप किया था। वृषभदेव भगवान ने वर्षीतप किया था। परन्तु वर्षीतप तेरे जैसा नहीं। उन्हें तो बारह महीने तक इच्छा का निरोध था। यह तो एक दिन खाय, एक दिन न खाये। एक दिन खाये तो ठीक से खाये। मुश्किल से पचे। और फिर हम वर्षीतप करते हैं, पश्चात् उसका महोत्सव करना। ऐई! घर में-बर में कोई महिला-महिला करती होगी या नहीं? उसके सेठिया के घर हैं। महोत्सव करना चाहिए। किया है मिथ्यात्व का पाप। प्राणभाई! आहाहा!

कहते हैं कि गहरा शुद्ध चैतन्य भगवान अमृत के रस का स्वाद लेकर इच्छा टूट गयी है, उसका नाम तपस्या है, इसका विजय आत्मा ने किया है, इच्छा का विजय नहीं। उसका नाम अन्तर आत्मा के अतीन्द्रिय के आनन्द में विजय की है, उसका नाम तप है। वह तप भगवान ने किया है, मुनियों ने वह तप किये थे। और बाहर से आहार-पानी नहीं मिला इतने दिन तक, इसलिए लोग ऐसा कहते हैं कि देखो! उन्होंने आहार नहीं खाया, परन्तु वह नहीं खाने की क्रिया है या वह अन्दर की है यह? समझ में आया?

भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरूप सब वस्तुओं में इच्छा छोड़कर... देखो! विकल्प,

वह शुभराग है न ? इच्छा, आहार छोड़ूँ, वह भी एक इच्छा है। आहार मैं छोड़ सकता हूँ, इसका अभिप्राय वह मिथ्यात्व है। और परद्रव्य तेरे अधिकार की कहाँ बात रही कि छोड़े या रखे। वह इसके अधिकार की बात नहीं। वह तो जड़ है। जड़ उसके कारण से आगे जाये और उसके कारण से आये। इच्छा मन्द की तो तोड़ूँ। समझ में आया ? बारह प्रकार के तप और उसके बल से भावकर्म, द्रव्यकर्म ... निमित्त लिया है। अन्दर में शुद्धोपयोग की रमणता, अतीन्द्रिय आनन्द की स्वाद की मिठास के समक्ष ऐसी इच्छा छोड़ने की या रखने की उत्पन्न नहीं होती।

सब वस्तु में इच्छा निरोध। इस अर्थ क्या हुआ ? किसी प्रकार की इच्छा ... यह अकेला भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की जो दृष्टि और स्वाद आया था, उसके अन्तर में लवलीन हो गया था, उसमें दो, चार दिन, पाँच दिन, आठ दिन, पन्द्रह दिन, महीना इच्छा उत्पन्न नहीं हुई और यह स्थिरता हुई आनन्द की, उसे तपस्या कहा जाता है। अब इसे तो कुछ भान भी नहीं कि शुद्धता क्या है और आनन्द क्या है। अज्ञानतप है, बालतप है, मूर्खाई से भरपूर तप है। बाल अर्थात् ... मूर्खता तो बड़ी मूर्खता है यह। वह यहाँ बात कहाँ है ? यहाँ बाल अर्थात् मूर्ख। आहाहा !

शुद्धात्मा में मग्न रहना,... देखो ! भाषा क्या है ? इच्छा छोड़कर यहाँ नकार हो गया, परन्तु अब रहा कहाँ ? शुद्ध चिदानन्दमूर्ति आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द तृप्त... तृप्त... तृप्त... तृप्त... अतीन्द्रिय आनन्द में तृप्त हो गया हो, उसका नाम तपस्या कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? हिम्मतभाई ! लो ! यह सब चलता होगा, ऐसा चलता होगा यह सम्प्रदाय में ? उल्टी पट्टी बाँधी है सबने। समझ में आया ? शुद्धात्मा कौन है, उसकी खबर नहीं होती, वह क्या कर सकता है, नहीं क्या कर सकता, इसकी खबर नहीं होती और यह उपवास करके बैठे, उसमें तपसहित, यह वस्त्र पहनकर बैठे तो हम तो साधु हुए, धूल में भी नहीं। कुसाधु है और कुतप है। समझ में आया ?

इच्छा और क्रोध दो, ऐसे। काम क्रोधादि शत्रुओं के वश में न होना, ... आत्मा के वश हो जाना, अतीन्द्रिय आनन्द के वश होना। प्रतापरूप विजयरूप जितेन्द्री रहना। देखो ! समझ में आया ? 'शुद्धात्मानि प्रतपनं विजयनं तप' ऐसा है। 'शुद्धात्मानि प्रतपनं

विजयनं तप' यह तप की व्याख्या। अब तप किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। भगवानभाई! फिर प्रौषध करके बैठे, हमने तप किया और उसमें से एक अठुम किया हो और एक पोरसी चढ़ावे तो कितने का? दो पोरे सवासो। यह उसे बहुत खबर हो। अठुम के ऊपर एक करे तो २५ का कुछ है। ... किया था या नहीं? ८७ में किया तो सही। अपवास किये हैं, नहीं। थोड़े किये हैं। ग्यारह किये थे? ८७ में प्राणभाई ने आठ किये थे। अकेले होकर। इकलौते थे। इसलिए बहुत पैसे नहीं थे और कंचन नहीं था और कंचन-पैसे भी नहीं थे, दोनों नहीं थे। अकेले थे अकेले। ८७ के वर्ष में अकेले थे। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल का लाभ हुआ? अभिमान हुआ। ९७ तक तो सामने भी देखते नहीं थे। क्या समझ में आया?

प्रतापरूप विजयरूप जितेन्द्री... आहाहा! इन्द्रिय निरोध का अर्थ अतीन्द्रिय के आनन्द का स्वाद आकर इन्द्रिय का निरोध, इसका नाम तप है। इन्द्रिय निरोध होकर गया कहाँ परन्तु? इन्द्रिय को रोककर गया कहाँ? अतीन्द्रिय भगवान आत्मा के घर में प्रविष्ट हुआ। महा अतीन्द्रिय स्वाद लेता हुआ, बाहर निकलना सुहावे नहीं। इच्छा तो उत्पन्न है नहीं कुछ। अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द के अकेला लवलीन... लवलीन... लवलीन... वह आत्मा के आनन्द की विजय हुई, इच्छा का नाश हुआ। भगवान आत्मा का विजय वर्ते अतीन्द्रिय आनन्द में। ऐसे आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के रस की खुमारी में रहे, उसे विजय हुई कहलाती है। और वह प्रतापन विजय वापस ऐसा अपना प्रताप है न उसमें इच्छा का?

यह तप शुद्ध चित्तवालों के ही होता है। लो! ऐसी तपस्या, वह शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान की शुद्धता की भूमिका देखी है, उसमें स्थिर हो, उसे वह होती है। आहाहा! समझ में आया? दिगम्बर सन्तों की व्याख्या यह एक ... व्याख्या लेने जाये तो उसमें मिले नहीं। कितने खोजने जाये पढ़-पढ़कर पढ़े तो चालीस वर्ष, पचास वर्ष में हाथ न आवे। पहले क्या सम्यग्दर्शन? सम्यग्ज्ञान क्या? और सम्यक्चारित्र क्या? और सम्यक्तप

क्या ? यह तप शुद्ध चित्तवालों के ही होता है। शुद्ध ज्ञानवाले को होता है। शुद्ध अकेला भगवान परम पवित्र का जिसे अनुभव है, उसका जिसे ज्ञान और दर्शन है, ऐसे को उसमें ठहरने का होता है, उसे आनन्द और तप कहा जाता है। बाकी सबको लंघन करते हैं, ऐसा कहते हैं। वह दूसरे में लिखा है। विषय कषाय 'कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते' जिसमें पर की विषय की इच्छा और कषाय की इच्छा का त्याग। 'उपवास स विज्ञेय' और आत्मा के आनन्द में उप अर्थात् समीप में, वास अर्थात् अन्दर बस जाये, उसे ... उसे उपवास जानना 'शेषं लंघनके विदुः' बाकी सब लंघन करनेवाले हैं। और मानते तप हैं कि मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं, मिथ्यात्व में बड़े हुए। कहा, समझ में आया ?

... समझ में आया ? ... आत्मा के आनन्द को भाते हुए विचरे, उसका नाम आत्मा है। समझ में आया ? ऐसा शब्द है जेचन्दजीजी ! यह भगवती (सूत्र) में बहुत शब्द है। ... देखो ! यह मुनियों के लिये, केवलियों के लिये ... परन्तु वह ... पड़ा रहा। वह आत्मा क्या और उसकी भावना क्या। वह क्रियाकाण्ड रह गया अकेला। समझ में आया ? उसमें तस्सउत्तरी में आता है न तावकाय ठाणेणं माणेणं जाणेणं अप्पाणं वोसरामि। वह अप्पाणं... चला गया, यहाँ आत्मा को वोसरा दिया। आता है न, तावकाय ठाणेणं माणेणं जाणेणं अप्पाणं वोसरामि। आत्मा वोसरा दिया। परन्तु कौनसा आत्मा ? कहते हैं कि मेरे स्वरूप के आनन्द में मैं रहूँ, उसमें से अशुद्ध परिणाम जो रूपी आत्मा, उसे छोड़ देता हूँ और शुद्ध आत्मा आनन्द में रहूँ, इसका नाम मेरा कायोत्सर्ग है। समझ में आया ?

अब, दर्शन अर्थात् साधक अवस्था में तो शुद्धात्मा में रुचिरूप सम्यग्दर्शन... देखो ! वह शुद्ध को ही होता है। साधक अवस्था में शुद्धात्मा। देखो ! आत्मा पवित्र, वह तो अनन्त गुण का अकेला कुण्ड है। शान्तरस और आनन्द की बड़ी खान, ऐसे आत्मा की अन्तर में अनुभूतिरूप रुचि, उसे सम्यग्दर्शन। वह शुद्ध को होता है। और केवली अवस्था में उस सम्यग्दर्शन का फलरूप संशय, विमोह, विभ्रमरहित निज परिणामरूप क्षायिकसम्यक्त्व केवलदर्शन यह भी शुद्धों के ही होता है। समझ में

आया ? यह क्षायिक सम्यग्दर्शन और केवलदर्शन, दो दर्शन लिये। यह दर्शन गुण दोनों इकट्ठे लिये।

यहाँ तो कहते हैं कि साधक अवस्था में भी शुद्ध स्वभाव की दृष्टि और शुद्ध की रुचि हुई, उसे शुद्धवाले को क्षायिक समकित होता है। उसके फलरूप से उग्र पूर्ण परम अवगाढ़ समकित और केवलदर्शन वह भी शुद्ध को ही होता है। अशुद्ध को व्यवहार करनेवाले को होता नहीं। नीचे व्यवहारनय (वाले को) सम्यग्दर्शन वहाँ नहीं और ऊपर भी व्यवहार का फल शुद्ध को केवलदर्शन होता नहीं। व्यवहार का फल वह है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो शुद्ध का वह फल है। नीचे आत्मा ज्ञायकमूर्ति की दृष्टि, उसका ज्ञान, यहाँ दृष्टि की पहली बात, वह दृष्टि शुद्ध है, उसके फलरूप से परम अवगाढ़ क्षायिक समकित उसका फल है। व्यवहार समकित है, उसका फल वह क्षायिक समकित, केवलदर्शन, वह है नहीं। समझ में आया ?

संशय, विमोह, विभ्रमरहित निज परिणामरूप क्षायिक सम्यक्त्व केवलदर्शन... 'केवलज्ञानोत्पत्तौ सत्यां तस्यैव फलभूतं अनीहितविपरीताभिनिवेशरहित परिणामलक्षणं क्षायिकसम्यक्त्वं केवलदर्शनं वा तेषामेव।' 'तेषामेव' अर्थात् शुद्ध उपयोग। शुद्ध दृष्टि और शुद्ध ... हुआ है, उसे ही क्षायिक समकित और उसे ही केवलज्ञान और केवलदर्शन और क्षायिक समकितरूपी परम अवगाढ़ उसे शुद्ध को होता है, अशुद्धवाले को अशुद्ध से नहीं और अशुद्धवाले को नहीं। समझ में आया ? पहला व्यवहार सम्यग्दर्शन है, वह केवलदर्शन का कारण है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। शुद्धस्वभाव की दृष्टि और ज्ञान वह केवलदर्शन का कारण है। समझ में आया ?

ज्ञान अर्थात् वीतराग स्वसंवेदनज्ञान और उसका फल केवलज्ञान वह भी शुद्धोपयोगियों के ही होता है,... दो। यह ज्ञान-ज्ञान। वीतराग स्वसंवेदनज्ञान शुद्धवाले को होता है। अकेला भगवान् शुद्ध निर्विकल्प ज्ञानमय आत्मा का ज्ञान अन्दर, वह शुद्धवाले को स्वसंवेदन ज्ञान होता है, अशुद्धवाले को नहीं। इसका फल केवलज्ञान। देखा ? उस शुद्ध के उपयोग का—शुद्ध ज्ञान का फल केवलज्ञान है। ... व्यवहार है ज्ञान, उसका फल केवलज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वह वीतराग स्वसंवेदनज्ञान

और उसका फल कारण-कार्य दोनों शुद्ध हैं, ऐसा कहते हैं। यहाँ शुद्ध है और उसका फल भी शुद्ध है। और यहाँ अशुद्ध है, उसका फल शुद्ध है, ऐसा है नहीं। ज्ञान भी उसे होता है, दूसरे को होता नहीं।

और कर्मक्षय अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का नाश तथा परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति, वह भी शुद्धोपयोगियों के ही होती है। लो ! भावकर्म के विकल्प का नाश या जड़ का नाश या शरीर का अभाव—वह सब शुद्ध उपयोग और शुद्ध आचरण से होता है। शुभ उपयोग से कहीं कर्म का नाश हो, कर्म घटे या शरीर टले, ऐसा है नहीं। शुद्धस्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह कर्म के क्षय का कारण है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण नहीं है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ शुक्ल ११, मंगलवार, दिनांक - ०१-०२-१९६६

गाथा - ६७ - ६८, प्रवचन - ११५

६७वीं गाथा, उसकी अन्तिम लाईन है अन्तिम। क्योंकि संयमादि सर्व गुण शुद्धोपयोग में ही पाये जाते हैं। इसलिए शुद्धोपयोग के समान अन्य नहीं है,... क्या कहा? बहुत बोल आ गये एक गाथा में। कि यह आत्मा, उसका स्वभाव त्रिकाल शुद्ध आनन्द और ज्ञान है। उसमें शुभ और अशुभ जो भाव होते हैं। शरीर, कर्म और वह तो मिट्टी जड़ है आदि। उसमें भाव होते हैं हिंसा के, झूठ के, चोरी के, भोग के, क्रोध के, मान, माया, लोभ के—यह पापभाव है और दया के, दान के, पूजा के, भक्ति के, व्रत के वे भाव होते हैं, वह पुण्य है। इन दो भावरहित आत्मा का स्वभाव है। ऐसे स्वभाव की अन्तर शुद्ध श्रद्धा, वह स्वभाव की पुण्य-पाप के भावरहित शुद्ध चैतन्य की शुद्ध श्रद्धा, शुद्ध परिणाम, उसे यहाँ धर्म कहा जाता है। कभी सुना न हो, किस प्रकार से प्राप्त करना इसमें?

यहाँ शुद्ध कहाँ होगा इसमें कुछ खबर पड़ती नहीं। यह मिट्टी-धूल दिखती है। बहुत तो इसके परिणाम में ऐसा लगे (कि) कुछ यह भाव करता हूँ। हिंसा, झूठ, चोरी, व्यापार, धन्धे के भाव होते हैं, वे सब अकेले पापभाव हैं। पापभाव होंगे, क्या होंगे? स्त्री, पुत्र को सम्हालने के, दुकान के धन्धे के यह सब पाप। अरे! धूल में भी नहीं। पाप। दुःख लगता है तो हर्ष सन्निपतिया को दुःख नहीं लगता, इसलिए दुःख नहीं है? हर्ष सन्निपातिया को रोग वात, पित्त और कफ तीनों लगे हैं। सन्निपतिया है। वात, पित्त और कफ के रोग का वक्री हो जाना, वह दाँत निकालता हो (खिलखिलाकर हँसता हो), लो! ऐसे-ऐसे। दुःख है परन्तु दाँत निकालता है।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि मिथ्यात्व, अज्ञान और राग-द्वेष, इन तीन का रोग अज्ञानी को अनादि का लगा है। यह तो कहते हैं कि दुःख लगना चाहिए न पाप में। दुकान में बैठ, दो, पाँच, पचास हजार कमाते हों एक-एक दिन में। उसमें दुःख कहाँ

आया ? ऐसा कहते हैं, यह ऐसा कहते हैं। ऐई ! मोहनभाई ! अरे ! यह पैसे का भाव है कि यह करूँ, यह कमाऊँ, वह भाव ही पाप है। वह पाप है, वह दुःख है, परन्तु इसे भान कहाँ है कभी ? पाप क्या, पुण्य क्या और धर्म क्या, कभी विचार ही कब किया है ? कैसे होगा ?

कहते हैं कि आत्मा जो है, वह तो पुण्य-पाप के विकल्प जो वासना हो, उससे रहित चिदानन्दस्वरूप है। वह उसे भूलकर जो यह भाव करता है पुण्य और पाप, दोनों दुःखरूप हैं। दोनों चार गति में भटकने का ही कारण है। उसके बिना अन्दर पूरी चीज़ आत्मा है। वस्तु है या नहीं ? मिश्री का गोला जैसे मोटा हो, वैसे यह आत्मा आनन्द का गोला है। देह तो यह रजकण, मिट्टी, धूल है। अन्दर अरूपी चैतन्य जैसे स्फटिक मूर्ति हो, उसमें एक दीपक रखा हो तो प्रकाश, प्रकाश लगे न उसमें। उसी प्रकार आत्मा चैतन्य स्फटिक है अन्दर। अरूपी, जिसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं। परन्तु जिसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण पड़े हैं। ऐसे अनन्त गुणमय आत्मा शुद्धस्वरूप आनन्द है, उसकी शुद्धता की श्रद्धा, उसका शुद्ध का ज्ञान और शुद्ध की लीनता, वह संयम है, वह तप है, वह धर्म है, वह समकित है, वह ज्ञान है। आये हैं या नहीं ... आहाहा !

मुमुक्षु : प्रत्याख्यान।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्याख्यान कौन सा होगा ? प्रत्याख्यान यह धूल के ? अपवास, वह प्रत्याख्यान आ गया। वह आत्मा अपना शुद्ध आनन्दस्वभाव, उसकी शक्ति के अन्दर एकाग्र होने से वह शुद्धता के अंश प्रगट हों, उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। यह लोग मानते हैं वह पच्चखाण—प्रत्याख्यान, वह सब भटकने के लक्षण हैं। वह तो विकल्प शुभराग है और उससे पुण्य बाँधे और चार गति में भटके। कहो, समझ में आया ?

अपनी ऋद्धि क्या है, उसकी खबर नहीं होती। अन्दर आत्मा किसे कहना ? जिसमें अनन्त अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द भरे हैं। अनन्त सर्वज्ञ केवली परमात्मा हुए, वे केवलज्ञान लाये कहाँ से ? अन्दर में पड़ा है, उसमें से लाये हैं। अन्दर में शक्ति पड़ी है। ऐसा आत्मा अन्तर अपनी शुद्धता, पवित्रता का धाम आत्मा है। वह विकार की वृत्ति का

प्रेम छोड़कर, शरीर आदि जड़ और परपदार्थ की रुचि का सुहाना, सुहाना छोड़कर आत्मा ज्ञानानन्द है, ऐसा उसे अन्तर में सुहावे, रुचे और एकाग्र होकर श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति को प्रगट करे, वह शुद्ध परिणाम, वही धर्म है। बाकी धर्म-बर्म दूसरा कोई हो नहीं सकता। समझ में आया ?

संयम आदि, देखो न, लिया न सर्व गुण। संयम कहो, चारित्र कहो, सम्यग्दर्शन कहो, सम्यग्ज्ञान कहो, वह तप कहो। वह सब आत्मा के पुण्य-पाप के रागरहित स्वभाव के सन्मुख और विकार की विमुखता, पुण्य-पाप के भाव की विमुख के स्वभाव की सन्मुख के अन्दर श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की स्थिरता हो, उसका नाम ही संयम और गुण और धर्म कहलाता है। **सर्व गुण शुद्धोपयोग में ही पाये जाते हैं। इसलिए शुद्धोपयोग के समान अन्य नहीं है,...** शुद्ध परिणाम। आत्मा के परिणाम हैं न तीन प्रकार के भाव ? एक अशुभभाव हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, कमाना-आमदनी इत्यादि और एक दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा आदि की वृत्ति उठती है, वह शुभभाव। वह शुभपरिणाम। उन दोनों को छोड़कर अन्तर में आनन्द की दृष्टि करके जो परिणाम, जो अवस्था हो, उसे शुद्ध परिणाम, शुद्ध पर्याय कहते हैं। कभी सुनने को न मिले, विचार न हो। गुणवन्तभाई !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ राजकोट रहते हैं, कहाँ रहते हैं ? कलकत्ता ? वहाँ अब कलकत्ता में बड़ी धमाल चलती है। मुम्बई से भी वहाँ अधिक आबादी है। जहाँ-तहाँ अकेले दुःख के... एक बार विचार आया। वे कहे, हमको मजदूर कहा, तुम मजदूर नहीं, तुम तो महा मजदूर हो। क्योंकि मजदूर आठ घण्टे काम करता है। प्रवीणभाई ! सवेरे ८ से १२। वह वापस कपट करे, हों ! ८ से १२ में। अभी सब समझने जैसा है। चार घण्टे आवे एक बार पेशाब को जाये, एक दिशा को जाये, एक बार सेठिया न हो तो दुकान पर बैठा रहे, थोड़ी बीड़ी पीवे। अर्थात् ८ से १२ में उन चार घण्टों में वह काम कितना करे, यह सब हमारे ख्याल में है। और वापस दोपहर में आवे तो दो से सवा दो आवे। पौने छह हो, छह हों, वहाँ तैयारी पाव घण्टे बैठे। आठ घण्टे। यह तो

उठा ६ बजे से रात्रि १० बजे तक। कितने घण्टे का मजदूर है यह ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और बाद में रखना यह तो। नानालालभाई कहते थे न कि भाई! नानालालभाई कहते कि, अठारह घण्टे हम काम करते। यह नानालाल कालीदास। अठारह घण्टे, हों! तब यह दो पुळा इकट्ठे हुए हैं, ऐसा कहते थे। दो पुळा पैसा होते थे न करोड़ रुपये तीन भाईयों के बीच। अठारह घण्टे कहते थे, हों! छह घण्टे नींद में, अठारह घण्टे मजदूरी।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नमक हराम, हलाल कहना किसे ? विकार भाव करना, उसे हराम कहना या हलाल कहना ? आहाहा ! अरे ! भाई ! चौरासी के अवतार में, बापू ! तेरी चीज़ में क्या है, उसकी कभी इसने दरकार की नहीं। ऐसा का ऐसा अनन्त काल चलता है। नरक के भव, ढोर के भव। देखो न, यह ढोर और यह एक बैल। पूरे दिन बेचारे को मजदूरी करावे। खाने को घास नहीं मिले। पीछे ... सिर पर माल स्वयं बैठे-बैठे ... ऐसे भव तो इसने अनन्त बार (किये)। अनादि का आत्मा है न ! आत्मा कहाँ नया था ? इसने कहाँ विचार किया है ? अनादि का ऐसे अनन्त ढोर के भव करके कचूमर निकल गया इसका। नरक के अनन्त, मनुष्य के, रंक के अनन्त और यह राजारूप से करोड़ोंपति, अरबोंपति हुआ, उसके भी अनन्त भव किये हैं। मूढ़रूप से मिथ्यात्वभाव में राग-द्वेष किये, उसके फल में चार गति में भटक गया। समझ में आया ? एक आत्मा के शुद्धस्वभाव की शरण बिना कहीं धर्म नहीं, कहीं शान्ति नहीं और कहीं मुक्ति का उपाय दूसरा नहीं। कहो, बराबर होगा ? तो यह क्या किया, यह मुम्बई अभी तक दोनों व्यक्तियों ने ? क्या किया था ? मैंने फिर मोहनभाई को पहले पूछा था। उसे शरीर की निरोगता है न, इसलिए यह ढोंग करने जाता है, देखो न ! भानेज का विवाह करना है और या फलाना मर गया या ढींकणा मर गया है।

कहते हैं कि भाई ! यह देह तेरी नहीं और इस देह का एक रजकण भी तेरा नहीं। यह तो धूल है, मिट्टी है। वह तो माता के गर्भ में दूसरा भव में आया वहाँ से चिपके

आये यह रजकण। यह कहाँ तेरे थे और तुझमें कहाँ थे ? अब इस चीज़ की सम्हाल करते-करते इसका अनन्त काल गया। परन्तु मैं एक आत्मा कौन हूँ, मेरी जाति कौन है ? समझ में आया ? यह आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द की सच्चिदानन्द मूर्ति है आत्मा। सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान, आनन्द अर्थात् अतीन्द्रिय शान्ति का रस। ऐसा भगवान् अन्तर आत्मा, परन्तु उसकी इसे कभी ख्याल में आवे नहीं, बात सुनी न हो। ऐसे आत्मा के परिणाम अन्दर में शुद्ध प्रगट करना, उसका नाम ही संयम, चारित्र, सम्यग्दर्शन, यह ज्ञान तो उसे ज्ञान कहा जाता है। बाकी ज्ञान वह दूसरे को कहते नहीं। सब जगत के पठन और कलायें और वकालत की, डॉक्टर की, और यह व्यापारी की सब कला कुज्ञान है। चार गति में दुःख में भटकने के लिये। हीराभाई ! क्या होगा इसमें ? भीखाभाई ! आहाहा !

यह कहते हैं, कहा है न ! यह कि तू कौन है, उसे पहिचान, पहले समझ तो कर, उसकी कीमत तो कर कि इन सबकी कीमत करने गया, यह अच्छा, यह अच्छा। तू है या नहीं कुछ ? तू कोई चीज़ है या नहीं ? तुझमें कुछ अच्छा है या नहीं ? या तू बुरा है अकेला ? यह अच्छा, यह अच्छा, स्त्री अच्छी, पुत्र अच्छा, पैसे अच्छे, धूल अच्छी, मकान अच्छे, बँगले अच्छे, बँगले अच्छे, वह क्या कहलाता है ? वह कपड़ा-बपड़ा अच्छा हो न कोट का। मखमल का कोट पहना हो पाँच सौ का ठीक सा। आहाहा ! कपड़ा अच्छा। परन्तु अब कोई सब अच्छे तेरे बहुत कहे। अब तू कौन है, यह तुझे खबर है ? तू अच्छा या खोटा ? यह किसे खबर है अच्छा या खोटा ? यहाँ कहते हैं कि सब खोटे हैं और अच्छा एक भी नहीं, कहे। यह तुझमें पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे अच्छे नहीं। समझ में आया ? परन्तु उसकी दरकार नहीं होती तो मिले कहाँ से ? आहाहा ! यह यहाँ कहते हैं।

भगवान् आत्मा अनन्त-अनन्त शान्त रस का कन्द अन्दर आत्मा है। उसे परमात्मा ने आत्मा कहा है। वह आत्मा तू स्वयं शान्ति और आनन्द का रस है। वह कहीं तेरे लिये अच्छा नहीं। शरीर, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धूल, पैसा या शरीर या वाणी, अरे ! कर्म या यह पुण्य-पाप के भाव कोई तेरे लिये अच्छे नहीं, (ऐसा) कहते

हैं। कैसे होगा? नेमिदासभाई! यह तेरे लिये तू अच्छा। कौन? अन्दर आनन्द और ज्ञानमूर्ति शुद्ध चैतन्यस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान कर, तेरे लिये तू अच्छा है। कहो, बराबर है?

ऐसा तात्पर्य जानना। ऐसा ही अन्य ग्रन्थों में हरेक जगह... यह प्रवचनसार की गाथा है अन्दर। उसका भावार्थ यह है कि शुद्धोपयोगी के ही मुनि-पद कहा है,... भगवान आत्मा अन्तर में पवित्रता के परिणाम द्वारा आत्मा में एकाकार हो, उसे भगवान ने चारित्र अथवा मुनिपद अथवा साधुपद कहा है। और उसी के दर्शन-ज्ञान कहे हैं। देखो! सम्यग्दर्शन धर्म का पहला सोपान। वह भगवान आत्मा पुण्य-पाप के रागरहित त्रिकाल चीज़ है। ऐसे भगवान शुद्धस्वरूप की अन्तर्मुख की, स्व-सन्मुख की प्रतीति करने से वह शुद्धपरिणाम है, उसे ही सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसे ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान-ब्यान दुनिया का सब फोगट, सब बिना एक का शून्य भटककर मरनेवाले हैं। समझ में आया? यह सब बहुत होशियार हो, पाँच-पाँच, दस हजार के वेतन मिले, वह बुद्धि अच्छी कहलाती होगी या नहीं? बापू! ज्ञान तो भगवान परमात्मा कहते हैं कि भाई! तेरी चीज़ ही ज्ञान का पिण्ड है। चैतन्यप्रकाश का सूर्य, उसका अन्तर में ज्ञान होना, वह शुद्धपरिणाम है, वह शुद्धभाव है, उसे ज्ञान कहा जाता है। वह तुझे सुखरूप और आनन्दरूप है। बाकी संसारी जानपना आदि सब दुःखरूप, उकताहटरूप, खेदरूप है। कहो, मोहनभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो धीरे-धीरे समझ में आये। ... करे तो, उसमें कैसे मुफ्त का सिर फोड़ता है वहाँ? आहाहा! अरे! इसने कभी अपनी दया नहीं खायी। मेरी दया... मैं कौन हूँ? और यह क्या चीज़? इस चौरासी के अवतार को कहीं शरण नहीं। ऐसे फटाफट एक भव में से दूसरा और दूसरे में से तीसरा फटाफट किया करता है अन्दर से। अरे! मुझे वह कोई कहीं शरण है या नहीं? या यह भटकने का ही मेरे नसीब में होगा? धीरुभाई! इस दुनिया में यह दिखाई दे न सब यह दिखाई दे। परन्तु देखनेवाला कौन? यह दिखाई दे, उसे देखनेवाला कौन? वह देखनेवाला ज्ञान की मूर्ति भगवान

आत्मा है। इसे देख और उसकी श्रद्धा-ज्ञान कर, तब तुझे शान्ति और सुख का कारण और धर्म होगा। आहाहा! समझ में आया ?

उसी के निर्वाण है,... उस शुद्ध स्वभाववन्त की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति करे, उसे मोक्ष होता है। और वही शुद्ध अर्थात् रागादिरहित है। उसी को हमारा नमस्कार है। ... प्रवचनसार में।

★ ★ ★

गाथा - ६८

आगे यह कहते हैं कि निश्चय से अपना शुद्ध भाव ही धर्म है। लो! यह शुद्ध उपयोग लिया था मुख्यता से। अब यहाँ धर्म की व्याख्या। बात तो एक की एक है। वहाँ शुद्ध उपयोग की मुख्यता से बात थी, यहाँ धर्म की मुख्यता से बात है। बात तो दोनों शुद्ध परिणाम की ही व्याख्या है।

१९५) भाउ विसुद्धउ अप्पणउ धम्म भणेविणु लेहु।

चउ-गड़-दुखहँ जा धरड़ जीउ पंडतउ एहु ॥६८॥

मिथ्यात्व, रागादि से रहित शुद्ध परिणाम है, वही अपना है, और अशुद्ध परिणाम अपने नहीं हैं, सो शुद्धभाव को ही धर्म समझकर अंगीकार करो। लो! यह तो बहुत सादी भाषा है। भगवान आत्मा शान्त आनन्द की अरूपी शिला है वह। अरूपी परन्तु वस्तु स्वरूप है, अरूप भी स्वरूप है। और यह जड़, मिट्टी, धूल दिखाई देती है न, वह सब ? तो यह वस्तु है या नहीं ? उसी प्रकार आत्मा भी वस्तु है, पदार्थ है, अस्ति है, सत्ता है, अरूपी उसका स्वरूप है। स्वरूप, वह उसमें अनन्त गुण का सामर्थ्य भरा हुआ है। ऐसे आत्मा को मिथ्यात्व, यह देह की क्रिया, देह की क्रिया मैं करता हूँ, यह मिथ्यात्व है। पाप के भाव होकर मजा आवे, वह मिथ्यात्व असत्य दुःखबुद्धि है। और शुभभाव दया, दान, व्रत, परिणाम, वह मुझे कल्याण का कारण है, यह मान्यता भी मिथ्यात्व अर्थात् असत्य अर्थात् दुःखबुद्धि है।

इस दुःखबुद्धि का त्याग और रागादिरहित और इष्ट-अनिष्ट के पुण्य-पाप के

विकल्प की वृत्तिरहित जो शुद्धपरिणाम आत्मा के होते हैं, शुद्धपरिणाम आत्मा के होते हैं, **वही अपना है**,... देखो! वे अपने परिणाम हैं। शरीर, वाणी, मन, धूल ... मरता। है कोई? वह सगा नहीं, ऐसा दुनिया नहीं कहती? सब देखे सब इकट्ठे होकर अब। अब इसमें कुछ, ऐ डॉक्टर! डॉक्टर-बॉक्टर को कहते हैं बैठो-बैठो। ... डॉक्टर आये। बड़ा उज्जैन में बड़ा तीन करोड़ की तो मशीन अभी लाये थे। उज्जैन गये थे न। लालचन्द सेठ। तीन करोड़ की एक मशीन पूरे हिन्दुस्तान में नहीं ऐसी लाये। बिना मनुष्य के काम चला ही करे। धूल डाले। कोई एक जगह... चरण कराने ले गये थे ... अभी बारह महीने नहीं हुए। आज ग्यारस है न। आज (के दिन) भोपाल थे। माघ शुक्ल ग्यारस को भोपाल थे। आठ, दस करोड़ की तीन मशीनें तो लालचन्द सेठ के पास। फिर कहते थे। वह वस्तु यह है न सब, यह वस्तु। आत्मा के स्वरूप में माल है। यह तीन करोड़ की इसमें भी उसे दुःख, दुःख और दुःख था। आकुलता अन्दर गहरे देखते, खोज करते। यह बातें सूक्ष्म। समझ में आया? कहीं चैन नहीं मिलता।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा था। फिर मरते हुए जब समय आया। बैठे थे। ... जितना उसे अन्तर में आकुलता थी पहली। उसमें अन्त में यह क्या कहा जाता है? हाड-हाड। क्या कहा जाता है उसे? ... कितने करोड़ की मशीनें थीं। डॉक्टर बैठे थे। डॉक्टर आवे कोई। अन्दर ... होने लगा। ऐसा लगा, दो-तीन बार आया। बस, कहे, समाप्त हो गया। बस बैठे... दुःख था, हों! अन्दर में चैन कहाँ था वहाँ धूल में? आहाहा! यह डॉक्टर ने उसे कहा। वे दूसरे कहे कि अब रहने दो। अब भी यह सब पैसा-बैसा का क्या करना तब? पूछ लो न! परन्तु मरने दो न अब। फिर क्या करना परन्तु तुझे जाना कहाँ है? यह होली लेकर जायेगा सब पाप लेकर कहीं। यह डॉक्टर... दुःख, दुःख ... ऐ जेचन्दभाई! क्या कहा यह पैसे का? क्या कहा यह उस मशीन का? हाल धूल भी डालता नहीं परन्तु (उसको) अभिमान मिटता नहीं। बैठ जाओ, कहना पड़ा अपने को... एकदम बड़ा व्यक्ति डॉक्टर तो एकदम आये। ... प्रमुख। ... दुःख ... दुःख लगा कि

क्या करते थे डॉक्टर वहाँ ? दूसरा क्या करता धूल वहाँ ? वह जड़ स्वतन्त्र पदार्थ है, वह तो मिट्टी है। उसे कैसे रहना और कैसे जाना, वह तो जड़ की दशा है। वह आत्मा के आधीन है ? वह सगा नहीं, ऐसा बोले। अरे ! पूरी जिन्दगी... श्वास कुछ ले सकता नहीं, अपने आप चलती है अभी, ऐसा कहते हैं यहाँ। ...भाई ! यह श्वास चलती है ? यह श्वास जड़ है, यह तो मिट्टी के रजकण हैं। ऐसे नाभि के निकट से निकलती है। वह आत्मा नहीं, आत्मा की चीज़ नहीं, वह तो जड़ है, रजकण है। वह तो परमाणु के रजकण हैं। वह यहाँ नाभि से हटा जिस दिन, ख्याल आवे उसे मरते हुए। ... डोरा रखा है। ले न नीचे, अब कर न। धूल भी नहीं होगा तुझसे। हाँ, वह तो श्वास के रजकण जड़ के, वह ख्याल आवे। शरीर छोड़ दिया है। ... कर न, खींच न। क्या कर धूल ? वह श्वास जड़ की क्रिया है। श्वास की क्रिया करने को समर्थ नहीं, वह जड़ का सब करूँ, मैं करूँ। मूढ़ मुफ्त का अभिमान करके मर गया। कैसे होगा ? चन्दुभाई ! वह होशियार व्यक्ति हो तो न करे ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें यहाँ आत्मा को क्या ? अन्यत्र बताया ... जो डाले ऐसा एकदम पूरा कपड़ा होकर निकल जाये। कहीं-कहीं मनुष्य एकाध खड़ा हो, बाकी सब उसे मिले मशीन चलती थी। उसमें आत्मा को क्या ? वह हमारे कारण से मशीन थी। अब मशीन कब तेरी थी ? तेरे बाप की नहीं थी और इस शरीर की नहीं थी।

यहाँ तो कहते हैं, ऐ भगवान... यहाँ वह 'अपना' शब्द लेना है न ? कि तेरे परिणाम कौन ? कि देह नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं, मशीन नहीं, स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, यह श्वास नहीं, यह वाणी नहीं, यह शुभ और अशुभभाव हो, वह भी तेरे नहीं। तेरे हों, वे पृथक् पड़े नहीं। वह विकार है, पुण्य-पाप के भाव हों, वह विकार है। आहाहा ! यह वह कैसे गले उतरे ? कहते हैं, वहाँ कोई सगा नहीं था वहाँ, लो सब यह श्वास भी सगा नहीं। ख्याल में आ गया यह। मैं समाप्त होनेवाला हूँ। जीनेवाला नहीं। कहो, अपना है, ... कौन ? ज्ञानानन्द, शुद्ध चिदानन्दमूर्ति मैं हूँ, ऐसी अन्तर श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति के परिणाम, अन्तर्मुख के शुद्ध स्वसन्मुख के परिणाम, शुद्धस्वभाव के स्वसन्मुख के

परिणाम, वे आत्मा के हैं। समझ में आया? और अशुद्ध परिणाम अपने नहीं हैं,... देखो! यह शुभ-अशुभ परिणाम भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... करे, वह विकल्प है—राग है। वह आत्मा के परिणाम नहीं, विकार है, विकल्प है, विकार बन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध परिणाम में आनन्द होता है। क्या? उन शुभाशुभ परिणाम में दुःख होता है। शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... उसकी श्रद्धा, ज्ञान की समिति, उसके अनाकुल स्वाद शान्ति का, उसमें आवे। अनाकुल के आनन्द का स्वाद आवे, उसका नाम शुद्ध परिणाम। शुभाशुभ परिणाम में आकुलता के दुःख का वाद आवे, उसका नाम अशुद्ध परिणाम। समझ में आया?

देखो! समझ में आया? यह स्पष्टीकरण किया। **सो शुद्धभाव को ही धर्म समझकर...** भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य की मूर्ति। चैतन्यसूर्य अनाकुल आनन्द, उसके अन्तर्मुख के स्वसन्मुख के शुद्ध की ओर के, द्रव्य की ओर के जो भाव होते हैं, वे धर्म हैं। ... दस लाख देकर। धूल में भी धर्म नहीं। पैसे कहाँ तेरे थे वह तू दे वह तुझे धर्म हो? रखने के तो सही न वे? रख सकता है उसे? धूल में भी रख नहीं सकता, ममता करता है। पैसा क्या रखे? ममता करे कि यह लड़के को हो तो ठीक। मुझे ऐसा है। ममता कर तेरी। अब कहाँ रहना, न रहना, वह कहाँ तेरे आधीन की बात है? वह तो आया था न पूत सपूत तो संचय किसका, पूत कपूत तो संचय किसका।

यह पुत्र यदि सपूत जगा पुण्यवाला तो तेरे संचय की उसे दरकार भी नहीं, अधिक (हो जाएगा) वह पुण्य के कारण से, हों! वह दुःखी वापस पुण्य के कारण से इकट्ठा करे वह। और पूत कपूत जगा तो तेरे दो लाख इकट्ठे किये, उन्हें उड़ा देगा। एकदम। पुत्र कुपुत्र तो संचय किसका? किसका संग्रह, किसके लिये करता है मूर्ख तू? और पुत्र सपूत तो संचय किसका? पुत्र सपूत तो पुण्यवन्त होगा, तेरे पास से दो, पाँच लाख की पूँजी हो तो पचास लाख, करोड़, दो करोड़ कर डालेगा पुण्य होगा तो, हों! पुण्य होगा तो। वह कहीं चतुराई से नहीं। किसके लिये संग्रह करके बैठा है यह?

धूल में भी सुख नहीं। ऐई देवजीभाई ! किसी को न हो कुछ लड़का तो।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु हो—न हो, उसके साथ क्या सम्बन्ध है ? पर के साथ। आहाहा ! ... गजब परन्तु यह। कहते हैं, ऐसे धर्म-शुद्धभाव को श्रद्धा, ज्ञान से ग्रहण कर स्वभाव को। वह धर्म अंगीकार करो। जो आत्मधर्म चारों गतियों के दुःखों से संसार में पड़े हुए... चारों गति, हों ! यह स्वर्ग में भी अवतरना और सेठिया में, राज में अवतरना, वह सब दुःख है। धूल में सर्वत्र दुःख ही है। वह देखो न दरबार नहीं आये थे ? कृष्णकुमार। लो न, छोटी उम्र ५३ (वर्ष) अभी गुजर गये न। ऐसे देखते थे, वह क्या कहलाये ? जेसल-तोरल की देखते थे, बैठे थे। उठे। ५३ वर्ष की उम्र अब बड़ा। वे उठकर गये अन्दर में जहाँ सोने के लिये शयनगृह। ... बाहर निकलकर पड़े उसमें, क्या कहलाता है ? ... डॉक्टर को बुलाया। स्थिति पूरी, उस समय तो डॉक्टर आवे क्या, बड़ा इन्द्र आवे तो रोक सकता है ? देह की स्थिति जिस समय में, जिस क्षेत्र में, जिस निमित्त से पूरी होनेवाली, वह तीन काल में कोई फेरफार कर नहीं सकता। समझ में आया ? बस, इतना बोले, असुख है। असुख ही कहे न वे लोग। वह तो साधारण राजा था, परन्तु बड़ा चक्रवर्ती हो तो क्या ? ... साढ़े तीन करोड़ के बँगले में सोता था। ... वह था नहीं अन्तिम ... साढ़े तीन करोड़ का बँगला था रात्रि में सोता था, सवेरे कुछ नहीं मिलता। ... डॉक्टर इतने कितने होंगे उसके पास ? रात्रि में सोता था, जहाँ सवेरे देखने जाये तो मुर्दा। साढ़े तीन करोड़ का बड़ा बँगला था, सो रहा था। क्या करे धूल ? देह की स्थिति जिस समय में पूरी होनेवाली है, उसे तीन काल-तीन लोक में कोई इन्द्र, नरेन्द्र आकर उसे रोके तीन काल में नहीं। उसे ... मैं कर दूँगा, ऐसा करूँगा। डॉक्टर को फोन-बोन। अब फोन नहीं चलता, सुन न ! जीभ रह जायेगी गूँगा ऐं... ऐं... ऐं...

कहते हैं, यह आत्मा अपने शुद्धस्वभाव की दृष्टि का ज्ञान करे, वही परिणाम उसे चार गति के परिभ्रमण से रोकनेवाले हैं। बाकी चारों गतियों का दुःख संसार में पड़ा है। सेठिया हो तो दुःखी, राजा हो तो दुःखी, भिखारी दुःखी, रंक दुःखी, कंथवा दुःखी

और हाथी दुःखी। क्या कहा जाता है उसे? कुंजर कुंजर। कंथवा और कुंजर। सब दुःखी के सरदार सभी हैं। विकार की उत्पत्ति करके पड़े हैं, वह विकार स्वयं दुःख है। समझ में आया?

इस जीव को निकालकर आनन्द-स्थान में रखता है। देखो! धरती की व्याख्या की। समझ में आया? 'चतुर्गतिदुःखेभ्य सकाशात् उद्धृत्य यः कर्ता धरति।' आनन्द झरता है, ऐसा कहा। आत्मा का आनन्द अतीन्द्रिय भगवान् आत्मा आनन्दस्वरूप है। यह अपने शुद्धभाव से उसे आनन्द में टिकायेगा। बाकी उसके अतिरिक्त के परिणाम शुभाशुभभाव चार गति में भटकायेंगे। समझ में आया?

भावार्थ :- धर्म शब्द का शब्दार्थ ऐसा है कि संसार में पड़ते हुए प्राणियों को निकालकर मोक्ष-पद में रखे,... यह धर्म। धरति इति धर्म। धर्म अर्थात् चार गति के दुःख में पड़ने से (रोक) रखे, उसे धर्म कहा जाता है। ...में पड़ते (रोक) रखे और आधार अद्धर मिले, उसे धर्म आधार और आत्मा को... चार गति, चार गति, हों! वापस ऐसा नहीं कि नरक और ढोर, मनुष्य और देव सब दुःखी... दुःखी... दुःखी... उसमें पड़ने से निकालकर आत्मा के पूर्णानन्द के पद में रखे, वह धर्म है, वह मोक्ष-पद देवेन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्रों को वन्दनेयोग्य है। समझ में आया? आत्मा की मुक्तदशा पूर्णानन्द की प्राप्ति। आत्मा में जो आनन्द है शक्ति में, उसकी दशा में पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति का नाम मुक्ति। दुःख से मुक्त और पूर्णानन्द अन्तर में स्वभाव है, उसकी दशा में-हालत में प्राप्ति का नाम मुक्ति। वह मुक्ति। देवेन्द्र—देवों के इन्द्रों को भी पूजनीय है। लो! ऐसा डाला है। देव के इन्द्र कहीं सुखी होंगे? वे दुःखी हैं। मोक्ष के पद को चाहते हैं। समझ में आया?

देव के इन्द्र, पहले देवलोक के इन्द्र बत्तीस लाख विमान का साहेबा है। सौधर्म देवलोक। इन चन्द्र-सूर्य से ऊपर। बत्तीस लाख विमान और एक-एक विमान में असंख्य देव हैं। असंख्य अरब वर्ष का आयुष्य है एक-एक देव का। इसका दो सागर का आयुष्य है, शकेन्द्र है। वे देव भी मोक्ष की परमानन्ददशा का आदर करते हैं। समझ में आया? उसे वन्दन करते हैं। वन्दन करनेयोग्य वह है। ओहोहो! शुभभाव या

अशुभभाव वन्दन करनेयोग्य, आदरनेयोग्य नहीं — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देवेन्द्र को—देव के इन्द्र के ऐश्वर्य को आत्मा की पूर्ण आनन्द की ईश्वरता ही वन्दनीय है। आहाहा! यह अन्तर का पद जो शुद्ध है, उसे धर्म प्राप्त कराता है, मोक्ष प्राप्त कराता है। समझ में आया? आहाहा! मुनि हो, आनन्द में ध्यान अतीन्द्रिय आनन्द में बैठे हों, बबूल के वृक्ष के नीचे हों, हवा आती हो और ऊपर से काँटे फट-फट सिर के ऊपर गिरते हों, अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द में ध्यान में स्थित हों। राजा चक्रवर्ती हाथी के हौदे निकला हो। छियानवें करोड़ सैनिक लेकर, हों! ऐसा। मुझे दूसरा कहना है। निकला हो और यह मुनि जो ऐसे देखे। आहाहा! धन्य रे धन्य अवतार! अतीन्द्रिय आनन्द की अन्तर मौज में पड़ा है। यह नहीं, हों यह नहीं। छियानवें हजार तो स्त्रियाँ होती हैं, छियानवें करोड़ सैनिक होते हैं, सोलह हजार देव चक्रवर्ती की सेवा करते हैं, यह हाथी—चौरासी लाख हाथी, उसके बड़े हाथी के ऊपर बैठा हो और निकला हो राज सिद्ध करने।

सम्यग्दृष्टि धर्मी हो न, ऐसे निकले जंगल में अतीन्द्रिय आनन्द में, हों! ऐसे ... स्थित हों। वह समाधि नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति में नजर माँडकर अन्दर स्थित है। अपनी दशा को दशावान में उन्मुख करके स्थित है। धन्य अवतार, ऐसा कहे, नीचे उतरे। चढ़ाओ... एक मुनि आत्मा के आनन्द में स्थित हैं। अतीन्द्रिय आनन्द में, परन्तु जिसे खबर नहीं ... छोटाभाई! ... सभा को ऐसा हुआ कि यह क्या हुआ? यह और कौन इससे बड़ा निकला? यह देवेन्द्र भी उस मोक्ष को वन्दते हैं और मोक्ष के साधक सन्तों को वन्दते हैं। कहो, हीराभाई!

नरेन्द्र। नरेन्द्र है ऐसा चक्रवर्ती और देवेन्द्र हो ऊपर से इन्द्र उतरे हों ... आत्मस्वरूप में लीन। देह, वाणी पर भिन्न, पुण्य-पाप के राग भिन्न। उसके स्वरूप में लीन, कहते हैं, जो मोक्ष के साधक और मोक्ष, दो। उन्हें नागेन्द्र भी वन्दते हैं। नागेन्द्र अर्थात् नीचे के नरक के देव। देवेन्द्र, वे ऊपर के—स्वर्ग के देव हैं। नीचे ... इन्द्र। नरेन्द्र—नर के इन्द्र यह चक्रवर्ती कहा, (उनसे) वे वन्दनेयोग्य है। जो आत्मा का निज स्वभाव है, वही धर्म है, ... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सच्चिदानन्द प्रभु की सन्मुख का शुद्धभाव वह धर्म

है। निज स्वभाव है, वही धर्म है। पुण्य-पाप के विकल्प धर्म नहीं। चिल्लाहट मचाये। ऐसा कहना ...

भगवान आत्मा की जाति के परिणाम हो, वह धर्म, वह स्वभाव है। पुण्य-पाप के विकल्प उठें, वह अधर्म है, विभाव है, ऐसा कहो। ... निज स्वभाव वह धर्म, उसके विरोध परिणाम शुभाशुभ, वे अधर्म। ... पूरा चैतन्य हीरा तो मानो कि उसकी नजर में नहीं हो। यह धूल में हीरा और यह देखता है। आहाहा! ... तू कौन है? यह अन्दर है कुछ या नहीं? दूसरे की कीमत, आँकनेवाले की कुछ कीमत है या नहीं? सबकी कीमत आँकनेवाले की नहीं? सबकी कीमत आँकनेवाला परन्तु तू कौन है, उसकी कीमत तूने आँकी? अपने कौन? अपने को कुछ खबर नहीं। आत्मा है, ऐसा कहते हैं। संसार में चतुर वे दुनिया के चतुर, वे दुनिया में गहरे उतरनेवाले हैं भटकने में। यह आत्मा के चतुर, वे मोक्ष में जाने के लिये लायक हैं। जिसने आत्मा की कीमत की और आत्मस्वभाव जिसने देखा, जाना और अनुभव किया। **उसी में जिनभाषित सब धर्म पाये जाते हैं।** वह आत्मा का निज स्वभाव श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, उसमें वीतराग ने कहे हुए सभी धर्म उसमें समाहित हो जाते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान था। उन्होंने जो धर्म कहे, वे सब आत्मा के स्वभाव। शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा की सन्मुख के परिणाम निर्मलानन्द शुद्ध उसमें सब धर्म है, ऐसा भगवान के कथन में आ जाता है।

जो दयास्वरूप धर्म है, वह भी जीव के शुद्धभावों के बिना नहीं होता,... अहिंसा-अहिंसा। मूल अहिंसा है ... अहिंसा किसे कहना? वह अहिंसा धर्म है। परन्तु वह अहिंसा कहना किसे? आत्मा में शुभ और अशुभराग होता है, उसकी उत्पत्ति नहीं होना और शुद्ध आनन्दकन्द की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की उत्पत्ति होना—अविकारी दशा की उत्पत्ति होना, उसे अहिंसा धर्म भगवान फरमाते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि निज स्वभाव वह सब ... समाहित हो जाता है। समझ में आया?

अहिंसा परमो धर्म। आता है न अहिंसा लक्षण धर्म। वह अहिंसा कौन? परजीव की दया-बया की बात नहीं। कौन परजीव की दया पाले? उसके आयुष्य बिना तो मर

जाये वह तो तुरन्त। आयुष्य हो तो जीवे, जहर खाये तो भी जीवे, आयुष्य हो तो। पर को जिला कौन सकता है और मार कौन सकता है? तेरे आत्मा का चैतन्य जीवन वीतरागीस्वरूप तेरा निर्दोष आनन्दकन्द है, उसमें—उसकी श्रद्धा-ज्ञान में राग की उत्पत्ति जितने अंश में न हो और शुद्ध स्वभाव के अंश में जितनी निर्विकारी वीतरागी निर्दोष आत्मदशा उत्पन्न हो, उसे भगवान अहिंसा धर्म कहते हैं। यह वीतराग ने भासित धर्म इसमें समाहित हो जाता है। भगवानभाई! वे सब ... पालो पर की दया। कौन पाले पर की धूल? शरीर की अँगुली हिला सकता नहीं। वह तो धूल है यह... यह... यह... वह ऐंठ जाये और ... से जाये, वह तो जड़ है मिट्टी है। वह काम कहाँ तुझसे होता है? समझ में आया?

भगवान ने अहिंसा का धर्म भी वीतरागदेव ने जो कहा, वह आत्मा के शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति में वह समाहित होता है। न्यालभाई! 'दया वह सुख की वेलड़ी...' गाते थे या नहीं? जेचन्दभाई! 'दया वह सुख की खान, अनन्त जीव मुक्ति में गये...' परन्तु वह दया कौन सी? समझ में आया? वह तेरी दया। ...यह कहते... एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीविया... पहाड़े बोल जाये। इच्छामी पडिक्कमणा में आता है न? जीविया ववरोविआ तस्स मिच्छामी दुक्कडम्। अब वह तो शुभराग की बात है। तेरे पर को कौन मारे और जिलावे? समझ में आया? भगवान ने कहे हुए जितने धर्म के प्रकार हैं, वे आत्मा के शुद्धस्वभाव की परिणति निर्मल प्रगट होना, उसमें वे सब प्रकार समाहित हो जाते हैं। उससे दूसरी पद्धति हो नहीं सकती। समझ में आया?

वीतरागदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ सौ इन्द्र के पूजनीय। ऐसे परमेश्वर ने कहा हुआ इतने प्रकार के ... वह सब आत्मा पुण्य-पाप के भावरहित आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता में ऐसे निज स्वभाव के परिणाम प्रगट करना, उसमें वह सब धर्म की रीति और पद्धति समाहित हो जाती है। समझ में आया? कान तो जड़ है ... उसे ख्याल में आवे कि यह कुछ ठीक है तो उसे रुचे, वह खिंचे। दूसरे खींचता था क्या?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसकी योग्यता हो, तत्प्रमाण हो न वहाँ। भीखाभाई ! यह साथ में बैठे हैं।

यह अहिंसा धर्म। वह भी जीव के शुद्धभावों के बिना नहीं होता,... है ? यह सेठ है न सबसे सामने ? पुराने लोगों को बहुत दया पलवायी है या नहीं ? है, उसमें है या नहीं ? लिखा है या नहीं ? है। जीव के शुद्धभावों के बिना (अहिंसा धर्म) नहीं होता,... आहाहा ! अरे, भगवान ! पर की दया की व्याख्या भी कहाँ है यहाँ तो। पर को पाल कौन सकता है ? प्रिय में प्रिय स्त्री हो और चालीस वर्ष में मरता हो और वह पैंतीस वर्ष की हो न, अब मानो फिर से मिलेगी या नहीं, इसके लिये बचाना चाहता हो और उस समय आयुष्य पूरा हो, हाय ! दोनों रोते... जा तू तेरे ठिकाने... बचाने के भाव से बचे तो बचा न इस स्त्री को। तेरे भाव से बचता हो परद्रव्य की दया। ... कर न अर्धांगिनी जिसे मानता है, उसे भाव से रख सकता नहीं, वह दूसरे को रख सकेगा तू ? बीस वर्ष का ऐसा युवा, दो वर्ष का विवाहित ऐसे मरता हो हरा-भरा परिवार छोड़कर माँ-बाप रोये। अररर ! भाव है या नहीं बचाने के ? बचा न। तेरे भाव से बचे तो बचा दे न ! वह तो आयुष्य हो तो बचे, क्या तेरे भाव से वहाँ बचता है ? समझ में आया ? कैसे होगा इसमें ? मनहरभाई ! यह गजब बात परन्तु।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो राग करे। राग करे। ... राग करे। बाकी इस देह की क्रिया कौन कर सकता है और कौन ला सकता है डॉक्टर ? वह तो आना हो तो आवे। आहाहा ! यहाँ वह तो उसके बचने का काल हो तो वह निमित्त होता है। मर जाये तो वह खड़ा हो तो ऊं... फू हुआ। बड़े दरबार के। हमारे लीमडी दरबार के पुत्र का पुत्र ... स्पेशल मँगाया मुम्बई से। यहाँ लीमडी। दरबार का पुत्र था। जहाँ रेल स्टेशन के ऊपर आयी, वहाँ मर गया यहाँ, डॉक्टर को खबर पड़ी कि मैं आया। समाप्त हो गया। आवे तो क्या धूल करे ? देह की जो स्थिति जिस काल में, जिस निमित्त से, जिस प्रकार से, जिस समय में पूरी होनेवाली है, वह पूरी होगी होगी और होगी। लाख तेरे देव उतार और इन्द्र उतार तो फेरफार हो, ऐसा नहीं। यह परिणाम जीव के कर सकते हो।

आत्मा के शुद्ध भगवान आत्मा जितनी पवित्रता कही जाती है, वह सब पवित्रता मेरे स्वरूप में पड़ी है। ऐसी पवित्रता की पूर्णता का धाम वह मैं आत्मा हूँ। ऐसी स्वभाव सन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान की एकाग्रता, ऐसे शुद्धस्वभाव के परिणाम, उसे अहिंसा भगवान की वाणी में आयी है। समझ में आया ? उस शुद्धभाव बिना वह अहिंसा होती नहीं। यति श्रावक का धर्म भी शुद्ध भावों के बिना नहीं होता,... देखो ! पाठ में है, हों ! सब 'सागारानगारलक्षणो धर्मः' आहाहा ! मूल पाठ में तो यह है। 'सागारानगारलक्षणो धर्मः सोऽपि तथैव' गृहस्थाश्रम में श्रावक को धर्म हो, वह भी आत्मा पवित्र का धाम, अखण्डानन्द के ऊपर एकाग्र होकर शुद्धभाव प्रगट करे, वह श्रावक का धर्म है। श्रावक वाड़ा की बात नहीं यहाँ। आहाहा ! यह तो गृहस्थाश्रम का धर्म कहा। धर्म तो गृहस्थाश्रम का कौनसा हो ? पवित्र। जितनी पवित्रता ऊँचे में ऊँची कहलाती है, वह सब मेरी खान में मुझमें पड़ी है। ऐसा ही मैं आत्मा पवित्रता की खान हूँ। शान्ति लुटाया ही करे। अभी कहा था न कुछ यह पुस्तक में। समझ में आया ? आत्मनिधि। उसकी एकाग्रता की चाबी जितनी घुमावे, उतना प्रकाश हो और स्थिरता हो। समझ में आया ? यहाँ बात तो हुई थी वह ... यह निधि ऐसी है कि कभी समाप्त न हो। परन्तु यह बात इसे बैठती नहीं। समझ में आया ? हिरण की नाभि में कस्तूरी परन्तु हिरण को बैठती नहीं। उसी प्रकार आत्मा में अन्तर आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द भगवान परमेश्वर को जो प्रगट हुआ, वह आनन्द तुझमें पड़ा है। उस आनन्द के परिणाम अन्तर से शुद्धरूप से प्रगट होना, वह पुण्य का उसे बारह व्रत के विकल्प को यहाँ धर्म नहीं कहा। समझ में आया ?

यह आत्मा शुद्ध चिदानन्द का परिणाम निर्मल जो शुद्धपर्याय प्रगट हो, वह श्रावक का वीतराग ने कहा हुआ, वह श्रावक का धर्म। समझ में आया ? महाव्रत में विकल्प उठे, वह शुभभाव है, वह पुण्य-पाप, वह धर्म नहीं। परमार्थ। ऐसा आया या नहीं इसमें ? देखो न, यह पाठ क्या है ? देखो ! 'सागारानगारलक्षणो धर्मः सोऽपि तथैव' 'तथैव' अर्थात् शुद्ध परिणाम। यह गृहस्थ का धर्म दूसरा होगा, मुनि का धर्म दूसरा होगा, ऐसा है ? कम, विशेष इतना अन्तर हो। जाति में अन्तर नहीं होता। भगवान अन्तर चैतन्य ज्योति प्रभु पूर्ण पवित्रता का धाम, उसके सन्मुख होकर, पुण्य-पाप के भाव के विकल्प से विमुख होकर, स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति जितनी प्रगट की, उतना

श्रावक को गृहस्थाश्रम में भगवान ने कहा हुआ, उसे धर्म कहा। ऐ निहालभाई! ... ऊपर कहा न।

जिनभाषित सब धर्म पाये जाते हैं। श्रावक का भी शुद्ध निज स्वभाव के परिणाम, वह जिन भगवान ने कहा हुआ श्रावक का धर्म, उस परिणाम में समाहित हो जाता है। आहाहा! यह आवश्यक वह निश्चयस्वरूप में दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता, वह आवश्यक है। क्या आया? नियमसार। 'णियमेण य जं कज्जं' नियम से करना, वह यह स्व आवश्यक अर्थात् आत्मा की दृष्टि, उसका ज्ञान, उसकी स्थिरता, वह नियम से करनेयोग्य है। वह आवश्यक है। छह आवश्यक दूसरे शुभविकल्प यह सामायिक करना, वह विकल्प तो शुभराग, परन्तु ऐसे निश्चय, वह धर्म हो तो उस शुभ विकल्प को व्यवहार कहा जाता है। धर्म तो इसे ही कहा। ... समझ में आया?

यति श्रावक का धर्म भी शुद्ध भावों के बिना नहीं होता,... ओहोहो! वे कहते हैं कि श्रावक का धर्म शुभ उपयोग में आ गया। भगवान! यह गजब किया। भगवान को भगवान किया। ... हम तो ऐसा कहते हैं कि शुभभाव है, वह धर्म है। वह हमारे जिनभाषित है। परन्तु जिनभाषित वह वीतरागभाव होगा या जिनभाषित में रागभाव को धर्म कहे भगवान? इसलिए वीतराग भाषित। समझ में आया? 'वीतरागसर्वज्ञप्रणीतनय-विभागेन सर्वे धर्मो अन्तर्भूता लभ्यन्ते।' पाठ है। उसके सब उन शुभ परिणाम में ही नय विभाग से सब बात आ जाये। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर प्रणीत... यह सब धर्म वह शुद्ध जीव में भगवान आत्मा में शुद्ध परिणाम स्वभाव-सन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति। ऐसे जितने अंश में शुद्धपना प्रगट हुआ पुण्य-पाप के राग बिना का। उसका नाम श्रावक का धर्म, वीतराग ने कहा, वह यह धर्म कहा है श्रावक का। है या नहीं इसमें भी देखो! लिखा है या नहीं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु समझ में आता है वह समझनेवाले को या समझानेवाले को? कहो, समझ में आया इसमें? वाणी से समझ में नहीं आता? समझनेवाले को समझण में से समझ में आता है। यति, श्रावक और मुनि। लो! मुनि उसे कहते हैं कि

जो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के रस का स्वाद लेकर आनन्द में लवलीन हों। अतीन्द्रिय आनन्द में लवलीन वे भगवान के वीतराग मार्ग में सर्वज्ञ ने कहे हुए मुनि उन्हें कहा जाता है।

आत्मा के शुद्ध पिण्ड में से, कुण्ड में से ... शुद्ध कुण्ड पड़ा है भगवान आत्मा, उसमें से एकाकार होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता, एकत्वता जितनी प्रगट हुई, उसकी उग्रता शुद्धता की, उसे भगवान ने मुनि धर्म कहा है। पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण को धर्म नहीं कहा। वह तो पुण्य है। उसे ... धर्म मनाते हैं। सब खबर नहीं होती। वे मुश्किल से निवृत्त होकर आवे एक घण्टे। ऊपर बोले वह हाँ। भीखाभाई! आहाहा! यह भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने जिनभाषित तो वीतराग परिणाम को जिनभाषित तो धर्म कहा, ऐसा कहे। जितने अंश में अन्दर शुभ-अशुभ रागरहित, देह की क्रियारहित, आत्मा पुण्य पवित्रता के धाम में अन्दर प्रविष्ट होकर एकाग्रता जितनी प्रगट की शुद्धता, उग्र शुद्धता से मुनिपना, मन्द शुद्धता से श्रावकपना (होता है)। परन्तु उस शुद्धता में भगवान ने धर्म बताया है। पुण्य-पाप के विकल्प में शुभभाव में भगवान ने धर्म नहीं कहा। वह धर्म अब

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल १२, बुधवार, दिनांक - ०२-०२-१९६६

गाथा - ६८ - ६९, प्रवचन - ११६

श्रावक का धर्म और मुनि का धर्म, वह शुद्धभाव अर्थात् आत्मा शुद्धस्वरूप से-स्वभाव से है, उसके शुद्ध परिणाम निर्मल होना, उन निर्मल परिणाम बिना श्रावक को, मुनि को धर्म होता नहीं। श्रावक को भी आत्मा पवित्र शुद्ध वह ज्ञानघन, उसकी शुद्ध दृष्टि, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध आंशिक स्थिरता, ऐसी शुद्ध परिणति, वीतराग परिणति से ही श्रावक को धर्म होता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : व्रत से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत-व्रत की कहाँ बात है? व्रत भी सच्चा, परन्तु कौन सा व्रत? अरागी, वीतरागी, आत्मा के साथ लिपट जाना, वह व्रत। समझ में आया?

यह तो पाठ में आया न देखो! 'भाउ विसुद्धउ अप्पणउ' अपना विशुद्ध स्वभाव, विशुद्ध शब्द यहाँ पवित्र, निर्मल, वीतरागी पर्याय। 'धम्म भणेविणु लेहु' उसे धर्म समझकर ग्रहण करना। ऐसा है। लाख बात की बात, करोड़ बात की बात। यह भगवान् चैतन्यमूर्ति... पुद्गल अर्थात् पुण्य-पाप के भाव, वे वास्तव में तो वह पुद्गल के परिणाम हैं। चैतन्य की जाति के नहीं, लो! उनसे रहित शरीर, कर्म तो सीधे पुद्गल हैं। शुद्धस्वभाव चैतन्य दल, अनाकुल शान्त और परमानन्द का रसकन्द, ऐसा आत्मा, उसके स्वसन्मुख में शुद्ध परिणाम श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वही श्रावक को धर्म है और मुनि को उग्र शुद्धता, परन्तु धर्म तो वह शुद्ध है। अर्थात् श्रावक के व्रत, बारह व्रत आवे, मुनि को पंच महाव्रत आवे, वे कहीं धर्म नहीं। समझ में आया?

यति श्रावक का धर्म भी शुद्धभावों के बिना नहीं होता,... यहाँ तक आया था। उत्तम क्षमादि दसलक्षणधर्म भी शुद्धभाव बिना नहीं हो सकता,... देखो... उत्तम क्षमादि को पुण्य के भाव कहा है। उसका वहाँ छहढाला में। समझ में आया? यहाँ तो

यह एक उत्तम क्षमा कहलाती है। जिसमें शुभ विकल्प-राग भी उत्पन्न न हो, ऐसा आत्मा वीतरागस्वभावी आत्मा, उसकी वीतराग परिणतिरूप पर्याय, वह उत्तम क्षमा, परन्तु वह शुद्ध धर्म ही है, वह शुद्ध परिणाम ही है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वह शुद्धभाव है। शुद्धभाव के दस प्रकार के नाम कहे जाते हैं। शुद्धस्वरूप आत्मा पवित्र ज्ञानघन जिसकी अन्दर की एकाग्रता शुद्ध परिणाम की, वह शुद्ध परिणाम, वही उत्तम धर्म दस प्रकार से। क्षमा कहो तो वह, निर्लोभ कहो तो वह, यह संक्षेप कहो तो वह, त्याग कहो तो वह शुद्ध परिणाम, वह सब स्वरूप है। चार प्रकार का धर्म वर्णन किया न? अहिंसा भी शुद्धभाव से, श्रावक के व्रत का मुनि को... श्रावक का और मुनि का धर्म, वह भी जिनभाषित सर्व शुद्धभाव से, उत्तम क्षमादि शुद्धभाव से चार का वर्णन है, यह चौथा बाकी है।

और रत्नत्रयधर्म भी शुद्धभावों के बिना नहीं हो सकता। लो! है न अन्दर? भले यहाँ लिखा है न? वह चार आया है न। आता है। समझ में आया? यह चौथा बोल दूसरे बहुत जगह आता है। पद्मनन्दि पंचविंशति में, समझ में आया? अष्टपाहुड़ में भी अर्थ में लिखा है। यह चार प्रकार से जो धर्म शास्त्र में वर्णन किया, वह चारों शुद्ध परिणाम का वर्णन है। शुभ और अशुभभाव में धर्म नहीं। समझ में आया? है न उसमें? उसमें शब्द तो आधार दिया है कि अहिंसा लक्षण में ऐसा है रामसेन के तत्त्वानुशासन में। 'सदृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्म धर्मेष्टवरा विदुः' यह रत्नकरण्ड (श्रावकाचार, गाथा २) का उद्धरण दिया है। 'धम्म वत्थुसहावो' यह स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा का दिया है। समझ में आया? और रत्नत्रय धर्म ... यह बहुत जगह यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य तीनों मोक्षमार्ग, लो न तत्त्वार्थसूत्र। समझ में आया? यह तत्त्वार्थसूत्र, वह तो प्रसिद्ध है, वह तो कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। मोक्षशास्त्र में है न सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्याणि मोक्षमार्ग। ये तीनों शुद्धभाव से हैं, शुभभाव नहीं, व्यवहार नहीं। समझ में आया? है न अन्दर देखो न 'सोऽपि जीवशुद्धस्वभाव एव। वस्तुस्वभावो धर्मः सोऽपि तथैव।' बस, ऐसे रत्नत्रय भी 'तथैव' ऐसा। समझ में आया? रत्नत्रय धर्म भी आत्मा को अन्तर में

पकड़कर शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता होना, वह रत्नत्रय धर्म भी शुद्ध परिणाम ही है। व्यवहाररत्नत्रय कहा है, वह तो एक निमित्त देखकर वर्णन किया है, बाकी धर्म तो यह एक ही प्रकार से है। ऐसा ही कथन जगह-जगह ग्रंथों में है,... समझ में आया ?

उसका अर्थ यह है, कि धर्म के ईश्वर भगवान ने... देखो ! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों को धर्म कहा है। देखो ! दृष्टान्त (उद्धरण) दिया है। 'धम्मो वत्थुसहावो' ध्यान रखना ... धर्म के ईश्वर भगवान ने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों को धर्म कहा है। यह निश्चय स्वभाव जो आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता, उसे ही भगवान—धर्म के ईश्वर भगवान ने उसे धर्म कहा। समझ में आया ? धर्म ईश्वर आधीन है न ? वह है न देखो न, यह श्लोक डाला है। देखो ! तीन में डाला, लो ! यह रत्नत्रय का डाला। है न ? 'सदृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्म धर्मेश्चरा विदुः' तीनों डाले, टीका में हैं। चारों बोल हैं। समझ में आया ?

कौन-से चार बोल ? यह तो तुम्हारे बाप के बोल... देखो तो सही। खोजने जाये। अहिंसा लक्षण धर्म। श्रावक और मुनि का धर्म और दसलक्षणी धर्म और 'सदृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्म धर्मेश्चरा विदुः' देखो न उद्धरण दिया है यह तो। ... समझ में आया ? रत्नकरण्ड श्रावकाचार में, लो ! चार बोल आये हैं। कल टीका में चले थे। समझ में आया ? रत्नत्रय धर्म कहा है कि धर्म के ईश्वर भगवान ने, वे धर्म के ईश्वर बड़े भगवान के भगवान ने। धर्म ईश्वर वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने केवलज्ञानी वीतराग जिन्हें एक समय में धर्म पूर्ण प्रगट हुआ है। परमेश्वर वीतराग तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों को धर्म कहा है।

भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने समवसरण में वीतरागदेव ने आत्मा पवित्र आनन्दकन्द का अन्तर सम्यक् श्रद्धा, आत्मा का ज्ञान और आत्मा की लीनता—ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को धर्म के नाथ ऐसे परमेश्वर ने उसे धर्म कहा है। तो वीतराग ने वीतराग पर्याय को धर्म कहा है, ऐसा कहते हैं, लो ! दूसरी भाषा में कहें। समझ में आया ? वीतराग परमेश्वर ने... अनन्त तीर्थकर हो गये, अभी विराजमान महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान आदि विराजते हैं। भविष्य में भी अनन्त तीर्थकर भरत, ऐरावत

महाविदेह में होंगे। ऐसे वीतराग परमेश्वर ने परम ईश्वर है न, उन धर्म के परमेश्वर अर्थात् धर्म के परमेश्वर वीतराग ईश्वर... ऐसे वीतरागों ने वीतराग परिणति को धर्म फरमाया है, लो! ऐसा कहा। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा जैसी अरिहन्त और सिद्ध की पर्याय परिपूर्ण प्रगट हुई परमात्मा को, ऐसा ही यह आत्मा स्वभाव में परिपूर्ण शुद्ध ही है। यदि अन्दर शुद्ध परिपूर्ण न हो तो शुद्धता प्रगट कहाँ से होगी? कहीं बाहर से आवे ऐसी है? केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीतरागता, अनन्त वीर्य, वह भगवान परमात्मा अरिहन्त को प्रगट हुए। वे कहाँ से आये? वे शरीर संहनन में से आये? या दया, दान के विकल्प जो पुण्य हैं, उसमें से आये? आये कहाँ से वे? वस्तु में उस शक्ति का पूरा सत्त्व है। समझ में आया?

एक तो पूरा आत्मा पूर्णानन्द अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख चतुष्टय सब, उसका स्वरूप, वह आत्मा है, उसकी अन्तर में स्वभाव सन्मुख की दृष्टि, स्वभाव की एकाग्रता जहाँ और स्वभाव की लीनता चारित्र। बस, इसे वीतराग ईश्वरों ने, वीतराग के ईश्वर, वीतराग में ईश्वर, उन्होंने यह पर्याय निर्मल निर्विकारी दशा को भगवान ने धर्म कहा है। आहाहा! ऐसी ... यह पहुँचना, पहुँचे बिना दूसरे प्रकार से कोई धर्म होता हो, (ऐसा नहीं है)। शुभ परिणाम बीच में हो। दया, दान, भक्ति, व्रत के। वह शुभभाव मूल धर्म नहीं। वीतराग परमेश्वर ने तो वीतराग पर्याय को धर्म कहा है। वह तो रागभाव है, पुण्यभाव है। इस जीव को प्रथम... पड़ता है न? देखो न, क्या कहा? 'सदृष्टिज्ञानवृत्तानि' देखो... व्रत शब्द यहाँ से है। ... पाठ में ... यहाँ रत्नकरण्ड श्रावकाचार में व्रत, वह चारित्र लेते हैं। ... शास्त्र के शब्द ... यह रचे... धर्म नहीं। समझ में आया?

सत् दृष्टि शब्द पड़ा है, सत्, देखो! सत् दृष्टि, सत् ज्ञान, सत् वृत्तानि ऐसा शब्द है। समन्तभद्राचार्य महान (सन्त) हो गये हैं। रत्नकरण्ड श्रावकाचार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार के कथन के अन्दर यह तीसरी गाथा है। समझ में आया? तो कहते हैं परमेश्वर सर्वज्ञदेव पूरी उनकी जिनवाणी, 'जिनभाषित' है न ऊपर ... जिनभाषित सत् धर्म — वीतराग परमेश्वर ने जो कुछ धर्म का वास्तविक स्वरूप कहा, वह सब आत्मा

पवित्र के धाम में एकाग्र हो और उसमें शुद्ध सम्यग्दर्शन अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन, शुद्ध ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान, शुद्ध स्थिरता अर्थात् वीतरागी स्थिरता—उसे भगवान ने धर्म कहा है और उसे मुक्ति का उपाय कहा है। ऊपर से ले लेना है, कहीं से यदि बाहर से आ जाये न। बाहर के लक्ष्य से तो शुभभाव होता है। स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्य के लक्ष्य से पाप होता है। देव-गुरु-शास्त्र की आदि की पूजा, भक्ति के लक्ष्य से पुण्यभाव होता है। भगवान, आत्मा अखण्डानन्द प्रभु जैसे वीतराग परमेश्वर हैं, वैसा ही आत्मा स्वभाव में अन्दर है। उसके आश्रय से दृष्टि, ज्ञान और शान्ति हो, उसे वीतराग के परमेश्वर वीतराग ने उसे धर्म कहा है। देखो, इसे—जगत को रुचि होना, इसे हाँ पाड़ना कठिन पड़े। अरे... अरे...! तो फिर यह सब हम करते हैं। परन्तु तू क्या करता है? सुन न!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसकी तो बात चलती है। धर्मचन्दजी! यह है सच्चा, परन्तु इसको बैठता नहीं। वह अनादि का उल्टा अभ्यास पड़ गया है। परसन्मुख की वृत्तियाँ की और स्वसन्मुख में मानो धर्म करते हैं, ऐसा इसे मानना है। स्वसन्मुख की पर्याय और परसन्मुख की पर्याय, दो जाति ही अलग है। आया है? कथन आया है उसमें। सच्चा सच्चा कथन लिया है उसमें—कलश टीका में। हाँ, हाँ, कहा है न, सब बात तो आ गयी है। वह बात आयी है। थे या नहीं सुनने में? ... गये होंगे। मशीन के लिये नहीं होता? ... अनुपस्थिति।

कहते हैं, अभी कहीं आया था, नहीं? टीका में आया था। ... बात तो सच्ची यह कहते हैं। परन्तु यह कठिन ऐसा नहीं, नहीं हो सके — ऐसा नहीं। उसे कभी यह आत्मा क्या वस्तु... परमेश्वर पूरा चैतन्यदल है। यह (शरीर) तो हड्डियाँ, जड़, मिट्टी, धूल, रजकण है। आठ कर्म जिसे ज्ञानावरणीय आदि कहा, वह तो अजीव जड़ और बहुत तो उसे पर्याय में उत्पन्न हो परसन्मुख की वृत्ति वह पाप और पुण्य। अब उससे रहित पूरा तत्त्व है, अखण्ड ज्ञान, दर्शन, आनन्द का कन्द आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। यह तो पुद्गल के परिणाम हैं। शुभाशुभ परिणाम वे वास्तव में आत्मा की जाति (नहीं

है)। वह तो यहाँ कहा न! अपना है, (वीतराग परिणाम) और अशुद्ध परिणाम अपने नहीं हैं,... पाठ में ही है, देखो! 'भाउ विसुद्धउ अप्पणउ' निर्मल आत्मा शुद्ध पवित्र प्रभु की शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, स्थिरता वीतरागी पर्याय, वह आत्मा के परिणाम हैं, ऐसा कहा। उसे धर्म जानकर ग्रहण कर, ऐसा कहते हैं, देखो! पाठ ही ऐसा बोलता है, देखो! आहाहा! लोगों को इस प्रकार से रोक दिया है न और वे रुक गये हैं वहाँ। आहाहा!

पूरी चैतन्य दीवार बड़ी अखण्डानन्द की शिला चैतन्य है। वीतरागमूर्ति देह में आत्मा स्वयं विराजमान है। उसकी एक समय की दशा में राग-द्वेष, क्लेश आदि या कर्म का निमित्त, उस विकार की पर्याय के साथ सम्बन्ध है; वस्तु के साथ उसमें सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? बात भी सुनने को मिलती नहीं और अभ्यास दूसरा हो। यह वह क्या कहते हैं? ... गये हैं नहीं? भावनगर। वे बेचारे मुश्किल से दुकान में से आये हों, उन्हें यह धन्धा... धन्धा... धन्धा। पूरे दिन और ऐसी बात सुने नहीं। वह बाहर की ... जाओ एक-दो करो, धर्म होगा। फलाना करो तो धर्म होगा। परन्तु कहाँ धर्म? भाई! वह तो पुण्यभाव है, भाई! तुझे खबर नहीं। परद्रव्य के सन्मुख की वृत्ति जितनी उत्पन्न हो, उसे वीतराग ने पुण्यभाव शुभ देव, गुरु और शास्त्र और सच्चे सन्त गुरु, देव की, शास्त्र की भक्ति आदि, वह सब शुभभाव है। वह आत्मा की शान्ति का कारण मुक्ति नहीं, उसमें उस कारण से। पाप से बचने के लिये ऐसे भाव होते हैं, परन्तु वह वस्तु का स्वरूप नहीं। स्वरूप होवे तो वह राग टलकर वीतराग हुए, वे किस प्रकार से हुए? यह शुद्ध परिणाम तो आत्मा की चीज़ अन्दर है, महाप्रभु शुद्ध वीतरागीस्वरूप जिसका सम समरसीस्वरूप आत्मा का। उसका स्वभाव, उसकी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, शुद्ध सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और लीनता, उसे ही भगवान ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा है, उसे उत्तम क्षमादि धर्म कहा, उसे श्रावक-मुनि का धर्म कहा और उसे भगवान ने अहिंसा लक्षणो धर्म उसे कहा है। समझ में आया?

जिस धर्म के ये ऊपर कहे गये लक्षण हैं, वह राग, द्वेष, मोह रहित परिणाम धर्म है,... लो! यह शुभाशुभ राग, द्वेष, मोहरहित परिणाम, वह धर्म है। यह चार प्रकार कहे वे। आहाहा! वह जीव का स्वभाव ही है,... देखो! है न? वह जीव का स्वभाव ही है।

क्योंकि वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। वस्तु भगवान के अन्तर में शक्ति के गुण में, स्वभाव में उसका भावपना, वस्तु भाववान, उसका भावपना, वह सब शुद्धभावपना है। शुद्धभावपना अर्थात् वीतरागी भावपना उसका स्वरूप है। उसका धर्म अर्थात् वह 'वत्थुसहावो धम्मो' वह वस्तु का स्वभाव, उसकी एकाग्रता होने पर प्रगट हो, वह पर्याय धर्म; स्वभाव, वह ध्रुव धर्म। समझ में आया ?

भगवान आत्मा वस्तु और वस्तु में बसे हुए गुण, गुण अर्थात् ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति अर्थात् चारित्र अन्दर स्वभाव, हों! वह वस्तु का स्वभाव, वह धर्म है और उस स्वभाव की एकाग्रता, वह पर्याय धर्म, प्रगट धर्म है। समझ में आया ? इस बात को पकड़ना ऐसी। बाहर में ... करे। ... गये ? समझ में आया ? 'केवली पण्णंतो धम्मो शरणं' वह शरण कौनसा ? केवली पण्णंतो धम्मो'—ऐसा बोले तो शाम, सवेरे बोले। अरिहन्ता, णमो सिद्धाणं ... भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव। इसके अतिरिक्त कोई सर्वज्ञ जगत में अन्यमत में हो नहीं सकते। परमेश्वर वीतराग जिन्हें एक समय में ज्ञान पूरा और एक समय में वीतरागता का आनन्द पूरा। ऐसे परमेश्वर तीर्थकरदेव अनन्त हो गये। वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में तीर्थकर साक्षात् विराजते हैं।

एक व्यक्ति, भाई! आया था अभी कि इन भगवान को तुम ... यहाँ सीमन्धर भगवान को स्थापित किया है। वे तो मोक्ष गये नहीं। मोक्ष क्या, अरिहन्त तीर्थकर हैं। कौन जाने किस प्रकार से चला है न। साक्षात् तीर्थकर महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। मोक्ष गये हों, उनकी प्रतिमा हो तब तो फिर बाहुबलीजी यह दूसरी महा प्रतिमायें हैं तो मोक्ष गये उनकी ही यहाँ प्रतिमा हो ? कोई मोक्ष न गया हो, उसकी प्रतिमा न हो तीर्थकर की ? पाँचों ... तीर्थकर अस्ति हो, उनकी प्रतिमा भी होती है। भरत चक्रवर्ती। भरत चक्रवर्ती के काल में तीन चौबीसी की प्रतिमा कैलाशपर्वत पर स्थापित की थी। तीन चौबीसी, हों! भूत, वर्तमान, भविष्य भगवान तो विराजते थे। ऋषभदेव भगवान विराजते थे। वे मोक्ष नहीं गये थे। तो भी कैलाशपर्वत पर तीन चौबीसी की सोने की प्रतिमा है। होता है शुभभाव होता है और भक्ति नहीं ? परन्तु वह स्वरूप आत्मा अखण्डानन्द प्रभु है, उसकी अन्तर दृष्टि, ज्ञान, रमणता बिना उसे धर्म नहीं होता। यह तो अभी भड़के यह

कहीं सीमन्धर भगवान ... आहाहा! तीर्थकर परमेश्वर साक्षात् विराजते हैं, चौबीस तीर्थकर तो मोक्ष में पधारे। वह तो सिद्धपद हो गया, सिद्ध, वे तो णमो सिद्धाणं हो गये, अब उन्हें शरीर-बरीर है नहीं। यह णमो अरिहंताणं में तो भगवान विराजते हैं अभी। समझ में आया? वे शरीरवाले हैं।

कहते हैं, वे जितने शरीरवाले अरिहन्तों की वाणी हो। सिद्ध को वाणी नहीं होती, वे तो अशरीरी हो गये, पूर्ण हो गये, मुक्त में विराजते हैं। नहीं आया था, सकल-निकल। परमात्मा दो प्रकार के। शरीरसहित अरिहन्त, शरीररहित सिद्ध। उन्हें सम्यग्दृष्टि व्यवहार में बराबर जानकर श्रद्धा करता है। समझ में आया? निश्चय में अपनी श्रद्धा करता है। जन्म-मरण के अन्त का कारण, देखो यहाँ आयेगा अभी, कहते हैं, देखो! यह आदि धर्म, वह जिनभाषित धर्म... देखो! है न? ...

‘धम्मो’ इत्यादि गाथा से कहा है कि जो आत्म-वस्तु का स्वभाव है, वह धर्म है, उत्तम क्षमादि भावरूप दस प्रकार का धर्म है, रत्नत्रय धर्म है, और जीवों की रक्षा (अहिंसा) यह धर्म है। वह आत्मा की अहिंसाभाव वह आत्मा की रक्षा। राग और विकल्परहित आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति उत्पन्न करना, वह धर्म। यह जिनभाषित धर्म... यह वीतराग ने कहा हुआ धर्म। यह परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ धर्म। चतुर्गति के दुःखों में पड़ते हुए जीवों को उद्धारता है। है न? धरति इति धर्म। लो! और चतुर्गति दुःखी ... धरति इति धर्म। शुभभाव से तो स्वर्ग मिले। मिश्र शुभ-अशुभ से मिश्र में मनुष्य मिले, अशुभ पापभाव से नरक और ढोर हो। समझ में आया?

इस शुद्धभाव से मुक्ति मिले, ऐसा यहाँ कहते हैं। ये जिनभाषित धर्म ऊपर कहा था न, उसका अन्तिम योगफल करते हैं। ऊपर शब्द था दूसरी लाईन में। यह जिनभाषित वीतराग ने कहा हुआ धर्म। वीतराग के अतिरिक्त कोई अज्ञानी अपनी कल्पना से बातें करे, सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त, वे सब धर्म सच्चे नहीं, खोटे खोटा गप्प मारे। समझ में आया? सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर पूर्ण परमात्मा की वाणी में आया, उनकी वाणी को आगम कहा जाता है। उस आगम में ऐसा धर्म भगवान ने कहा है। समझ में आया?

धर्म चतुर्गति के दुःखों में पड़ते हुए... यह स्वर्ग के दुःख कहे यह तो। यहाँ तो

दूसरा कहा है कि शुभभाव—पुण्य से स्वर्ग मिले और इसे स्वर्ग में दुःख है, ऐसा यहाँ तो कहना है। दुःख मिले, ऐसा कहा। उन दुःखों से उभारे, वह आत्मा का धर्म वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान और वीतरागी शान्ति धर्म है, ऐसा कहा है। उस सुख से आत्मा सुखी होगा, धर्म करेगा तो सुखी होगा, वह तो मेला में लिखते हैं। पत्र में लिखते हैं हमारे कुछ लेना-देना नहीं। पंचम काल कठिन है, धर्म करे, वह सुखी होगा। परन्तु धर्म किसे कहना, इसका भान नहीं होता। पत्र में रिवाज प्रमाण लिखते हैं। नेमिदासभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। धर्म करने से सुखी होता है, परन्तु कौन सा धर्म? आत्मा के अन्दर में शुद्ध चैतन्यमूर्ति की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति जिसमें आनन्द प्राप्त हो। धर्म करेगा, वह सुखी होगा, आत्मा की शान्ति को प्राप्त हो, उसका नाम धर्म है। मेलावाले को ऐसा। मेला है न वह तो। आहाहा! यह तो कहा न वस्त्र उतारकर पढ़ना। वह तो कोई कहता था कि भाई! यह वाणी है, उसे वस्त्र छोड़कर पढ़ना, वस्त्र पहनकर मुनिपना मानता हो तो यह वस्त्र छोड़कर पढ़ना। यह किसी ने लिखा है, भाई! समझ में आया?

बापू! मार्ग भाई! यह अलौकिक, बापू! वहाँ कोई सिफारिश काम आवे, ऐसी नहीं है। आहाहा! क्या हो परन्तु? ऐसा बदल डाला है न पूरा। चक्र बदल डाला चक्र। मानो कि यह मार्ग वीतराग का न हो, जो वीतराग का मार्ग वह वीतराग का न हो, वीतराग का मार्ग नहीं, वह वीतराग का मार्ग। अज्ञानी ने ऐसा ही अनादि से बदला है।

यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! चार गति के दुःख। यहाँ तो दूसरा प्रश्न है कि स्वर्ग में इन्द्रपद में शुभभाव से उत्पन्न हो, वहाँ भी दुःख है, उस दुःख से उद्धार करे, उसका नाम धर्म। आहाहा! यह सब बात पहले आ गयी थी। उससे यह सुख मिले और ... यह सब। चार तो कल आ गये थे पहले। यह गाथा ६३ में। ६३ में आ गया था वह। शुभभाव हो दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, उस शुभभाव से स्वर्ग मिले और कुछ शुभ और अशुभ मिश्र से मनुष्यपना मिले और अकेले पापभाव से ढोर और नारकी, नीचे नारकी हो और ढोर हो आड़ा—तिर्यच। शुद्धभाव से मुक्ति हो, यह ६३ में आया था। समझ में आया? देखो! आया था न!

११०) पावें णारउ तिरिउ जिउ पुएणें अमरु वियाणु।

मिस्सैं माणुस-गइ लहइ दोहि वि खइ णिव्वाणु ॥६३॥

पुण्य से अमरु - देव हो। यह पुण्य-पाप के दो भाव से रहित आत्मा के स्वभाव से उन्हें खिरावे, उसे धर्म होता है, मुक्ति होती है। आहाहा!

यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया कि जो पहले दोहों में तो तुमने शुद्धोपयोग में संयमादि सब गुण कहे,... किसमें? ६७ में ६७वीं गाथा में शिष्य प्रश्न करता है। प्रभु! आपने ६७ में तो ऐसा कहा था कि शुद्ध उपयोग, शुभ पुण्य का भाव, अशुभ पाप का, उससे रहित आत्मा का शुद्ध उपयोग—स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान, रमणतारूप शुद्ध उपयोग, उसे संयम कहना, उसे शील कहना, उसे तप कहना, उसे सद्गुण कहते हैं। और यहाँ आत्मा का शुद्ध परिणाम ही धर्म कहा है,... यहाँ आत्मा के शुद्धभाव को आपने धर्म कहा, वहाँ शुद्ध उपयोग को कहा था, यहाँ शुद्धभाव को—परिणाम को आपने धर्म कहा।

उसमें धर्म पाये जाते हैं, तो पहले दोहे में और इसमें क्या भेद है? समझ में आया? प्रश्न तो हो न! ६७ में ऐसा कहा था। परिणाम के तीन व्यापार—एक अशुभ परिणाम, अर्थात् अशुभ उपयोग और शुभ उपयोग और शुद्ध उपयोग, ये तीनों पर्याय—अवस्था है। अशुभ अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, वह अशुभ परिणाम, अशुभ उपयोग। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, ज्ञान, स्मरण पूजा का शुभभाव, वह शुभोपयोग और दोनों परिणामों से रहित आत्मा के शुद्धस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान का शुद्ध उपयोग, वह तीसरे शुद्ध परिणाम। तो आपने वहाँ शुद्ध उपयोग को संयम आदि कहा था। और यहाँ आप शुद्ध परिणाम को धर्म कहा, दोनों में अन्तर क्या किया आपने? समझ में आया?

उसमें धर्म पाये जाते हैं, तो पहले दोहे में और इसमें क्या भेद है? उसका समाधान — पहले दोहे में तो शुद्धोपयोग मुख्य कहा था,... ६७ में आत्मा वस्तु की अन्तर शक्ति-सत्त्व का भगवान आत्मा की शुद्ध श्रद्धा, शुद्ध ज्ञान, शुद्ध उपयोग की रमणता, उसकी मुख्यता से कहा था। यह धर्म की मुख्यता से कहा। उसमें शुद्ध उपयोग

की मुख्यता से, इसमें धर्म की मुख्यता से। शुद्धोपयोग का ही नाम धर्म है,... लो! यह शुद्ध उपयोग आत्मा का शुद्ध परिणाम, शुद्धभाव, पुण्य-पापरहित शुद्धभाव का नाम भगवान ने धर्म कहा है। तथा धर्म का नाम ही शुद्धोपयोग है। लो! पारस्परिक ले लिया। शुद्धोपयोग का ही नाम धर्म और धर्म का ही नाम शुद्धोपयोग। समझ में आया?

शब्द का भेद है, अर्थ का भेद नहीं है। दोनों का तात्पर्य एक है। इसलिए सब तरह शुद्ध परिणाम ही कर्तव्य है, वही धर्म है। लो! योगफल पाठ में है। हों! 'तेन कारणेन सर्वप्रकारेण शुद्धपरिणाम एव' करनेयोग्य है। भगवान आत्मा पवित्र अखण्ड आनन्दकन्द की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति के शुद्ध निर्विकल्प अकषायभाव करनेयोग्य है। वह कर्तव्य है, वह धर्म है, वह मोक्ष का उपाय है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह ... धर्म, वह शुद्ध उपयोग हुआ प्रगट हुआ वह। हाँ, हाँ, ... शक्तिरूप से शुद्धोपयोग है, वह त्रिकाल शुद्ध है, प्रगट हुआ वह धर्म पर्याय की प्रगट की बात है न यहाँ तो। समझ में आया? जैसा शुद्ध स्वभाव त्रिकाल है, वैसे परिणाम में शुद्धता शक्ति की व्यक्तता प्रगट होना, वह शुद्ध परिणाम, उसे भगवान धर्म कहते हैं, लो! आहाहा! ऐसी क्रिया। क्रिया आयी न शुभ परिणाम की। शुभभाव का उपयोग वह पुण्य परिणाम है, अशुभभाव का व्यापार परिणाम का, वह पापभाव है। दोनों भाव से आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्य दल वीतरागस्वभाव है, समरसी है। उसके सन्मुख के श्रद्धा, ज्ञान की एकाग्रता, वह शुद्ध परिणाम है, उस शुद्ध परिणाम को यहाँ भगवान धर्म कहते हैं। समझ में आया?

'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव, श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया प्रबल कषाय अभाव।' समझ में आया? जैसे स्फटिक की निर्मलता। यह स्फटिक है न स्फटिक रत्न, वह निर्मल है। उसे यदि पीला डंक हो तो पीला भाग दिखाई दे। लाल हो तो लाल दिखाई दे। दोनों डंक न हो तो स्फटिक शुद्ध। इसी प्रकार आत्मा शुद्धस्वभाव स्फटिक जैसा उसका स्वभाव शुद्ध चैतन्य। 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव, श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया...' श्री महावीर आदि अनन्त

तीर्थकरों ने धर्म प्रकाशित किया। 'प्रबल कषाय अभाव।' कषाय अर्थात् अशुभ और शुभ दोनों भाव कषाय हैं, उनका अभाव, ऐसे स्फटिक रत्न का जो निर्मल मूल भाव, ऐसे आत्मा के शुद्धस्वभाव के मूल परिणाम को भगवान ने धर्म कहा है। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्द कषाय में रहता है न पुण्य। मन्द कषाय पुण्य है, उससे स्वर्ग आदि मिले। आत्मा की शान्ति की एकाग्रता वह पुण्य द्वारा नहीं मिलती। उस पुण्य द्वारा यह धूल मिले। ... नहीं आता? ... समझ में आया? संयोग मिले। बीच में शुभभाव हो, उसमें जिनवाणी का संयोग मिले, केवली का संयोग मिले, उस संयोगीभाव से संयोग मिलता है। स्वभावभाव से स्वभाव की स्थिरता मिलती है। समझ में आया?

शिष्य ने (गाथा) ६७ और ६८ दोनों के अन्दर में अन्तर क्या, ऐसा पूछा। दोनों बातें एक ही हैं। आत्मा को परिणाम के जो योग के तीन प्रकार हैं, अशुभयोग, शुभयोग और शुद्ध उपयोग। उसमें से वहाँ शुद्ध उपयोग की व्याख्या ६७ में की। उसमें सब संयम शान्ति गुण जितने कोई उसमें आ गये। यहाँ शुद्ध परिणाम को धर्म कहा। एक ही बात है। धर्म, वह शुद्ध परिणाम है; शुद्ध परिणाम, वह धर्म है। शुद्ध उपयोग, वह धर्म है और धर्म, वह शुद्ध उपयोग है। पश्चात् इसका योगफल करके शुद्ध परिणाम ही धर्म है। शुभाशुभभाव, वह धर्म नहीं, ऐसा वहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? लो! ६८ हुई। ६९।



गाथा - ६९

आगे शुद्ध भाव ही मोक्ष का मार्ग है,... ऐसा बताते हैं। वहाँ धर्म कहा था और वह शुद्धभाव ही मोक्ष का मार्ग है। निर्मल स्फटिक जैसा प्रभु यह आत्मा, उसके अन्तर निर्मलानन्द के ऊपर दृष्टि, ज्ञान और लीनता, ऐसा जो निश्चयमोक्षमार्ग, वह शुद्धभाव ही मोक्षमार्ग है। व्यवहार बीच में विकल्प व्यवहार मोक्षमार्ग कहा था, वह वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं। उसे कहा था, परन्तु मोक्षमार्ग तो शुद्धभाव ही मोक्षधर्म है। है न, देखो! यह शुद्ध का अर्थ ही यहाँ विशुद्ध है। पाठ में था न विशुद्ध? पाठ में देखो ऊपर कहा था 'अब निश्चयेन स्वकीयशुद्धभाव एव धर्म' ६८ के ऊपर पाठ में था 'विसुद्ध' और ऊपर कहा था 'स्वकीयशुद्धभाव' ६८ के ऊपर। यहाँ ६९ के ऊपर कहा कि, 'विशुद्धभाव' वह विशुद्ध शब्द लिया था न पाठ का, इसलिए ऐसा डाला वह स्पष्टीकरण करने के लिये, ऐसा डाला। ६९ (गाथा)।

१९६) सिद्धिहिं केरा पंथडा भाउ विसुद्धउ एक्कु।

जो तसु भावहँ मुणि चलइ सो किम होइ विमुक्कु ॥६९॥

समझ में आया? मुनि वहाँ से चलित हो जाये तो कैसे मुक्ति हो, ऐसा कहते हैं। शुद्धभाव में से चलित हो जाये तो उससे मुक्ति कैसे हो? आहाहा! मुक्ति का मार्ग... मुक्ति अर्थात् सिद्ध परमेश्वर होने की दशा, सिद्ध परमात्मा वह मुक्ति है। उसका पंथ अर्थात् मार्ग, उसका रास्ता। एक शुद्धभाव ही है। लो! समझ में आया? शुद्धपरिणाम—शुद्धपरिणाम, शुद्ध परिणामी प्रभु के शुद्ध परिणाम, वही मुक्ति का एक ही मार्ग है।

जो मुनि उस शुद्धभाव से... देखो! कहा न। एक ऐसा कहा है। एक शुद्धभाव ही मोक्ष का मार्ग है, दूसरा मार्ग है नहीं। ... यह तो कह गये हैं इससे पहले भी। गृहस्थ हो या मुनि हो, मार्ग आत्मा के शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति—वीतरागपर्याय, इन दो को धर्म है। श्रावक को अल्प शुद्धता, मुनि को—सच्चे मुनि को विशेष शुद्धता, परन्तु वह शुद्धता, वह धर्म है, बस। समझ में आया? यह वाद और विवाद। फँस जाये उसमें। मुश्किल से जीवन मिला थोड़ा। पचास, साठ, सत्तर वर्ष की उम्र या पिचहत्तर, अस्सी

लो न, कितने वर्ष ? अनन्त काल में ऐसे मनुष्यपने के वर्ष कितने ? देखो, कितने ही तो स्त्री, पुत्र और धन्धे में, तो कितना ही (काल) जाये सोने में, कितना ही जाये खाने, पीने और दस्त और पानी और पेशाब में, कितना ही साफ-सफाई में जाये, थोड़ा समय जाये वहाँ सुनने में जाये तो यह सच्चा तत्त्व उसे मिलता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

थोड़े काल में क्या करना, ऐसा माँगते हैं ? पैसे लेने जाये तो थोड़े काल में आमदनी माँगता होगा ? वहाँ तो ऐसा माँगता होगा एक मिनिट में सब लाओ। परन्तु सब इसके लिये एक मिनिट में आवे नहीं ममता, परन्तु यह मिले नहीं, वहाँ तक रुकता है या नहीं वहाँ ? मिनिट में एक सेकेण्ड में माँगे करोड़ों। वह माँगे तो जब तक न मिले, तब तक रुकता है या नहीं ? एक सेकेण्ड में मिले तो रुकूँ, वरना चला जाऊँ। ऐसा होगा ? देखो ! वहाँ अवधि माँगता नहीं। भले माँगे एक सेकेण्ड में, परन्तु एक सेकेण्ड में न आवे तो फिर सेकेण्ड में चला जाता होगा न ? ... अरे ! जिन्दगी रुके। हैरान होने मुफ्त में। परिवार छोड़कर, माँ-बाप छोड़कर, मौसी, बुआ छोड़कर सब पड़े यहाँ अकेला सिर फिरा हुआ। नेमिदासभाई !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो भी नहीं छोड़ता। अन्तिम है अब छोड़ दो। ... परन्तु इतना करो, इतना करो। एक व्यक्ति मरने की तैयारी, लड़के को कहे परन्तु ... परन्तु यह मरना। क्या कहलाता है वह ? ... का व्यापार है न, उन दाना का बड़ा। तार कर आओ उसका तार। वह जहाँ तार करके आया वहाँ यहाँ समाप्त। कुछ नहीं मिलता। सब जानते हों कि नहीं रहे यह, परन्तु नहीं, कर आ, कर आ जा। अच्छा परन्तु चैन है मूर्ख को ? अब मरना है तो अभी यह करना है। साथ में मानो आता होगा सब वहाँ ? सब नाम, ठाम की सब खबर हो उसकी। सब जानते हों या नहीं यहाँ ? आहा !

यहाँ कहते हैं, अरे ! 'मुक्ति केरा पंथडा' यह भाषा कैसी प्रयोग की, देखो न ! 'सिद्धिहँ केरा पंथडा भाउ विसुद्धउ एक्कु' एक भगवान आत्मा वह तेरी मुक्ति का पंथ तो वह शुद्धभाव एक ही है। शुभ और अशुभ दूसरा भाव मुक्ति का मार्ग है नहीं, ऐसा कहते हैं। एक ही मोक्षमार्ग कहा है यहाँ तो। ... समझाया था, ज्ञान कराया। योगफल

में है यह ... सच्चा... दो होकर एक, ऐसा कहा था, भाई! दो होकर एक कहाँ? एक होकर ही एक है। दूसरा तो निमित्त का आरोप होकर कथन है। दो होकर एक कब था कहा था इसे नहीं? ... आहाहा! भाई! एक समय का, एक तेरी पर्याय में एक समय का संसार है। इसके अतिरिक्त पूरा तत्त्व मुक्तस्वरूप पड़ा हुआ है। केवल जैसे घन आनन्द का कन्द, परन्तु ऐसी वस्तु की मुक्ति की खबर नहीं होती, वस्तु आत्मा अर्थात् क्या?

ऐसा आत्मा एक समय का विकार ही है उसे। दूसरे समय में दूसरा। तीसरे समय में तीसरा ... एक समय में... समय में... समय में... साधे दो समय संसार कभी आत्मा में रहे ही नहीं। पर्याय में, हों! पर्याय में। द्रव्य-गुण में तो संसार है ही नहीं। वस्तु और वस्तु की शक्तियों में तो संसार है नहीं। उसकी एक समय की, एक समय (अर्थात्) सेकेण्ड में असंख्यवाँ भाग—एक समय पुण्य-पाप मेरे, ऐसा मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष एक समय। दूसरे समय में दूसरा, तीसरे समय में तीसरा। ... ऐसे अनादि से करता आया है। यह विकार के शुभ-अशुभभाव के पीछे अकेला शुद्धस्वरूप आत्मस्वभाव, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति एकाग्रता। यह 'सिद्धि केरा पंथडा एक शुद्ध भाव जान।' आहाहा! गजब भाई! यह तब छोड़ दिया गया था न। छोड़ दिया। पहले वाँचन हुआ था तब। सिद्धि केरा पंथडा। भगवान! तेरा मुक्ति का मार्ग तो प्रभु! प्रभु ऐसा बताते हैं कि आत्मा अन्तर स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह तेरे पूर्ण मुक्ति के कार्य का कारण मार्ग—पंथडा एक है। बाकी बीच में शुभभाव हो तो मुक्ति का मार्ग नहीं।

जो मुनि उस शुद्धभाव से 'चलति'... है न? चलायमान हो जावे,... उसमें से हटकर शुभभाव में आवे, 'तो वह कैसे मुक्त हो सकता है? आहाहा! समझ में आया? पाँच पाण्डव शत्रुंजय (पर) ज्ञान में, आनन्द में मुनिराज परमात्मा। भगवान तीर्थकरदेव मुनि के ... गिरनार पर विचरते थे। वे लोग मुनि सन्त थे पाँच पाण्डव। महान नग्न दिगम्बर आनन्दकन्द में झूलनेवाले। और मास मासखमण का पारणा करके (दर्शन करने) निकले थे। विकल्प था शुभभाव। यहाँ जहाँ आये वहाँ सुना कि भगवान मोक्ष पधारे। शुभभाव है, हों! यह सुना बस। बन्द। आहार बन्द हो गया। ... अखण्डानन्द

अतीन्द्रिय आनन्द का ध्यान किया। दृष्टि में ज्ञान-चारित्र तो थे रमणता आनन्द की। दुर्योधन का भानेज आया। उसने युद्ध में दिक्कत थी न। लोहे के गहने पहनाये। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की मौज में रहते थे। तीन तो केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष गये। दो छोटे थे, उन्हें जरा ऐसा विकल्प आया, अरे! यह बड़े मुनि! जरा विकल्प आया पुण्य का। वह विकल्प आया उसमें पुण्य बँध गया। सर्वार्थसिद्धि में गये। यह तीन केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष गये। समझ में आया? देखो! दो भव करने पड़े। एक सर्वार्थसिद्धि का, एक मनुष्य का।

कहते हैं, जो मुनि उस शुद्धभाव से चलायमान हो जावे, तो वह कैसे मुक्त हो सकता है? आहाहा! वजन तो देखो! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द में लीन, आनन्द में लीन वह शुद्ध व्यापार। उसमें से शुभ का विकल्प आया, पुण्यबन्ध हो जायेगा। मुक्ति रुक जायेगी, केवलज्ञान नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पंचम काल के साधु-सन्त कहते हैं। उन्हें खबर होगी कि मेरी मुक्ति इस भव में नहीं। चलायमान ... शुद्ध उपयोग में स्थिरता नहीं रहती। अरे! विकल्प है, तब तक मुक्ति नहीं होगी। समझ में आया? वह स्वर्ग में अवतार लेना पड़ेगा। वहाँ से वापस माता के गर्भ में सवा नौ महीने उल्टे लटकना। वह यह राग का दुःख। स्वयं जोर मारते जाते हैं। समझ में आया? अरे! भगवान! अरे! आत्मा! तू स्थिरता में से हटेगा तो तुझे मुक्ति कैसे मिलेगी? आहाहा! क्योंकि मुक्ति तो शुद्ध परिणाम से होती है, शुद्ध परिणाम तो आत्मा में लीनता से होता है। बाहर का उपयोग विकल्प हट गया ऐसे, वह तो पुण्यबन्धन हुआ। आहा! मुनि इतने से डरे हैं। अन्तर के अतीन्द्रिय आनन्द में से बाहर निकलेगा तो भगवान! तुझे पुण्यबन्ध होगा। विकल्प आयेगा शुभ।

कहते हैं 'यः मुनिः तस्मात् भावात् चलति सः कथं विमुक्तः भवति' आहाहा! दुनिया की पड़ी नहीं। दुनिया का क्या होगा? वह तो हुआ ही करता है, उसके नियम प्रमाण सब। कौन करे और कौन रोके? यहाँ तो अपने आत्मा को कहते हैं। अरे! आत्मा! भगवान ने तो शुद्ध परिणाम को मुक्ति का कारण कहा है। आहाहा! वहाँ से हटे तो केवलज्ञान नहीं पावे, प्रभु! तू हों! विकल्प शुभ उठे, शुद्ध परिणाम में से हट गया है।

अब शुद्ध परिणति दूसरी है अभी। यह आया है, केवल (ज्ञान) नहीं होगा, मुक्ति नहीं होगी। वह स्वर्ग के दुःख में अवतरित होना पड़ेगा। स्वर्ग का दुःख है, हों! धूल में कहीं सुख नहीं। हाँ, वह तो पहले कहा था। दुःख चार गति के दुःख से निकाले, वह धर्म कहलाता है। दुःख में जायेगा भाई! आहाहा!

प्रभु! तेरी वीतरागता है न, उस वीतरागता के घर में से जो बाहर निकला वह ... दुःख में जायेगा, हों! स्वर्ग में दुःख है, आकुलता है, वहाँ होली है सब। नरक में भी दुःख और वहाँ भी दुःख है। इन्द्राणियों को बाहर की इच्छा है कि यह हो तो वह इच्छा, वह दुःख है। 'क्या इच्छत खोवत सबै है इच्छा दुःख मूल।' इच्छा स्वयं ही दुःख है। भगवान! तू आत्मा अन्दर इच्छारहित एक ... आनन्द। कहते हैं कि उसमें से टलकर, हटकर, तेरी मुक्ति कैसे होगी प्रभु? आहाहा! अभी स्वयं को कहते हैं इकट्ठा वापस। आहाहा! सन्त दिगम्बर मुनि हैं, नौ सौ वर्ष पहले महा अध्यात्म में लवलीन, आनन्द में तल्लीन। उसमें भी यह लिखने आदि का विकल्प उठता है। अरे! मुनि! उस स्वरूप में से हटेगा तो मुक्ति कैसे होगी? परन्तु यदि पुण्य में भले बँध जायेगा, परन्तु उसका आदर होगा। शुद्धभाव... शुद्धभाव... शुद्धभाव... समझ में आया?

भावार्थ :- जो समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्पों से रहित जीव का शुद्धभाव है,... लो! देखो, स्पष्टीकरण करते हैं, हों! पश्चात्। जो समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्पों से रहित जीव का शुद्धभाव है, वही निश्चयरत्नत्रयस्वरूप मोक्ष का मार्ग है। देखो! श्रद्धा-ज्ञान में उसे पहिचान तो करे पहले। खबर नहीं होती, श्रद्धा नहीं होती, ज्ञान नहीं होता और उसे ऐसा कहे कि अपने धर्म हो जायेगा, चलो। पाँचवें काल में मुक्ति नहीं, परन्तु मुक्ति नहीं तो भी किस कारण से नहीं? यह तो वह राग है, इसलिए नहीं। इसलिए कहते हैं कि झंखना अन्दर शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान की कर। समझ में आया? राग बाकी रहता है, इसलिए पुण्य बँध जाये... ऐसी पुकार करते हैं। समझ में आया?

आत्मा समस्त शुभ-अशुभभाव दो, इनसे रहित जीव का परिणाम जो शुद्धभाव वीतरागी पर्याय शुद्ध निर्मलदशा, वह एक ही वही निश्चयरत्नत्रयस्वरूप... समझ में आया? मोक्ष का मार्ग है। लो! यह हेतु का स्पष्टीकरण किया। समझ में आया? नीचे

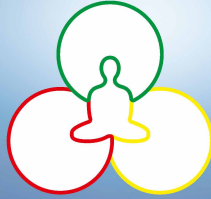
कहते हैं, **मोक्ष का मार्ग एक शुद्धभाव ही है**,... आहाहा! दो मोक्षमार्ग नहीं। कथन दो मोक्षमार्ग का है। मोक्षमार्ग—छूटने का पंथ तो एक ही शुद्ध परिणाम और निश्चयरत्नत्रय एक ही है। पागल हुए ... अकेले शुद्धभाव से धर्म होता है, ऐसा कहते हैं। भगवान—धर्म के ईश्वर, ऐसा कहते हैं। भाई!

परमेश्वर तीन लोक के नाथ वीतरागदेव, सौ इन्द्रों की उपस्थिति में, दिव्यध्वनि में समवसरण में विराजते ऐसा कहते हैं। महाविदेह में विराजे परमात्मा तीर्थकर अभी। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है, सैकड़ों देव आदि करोड़ों और सौ इन्द्रों की उपस्थिति हो जाती है। सिंह और बाघ, नाग और देव और चक्रवर्ती। भगवान की वाणी आयी उसमें, ऐसा कहते हैं कि भाई! हम वीतरागी ईश्वर हैं। हम राग के ईश्वर नहीं। यह वीतरागपना जो प्रगट हुआ, उनकी वाणी आयी। भाई! तुझे मोक्ष का पंथ तो शुद्ध परिणाम एक ही है, हों! आहाहा! यह इन्द्र सुनते थे, उन्होंने स्वीकार किया है कि मार्ग, प्रभु! यह ही है। समझ में आया?

इतना घर और इतना मकान दो कहते हैं, परन्तु दूसरा लोक है, भगवान है, सब है या नहीं? सदेह भगवान विराजते हैं। इस क्षेत्र के ऊपर ऐसे क्षेत्र में सीधे। सिद्ध भगवान तो ऊपर गये लोकाग्र में। वे तो सिद्ध हुए, परन्तु अरिहन्त क्या विराजते हैं या नहीं तीर्थकर अभी? इस क्षेत्र में नहीं, परन्तु दूसरे क्षेत्र में हैं या नहीं? उन भगवान की वाणी में ऐसा आया था, इसलिए धर्म ईश्वरा कहा। धर्म के ईश्वर परमात्मा, ऐसा कहते हैं। सन्त कहते हैं कि हम नहीं, हों! भगवान भी ऐसा कहते हैं। यह वहाँ इन्द्र मानते थे, नाथ! त्वमेव सत्यं—आप कहते हो वह ही यह (बात) सत्य है। समझ में आया?

वही निश्चयरत्नत्रयस्वरूप मोक्ष का मार्ग है। जो मुनि शुद्धात्म परिणाम से च्युत हो जावे, वह किस तरह मोक्ष को पा सकता है? नहीं पा सकता। मोक्ष का मार्ग एक शुद्धभाव ही है, इसलिए मोक्ष के इच्छुक को वही भाव हमेशा करना चाहिए। श्रद्धा, ज्ञान और वीतरागता ही करनी चाहिए। वह मोक्ष का मार्ग है। ऐसी इसे श्रद्धा और भावना करनी चाहिए।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



: प्रकाशक :

श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

विले पार्ला, मुंबई

www.vitragvani.com